चीनी यात्री

ह्वेनसाँग की भारत यात्रा

[सन् ६२९ से सन् ६४५ तक]

TRAVELS IN INDIA

[A. D. 629—645]

By

WHEN THSANG

मूल लेखक

ह्वेनसांग

अनुवादक

ठाकुर प्रसाद शर्मा

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४९२, मालवीय नगर

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] अगस्त १९७२ [मूल्य १८ रु०

प्रस्तावना

—: ० :—

ईसवी पूर्व मे चौथी शताब्दी मे सिकन्दर के आक्रमण एवं ईसा के पश्चात् सातवी शताब्दी मे चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसाग की यात्राओं का विवरण भारत के प्राचीन इतिहास मे उतना ही रुचि एवं महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जितना सिकन्दर महान की साहसिक यात्राओं का।

ह्वेनसाग तीसरा चीनी यात्री था जो सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे सन् ६२६ मे भारत मे आया और १५ साल तक भारत के भिन्न-भिन्न स्थानो को देखता हुआ तथा अनेक विद्यालयो मे विद्याध्ययन करता हुआ उसने जो कुछ देखा, पढा और सुना, उस समय के भारत की सच्ची अवस्था का जो वर्णन उसने किया है, उससे सातवी शताब्दी के भारतीय इतिहास की सच्ची जानकारी प्राप्त होती है। अपने लेख के प्रारंभिक अंश मे उसने हिन्दुओ के शिष्टाचार, उनकी कला तथा उनकी परम्पराओ का वर्णन जो उसने किया है, वह इतिहास के विद्यार्थियो के लिये बड़े काम की चीज है।

ह्वेनसाग की यात्राओ का समय ६२६ ईसवी से ६४५ ईसवी तक था। इस काल मे उसने काबुल तथा काश्मीर से गङ्गा एवं सिन्धु नदियो के मुहाने तक तथा नेपाल से मद्रास के समीप काचीपूर तक के सम्पूर्ण देश के बड़े-बड़े नगरो की यात्रा की थी। तीर्थ यात्री ने ६३० ईसवी के मई मास के अन्तिम दिनो मे वामियान के मार्ग से काबुल मे प्रवेश किया था और अनेक परिभ्रमणो एवं लम्बे विश्राम के पश्चात आगामी वर्ष के अप्रेल मे ओहिन्द के स्थान पर सिन्धु नदी को पार किया था। उसने बौद्ध धर्म की पवित्र यात्रा के उद्देश्य से कई मास का समय तक्षशिला में व्यतीत किया और तत्पश्चात काश्मीर की ओर प्रस्थान किया जहाँ उसने अपने धर्म की अधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तको के अध्ययन हेतु दो वर्ष व्यतीत किये। पूर्व दिशा की यात्रा मे उसने साँगला के खण्डहरो की यात्रा की जो सिकन्दर के इतिहास मे अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसके बाद चिन्नापट्टी मे चौदह मास एवं जालन्धर में चार मास धार्मिक अध्ययन हेतु व्यतीत करने के पश्चात् उसने सन् ६३५ ई० मे सतलज नदी को पार किया।

तत्पश्चात् द्वाब मे सखिला, कन्नौज तथा कौशाम्बी के प्रसिद्ध नगरों की यात्रा के उद्देश्य से उसने गङ्गा नदी को पुनः पार किया और उसके पश्चात् अवध मे अयोध्या

तथा श्रावस्ती के प्रसिद्ध स्थानो पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए उत्तर की ओर मुड़ गया। वहाँ से उसने कपिलवस्तु तथा कुशीनगर के स्थानो पर बुद्ध के जन्म एवं निर्वाण के स्थानो की यात्रा हेतु पुनः पूर्व दिशा का अनुकरण किया और वहाँ से बनारस के पवित्र नगर की ओर गया, जहाँ बुद्ध ने अपने धर्म की प्रथम शिक्षा दी थी।

इसके बाद मगध की प्राचीन राजधानियो कुशागरपुर तथा राजगृह के प्राचीन नगरो तथा सम्पूर्ण भारत मे प्रसिद्ध स्थान नालन्दा के महान मठ मे गया जहाँ उसने सस्कृत भाषा के अध्ययन हेतु पन्द्रह मास व्यतीत किया। इसके पश्चात् सन् ६४० ई० के प्रारम्भ मे इस स्थान से चलकर वह दक्षिण दिशा मे द्रविड़ देश की राजधानी काचीपुर अथवा कञ्जीवरम पहुँचा। फिर उत्तर दिशा की ओर चलकर महाराष्ट्र से होते हुए नर्मदा नदी पर स्थित भड़ौच नगर पहुँचा, जहाँ से वह उज्जैन, मालवा तथा वलभी के अन्य छोटे-छोटे राज्यो मे होता हुआ वह सन् ६४१ के अन्त मे सिन्ध तथा मुल्तान पहुँच गया एव सिन्ध नदी को पार करके वह कपिसा के राजा के साथ सन् ६४४ ई० के लगभग लमगान की ओर चला गया। यहाँ से पञ्चशीर घाटी तथा श्रावक दर्रे से होते हुये वह अपने स्वदेश की ओर का मार्ग पकडकर सन् ६४४ ई० के जुलाई मास के अन्त तक अन्देराव पहुँच गया। अनेक बर्फीले दर्रो को वह सरलतापूर्वक पार करता हुआ, अपने महान उद्देश्य की पूर्ति करके काशगर तथा यारकन्द होता हुआ वह सन् ६४५ ई० के अन्त मे अपनी मातृ-भूमि चीन देश मे प्रवेश करके अपने घर सकुशल पहुँच गया।

प्रयाग
३१-८-१९७२

गिरिधर शुक्ल

विषय-सूची

—: o :—

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

नवाँ अध्याय

दसवाँ अध्याय

ग्यारहवाँ अध्याय

बारहवाँ अध्याय

ह्वेनसाँग की भारत यात्रा

पहला अध्याय

प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग का जन्म सन् ६०३ ईसवी मे सूबे 'होनान' के मुख्य नगर के निकट 'चिन्ल्यू' स्थान मे हुआ था। यह व्यक्ति अपने चारो भाइयो मे सबसे छोटा था। बहुत थोडी ही अवस्था मे यह अपने द्वितीय भाई चौङ्गसी के साथ पूर्वीय राजधानी 'लोयाङ्ग' को चला गया। वहां पर इसका भाई 'सिङ्गातू' मन्दिर का महन्त था। इस स्थान पर ह्वेनसाग तेरह वर्ष की अवस्था तक रहकर विद्योपार्जन करता रहा। इन दिनो 'सूई' राज्य के नष्ट होने के कारण देश में अशान्ति फैली हुई थी जिससे 'ह्वेनसाग' को अपने भाई समेत 'च्यूयेन' सूबे की राजधानी 'शिङ्गटू' नगर में भाग जाना पडा। वहाँ पर वह बीस वर्ष की अवस्था तक भिक्षु या पुरोहित का काम करता रहा। इसके कुछ दिनो बाद अपने ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करने के लिए वह इधर-उधर देशाटन करता हुआ 'चङ्गन' प्रदेश को आया। यह वही स्थान है जहाँ पर फाहियान और चियेन यात्रियो का स्मरण होने से उसके हृदय मे; पश्चिमी देशो में जाकर और वहाँ के योग्य महात्माओ का सत्सग करके अपनी उन शंकाओं को जिनके कारण वह सदा वेचैन रहा करता था, निवारण करने की प्रबल इच्छा हुई। जिस समय उसकी अवस्था २६ साल की थी वह 'कन्सू' के पुरोहित 'सिङ्गचू' के साथ 'चङ्गन' से चल दिया और उसके शहर मे जाकर ठहरा। कुछ दिनो बाद वहाँ से 'लानचौ' होता हुआ 'लियाङ्गचौ' स्थान मे पहुँचा। यह वह स्थान है जहाँ पर तिब्बत तथा 'सङ्गलिङ्ग' पहाड के पूर्वी स्थानो के सौदागर इकट्ठा होते थे और गवर्नर से आज्ञा लेकर व्यापार करने के लिये दूसरे देशो को जाते थे। यहाँ पर उसने सौदागरो को अपनी यात्रा का कारण —ब्राह्मणो के देश मे धर्म की शिक्षा प्राप्त करने की उत्कंठा— बतलाया। सौदागरो ने उसकी यात्रा के लिये आवश्यक सहायता देकर उसका बहुत सम्मान किया। परन्तु अब बडी भारी कठिनता यह पडी कि गवर्नर ने उसको यात्रा के लिए आज्ञा नही दी, जिसके कारण उसको छिपकर भागना पडा, तथा वह दो पुरोहितो के साथ छिपता-छिपाता किसी प्रकार 'हुलू' नदी के दक्षिण 'क्राचौ' कसवे तक, जो

कि दस मील था, पहुँच गया। इस स्थान से कुछ दूर उत्तर दिशा मे जाकर वह एक मनुष्य के साथ रात्रि मे नदी के पार हुआ। परन्तु वहाँ पर उसके साथी ने उसके साथ दगाबाजी करना चाहा। यह बात ह्वेनसाग समझ गया तथा उसका साथ छोडकर अकेला ही चल पडा। अभी उसको चीन राज्य के पाँच दुर्ग और पार करने बाकी थे जिनसे छिपकर निकल जाना सहज न था, परन्तु यह ह्वेनसाग सरीखे साहसी धर्मवीर ही का काम था कि वह इन सब दुर्ग रक्षको की आँख बचाकर और प्राणो पर खेलकर निकल गया तथा रेगिस्तान का भीषण कष्ट सहन करता हुआ किसी न किसी प्रकार 'ईगू' स्थान तक पहुँच गया। जिस समय वह 'ईगू' स्थान मे ठहरा हुआ था उसकी खबर 'कावचङ्ग'[1] के बादशाह के पास पहुँची। बादशाह ने बडे आदर से उसको अपने नगर मे बुला भेजा तथा बहुत कुछ इस बात का प्रयत्न किया कि वह उसके यहाँ निवास करे, परन्तु 'ह्वेनसाग' को भारत की पवित्र भूमि का दर्शन किये बिना कब चैन हो सकता था ? इस कारण बादशाह की आज्ञा को नम्रतापूर्वक अस्वीकार करते हुए 'कावचङ्ग' से रवाना होकर 'ओकीनी'[2] प्रदेश मे पहुँचा। यही से उसकी यात्रा का वर्णन, उसी के शब्दो मे, दिया जाता है।

ओकीनी

यह राज्य लगभग ५०० ली[3] पूर्व से पश्चिम और ४०० ली उत्तर से दक्षिण तक बिस्तृत है। इसकी राजधानी का घेरा लगभग छः या सात ली है जो कि चारो ओर पहाडियो से घिरा हुआ है। इसकी सडके ढालू और सुरक्षित हैं। नदी और नाले बहुतायत से हैं जिनसे खेतो की सिंचाई का काम होता है। ज्वार, गेहूँ, मुनक्का, अगूर नासपाती, बेर तथा अन्यान्य फलो की उत्पत्ति के लिए भूमि भी बहुत उपयुक्त है। वायु मन्द और सुखदायक तथा मनुष्यो के व्यवहार सच्चे और ईमानदारी के हैं।

यहा की लिखावट मे और हिन्दुस्तान की लिखावट मे कुछ थोडा ही अन्तर है। पोशाक रुई अथवा ऊन की पहनी जाती है। शिरोवस्त्र का बिलकुल चलन

---

(1) यह स्थान बहुत समय तक तुर्कों के अधिकार मे रहा।

(2) 'ओकीनी' यह शब्द दूसरे प्रकार से 'वूकी' भी माना जा सकता है। जुलियन साहब 'येन्की' लिखते हैं, क्योकि कभी कभो 'वू' का उच्चारण 'येन' भी होता है। यह स्थान वर्तमान काल मे 'करशर' अथवा 'करशहर' माना जाना है जो तङ्गेज भील के निकट है।

(3) 'ली' यह कोई पैमाना है जिसका निर्दिष्ट विवरण असल पुस्तक मे नही है, अनुमान से पाँच ली एक मील के बराबर होते हैं।

नही है तथा लोगो के शिर के बाल भी कटे हुए रहते है। वाणिज्य-व्यवसाय मे ये लोग साने और चाँदी के सिक्के तथा ताँबे के छोटे छोटे सिक्के काम मे लाते हैं। बादशाह स्वदेशो और बहादु र है। यद्यपि अपने विजय की उसको सदा आकांक्षा रहती है परन्तु सेना-सम्बन्धी नियमो की ओर कम घ्यान देता है। इस देश का कोई इतिहास नही है और न कोई नियत कानून हो हैं। इसदेश में लगभग दस 'संघाराम' बने हुए है जिनमे 'हीनयान' धर्म के अनुयायी दो हजार बौद्ध संन्यासी निवास करते है, जिनका सम्वन्ध 'सर्वास्तिवाद'[1] सस्था से है। सूत्र और विनय भारतवर्ष के समान हैं और पुस्तके भी वही है जो भारतवर्ष मे प्रचलित हैं। यहाँ के धर्मोपदेशक अपनी पुस्तको को पढकर उनमे के लिखे हुए नियमो का बहुत पवित्रता और दृढ़तापूर्वक मनन करते हैं। ये लोग केवल तीन[2] पुनोत भक्ष्य वस्तुओ का भोजन करते है, और सदा 'क्रमशः वृद्धिदायक' नियम[3] की ओर ओर लक्ष्य रखते हैं।

इस देश से लगभग २०० ली दक्षिण पश्चिम की ओर एक छोटा पहाड और दो बडी नदियाँ पार करके, तथा एक हमवार घाटी नाँघ कर ७०० ली चलने के उपरान्त हम उस देश मे आये जिसका नाम 'किउची' है।

किउची राज्य

किउची प्रदेश पूर्व से पश्चिम तक लगभग १००० ली लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक लगभग ६००'ली चौडा है। राजधानी १७-१८ ली के घेरे मे है। यहाँ की भूमि की पैदावर चावल तथा अन्यान्य प्रकार के अन्न हैं। एक विशेष प्रकार का चावल भी होता है जिसको 'केङ्गाव' कहते हैं अङ्गूर, अनार, कई प्रकार के बेर, नासपाती, आडू, बादाम इत्यादि भी इस देश मे पैदा होते हैं। यहाँ की भूमि में सोना, ताँबा, लोहा, सीसा और टीन की भी खाने हैं। वायु मन्द और मनुष्यो के व्यवहार सच्चे है। यहाँ की लिखावट का ढग स्वल्प परिवर्तित स्वरूप मे हिन्दुस्तानी ही है। वीणा और बांसुरी बजाने मे कोई भी देश इस देश की समता नही कर सकता।

---

(1) 'सर्वास्तिवाद सस्था' बौद्धो की वहुत प्राचीन सस्था है इसके दो भेद हैं—'हीनयान' और 'महायान'। हीनयान सामाजिक या सांसारिक वन्धनो से मुक्त होने की शिक्षा देता है, और महायान जीवनमरण के बन्धन से मुक्त होने की शिक्षा देता है।

(2) शाक, अन्न, और फल।

(3) वह नियम जिसके द्वारा बौद्ध लोग 'लघुयान' से वढ कर 'महायान' सम्प्रदाय तक पहुँचते हैं।

यहां के लोगो के वस्त्र, रेशमी और चिकन के, बहुत सुन्दर होते हैं तथा शिर के वाल कटे हुए रहते हैं, ये लोग शिरो पर उठी हुई टोपी धारण करते हैं। सोना, चांदी और तांवे के सिक्को का प्रचार है। यहां का राजा 'किउची' जाति का है। यद्यपि राजा विशेष बुद्धिमान् नही है परन्तु उसका मन्त्री वहुत ही दक्ष है। जन-साधारण के वच्चो के शिर एक प्रकार की लकडी मे दवा कर चपटे कर दिये जाते हैं[1]।

लगभग १०० सघाराम इस देश मे हैं जिनमे पांच हजार से अधिक शिष्य निवास करते हैं। इनका सम्बन्ध सर्वास्तिवाद संस्था के हीनयान सम्प्रदाय से है। उनकी (सूत्र पढाने की) योग्यता और उनके शिष्यो के वास्ते नियम (विनय के सिद्धान्त) वही हैं जो हिन्दुस्तान मे प्रचलित हैं, और वे लोग वही की पुस्तके भी पढते हैं। इन लोगो मे क्रमिक शिक्षा विशेष प्रचलित है और भोजन मे तीन पुनीत वस्तुए ग्रहण की जाती हैं। इन लोगो के जीवन पवित्र हैं और दूसरे लोगो को धार्मिक जीवन और धार्मिक आचार बनाये रखने के लिए ये लोग सदा उत्तेजना देते रहते हैं।

देश की पूर्वी हद पर एक नगर है जिसके उत्तर की ओर एक देवालय बना हुआ है। इस देवालय के सामने ही एक विस्तृत अजगर झील है। इस झील के रहनेवाले अजगर, अपनी सूरत बदलकर, घोडियो के साथ जोडा लगाते हैं[2] इस प्रकार जो वच्चे पैदा होते हैं वह जङ्गली किस्म के घोडे होते हैं जिनका स्वभाव वडा भयानक होता है और जिनको पालतू वनाना वडा कठिन है। परन्तु इन अजगर-घोडो की सन्तति पालने और सिखाने के योग्य हो गई है इस कारण यह देश उत्तम घोडो के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गया है। इस देश की प्राचीन पुस्तको मे लिखा है कि 'पुराने जमाने मे एक 'स्वर्णपुष्प' नामक राजा अद्भुत प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था. वह अपनी वुद्धिमत्ता से इन अजगरो को रथ मे जोतता था। जब राजा की इच्छा स्वय अदृश्य हो जाने की होती थी तव वह अपने चाबुक से अजगरो के कान छू देता था जिससे कि फिर कोई भी मनुष्य उसको नही देख सकता था।'

---

(1) शिर चपटा करने की चाल अब भी उत्तरी अमेरिका की कुछ जातियो मे है।

(2) मि० किङ्गसमिल ने इस जोडा लगाने के सम्बन्ध को लेकर चीनी और तुर्किस्तानवालो के सम्मेलन पर अच्छा लेख लिखा है, देखो J. R. A S N. S. Vol XIV P. 66 N. मार्कोपोलो की पुस्तक का भाग १ अ० २ भी देखने योग्य है जिसमे लिखा है "तुर्फान ही उत्तम घोडे हैं" सफेद घोडियो से क्या तात्पर्य है? इसके लिए यूल साहव का नोट नम्बर २ भी उल्लेखनीय है।

प्राचीन काल से लेकर अब तक कोई भी कुँआ इस नगर में नही बनाया गया है। यहाँ के रहनेवाले उसी अजगर झील से पानी लाकर पीते हैं। जिस समय स्त्रियाँ पानी भरने झील को जाती थी उस समय ये अजगर मनुष्य का स्वरूप धारण करके उन स्त्रियों के साथ सहवास करते थे। उनके बच्चे जो इस प्रकार पैदा हुए वह घोडों के समान चञ्चल, साहसी और बलिष्ट हुए। धीरे धीरे सपूर्ण जन-समुदाय अजगरो के वश का होकर सभ्यता से रहित हो गया और अपने राजा का सत्कार विद्रोह और उपद्रव से करने लगा। तब राजा ने 'तुहक्यूह'[1] की सहायता से नगर के, बूढे बच्चो समेत, सब मनुष्यो का ऐसा सहार किया कि एक भी जीता न बचा। नगर इस समय बिलकुल उजाड और सुनसान है।

इस उजडे नगर के उत्तर की ओर कोई ४० ली के अन्तर पर एक पहाड की ढाल पर दो सघाराम पास पास बने हुए हैं जिनके बीच मे एक जल की धारा प्रवाहित है। ये दोनो सघाराम एक दूसरे के पूर्व-पश्चिम की ओर हैं जिसके कारण इनका नाम 'चौहूली' पड गया है। यहाँ पर बहुमूल्य वस्तुओ से आभूषित महात्मा बुद्ध की एक मूर्त्ति हैं जिसकी कारीगरी मानुषी समता से परे है। संघाराम के निवासी पवित्र, सत्पात्र, और अपने धर्म मे कट्टर हैं। पूर्वी संघाराम बुद्ध-गुम्बज के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे एक चमकीला पत्थर है जिसका ऊपरी भाग लगभग दो फीट है और रंग कुछ पोलापन लिये हुए सफेद है। इसकी सूरत समुद्रो घोंघे की सी है। इस पत्थर पर महात्मा बुद्ध का चरणचिन्ह एक फुट आठ इच लम्बा और आठ इच चौडा बना हुआ है। प्रत्येक व्रतोत्सव की समाप्ति पर इस चरणचिन्ह मे से चमक और प्रकाश निकलने लगता है।

मुख्य नगर के पश्चिमी फाटक के बाहरी स्थान पर सडक के दाहनी और बाईं दोनो ओर करीब ९० फीट ऊँची महात्मा बुद्ध की दो मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इन मूर्तियो के आगे मैदान मे बहुत सा स्थान पञ्चवार्षिक[3] महोत्सव किये जाने के

---

(1) तुर्क।

(2) अर्थात् पूर्वी चौहूली और पश्चिमी चौहूली। चौहूली शब्द का ठीक ठीक और एक शब्द मे अनुवाद होना कठिन है। 'ली' का अर्थ है दो. अथवा जोडा, और 'चौहू' का अर्थ है सूर्य के प्रकाश का आश्रित अर्थात् प्रकाशाश्रित युग्म। कदाचित् इन दोनो मे बारो बारी से सूर्य के उदय और अस्त का प्रकाश पहुँचता था इसी लिए ऐसा नामकरण किया गया है।

(3) यह पचवार्षिकोत्सव अशोक ने कायम किया था।

लिए नियत है। प्रत्येक वर्ष शरदऋतु मे, जिस दिन रातदिन का प्रमाण बराबर होता है दश दिन तक इस स्थान पर बडा मेला होता है, जिसमे सब मुल्को के साधु इकट्ठे होते है। राजा अपने कर्मचारियो तथा छोटे और बडे, धनी और दरिद्र, सभी प्रजाजनो समेत इस अवसर पर सम्पूर्ण राज-सम्बन्धी कार्यों को परित्याग करके धार्मिक व्रत करता और सब लोगो को बहुत शान्ति के साथ पवित्र धर्म के उपदेश सुनवाता है।

प्रत्येक मास की अमावास्या और पूर्णिमा को राजा अपने सम्पूर्ण 'मन्त्रियो से राज्य-सम्बन्धी कार्यो की सलाह करता है और तत्पश्चात् पूरोहितो की सभा करके सर्वसाधारण मे प्रकाशित करता है।

जिस स्थान पर यह सभा होती है इसके उत्तर-पश्चिम मे एक नदी पार करके हम लोग ओशीलीनो (असाधारण) नामक सघाराम मे आये। इस मन्दिर का सभा-मडप बहुत लम्बा-चौडा और खुला हुआ है, और महात्मा बुद्ध की मूर्ति वहुत सुन्दर है। इस स्थान के साधु बहुत शान्त, योग्य और अपने धर्म के कट्टर हैं। जिस तरह पर असभ्य और नीच प्रकृति के पुरुष अपने पापो से मुक्त होने के लिए इस स्थान पर आते हैं उसी प्रकार बूढे, विद्वान् और बुद्धिमान् साधु भी जिनको सन्मार्ग पाने की जिज्ञासा होती है, यहा आकर निवास करते हैं। राजा, उसके मन्त्री, और राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्ति इन साधुओ को भोजन इत्यादि से सब प्रकार की सहायता पहुँचाते हैं जिससे इन लोगो की प्रसिद्धि दूरदूर तक फैलती जाती है।

प्राचीन पुस्तको मे लिखा है कि 'किसी समय मे यहा एक राजा था जो कि तीनो बहुमूल्य वस्तुओ'[1] का पूजनेवाला था। उसको एक समय ससार के सम्पूर्ण पुनीत बौद्धावशेष के दर्शनो की इच्छा हुइ इस कारण उसने राज्य का भार अपने विमात्र छोटे भाई के सुपुर्द कर दिया। छोटे भाई ने राजा की इस आज्ञा को मान तो लिया परन्तु उसको भय हुआ कि कही कोई व्यक्ति उसके सम्बन्ध मे किसी प्रकार की अनुचित शङ्का न करे। इस कारण उसने अपने गुप्त-भाग (लिंग) को काट डाला और उसको एक सोने के डिब्बे मे बन्द करके राजा के निकट ले गया। राजा ने पूछा—'इसमे क्या है ?' उसने उत्तर मे निवेदन किया कि जब श्रीमान् अपनी यात्रा समाप्त करके मकान पर वापस आवे तब इस डिब्बे को खोलकर देखें कि इसमे क्या है। राजा ने उस डिब्बे को अपने राज्य के मैनेजर को दे दिया और मैनेजर ने राजा के शरीर-रक्षको के सुपुर्द कर दिया। यात्रा समाप्त होने पर जब राजा अपने देश को लौट आया उस समय कुछ पापियो ने उससे कहा कि 'जिस समय आप विदेश मे थे आपके भाई ने

(1) बुध, धर्म और सघ।

रनवास को भ्रष्ट किया'। राजा इस बात को सुन कर बहुत क्रुद्ध हुआ और बड़ी निर्दयता के साथ अपने भाई को दंड देने पर उद्यत हो गया। उसके भाई ने निवेदन किया कि 'महाराज ! मै दंड से भागूंगा नही, परन्तु मेरी प्रार्थना है कि आप सोने के डिब्बे को खोले।' राजा ने उसी समय सोने के डिब्बे को खोलकर देखा तो उसमे उस कटे हुए गुप्त भाग को पाया। राजा को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने पूछा कि यह क्या वस्तु है ? भाई ने उत्तर दिया, "जिस समय महाराज ने यात्रा का विचार किया था और राज्य मेरे सुपुर्द हुआ था उसी समय मुझको पापियो से भय हो गया था, और इस कारण मैंने स्वयं अपने गुप्तभाग को काट डाला था। अब महाराज को मेरी दूरदर्शिता का पता लग गया, इस कारण मेरी प्रार्थना है कि मैं निर्दोष हूँ, महाराज मेरे ऊपर कृपा करे।" राजा पर इस बात का बडा प्रभाव पडा और उसने ाई की बहुत प्रतिष्ठा करके यह आज्ञा दे दी कि 'तू महल के प्रत्येक स्थान पर बिना रोक-टोक आ जा सकता है।' इसके बाद ऐसा हुआ कि एक दिन भाई विदेश को जा रहा था, रास्ते मे उसने एक ग्वाले को देखा कि वह ५०० बैलो को बधिया (नपुसक) करने की तदवीर कर रहा है। इस बात को देखकर, उसको अपनी दशा का ध्यान हुआ और अपने कष्टो के अनुभव से उसको विदित हो गया कि कितना बडा कष्ट इन पशुओ को बधिया हो जाने से मिलेगा। उसके चित्त मे करुणा का स्रोत उमड पडा। उसने मन मे सोचा कि 'क्या अपने पूर्वजन्म के पापो के कारण ही मैंने यह कष्ट पाया ?' ऐसा विचार करके उसने द्रव्य और बहुमूल्य रत्न देकर उन बैलो को खरीदना चाहा। इस दया के कार्य का यह प्रभाव हुआ कि उसका वह कटा हुआ अङ्ग कुछ दिनो मे ज्यो का त्यो हो गया और इस कारण उसने रनवास का आना जाना बन्द कर दिया। राजा को उसके वहाँ आना जाना बन्द कर देने से बहुत आश्चर्य हुआ और उसने उससे इसका कारण पूछा। तब, आद्योपान्त सब कथा सुनकर अपने भाई को 'असाधारण' व्यक्ति जानकर राजा ने उसकी प्रतिष्ठा और उसका नाम अमर करने के लिए इस सघाराम को बनवाया। यही कारण है कि यह असाधारण (सघाराम) कहलाता है।

इस देश को छोडकर और लगभग ६०० ली पश्चिम जाकर तथा एक छोटे से रेगिस्तान को पार करके हम 'पोहलुहकिया' प्रदेश को पहुँचे।

पोहलुहकिया (वालुका या अक्सू[1])

(1) प्राचीनकाल मे इसका नाम 'चेमेह' अथवा 'किहमेह' भी था। जुलियन साहब का 'कौमे' निश्चयरूप से 'किहमेह' ही है। देखो प्राचीन काल मे यह अक्सू राज्य का पूर्वी भाग था। पोहलुहकिया अथवा वालुका व नामकरण का कारण तुर्क लोग हैं जो चौथी शताब्दी मे कमूसू के उत्तरी-पश्चिमी भाग के अधिकारी थे Ibid, P 266 वर्तमान काल मे अक्सू नगर 'उशतरफन' से पूर्व ५६ मील और 'कुचा' से दक्षिण-पश्चिम १५६ मील है।

पोहलुहकिया राज्य लगभग ६०० ली पूर्व से पश्चिम, और ३०० ली उत्तर वसे दक्षिण तक फैला है। मुख्य नगर ५ या ६ ली के घेरे मे है। यहाँ की भूमि, जलवायु, मनुष्यो का चालचलन, रीति रिवाज और साहित्य इत्यादि वही है जो 'किउची' प्रदेश का है, केवल भाषा मे कुछ भेद है। इस देश मे महीन मेल के रुई और ऊन के कपडे बनते हैं जिनकी कि निकटवर्ती प्रदेशो मे बहुत खपत है। यहां पर कोई दस सघाराम हैं जिनमे एक सहस्त्र के लगभग साधु निवास करते हैं। इन लोगो का सम्बन्ध सर्वास्तिवाद सस्था के हीनयान सम्प्रदाय से है[1]।

इस देश से कोई ३०० ली उत्तर-पश्चिम जाकर और पहाडी मैदान पार करके हम 'लिङ्गशन' नामक बरफीले पहाड तक पहुँचे। यह वास्तव मे 'सङ्गलिङ्ग' पहाड का उत्तरी भाग है और इस स्थान से नदियां अधिकतर पूर्वाभिमुखी बहती हैं। यहाँ की पहाडियां और घाटिया बर्फ से भरी हुई है यहा पर क्या गर्मी और क्या जाडा—प्रत्येक ऋतु मे बर्फ पिघल भी जाती है तो तुरन्त फिर जम जाती है। सडके ढालू और भयानक हैं और शीतल वायु अत्यन्त दुखदायक है। यहां पर भयानक अजदहे सदा बाधक रहते हैं और यात्रियो को अपने आघातो से बहुत कष्ट देते हैं। जो लोग इस राह मे भ्रमण करना चाहे उनको चाहिए कि न तो लाल वस्त्र धारण करे और न कोई वस्तु जिससे शब्द उत्पन्न हो अपने साथ ले जावे। इसमे थोडो सी भी भूल होने से वडी विपद् का सामना करना पडता है। इन वस्तुओ को देखकर ये राक्षसरूपी अजदहे क्रोधित हो जाते हैं जिससे एक बहुत वडा तूफान उठ खडा होता है और बालू और कक्कड़ो की वृष्टि होने लगती है जिन लोगो का ऐसे तूफानो से सामना हो जाता है उनके बचाव की कोई तदबीर नही रहती और वे अवश्य ही अपनी जान खोते हैं।

लगभग ४०० ली जाने पर हम लोग 'सिङ्ग'[2] नामी एक वडी झील पर पहुँचे। इस झील का क्षेत्रफल करीव १००० ली है। पूर्व से पश्चिम तक इसका

---

(1) सर्वास्तिवाद सस्था बौद्धो की बहुत प्राचीन सस्था है जिसकी सम्बन्ध हीनयान सम्प्रदाय से है। चीनी लोगो के अनुसार हीनयान सम्प्रदाय ससार के एक भाग अर्थात् सघ या समाज से मुक्त होने की शिक्षा देता है, और महायान सम्प्राय सम्पूर्ण सासारिक बन्धनो से मुक्त करता है। सर्वास्तिवादी लोग वस्तु की नित्यता स्वीकार करते है।

(2) सिङ्ग (Ting) झील इस्सिक्कुल Issyk-kul) या टेमुर्ट् (Temurtu) भी कहलाती है। यह समुद्रीय तल से ५२०० फीट ऊँची है। इसका नाम 'जोहई' गरम समुद्र भी है। यह नाम इस सबब से नही दिया गया है कि इसका जल गरम है, बल्कि इस कारण से कि बर्फीले पहाड के मुकाबले मे ठन्डा जल भी गरम जंचता है। यह झील किस दिशा मे थी इसका वर्णन नही है, परन्तु अक्सू से इस्सिक्कू उत्तर-पूर्व मे लगभग ११० मील है।

अधिक है परन्तु उत्तर से दक्षिण तक कम है। यह सब तरफ पहाड़ो से घिरी हुई है तथा बहुत से सोते झील में आकर मिल जाते हैं। पानी का रङ्ग कुछ नीला-काला है और स्वाद तीखा और नमकीन है। इसकी लहरे बडे वेग से किनारे पर आकर टकराती है। अजदहे और मछलियां दोनो साथ इस झील मे निवास करते हैं। किसी समय मे दुष्ट राक्षस भी पानी पर दिखाई पडते है। उस समय यात्रियो को, जो झील के किनारे किनारे जाते होते है, बडे कष्ट का सामना करना पड़ता है, ओर उनकी रक्षा का अवलब केवल ईश्वर ही होता है। यद्यपि जलजन्तु इसमे बहुत है परन्तु उनके पकडने की हिम्मत किसी को नही हो सकती।

'सिङ्ग' झील से ५०० ली उत्तर पश्चिम चलकर हम सुयेह नदी के क़स्बे[1] मे आये। इस कस्बे का क्षेत्रफल ६ या ७ ली है। यहां पर निकटवर्ती देशो के सौदागर जमा होते है और निवास करते है। यहाँ की भूमि मे बाजरा और अंगूर अच्छे होते हैं। जङ्गल घने नही हैं और वायु तेज तथा ठडी है। इस देश के लोग ऊनी कपड़े पहनते हैं। सुयेह कस्बे के पश्चिम ओर जाने से बहुत के उजडे हुये कस्बो के खँडहार मिलते है। प्रत्येक कस्बे का अलग अलग सरदार है। ये सब एक दूसरे के अधीन नही हैं वरच सबके सब 'टूहकियो' के मातहत हैं। 'सुयेह' कस्बे से 'किरनङ्गना' देश तक की समस्त भूमि 'सूली' कहलाती है और यही नाम यहां के निवासियो का भी है। यहां के साहित्य और भाषा का भी यही नाम है। अक्षरो की सख्या बहुत थोडी है। आदि मे अक्षरो की—जिनको मिलाकार शब्द बनाये गये है—सख्या ३० थी। इन शब्दो के कारण विविध प्रकार के वृहत्कोप बन गये हैं। इस प्रकार का साहित्य यहां बहुत थोडा है जिससे सर्वसाधारण को लाभ पहुँच सके। यहां की लिपि, गुरू से शिष्य को बिना किसी प्रकार के हस्तक्षेप के प्राप्त होने के कारण सुरक्षित है। निवासियो के भीतरी वस्त्र महीन बालो के होते हैं और बाहिरी जामे खाल के बनते हैं। ये लोग दुहरे तथा चुस्त पायजामे पहनते है। इनके बालो की बनावट ऐसी होती है कि शिर का ऊपरी भाग खुला रहता है (अर्थात् शिर का ऊपरी भाग मुंड़ा रहता है।) कभी कभी ये लोग अपने समस्त बाल बनवा डालते हैं। ये लोग अपने मस्तक

---

(1) अर्थात् 'सुयेह' नगर 'चू' या 'चुइ' नदी के किनारे पर था। हुइली साहब ने भी इस नगर को सुयेह के नाम से लिखा है। यह नगर किस स्थान पर था उसका निश्चय अब तक नही हो सका है। अनुमान है कि 'चू' नदी के किनारे वाले करखीतई की राजधानी बेलसगुन या कान्सटैंटीनोवोस्क नामक नगर उस समय मे सुयेह हो तो हो सकते है।

पर रेशमी वस्त्र बाधे रहते हैं। यहां के मनुष्यो के डील डौल लम्बे होते हैं परन्तु इनकी इच्छाएँ क्षुद्र और साहसहीन होती हैं। ये लोग धूर्त, लालची और दगाबाज है। बूढे और बच्चे सबके सब द्रव्य ही की फिक्र मे रहते है जो जितना अधिक प्राप्त करता हैं। उसकी उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा होती है। जब तक अच्छी तरह दौलतमन्द न हो—अमीर और गरीब की कोई पहचान नही है क्योकि इनका भोजन और वस्त्र बिल्कुल मामूली होता है। बलवान लोग खेती करते है और बाकी वाणिज्य।

'सुयेह' से ४०० ली पश्चिम को चलकर हम लोग 'सहस्रधारा' पर पहुँचे। इस भूमि का क्षेत्रफल लगभग २०० वर्ग ली है। इसके दक्षिण मे बरफीले पहाड और शेष तीन ओर हमवार और कुछ ऊँची भूमि है। भूमि मे जल की कमी नही है, वृक्ष सघन छायादार हैं और वसन्त-ऋतु मे विविध प्रकार के फूलो से लदे रहते है। यहां पर पानी के हजार सोते या झीले हैं, जिनके कारण कि इसका नाम 'सहस्रधारा' है। टोहकियो का खाँ प्रत्येक वर्ष इस स्थान पर गर्मी से बचने के लिए आता है। यहा पर हरिण भी बहुत है जिनमे से अनेक घटो और छल्लो से आभूषित हैं। ये पालतू हैं और मनुष्यो को देखकर न तो डरते है और न भागते है। खा इन मृगो को बहुत प्यार करता है और इस बात की उसने कठोर आज्ञा दे रक्खी है कि मरणा-मन्न होने पर भी बिना आज्ञा के कोई भी मृग न मारा जाय और इस कारण ये पशु सुरक्षित रहकर जीवन व्यतीत करते हैं।

सहस्रधारा से पश्चिम १४०-१५० ली जाने पर हम 'टालोसी' (टारस) कसबे मे पहुँचे। इस कसबे का घेरा ८ या ९ ली है। समस्त देशो के सौदागर यहा आते है और यहा के निवासियो के साथ बसते है। यहा की पैदावार और जलवायु 'सूयेह' की भाति है।

दस ली दक्षिण जाने पर एक छोटा सा कसबा मिलता है। किसी समय मे यहा पर ३०० घर चीनियो के थे। कुछ समय हुआ जब टोहकियो के लोग इनको जबर्दस्ती पकड लाये थे कुछ दिनो मे इनकी अच्छी सख्या हो गई और ये लोग यही पर बस गये। उनका पहनावा यद्यपि तुर्की तरीके का है परन्तु उनकी भाषा और रीति-रस्म चीनी ही हैं।

यहा से २०० ली दक्षिण-पश्चिम जाने पर हम 'येहश्वई' (श्वेतजल) नामक कसबे मे आये। यह कसबा ६ या ७ ली के घेरे मे है। यहा की पैदावार और जलवायु 'टालोसो' से उत्तम है।

लगभग २०० ली दक्षिण-पश्चिम जाने पर हम 'काङ्ग्यू' कसबे मे पहुँचे जिसका क्षेत्रफल ५ या ६ ली है। जहा पर यह कसबा बसा हुआ है वहां भूमि बहुत

उपजाऊ है। यहां के हरे हरे वृक्ष बहुत सुहावने और फल-फूल-सम्पन्न है। यहां से चालीस पचास ली जाने पर हम 'निउचीकिन' प्रदेश को आये।

निउचीकि (नुजकन्द)

निउचीकिन प्रदेश का क्षेत्रफल १००० ली है। भूमि उपजाऊ है, फ़सले उत्तम होती है, पौधो और वृक्षो मे फल-फून अधिक ओर बहुत सुन्दर होते है। यह देश अगूरो के लिए प्रसिद्ध है। लगभग १०० कसबे है जिनके अलग अलग शासक है। ये शासक लोग अपने कार्यों मे स्वतन्त्र है। यद्यपि ये कसबे एक दूमरे से बिल्कुल अलग है परन्तु इनका सम्मिलित नाम 'निउचीकिन' है।

यहा से २०० ली पश्चिम जाने पर हम 'चेशी' प्रदेश मे आये।

'चेशी' (चाज)

चेशी प्रदेश का क्षेत्रभल १००० ली के लगभग है। इसकी पश्चिम हद पर 'येह' नदी बहती है। यह पूर्व से पश्चिम तक अधिक चौडा नही है परन्तु उत्तर से दक्षिण तक अधिक विस्तृत है। पैदावार जलवायु इत्यादि 'निउचीकिन की भाति है। इस देश मे दस कमवे है जिनके शासक अलग अलग है। इन सबका कोई एक मालिक नही है। ये सबके सब 'टोहकियो' राज्य के अधीन हैं। यहा से दक्षिण-पूर्व ओर कोई १००० ला के फासने पर :फोहान प्रदेश है।

फ़ीहान (फ़रगान)

यह राज्य लगभग ४००० ली के घेरे मे है। इसके चारो ओर पहाड है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है। इसमे बहुत सो फ़सले और नाना प्रकार के फल-फूल बहुतायत मे होते हैं। इस देश मे भेड और घाडे अच्छे हाते हैं। वायु सर्द और तेज है। मनुष्य बीर और साहसी हैं। इनकी भाषा निकटवर्ती प्रदेशो की अपेक्षा भिन्न है तथा इनकी सूरत से दरिद्रता और नीचता प्रकट होती है। दस वारह वर्ष से यहा का कोई शासक नही है। जो वलवान् है वही बलपूर्वक शासन करते हैं और किसी की सत्ता को स्वीकार नही करते। इन लोगो ने अपनो अधिकृति भूमि को घाटियो और पहाडो की सीमानुसार विभक्त कर लिया है। यहां से पश्चिम की ओर १००० ली जाने पर हम 'सूटूलिस्सेना' राज्य मे आये।

सूटूलिस्सेना (सुट्रिश्ना)

यह देश १४००-१५०० लो के घेरे मे है। इसकी पूर्वी हद ... हती है। यह नदी 'सङ्गलिङ्ग' पहाड के उत्तरी भाग से निकली है और

भिमुख वहती है। कभी कभी इसका मैला पानी शान्तिपूर्वक वहता है और कभी कभी बहुत वेग से। पैदावार और रीति रवाज लोगो की 'चेशी' की भाति है। जब से यह राज्य स्थापित हुआ है तभी से तुर्कों के अधीन रहा है। यहां से उत्तर-पश्चिम की ओर जाकर हम एक बहुत वडे रेतीले रेगिस्तान मे पहुँचे जहा पर न जल ही मिलता है और न घास ही उगती है। 'इस मैदान मे रास्ते का कही पता नही, केवल वडे बडे पहाडो को देखकर और इधर-उधर फैली हुई हड्डियो को आधार मानकर रास्ते का पता लगता है कि किधर जाना चाहिए।

'सामोकेन' (समरकद)

'सामोकेन' प्रदेश करीब १६ या १७ सौ ली के घेरे मे है। यह देश पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बा है और उत्तर से दक्षिण को चौडा है राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। इसके चारो ओर की भूमि वहुत ऊँची नीची है और भली भाति आवाद है। सौदागरी को सब प्रकार को वहुमूल्य वस्तुएं बहुत से देशो की यहा पर एकत्रित रहती हैं। भूमि उत्तम और उपजाऊ है, तथा सव फसले उत्तम होती हैं जङ्गलो की पैदावार वहुत अच्छी है और फूल तथा फल अधिकता से होते हैं। यहा पर शेन-जाति के घोडे पैदा होते हैं। अन्य देशो को अपेक्षा यहा के लोग कारोगरी और वाणिज्य मे चतुर हैं। जलवायु उत्तम और अनुकूल है। मनुष्य वीर और साहसी हैं। यह देश 'हू' लोगो के मध्य मे है। इस देश को सहृदयता और योग्यता को धारण करने के लिए सब निकटवर्ती प्रदेश उत्कठित रहते हैं। राजा साहसी है। सब निकटवर्ती प्रदेश उसकी आज्ञा को पूर्णतया मानते हैं। फौज के सवार और घोडे मजबूत और सख्या में बहुत हैं, विशेषकर 'चिहकिया' प्रदेश के लोग स्वभावतः वीर और बलवान् होते हैं तथा सग्राम मे लडते हुए प्राण विसर्जन करना मुक्ति का साधन समझते हैं। ये लोग जिस समय चढाई करते हैं उस समय कोई भी शत्रु इनका सामना नही कर सकता। यहा से दक्षिण-पूर्व जाने पर 'मिमोहो नामक देश मिलता है।

'मिमोहो' (मधियान)

मिमोहो प्रदेश का क्षेत्रफल ४०० या ५०० ली है। यह प्रदेश एक घाटी के अन्तर्गत पूर्व से पश्चिम को ओर चौंडा और उत्तर से दक्षिण की ओर लम्बा है। यहा की पैदावार और रीतिरस्म 'सामोको' प्रदेश को भांति है। यहा से उत्तर को जा कर हम 'कीपोटाना प्रदेश मे पहुँचे।

'कीपोटाना' (केवद)

'कीपोटना' प्रदेश १४०० या १५०० ली के घेरे मे है। यह पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बा और उत्तर से दक्षिण को ओर चौडा है। यहा की भी पैदावार और

रीति-रवाज 'सामोकेन' की भांति है। लगभग २०६ ली पश्चिम जाकर हम 'क्यूश्वङ्ग-निकिया' प्रदेश मे पहुँचे।

क्यूश्वङ्गनिकिया (काशनिया)

इस राज्य के क्षेत्रफल १४०० या १५०० ली है। पूर्व से पश्चिम की ओर चौडा और उत्तर से दक्षिण की ओर लम्बा है। इस देश की भी पैदावार और व्यवहार सामोकेन प्रदेश की भांति है। लगभग २०० ली पश्चिम की ओर जाने पर हम 'होहान' प्रदेश मे पहुँचे।

'होहान' [क्वन]

इस देश का क्षेत्रफल १०० ली है। रीति-रवाज इत्यादि सामोकेन प्रदेश की भांति है। यहां से पश्चिम मे ४०० ली जाने पर हम 'पूहो' प्रदेश में पहुँचे।

पूहो [बोखारा]

पूहो प्रदेश का क्षेत्रफल १६०० या १७०० ली है। यह पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बा और उत्तर से दलिण की ओर चौडा है। यहाँ का जलवायु और पैदावार इत्यादि 'सामोकेन' प्रदेश के तुल्य है। यहां से ४०० ली पश्चिम जाकर हम 'फाटी' प्रदेश मे पहुँचे।

'फाटी' [बेटिक]

इस देश का क्षेत्रफल ४००ली के लगभग है। यहां का आचार और पैदावार 'सामोकेन' प्रदेश के सदृश है। यहां से ५०० ली दक्षिण-पश्चिम में जाने पर हम लोग होलीसीमीकिया' प्रदेश में पहुँचे।

होलीसीमीकिया [ख़्वारजम]

यह प्रदेश पाटसू नदी के बराबर बरावर चला गया है। इसकी चौडाई पूर्व से पश्चिम की ओर २० या ३० ली है और लम्बाई उत्तर से दक्षिण की ओर लगभग ५०० ली है। यहां का आचार-व्यवहार और पैदावार 'फाटी' प्रदेश की भांति है परन्तु भाषा किसी कदर भिन्न है। 'सामोकेन[1] प्रदेश से दक्षिण-पश्खिम ३०० ली जाने पर हम 'किश्वङ्गना' प्रदेश मे पहुँचे।

'किश्वङ्गना' [केश]

यह राज्य लगभग १४०० ली के घेरे मे है। यहाँ का आचार-व्यवहार और अन्नादि सामोकेन की भांति है। यहाँ से २०० ली दक्षिण-पश्चिम की ओर जाने पर

(1) इस स्थान पर कुछ भ्रम है।

हम पहाडी के पहुँचे। पहाडी सडके वडी ढालू हैं। रास्ते की तगी के कारण से निक-लना कठिन और भयप्रद है। आबादी और गांव बिलकुल नही तथा फल और पानी भी कम है। पहाड ही पहाड कोई ३०० ली दक्षिण-पूर्व की ओर जाने पर हम 'लौह फाटक[1]' मे घुसे। इस दर्रे के दोनो ओर वहुत ऊँचे ऊँचे पहाड हैं। रास्ता सकरा है और कठनाई तथा भय का स्वरूप है। दोनो ओर पथरीली दीवार है जिसका रंग लोहे के सदृश है। यहां पर लकडी के, लोहजडित दुहरे द्वार लगे हे, और वहुत से घन्टे लटके हुए हैं। जिस समय ये दरवाजे वन्द कर दिये जाते हैं उस समय इसमे से कोई भी मनुष्य आ जा नही सकता, यही कारण है कि इसका नाम 'लौह-फाटक' है।

लौह फाटक पार करके हम 'टुहोलो' प्रदेश मे आये। यह देश उत्तर से दक्षिण की ओर १००० ली और पूर्व स पश्चिम की ओर ३००० ली है। इसके पूर्व मे सङ्गलिङ्ग पहाड और पश्चिम की ओर 'पोलीस्सी' (परशिया) की हद है। दक्षिण की ओर वडे बडे बरफ़ीले पहाड और उत्तर को ओर लौह फाटक है। आक्सस् नदी इस देश के बीचोबीच पश्चिमाभिमुख वहती है। इस देश के शाही खानदान को मिटे सैकड़ो वर्ष हो गये। कुछ राजा लोग अपने बाहुबल से इधर-उधर दखल जमाये स्वत-न्त्रतापूर्वक राज्य करते हैं। इन सबका राज्य प्राकृतिक सीमाओ से विभक्त है। इस प्रकार प्राकृतिक सीमाओ से विभक्त सत्ताईस राज्य इस देश मे हैं और सबके सब तुर्कों के अधीन हैं। यहा का जलवायु गर्म और नम है जिसके कारण बीमारिया अधिक सताती हैं। शीत ऋतु के अन्त और वसन्त ऋतु के आदि मे यहा लगातार वृष्टि होती रहती है। इस कारण इस देश के दक्षिण से लेकर लघान के उत्तर तक बीमारो की भी अधिकता हो जाती है। साधु लोग भी इन दिनो अपनी यात्रा वन्द करके एक स्थान पर स्थिति रहते हैं। ये लोग बारहवे मास की सोलहवी तिथि से यात्रा वन्द कर देते हैं, और दूसरे वर्ष के तीसरे मास की पन्द्रहवी तिथि से फिर आरम्भ करते हैं। इन लोगो को यह बात वृष्टि के कारण करनी पडती है। इन दिनो ये लोग अपने ज्ञानोपार्जन मे दत्तचित्त होते हैं। यहा के निवासियो का चाल-चलन खराब है और ये साहसहीन हैं इनकी सूरते भी बुरी और देहाती है। इन लोगो को धर्म और सचाई का उतना ही ज्ञान है जितना उनको परस्पर व्यवहार के लिए आवश्यक है। इन लोगो की भाषा दूसरे देशो से कुछ भिन्न है। इनकी भाषा के अक्षर पच्चीस हैं जिनके सयोग से ये लोग अपने भाव को आपस मे प्रकट करते हैं। इन लोगो की लिखावट आडी होती है और ये लोग बाईं ओर से दाहिनी

---

(1) यह एक दर्रे का नाम है

ओर को पढ़ते हैं। इनका साहित्य धीरे धीरे बढ़ता जाता है. और सो भी 'सूली' लोगों के साहित्य के द्वारा। अधिकतर लोग महीन रुई के वस्त्र धारण करते है और कुछ लोग ऊनी वस्त्र भी पहनते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय मे सोना और चांदी समान रूप से काम मे आता है। यहा का सिक्का दूसरे देशो से भिन्न है। आक्सस् नदी के किनारे किनारे उत्तराभिमुख गमन करने से 'तामी' नाम का प्रदेश मिलता है।

'तामी' [तरमद]

यह देश ६०० ली पूर्व से पश्चिम और ४०० ली उत्तर से दक्षिण की ओर है। राजधानी लगभग २० ली के घेरे मे है। यह नगर पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बा और उत्तर से दक्षिण की ओर चौडा है। यहां १० सघाराम हैं जिनमे एक हजार सन्यासी निवास करते हैं। स्तूप और महात्मा वुद्ध की मूर्तिया नाना प्रकार के चमत्कारो के लिए प्रसिद्ध है। यहां से पूर्व की ओर जाकर हम 'चइ गोहयन्ना, पहुँचे।

चइ गोहयन्ना [चघानिया]

यह देश पूर्व से पश्चिम की ओर ४०० ली और उत्तर से दक्षिण की ओर ५०० ली है। राजधानी का क्षेत्रफल १० ली है। यहां पर पांच सघाराम हैं जिनमे कुछ संन्यासी रहते हैं। यहां से पूर्व की ओर जाकर हम 'ह्वहूलोमो' मे पहुँचे।

'ह्वहलोमो' [गर्मा]

यह देश १०० ली पूर्व से पश्चिम की ओर और ३०० ली उत्तर से दक्षिण की ओर है। राजधानी का क्षेत्रफल १० ली है। राजा हिसू जाति का तुर्क है। यहां दो सघाराम और लगभग १०० सन्यासी है, यहाँ से पूर्व को ओर जाकर हम 'सुमन' प्रदेश पहुचे।

'सुमन' [सुमान और कुलाब]

यह प्रदेश ४०० ली पूर्व से पश्चिम की ओर और १०० ली उत्तर से दक्षिण की ओर है। राजधानी आ क्षेत्रफल १६ या १७ ली है। इसका राजा हसू तुर्क है। दो संघाराम और थोडे से सन्यासी यहा निवास करते हैं। इस देश की दक्षिण-पश्चिमी सीमा आक्सस् नदो है; उसके आगे 'क्योहोयेना' प्रदेश है।

'क्योहोयेना' [कुवादियान]

यह देश पूर्व से पश्चिम की ओर २०० ली और उत्तर से दक्षिण की ओर ३०० ली है राजधानो का क्षेत्रफल १० ली है। तीन सघाराम और लगभग सौ संन्यासी यहा रहते हैं। इसके पूर्व 'हूशा' प्रदेश है।

'हूशा' (वरश)

यह देश ३०० ली पूर्व से पश्चिम की ओर और ५०० ली उत्तर से दक्षिण को ओर है राजधानी का क्षेत्रफल १६ या १७ ली है। पूर्व को ओर चल कर हम खोटोलो' पहुँचे ।

'खोटोलो' (खोटल)

यह राज्य लगभग १००० लो पूर्व से पश्चिम तक और इतना ही उत्तर से दक्षिण तक है। राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। इसके पूर्व की ओर सङ्गलिङ्ग पहाड़ और फिर 'क्यूमीटो है।

'क्यूमीटो' (कुमिधा अथवा दरवाज और रोशान)

यह देश २००० ली पूर्व से पश्चिम की ओर और २०० ली उत्तर से दक्षिण की ओर है। यह स्थान सङ्गलिङ्ग पडाड़ के मध्य मे है राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। इसके दक्षिण-पश्चिम मे आक्सस् नदी और दक्षिण की ओर 'शीकीनी' प्रदेश हैं। आक्सस् नदी को पार करके दक्षिण की ओर टामोसिहटेहटी राज्य, पोटोचङ्गना राज्य (बदख्शांम इनपोकिन (यागान) राज्य, किउलङ्गना (कुरान) राज्य, हिमोटोलो राज्य (हिमतल), पोलीहो राज्य, खिलोलेहमो (कृश्मा) राज्य, होलोहू राज्य, ओलोनी राज्य मङ्गकिन राज्य मे, और 'ह्वो' (कुन्दज़) राज्य के पूर्व-दक्षिण की ओर जाकर हम 'चेनसेहटो' ओर 'अन्टालापो' राज्यो मे आ गये। इन सबका वर्णन लौटते समय किया जायगा। 'ह्वो' प्रदेश के दक्षिण-पशिमच मे जा कर हम 'फोकियालङ्ग' राज्य मे गये।

फोकियालङ्ग (ग्घलाव)

यह प्रदेश का विस्तार पूर्व से पश्चिम की ओर ५० ली और उत्तर से दक्षिण की ओर २०० ली है। राजधानी का क्षेत्रफल १० ली है। यहा से दक्षिण जाकर हम 'हिलूसिमिनकिन' राज्य मे आये।

'हिलूसिमिनकिन' रुई (समनगन)

इस राज्य का क्षेत्रफल १०० ली और राजधानी का क्षेत्रफल १४ या १५ ली है। इसके उत्तर-पश्चिम मे 'होलिन' राज्य की सोमा है।

'होलिन' (खुल्म)

इस राज्य का क्षेत्रफल ८०० ली और राजधानी का क्षेत्रफल ५ या ६ ली है। यहां १० सघाराम और ५०० संन्यामी हैं। यहां से पश्चिमाभिमुख चलकर हम 'पोहो' प्रदेश मे पहुँचे

पोहो (वलख़)

यह प्रदेश ८०० ली पूर्व से पश्चिम, और ४०० ली उत्तर से दक्षिण है। इसकी उत्तरी हद पर आक्सस् नदी है। राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। यह बहुधा लघुराजगृह के नाम से पुकारी जाती है। यह नगर भलीभांति सुरक्षित होने पर भी आबाद कम है। यहां की भूमि की पैदावार अनेक प्रकार की है और जल तथा थल के पुष्प अनगिनती हैं। लगभग १०० संघाराम हैं जिनमें ३००० संन्यासी निवास करते हैं। इन सबका धार्मिक सम्बन्ध 'हीनयान' सम्प्रदाय से है।

नगर के बाहर दक्षिण-पश्चिम दिशा में 'नवसंघाराम' नाम का एक स्थान है। जिसको पहले यहां के किसी नरेश ने निर्माण कराया था। बड़े बड़े बौद्धाचार्य, जो कि हिमालय की उत्तर दिशा में निवास करते हैं और बडे वड़े शास्त्रों के रचयिता हैं, इसी संघाराम से सम्बन्ध रखते हैं और इसी स्थान पर अपने बहुमूल्य कार्य का सम्पादन करते हैं। इस स्थान पर महात्मा बुद्ध की एक सुन्दर रत्नजटित मूर्ति है और मन्दिर भी जिसमें यह मूर्ति स्थापित है नाना प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओं से सुसज्जित है। इस सबब से निकटवर्ती प्रदेशों के लालची नरेशों ने इस मन्दिर को कई बार लूट भी लिया है।

इस संघाराम मे 'वैश्रावणदेव' की भी एक मूर्ति है। इस मूर्ति ने अपने अद्भुत प्रभाव से मन्दिर की ऐसी अच्छी तरह रक्षा की है जिसकी कि कोई आशा न थी। थोडे दिन हुए 'येहू खां' नामक एक तुर्क विद्रोही हो गया था। उसने अपनी सेना को लेकर मन्दिर पर आक्रमण करना चाहा। और उसकी सम्पूर्ण बहुमूल्य वस्तुओं और रत्नो को हस्तगत करना चाहा। येहू खां मन्दिर के निकट पहुँचकर मैदान में डेरा डाले हुए पड़ा था कि रात में उसको स्वप्न हुआ। स्वप्न मे उसने वैश्रावणदेव को देखा जिन्होंने उससे इस प्रकार सम्बोधन करते हुए कहा कि 'ए खान! कितनी सामर्थ्य के बल से तूने मन्दिर के विनाश करने का साहस किया है?' और फिर बर्छी को उठाकर इस ज़ोर से मारा कि आर पार हो गई। खान घबड़ाकर जग पडा और मारे रंज के उसका हृदय धड़कने लगा। फिर अपने साथियो को बुलाकर और स्वप्न का हाल कहकर अपने अपराध की शान्ति के लिए मन्दिर की ओर रवाना हुआ। उसने पुरोहितो को सूचना दी कि मुझको आज्ञा दी जावे तो मै उपस्थित होकर अपने अपराध की क्षमा मागूं परन्तु पुरोहितो के पास से उत्तर आने के पहले ही उसका अन्त हो गया। संघाराम के भीतर बुद्धमन्दिर के दक्षिणी भाग मे महात्मा बुद्ध के हाथ धोने का पात्र रक्खा हुआ है। इसमे लगभग एक घड़ा जल अमाता है। यह

पात्र कई रङ्ग का है जिसकी चमक से आंखे चौंधिया जाती हैं। यह बताना कठिन है कि यह पात्र सोने का बना है अथवा पत्थर का। यहां पर लगभग एक इंच लम्बा और पौन इंच चौडा एक दाँत भी महात्मा बुद्ध का है। इसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए सफेद और चमकदार है। इसके अतिरिक्त एक झाडू भी महात्मा बुद्ध की रक्खी हुई है। यह 'कास' की बनी हुई है और लगभग दो फीट लम्बी और सात इच गोल है। इसकी मूठ मे अनेक रत्न जडे हुए है। प्रत्येक षष्ठीव्रत के दिन इन तीनों पवित्र पदार्थों की पूजा होती है और बहुत से शिष्यवर्ग अपनी भेंट अर्पण करते हैं। उन लोगो को इनमे से एक प्रकार की ज्योति सी निकलती हुई दिखाई देती है।

सघाराम के उत्तर मे एक स्तूप है जो २०० फीट ऊँचा है। इसके ऊपर की अस्तरकारी ऐसी कठोर है कि हीरे की बनी हुई मालूम होती है। इसके भीतर कोई पुनीत बौद्धावशेष बन्द है। समय-समय पर इसमे से भी अद्भुत दैवी चमत्कार प्रदर्शित हो जाता है।

सघाराम के दक्षिण-पश्चिम मे एक 'विहार' बना हुआ है। इसको बने हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। यह स्थान बडे बडे विद्वान् और बुद्धिमान महात्माओं के कारण दूर दूर तक प्रसिद्ध है, इस कारण दूर दूर से अनेक यात्री यहां आया करते हैं।

कितने ही ऐसे महात्मा हो गये हैं जिनको चारो पुनीत पदार्थ प्राप्त होने पर भी अपने चमत्कार के प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त न हो सका। उन अरहटो ने अपने सिद्धान्त को अन्तिम समय प्रदर्शित किया, और जिन लोगो ने उनकी इस प्रकार की योग्यता को अनुभव किया उन लोगो ने उनकी प्रतिष्ठा के लिए स्तूप बनवा दिये। इस प्रकार के कई सौ स्तूप यहां पास पास बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त यहा कितने ही महात्मा ऐसे भी हो गये हैं जो कि सिद्धावस्था को पहुँच चुके थे परन्तु अन्त समय मे भी उन्होंने कोई चमत्कार नही दिखाया, इस कारण उनका कोई स्मारक नही बना। इस समय लगभग १०० सन्यासी इस विहार मे निवास करते हैं। ये लोग अपने अहोरात्रि कर्मों मे इतने उच्छृङ्खल हो रहे हैं कि साधु असाधु की पहचान करना कठिन है।

राजधानी से उत्तर-पश्चिम लगभग ५० ली जाने पर हम 'टेवई' कसबे को गये। इस कसबे मे तीस फुट ऊँचा एक एक स्तूप है। प्राचीन समय मे जब भगवान् बुद्ध ने बोधिवृक्ष के नीचे पहले-पहल सिद्धावस्था प्राप्त करके मृगवाटिका को गमन किया था उस समय उनको दो सौदागर मिले थे। इन सौदागरो ने महात्मा

के तेजस्वी रूप को देख कर बड़ी भक्ति के साथ अपनी यात्रा की सामग्री में से कुछ रोटियां और शहद भगवान के अर्पण किया। उस समय भगवान् बुद्ध ने, इन लोगों को, मनुष्य और देवताओ के सुखो के सम्बन्ध मे व्याख्यान देकर सदाचार के पाच नियम और ज्ञान के दस नियम बताये। सबसे पहले यही दो व्यक्ति भगवान् बुद्ध के शिष्य हुए थे। शिक्षा के समाप्त होने पर इन लोगों ने प्रार्थना की कि कोई ऐसा प्रसाद मिलना चाहिए जिसकी हम पूजा करे। इस पर 'तथागन भगवान्' ने अपने कुछ बाल और नाखून काट दिये! इन दोनो पुनीत वस्तुओ को लेकर वे सौदागर चलना ही चाहते थे कि उन्होने फिर भगवान् से प्रार्थना की फि इन पदार्थों की प्रतिष्ठा करने का ठीक ठीक तरीका बता दीजिए। इस पर 'तथागत भगवान्' ने अपने 'संघाती' को चौकोर रूमाल की भांति बिछाकर 'उत्तरासग' रक्खा और फिर संकाक्षिका को। इनके ऊपर अपने भिक्षापात्र को औधा कर अपने हाथ की लाठी को खडाकर दिया। इस तरह पर सब वस्तुओ को रखकर उन लोगो को स्तूप बनाने का तरीका बतलाया। दोनो आदमियो ने अपने अपने देश को जाकर, आज्ञानुसार वैसा ही स्तूप निर्माण कराया जैसा कि भगवान् ने उनको बतलाया था। बौद्ध-धर्म के जो सबसे प्रथम स्तूप बने थे वह यही हैं।

इस कसबे से ७० ली पश्चिम मे एक स्तूप २० फीट ऊँचा है। यह काश्यप बुद्ध के समय मे बना था। राजधानी को परित्याग करके और दक्षिण-पश्चिमाभिमुख गमन करते हुए, हिमालय पहाड की तराई मे 'जुई मोटो' प्रदेश मे पहुँचना होता हैं।

'जुईमोटो (जुमध)

यह देश ५० या ६० ली पूर्व से पश्चिम की ओर और लगभग १०० ली उत्तर से दक्षिण की ओर है। राजधानी १० ली के घेरे मे है। इसके दक्षिण-पश्चिम मे 'हूशो कइन' प्रदेश है।

'हूशी कइन' (जुजगान)

यह देश ५०० ली पूर्व से पश्चिम की ओर और १००० ली उत्तर से दक्षिण तक है। राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। इस प्रदेश मे बहुत से पहाड और नदियाँ हैं। यहा के घोडे बहुत अच्छे होते है। यहाँ से उत्तर-पश्चिम 'टालाकइन' है।

'टालाकइन' (तालो कान)

यह देश ५०० ली पूर्व से पश्चिम की ओर और ५० या ६० ली उत्तर से दक्षिण की ओर है। राजधानी १० ली के घेरे मे है। पश्चिम दिशा में

परशिया की हृद है। पोहो (वलख) राजधानी से १०० ली दक्षिण जाने पर हम 'कइची' पहुँचे।

कइची (गची या गज)

यह देश पूर्व से पश्चिम ५०० ली और उत्तर से दक्षिण तक ३०० ली है। राजधानी का क्षेत्रफल ४ या ५ ली है। पहाडी देश होने के कारण भूमि पथरीली है। फूल और फल बहुत कम हैं परन्तु सेम और अन्न बहुतायत से होता है। जलवायु सर्द और मनुष्यो के स्वभाव कठोर और असहनशील हैं। यहाँ पर लगभग १० सघाराम और २०० साधु निवास करते हैं। सबके सब सर्वास्तिवाद- सस्था के हीनयान-सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। दक्षिण-पश्चिम ओर से हम हिमालय पहाड मे दाखिल हुए। ये पहाड ऊँचे और घाटियाँ गहरी हैं। ऊँची नीची भूमि और नदियो के किनारे बहुत भयानक हैं। आँधियो और बर्फ की वृष्टि बिना रोकटोक होती है। बर्फ के ढेर घाटियों में गिर कर मार्ग को बन्द कर देते हैं और ग्रीष्मऋतु मे भी बराबर बने रहते हैं। पहाडी देवता और राक्षस जिस समय क्रोधित हो जाते हैं उस समय अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। डाकू लोग मुसाफिरो को राह चलते वध कर डालते हैं। बडी बडी कठिनाइयो को झेलते हुए कोई ६०० ली चल कर 'तुषार' प्रदेश से हमारा पीछा छूटा और हम 'फनयत्रा' राज्य मे पहुँचे।

फनयत्रा (वामियान)

यह राज्य २००० ली पूर्व से पश्चिम तक और ३०० ली उत्तर से दक्षिण तक है। यह बरफीले पहाडो के मध्य मे स्थित है। लोगो के बसने के गाँव या तो पहाडो मे हैं या घाटियो मे। राजधानी एक ढालू पहाडी पर है जिसकी हृद पर ६ या ७ ली लम्बी एक घाटी है। इसके उत्तर तरफ एक ऊँची कगार है। यहाँ पर गेहूँ और थोडे फल-फूल होते हैं। यह स्थान पशुओ के बहुत उपयुक्त है। भेड़ और घोड़ो के लिए चारे की बहुतायत है। प्रकृति सर्द और मनुष्यो के आचरण कठोर और असभ्य हैं। वस्त्र अधिकतर खाल और ऊन के बनाये जाते हैं जो कि देशानुसार बहुत उचित हैं। साहित्य, रीतिरिवाज और सिक्का इत्यादि वैसे ही हैं जैसे तुषार-प्रदेश मे हैं। इन दोनो की भाषा कुछ भिन्न है परन्तु सूरत-शकल से कुछ भी फर्क एक दूसरे मे नही मालूम होता। अपने कुल पड़ोसियो की अपेक्षा इन लोगो मे धार्मिक कट्टरपन विशेष है। जिस प्रकार ये 'रत्नत्रयी'[1] की सबसे बडी पूजा मे लगते हैं उसी प्रकार सैकडो छोटे

---

(1) बुद्ध, धर्म और संघ।

छोटे देवी-देवताओं के पूजन का भी समारोह करते हैं। सब प्रकार के पूजन मे इनके हृदय की सच्ची भक्ति प्रकट होती है। किसी स्थान पर प्रेम में रंचमात्र भी कमी नही दिखाई पडती। सौदागर लोग जो व्यापार के लिए आते जाते हैं देवताओ से शकुन पूछ कर अपनी वस्तुओ के मूल्य को निर्धारित करते हैं। शकुन शुभ होता है तब वे उसके अनुसार चलते हैं, और अशुभ होने पर देवताओं के सन्तुष्ट करने की चेष्टा करते है। इस देश में १० संघाराम और १००० सन्यासी हैं। इनका सम्बन्ध 'लोकोत्तर-वादि-सस्था' और हीनयान-सम्प्रदाय से है।

राजधानी के पूर्वोत्तर मे एक पहाड़ है, इस पहाड़ की ढाल पर महात्मा बुद्ध की एक पत्थर की मूर्त्ति १४० या १५० फीट ऊँची है। इसके सब ओर सुनहरा रंग झलकता है और इसके मूल्यवान् आभूषण अपनी चमक से नेत्रो को चौंधिया देते हैं।

इस स्थान के पूर्व की ओर एक सघाराम, इस देश के किसी प्राचीन नरेश का बनवाया हुआ है। इस सघाराम के पूर्व मे महात्मा शाक्य बुद्ध की एक खडी मूर्त्ति १०० फीट ऊँची किसी धातु की बनी हुई है इसके अवयव अलग अलग ढाल कर फिर जोडे गये हैं। इस तरह यह सम्पूर्ण मूर्ति बना कर खडी की गई है।

नगर के पूर्व १२ या १३ ली पर एक सघाराम है जिसमे महात्मा बुद्ध की एक लेटी हुई मूर्ति उसी प्रकार की है जिस प्रकार उन्होने निर्वाण लिया था। मूर्ति की लम्बाई लगभग १०० फीट है। इस देश का राजा यहाँ सदैव 'मोक्ष महापरिषद' का प्रबन्ध करता है और अपने राज्य, कोष स्त्री बच्चे तथा अपने शरीर तक को दान कर देता है। तदुपरान्त राजा के मन्त्री और कुल छोटे अफसर संन्यासियो से राज्य के फेर देने की प्रार्थना करते है। इन सब कामो मे बहुत समय व्यतीत हो जाता है। इस लेटी हुई मूर्ति के संघाराम से दक्षिण-पश्चिम २०० ली के लगभग जाने पर और पूर्व दिशा मे बडे बडे बरफीले पहाडो को पार करने पर एक छोटा सा झरना मिलता है। जिसमे काच के समान उज्वल जल बहा करता है। इस स्थान के छोटे छोटे वृक्ष हरे भरे हैं, यहा पर एक संघाराम है जिसमें एक दांत महात्मा बुद्ध का है और एक दांत 'प्रत्येक बुद्ध' का भी है जो कि कल्प के आदि मे जीवित था। यह दांत पांच इंच लम्बा और चौड़ाई मे चार इंच से कुछ ही कम है। यहां पर एक दांत तीन इंच लम्बा और दो इंच चौडा किसी चक्रवर्ती नरेश का भी रक्खा हुआ है। 'सनकवास' नामक एक बड़ा अरहट था। उसका लोहे का भिक्षापात्र भी यहां रक्खा है जिसमें ५-६ सेर वस्तु आ सकती है। ये तीनों पुनीत वस्तुएं, उपरोक्त महात्माओं की, एक सुनहरे सन्दूक में बन्द हैं। 'सनकवास' अरहट का एक संघाती वस्त्र, जिसके नौ टुकडे हैं, यहां रक्खा

हुआ है। यह वस्त्र सन का बना हुआ है और इसका रंग गहरा लाल है। 'सनकवास' आनन्द का शिष्य था। अपने किसी पूर्वजन्म मे बरसात के अन्त होने पर, सन्यासियो को सन के बने हुए वस्त्र दान किया करता था। इस उत्तम कार्य के बल से लगातार ५०० जन्मो तक इसने केवल यही वस्त्र धारण किया और अन्तिम जन्म मे इसी वस्त्र को पहने हुए उत्पन्न हुआ। ज्यो ज्यो इसका शरीर बढता रहा त्यो त्यो वस्त्र भी बढता रहा, अन्त मे यह आनन्द का शिष्य हुआ और घर द्वार छोड कर सन्यासी हो गया। उस समय इसका वस्त्र भी धार्मिक वस्त्र की भाँति हो गया। सिद्धावस्था प्राप्त करने पर वह वस्त्र भी नौ टुकडो का बना हुआ 'सघाती' के स्वरूप का हो गया। जिस समय वह निर्वाण प्राप्त करने को था और समाधि मे मग्न होकर अन्तर्धान होन के निकट था उस समय उसको ज्ञान के बल से विदित हुआ कि यह कषायवस्त्र उस समय तक रहेगा जब तक महात्मा शाक्य का धर्म ससार मे हैं। इस धर्म के नष्ट होने पर यह वस्त्र भी विनष्ट हो जायगा। इस समय इस वस्त्र की दशा बिगड चली है क्योकि आज-कल धर्म भी घट रहा है। यहा से पूर्वाभिमुख गमन करके हम बर्फीले पहाड के तग रास्ते मे पहुँचे और 'स्याहकोह' को पार करके 'कियापीशी' देश मे आये।

कियापीशी (कपिसा)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ४००० ली है। उत्तर की ओर यह बर्फीले पहाडो से मिला हुआ है और शेष तीन ओर 'हिन्दूकुश' है। राजधानी का क्षेत्रफल १० ली है। यहाँ पर अन्न और फलदार वृक्ष सब प्रकार के होते हैं। 'शेन' जाति के घोडे और सुगधित वस्तु 'यूकिन' भी यहाँ होती है। सौदागरी की भी सब प्रकार की वस्तुएँ यहाँ मिल जाती हैं। प्रकृति ठडी और आँधियो का जोर रहता है। मनुष्य निर्दय और दुष्ट हैं। इनकी भाषा असभ्य और देहाती है। विवाह कार्य मे जाति इत्यादि का विचार नही है, एक जाति का दूसरी जाति से विवाह-सम्बन्ध बराबर हो जाता है। इनका साहित्य तुषार प्रदेश की भाँति है, परन्तु रीति-रिवाज, भाषा और चालचलन कुछ विपरीत है। इनके वस्त्र बालो से बनाये जाते हैं जो सबूर के होते हैं। वाणिज्य मे सोने और चादी के सिक्के तथा छोटे छोटे ताँबे के सिक्के प्रचलित हैं। इनकी बनावट दूसरे देशो की अपेक्षा भिन्न है। राजा क्षत्रिय जाति का है। यह बडा धूर्त है। अपने वीरत्व और साहस के बल से निकटवर्ती दस प्रदेशो पर इसने अधिकार कर रक्खा है। यह अपनी प्रजा का पालन बहुत प्यार से करता है और 'रत्नत्रयी' का मानने वाला है। प्रत्येक वर्ष यह राजा एक चांदी की मूर्ति १८ फीट ऊँची महात्मा बुद्ध की

बनवाता है और मोक्ष-महापरिषद नाम का बड़ा भारी मेला इकट्ठा करके दरिद्रो और दुखियो को भोजन देता है। एवं विधवा तथा अनाथ बालको के कष्टों को निवारण करता है।

लगभग १०० संघाराम और ६००० संन्यासी इस राज्य मे है। ये सब लोग 'महायान' सम्प्रदाय के सेवक हैं। ऊँचे ऊँचे स्तूप और संघाराम बहुत ऊँचे स्थान पर बनाये जाते हैं जिससे उनका प्रताप बहुत दूर से और सब ओर से प्रदर्शित होता है। यहा पर दस मन्दिर देवताओ के है, और लगभग १००० मनुष्य भिन्न-धर्मावलम्बी है। कुछ तपस्वी (निर्ग्रंथ या दिगम्बर जैन) नग्न रहते हैं। कुछ (पाशुपत) अपने को भस्म में लपेटे रहते हैं और कुछ (कपालधारी) हड्डियो की माला बनाकर शिर पर धारण किये रहते हैं।

राजधानी के पूर्व ३ या ४ ली पर पहाड़ के नीचे उत्तर तरफ एक बडा संघाराम लगभग ३०० सन्यासियों समेत है। इनका सम्बन्ध 'हीनयान' सम्प्रदाय से है और उसी की शिक्षा पाते हैं। इस सघाराम की पुरानी कथा इस प्रकार है। प्राचीन-काल मे[1] गधार देशाधिपति महाराज कनिष्क ने अपने निकटवर्ती सम्पूर्ण देशो को अधिकृत करके दूर दूर के भी देशों को जीत लिया था और अपनी सेना के बल से बहुत दूर की भूमि—यहां तक कि सङ्गलिग पहाड़ के पूर्व ओर तक के भी वे स्वामी हो गये थे। उस समय 'पीतनद' के पश्चिमीय देश-निवासी लोगो ने उनकी सेना के भय से, कुछ लोगो को वधक की भांति उसके पास भेजा[2]। कनिष्क राजा ने उन

---

(1) कनिष्क कब हुए इसका ठीक ठीक निश्चय अब तक नही हुआ। लैसन साहब सन् १० और ४० ई० के मध्य मे मानते हैं, परन्तु चीनी पुस्तको मे ईशा से प्रथम एक शताब्दी के अन्तर्गत माना है। उत्तर-देश-निवासी बौद्धबुद्ध-निर्वाण से ४०० वर्ष उपरान्त कनिष्क का होना मानते हैं, और वर्तमान काल के कुछ इतिहासज्ञ उसका होना प्रथम शताब्दी मे मान कर यह भी अनुमान करते हैं कि शक-सवत् (जो ईसा से ७८ वर्ष पीछे का है) उसी का चलाया हुआ है।

(2) हुइली के वृत्तान्त मे विदित होता है कि केवल एक पुरुष बंधक मे आया था और वह चीन-नरेश का पुत्र था। अश्वघोष के श्लोको से, जो कनिष्क का सहयोगी था, यह सूचित होता है कि चीन नरेश का एक पुत्र अंधा हो गया था, वह अपना अंधापन दूर करने के लिए इस देश मे आया था, वह एक भवन में आकर रहने लगा उस भवन में एक महात्मा उपदेशक भी रहता था। उस महात्मा ने एक दिन ऐसा सारगर्भित धर्मोपदेश दिया जिससे सम्पूर्ण श्रोतासमाज के अश्रु बह निकले। उन आंसुओ के कुछ बिन्दु राजकुमार के नेत्रोंमे लगाये गये जिससे उसका अंधापन जाता रहा था।

वधक लोगो के साथ बहुत उत्तम बर्ताव करके आज्ञा दी कि इन सब लोगो के निवास के लिए, गर्मी और जाडे के योग्य, अलग अलग मकान बनाये जायँ। जाडे के दिनो मे ये लोग भारतवर्ष के कई प्रदेशो मे, ग्रीष्म मे कपिसा मे, और शरद तथा वसन्त मे गधार देश मे निवास करते थे। इस कारण उन वधक पुरुषो के लिए तीनो ऋतुओ के योग्य अलग अलग सघाराम वनाये गये थे। यह सघाराम, जिसका कि वर्णन इस समय किया जाता है, उन लोगो के लिए ग्रीष्मकाल के लिए वनाया गया था। वधक पुरुषो के चित्र यहा की दीवारो पर बने हुए हैं; जिनकी सूरतो, कपडो और भूषण आदि से विदित होता है कि ये लोग चीन के निवासी थे। अत मे जब इन लोगो को अपने देश को लौटने की आज्ञा मिली और ये चले गये तब भी, वरावर उनका स्मरण उनकी इस अस्थायी निवास-भूमि मे होता रहा और यद्यपि बहुत से पहाड़ तथा नदियां रास्ते मे वाधक थी फिर भी वडे प्रेम के साथ उन लोगो को भेट भेजी जाती रही तथा उनका आदर किया जाता रहा। उस समय से लेकर अब तक प्रत्येक वर्षाऋतु मे सन्यासियो का जमाव इस स्थान पर होता है और व्रतोत्सव के समाप्त होने पर सब लोग मिल कर उन बधक पुरुषो को हितकामना के लिए प्रार्थना करते हैं। इन दिनो भी यह रीति सजीव है। इस सघाराम मे महात्मा वुद्ध के मन्दिर के पूर्वी द्वार के दक्षिण की ओर महाकालेश्वर (वैश्रवण) राजा की मूर्ति है, जिसके दाहिने पैर के नीचे तहखाना है जिसमे बहुत सी दौलत भरी है। यह द्रव्य-स्थान वधक पुरुषो का है। यहां पर लिखा हुआ है कि "जब सघाराम नष्ट हो जावे तो इस द्रव्य को निकाल कर उसे फिर से बनवा दिया जावे।" बहुत थोडे दिन हुए एक छोटा राजा बहुत लालची और दुष्ट तथा निर्दय प्रकृति का था। उसने, इस सघाराम मे छिपे हुए द्रव्य और रत्नो का पता पाकर संन्यासियो को खदेड दिया और धन को खुदवाने लगा। महाकालेश्वर राजा की मूर्ति के सिर पर एक तोते की मूर्ति थी। उस तोते ने अपने पंख फडफडाना और जोर जोर से चिल्लाना प्रारम्भ किया, यहां तक की भूमि कांपने तथा हिलने लगी। राजा और उसकी फौज के लोग जमीन पर गिर पडे। थोडी देर के बाद सब लोग उठकर और अपने अपराधो की क्षमा मांग कर लौट गये।

इस सघाराम के उत्तर में एक पहाडी दर्रे के ऊपर कई एक पत्थर की कोठियां हैं। इन स्थानो मे वे वधक पुरुष बैठकर ध्यान समाधि का अभ्यास किया करते थे। इन गुफाओ में बहुत से जवाहिरात छिपाये हुए रक्खे हैं और पास ही एक स्थान पर लिखा है कि इस धन की रक्षा यक्ष लोग करते हैं। यदि कोई व्यक्ति इनमें जाकर द्रव्य को चुराना चाहता है तो यक्ष लोग अपने आध्यात्मिक वल से भांति भांति के स्वरूप (सिंह, सर्प, इत्यादि) धारण करके अपने क्रोध को प्रकट करते हैं। इस कारण किसी को भी इस गुप्तधन के लेने का साहस नही

होता । इन गुफाओ के पश्चिम में दो तीन ली के फासले पर एक पहाड़ी दरें के ऊपर अवलोकितेश्वर बुद्ध की मूर्ति है। जिनको दृढ़ विश्वास से बुद्ध के दर्शन की इच्छा होती है उन लोगो को दिखाई पडता है कि भगवान बुद्ध का बहुत सुन्दर और तेजोमय स्वरूप मूर्ति मे से निकलकर बाहर आ रहा है और यात्रियों की धारणा को सुदृढ़ और शान्त कर रहा है । राजधानी से ३० ली के लगभग दक्षिण-पूर्व को राहुल संघाराम मे हम पहुँचे। इसके समीप १०० फीट ऊचा एक स्तूप है। वृतोत्सव के दिनो मे इस स्तूप मे से एक ज्योति सी निकलती हुई दिखलाई पडती है । कुपोल के ऊपर बीच वाले पत्थर के मध्य से काला काला सुगंधित तेल निकलता है और सुनसान रात्रि मे गाने बजाने का शब्द सुनाई पड़ता है। प्राचीन इतिहासानुसार यह स्तूप 'राहुल नामी इस देश के प्रधान मंत्री का बनवाया हुआ हैं। इस धार्मिक कार्य के समाप्त होने पर रात्रि को उसने एक आदमी को स्वप्न में देखा जिसने उससे कहा कि इस स्तूप मे जो तूने बनवाया है कोई पवित्र वस्तु (बौद्धावशेष) नही है । कल जब राजा को भेट देने आवे तब तुम उस भेट को यहाँ लाकर स्थापित कर दो । दूसरे दिन सबेरे राजा के दरबार मे जाकर उसने राजा से विनय को कि महराज का एक दीन दास कुछ निवेदन किया चाहता है। राजा ने पूछा कि मन्त्री जी आपको किस वस्तु की आवश्यता है ? उत्तर मे उसने निवेदन किया कि महाराज की बहुत बड़ी कृपा हो यदि आज की भेट आवे मुझको मिल जाय। राजा ने इसको मजूर कर लिया । राहुल इसके पश्चात किले के फाटक पर जाकर खडा हुआ और उन लोगो को देखने लगा जो उस तरफ आ रहे थे। भाग्य से उसने देखा कि एक आदमी अपने हांथ में बौद्धावशेष का डिब्बा लिए हुये आ रहा है । मन्त्री ने उससे पूछा तुम्हारी क्या इच्छा है ?, तुम क्या भेट लाये हो ? उसने उत्तर दिया—महात्मा बुद्ध का कुछ अवशेष। मंत्री ने उत्तर दिया मैं तुम्हारी सहायता करूंगा और मैं अभी जाकर राजा से प्रथम यही निवेदन करूँगा। यह कह कर उसने अवशेष को ले लिया। परन्तु उसको भय हुआ कि कदाचित इस बहुमूल्य अवशेष को देख कर राजा को पछतावा हो इस कारण वह जल्दो से सघाराम को गया और स्तूप पर चढ़ तथा बडे भारी धर्नवल के कुपोल पत्थर को स्वयं खोल कर उस पुनीत अवशेष को उसके भीतर रख दिया । यह काम करके वह जल्दी से बाहर आ रहा था उसके वस्त्र की गोट पत्थर के नीचे दब गई। जब तक वह वस्त्र को छुड़ावे खुद ही पत्थर के नीचे ढक गया। राजा ने कुछ लोग उसके पीछे दौड़ाये भी थे परन्तु जब तक वे लोग स्तूप तक पहुचे रोहिल पत्थर के भीतर बन्द हो चुका था। यही कारण है कि पत्थर की दरार मे से काला तेल चूआ करता है।

नगर से लगभग ४० ली दक्षिण की ओर 'हम श्वेतवार नगर मे आये। चाहे भूडोल हो अथवा पहाड की चोटी ही क्यो न फट पड़े परन्तु इस नगर के ईंद-गिर्द कुछ भी गडबड नही होती।

श्वेतवार नगर से ३० ली दक्षिण एक पहाड ओलूनो (अरुण) नामक है। इसके करारे और दरे बहुत ऊँचे तथा गुफाये और घाटियां गहरी और अधेरी हैं। प्रत्येक वर्ष इसकी चोटी कई सौ फुट उठ कर सावकूट राज्य के सुनगिर पहाड की ऊचाई तक पहुचती है। फिर उस चोटी से मिल कर एकाएक गिर जाती है। मैंने इस हाल को निकटवर्ती प्रदेशो मे सुना है। प्रथम जब स्वर्गीय देवता (सुन) बहुत दूर से इस पहाड पर आया और पहाडी पर विश्राम करने के लिये आया और पहाडी आत्मा ने अपने निकट की घाटियो को हिला कर उसको भयभीत कर दिया तब स्वर्गीय देवता ने कहा तुमको मेरे आतिथ्य की कुछ इच्छा नही है इस वास्ते यह हलचल और बखेडा तुमने फैलाया है। यदि तुमने मेरी सेवा थोडी देर के लिए भी की होती तो मैंने तुम पर अतुलित धन की वृष्टि कर दी होती।

परन्तु अब मैं सावकूट राज्य के सूनगिर पहाड को जाता हूँ और उसी के दर्शन प्रत्येक वर्ष किया करूँगा। जब मैं वहाँ हूंगा और राजा तथा उसके अधिकारी जिस समय मेरी सेवा करते होगे उस समय तुम मेरे आमसे सामने खडे हुआ करोगे। यही कारण है कि अरुण सहाड ऊँचा होकर कर गिर जाता है।

राजधानी से २०० ली पश्चिमोत्तर हम एक बडे बरफीले पहाड पर आये इसकी चोटी एक झील हैं। इस स्थान पर जो व्यक्ति वृष्टि की इच्छा करता है अथवा स्वच्छ जल के लिए प्रार्थना करता है वह अपनी याचनानुसार अवश्य पाता है। इतिहास मे लिखा है कि प्रचीन काल मे गंधार प्रदेश का स्वामी एक अरहट था जिसको इस झील के नागराज ने भी धार्मिक भेट दी थी। जिस समय मध्याह्न के भोजन का समय हुआ उस समय वह अरहट अपने आध्यात्मिक बल से उस चटाई के सहित जिस पर वह बैठा था आकाशगामी हुआ और उस स्थान पर गया जहा नागराज रहता था। उसका सेवक श्रमणेर भी जिस समय अरहट जाने लगा चुपके से चटाई पकड कर लटक गया और क्षण मात्र मे उसके साथ नागराज के स्थान को पहुँच गया। वहां पहुँचने पर नागराज ने श्रमणेर को भी देखा। नागराज ने उनसे आतिथ्य स्वीकार करने की प्रार्थना की और अरहट को तो मृत्युनाशक भोजन दिया परन्तु श्रमणेर को वही भोजन

दिया जो मनुष्य करते है । अरहट ने अपना भोजन समाप्त करके नागराज की भलाई के लिए व्याख्यान देना प्रारम्भ किया और श्रमरगेर को जैसा कि उसका नियम था आज्ञा दी कि भिक्षा पात्र को माजकर धो लावे। पात्र मे जूठन उस स्वर्गीय भोजन की लगी हुई थी। उस भोजन की सुगन्ध से चौक कर उसके हृदय मे क्रोध उत्पन्न हुआ और अपने स्वामी से चिढ कर तथा नागराज से खिन्न होकर उसने शाप दे दिया कि जी कुछ आज तक मैंने धर्म की सेवा की है उस सबके बल से यह नागराज आज मर जावे और मै स्वयं नागों का राजा होऊँ। इस शाप को दिये हुये श्रमरगेर को बहुत थोडा समय हुआ था कि नागराज के सिर मे वेदना उत्पन्न हुई । अरहट को व्याख्यान समाप्त करने पर अपने अपराध का ज्ञाप हुआ और वह बहुत पछताया । नागराज ने भी अपने पापो की क्षमा चाही । परन्तु श्रमरगेर अपने ह्रदय मे अब भी शत्रुता को धारण करता रहा और उसने उसको क्षमा न किया ! अपने धार्मिक बल से जो कुछ उसने सत्यकामना की थी वह संघाराम मे आने पर पूरी हुई। उसी रात वह कालग्रमित होकर नाग के शरीर मे उत्पन्न हुआ । इसके उपरान्त उसने क्रोध मे भर कर झील मे प्रवेश किया और उस नाग राज को मार कर वह उसके स्थान का स्वामी हुआ। फिर उसने अपने सम्पूर्ण बान्धवो को साथ लेकर अपनी वास्तविक इच्छा के पूर्ण करने का उद्योग किया संघाराम को नाश करने के अभिप्राय से उसने बडे भयकर आँधियां और तूफान उत्पन्न कर दिये जिससे सैकडो वृक्ष उखड कर धराशाही हो गये।

जब राजा कनिष्क ने संघाराम के विनाश होने पर आश्चर्यान्वित होकर, अरहट से इसका कारण पूछां तब उसने सब वृतान्त निवेदन किया। इस पर राजा ने नागराज के लिए,(जो मर चुका था) बरफीले पहाड के नीचे एक संघाराम और एक स्तूप १०० फीट ऊचा बनवाया । नागराज ने फिर क्रोधित होकर और आंधी तूफान उठाकर उसको नाश कर दिया । ,राजा ने अपने औदार्य से इन स्थानो कों फिर से बनवाया परन्तु नागराज दूने क्रोध से विशेष भयंकर हो गया । इस प्रकार छः बार वह संघाराम और स्तूप नाश किया गया। सातवी बार कनिष्क अपने कार्य की असफलता से पीडित होकर विशेष क्रुद्ध हुआ और उसने इरादा किया कि नागो की झील को पटवा दिया जावे और उसके घर को धराशाही कर दिया जावे। इस विचार से राजा अपनी सेना सहित पहाड के नीचे आया। उस समय नागराज भयातुर होकर और अपने पकडे जाने से घबडा कर एक बूढे ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके राजा के हाथी के सम्मुख दण्डवत् करने लगा और राजा से बिनती करते हुए इस प्रकार बोला

कि महाराज आप अपने पूर्व जन्मों के अगणित पुण्यों के प्रताप से इस समय नृपति हुए है आपकी कोई भी इच्छा परिपूर्ण नही है । फिर क्यों आप आज नागराज से युद्ध करने के लिए तैयार हूये हैं ? नागराज केवल पशु हैं तो भी नीच जाति के पशुओ मे विशेष बलशाली है । इसके बल का सामना कोई भी नही कर सकता । यह मेघो पर चढ सकता है अदृश्य हो सकता हैं, और पानी पर चल सकता है । कोई भी मानव शक्ति उससे विजय नही कर सकती । फिर क्यों श्री मान इस प्रकार क्रुद्ध हैं कि आपने अपनी सेना के साथ लडाई के लिए नाग पर चढाई की है ? यदि आप जीत लेगे तो आपकी विशेष बडाई न होगी । और यदि आप पराजित हो जायेंगे तो फिर आपको अपनी प्रतिष्ठा के कारण आन्तरिक वेदना होगी । इस कारण मेरी सलाह मानिये और अपनी सेना को लौटा लाइये । परन्तु राजा अपने सकल्प पर दृढ था इसलिए अपने कार्य मे लीन हो गया और नागराज को लौट जाना पडा । नागराज ने बज्रवत चिघाड करते हुए पृथ्वी को हिला दिया और आंधियो को चला कर वृक्षो को तोड डाला । पत्थर और धूल की बृष्टि होने लगी तथा काले काले बादलो के कारण सर्वत्र अन्धकार हो गया जिससे राजा की सेना घोडो सहित भयभीत हो गई । उस समय राजा ने अपनी रक्षत्रयी की पूजा की ओर इस प्रकार निवेदन करते हुये उनकी सहायता का प्रार्थी हुआ । अपने पूर्वजन्मो के अगणित पुण्यो के प्रभाव से मैं नृपति हुआ हूँ तथा बडे बडे बलवानो को जीत कर जम्बूद्वीप का अधिपति हुआ हूँ परन्तु इस नाग के विजय करने मे मेरा कुछ बल नही चल रहा है जिससे विदित होता हैं कि कदाचित अब मेरा पुण्य घट चला है । इसलिए मेरी प्रार्थना है कि जो कुछ मेरा पुण्य हो इस समय मेरे काम आवे ।

इस समय राजा के दोनों कधो से अग्नि की चिनगारियां उठने लगी और बडा धुआं होने लगा । राजा के प्रभाव से नागराज भाग गया, आंधिया थम गई, अधकार का नाश हो गया और मेघ छितरा गये । उस समय राजा ने अपनी सेना के प्रत्येक आदमी को आज्ञा दी कि एक एक पत्थर लेकर नागों की झील को पाट दो ।

इस समय नागराज ने फिर ब्राह्मण का रूप धारण किया और राजा से दुबारा प्रार्थी हुआ कि मैं ही इस झील का नागराज हूँ मैं आपके बल से भयभीत होकर आपकी शरण आया हूँ। क्या महाराज कृपा करके मेरे पहले अपराधो को क्षमा कर देगे ? महाराज वास्तव मे सबके रक्षक हैं और

सब प्राणियों का पालन करते है फिर मैंरे ऊपर ही इतना क्रुद्ध क्यों हैं ? यदि महराज मुझको मारेगे तो हम दोनो को नरक होगा । महाराज तो को मारने के लिये और मुझको क्रोध के वशीभूत होने के लिए कर्मों के फल उस समय अवश्य प्रकट होगे जब पाप और पुण्य के विचार का समय होगा ।

राजा ने नागराज की प्रार्थना स्वीकार करके आज्ञा दी कि अगर अब की बार तुम फिर विद्रोही होगे तो कदापि क्षमा न किये जाओगे। नाग ने कहा कि मैंने अपने पापो से नाग का शरीर पाया है । नागो का स्वभाव भयानक और नीच है इस कारण वे अपने स्वभाव को वश नही कर सकते । यदि सयोग से मेरे हृदय मे फिर अग्नि ज्वाला उठे तो वह मेरे अपनी प्रतिज्ञा भूल जाने के कारण ही होगी । महाराज फिर संघाराम को एक बार बनवावे मैं इसके विनास का साहस नही करूँगा । महाराज एक मनुष्य को नियत कर दे कि जो प्रतिदिन पहाड की चोटी को देख लिया करें जिस दिन उसको चोटी बादलों से काली दिखाई पडे उस दिन तुरन्त बड़े निनाद के साथ घंटा बजा देवे । जैसे ही मैं उसके शब्द को सुनूगा शान्त होकर अपना असदिचार परित्याग कर दूंगा ।

राजा ने इस बात से सहमत होकर फिर से नया संघाराम और स्तूप बनबाया । अब भी लोग पहाड़ की चोटी पर के मेघ और कुहरे को देखा करते हैं । इस स्तूप की बाबत प्रसिद्ध है कि इसके भीतर तथागत भगवान का बहुत सा शरीरावेश (हड्डी मांस आदि) रक्खा हुआ है और इस अवशेष के ऐसे ऐसे अदभुत चमत्कर दिखाई पडते हैं कि जिनका अलग अलग वर्णन करना कठिन है । एक समय इस स्तूप मे से एक बारगी धुआं निकलने लगा और फिर तुरन्त ही बड़ी भारी ज्वाला प्रकट हो गई । लोगों को निश्चय हुआ कि स्तूप का अब नाश हुआ चाहता हैं ।, वे लोग वहुत समय तक स्तूप की ओर एक टक दृष्टि से देखते रहे यहां तक की वह ज्वाला समाप्त हो गई और धुंआ जाता रहा । फिर उन्होने देखा कि मोती के समान श्वेत एक शरीर प्रकट और उसने स्तूप के कलश को प्रदक्षिणा की । दुपरान्त वहाँ से हटकर ऊपर चढने लगा और मेघो के प्रदेश तक चला गया । थोडी देर उस स्थान पर चमक कर वह शरीर परिक्रमा करता हुआ नीचे उतर आया । राजधानी के पचो-त्तर मे एक वडो नदी है जिसके दक्षिण किनारे पर किसी प्राचीन राजा के संघाराम के पूर्व दक्षिण मे एक दूसरा संघाराम किसी प्राचीन नरेश का है जिसमे तथागत

भगवान के सिर की अस्ति रक्खी हुई है । इसका ऊपरी भाग एक इंच चौडा और रग कुछ पीलापन लिए हुए श्वेत है। इसके अतिरिक्त यहा तथागत भगवान की चोटी भी रक्खी हुई है जिसका र ग काला दुरगी हैं। इसके बाल दाहिनी ओर फिरे हुए हैं। खीचने से यह एक फुट लम्बी हो जाती है पर मामूली दिशा मे करीव आधे इन्च के रहती है । छहो पुनीत दिनो को राजा और उसके मन्त्री बडी भक्ति से इन तीनो वस्तुओ की पूजा करते हैं ।

शिर की अस्थिथवाले सघाराम के दक्षिण-पश्चिम मे एक और सघाराम किसी प्राचीन राजा की रानी का वनवाया हुआ है । इसमे सोने का मुलम्मा किया हुआ एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा है , इस स्तूप की वावत प्रसिद्ध है कि इसमे वुद्ध भगवान् का 'शरीरावशेष' लगभग १ सेर रक्खा हुआ है । प्रत्येक मास की पन्द्रहवी तिथि को शाम के समय इम स्तूप की ऊपरी थाली मडलाकार स्वरूप मे चमकने लगती है और प्रात.काल तक चमकती रहती है। फिर धीरे-धीरे विलीन होकर स्तूप मे चली जाती है ।

नगर के पश्चिम-दक्षिण मे एक पहाड 'पीलुसार' है । पहाडी आत्मा हाथी का स्वरूप धारण किया करता है इस कारण इस पहाड का यह नाम पडा है । प्राचीन काल मे जव तथागत भगवान् जीवित थे पहाडी आत्मा 'पीलुसार' ने भगवान् और उनके १२०० अरहटो को आतिथ्य स्वीकार करने के लिए निमन्त्रित किया था । पहाड के ऊपर एक ठोस चट्टान का टीला है जिस पर तथागत भगवान् ने आत्मा की भेंट को स्वीकार किया था ' बाद को अशोक राजा ने उस चट्टान पर लगभग १०० फीट ऊँचा एक स्तूप बनवाया है । यह स्तूप 'पीलुसार स्तूप' के नाम से प्रसिद्ध है । इस स्तूप की वावत भी कहा जाता है कि इसमे 'तथागत भगवान' का लगभग एक सेर 'शरीरावशेप' रक्खा हुआ है ।

पीलुसार स्तूप के उत्तर मे एक पहाडी गुफा है जिसके नीचे 'नागजलप्रपात' है । इस स्थान पर तथागत भगवान् ने अरहटो समेत देवता से भोजन प्राप्त किया था और मुँह धोया था, तथा खदिर वृक्ष की दातुन से दाँतो को साफ किया था । फिर उस दातुन को पृथ्वी मे गाड दिया, जो जम आई और अव एक घने जगल के रूप मे हो गई है । लोगो ने इस स्थान पर एक सघाराम वनवा दिया है जो 'खदिर सघाराम के नाम से प्रसिद्ध है । इस स्थान से ६०० ली पूर्व दिशा मे जाकर और पहाडो तथा घाटियो के समूह को, जिनकी चोटियाँ वेतरह ऊँची हैं, पार करके, काले पहाड के किनारे किनारे हम उत्तरी भारत मे पहुँचे और सीमा-प्रान्त मे होते हुए 'लैनपो' देश मे आये ।

दूसरा अध्याय

भारत का नामकरण

अनुसंधान से विदित होता है कि भारत का नामकरण भारतीय लोगों के सिद्धान्तानुसार असम्बद्ध और अनेक प्रकार का है। प्राचीन काल मे इसका नाम 'शिन्दू' और 'होनताव' था, परन्तु अब शुद्ध उच्चारण 'इन्तु' है।

'इन्तु' देश के लोग अपने को प्रान्तानुसार विविध नामो से पुकारते हैं। प्रत्येक प्रान्त को अनेक रीतियाँ हैं। मुख्य नाम हम 'इन्तु' ही कहेगे। इसका उच्चारण सुनने मे सुन्दर है। चोनी भाषा मे इस नाम का अर्थ चन्द्रमा होता है। चन्द्रमा के बहुत नाम हैं उन्ही मे से एक यह भी है। यह वात प्रसिद्ध है कि सम्पूर्ण प्राणी अज्ञान की रात्रि मे ससार-चक्र के आवागमन द्वारा अविश्रान्त चक्कर लगा रहे हैं, एक नक्षत्र तक का भी उनको सहारा नही है। इनकी वही दशा है कि सूर्य अस्ताचल को प्रस्थानित हो गया है, मशाल की रोशनी फैल रही है, और यद्यपि नक्षत्र भी प्रकाशित है परन्तु चन्द्रमा के प्रकाश से वे मिलान नहीं खा सकते ठीक ऐसा ही प्रकाश पवित्र और विद्वान् महात्माओ का है जो कि चन्द्रमा के प्रकाश के समान ससार को रास्ता दिखाते है और इस देश को प्रभावशाली बनाये हुए हैं। इसी कारण इस देश का नाम 'इन्तु' है। भारतवर्ष के निवासी जाति-भेद के अनुसार विभक्त है। ब्राह्मण अपनी पवित्रता और कुलीनता के कारण विशेष प्रतिष्ठित हैं। इतिहासो मे इस जाति का नाम ऐसा पूजनीय है कि लोग आम तौर पर भारतवर्ष को ब्राह्मणो का देश कहते हैं।

भारत का क्षेत्रफल तथा जलवायु

प्रदेश जो भारतवर्ष मे सम्मिलित हैं प्रायः पच भारत (Five Indies) कहलाते है। क्षेत्रफल इस देश का लगभग ९०,००० ली है। इसके तीन तरफ समुद्र हैं और उत्तर मे हिमालय पहाड़ है। उत्तरी विभाग चौड़ा है और दक्षिणी भाग पतला। इसकी शकल अर्द्ध चन्द्र के समान है। सम्पूर्ण भूमि लगभग सत्तर प्रान्तो में विभक्त है। ऋतुये विशेषतः गर्म हैं। नदियों की वहुतायत से भूमि मे तरी है। उत्तर मे पहाड और पहाडियो का समूह है, भूमि सूखी और नमकीन है। पूर्व मे घाटियाँ और मैदान हैं, जिनमे पानी की अधिकता है और अच्छी खेती होने के कारण, फल-

फूल और अन्नादि की अच्छी उपज होती है। दक्षिणी प्रान्त जङ्गलो और जडी बूटियो से भरा है। पश्चिमी भाग पथरीला और ऊसर है। यही इस देश का साधारण हाल है।

माप

सक्षेप मे इसका विवरण यह है। पैमाइश मे सबसे पहले 'योजन' है जो प्राचीन काल के पवित्र राजाओ के समय से सेना के एक दिन की चाल के बराबर माना गया है। प्राचीन लेखानुसार यह चालीस ली के बराबर है और भारतवासियो की साधारण गणना के अनुसार ३० ली के बराबर। परन्तु बौद्धो की पवित्र पुस्तकों में योजन केवल १६ ली का माना गया है। योजन आठ कोस का होता है। कोस उतन; दूरी का नाम है जहां तक गऊ का शब्द सुन पडे। एक कोस ५०० धनुष का होता है एक धनुष चार हाथ का होता है; एक हाथ २४ अगुल का, और एक अगुल सात यव का होता है। इसी प्रकार जूंलीख, रेणुकणिका, गऊ का बाल, भेड़ का बाल, चौगडे का बाल, ताम्रजल[1] इत्यादि सात विभाग हैं यहां तक कि बालू के छोटे कण तक पहुँचनी होता है। इस कण के सात बार विभाजित हो जाने पर हम बालू के नितान्त छोटे से छोटे भाग (अणु) तक पहुँचते हैं। इसके अधिक विभाग नही हो सकते जब तक कि हम शून्य तक न पहुँचे, और इसी कारण इसका नाम परमाणु है।

ज्योतिष, पत्रा इत्यादि

यद्यपि थिन और यङ्ग-सिद्धान्त का चक्र और सूर्य-चन्द्र के अनुक्रमिक स्थान आदि का नाम हमारे यहां से भिन्न है तो भी ऋतुएं समान ही हैं। महीनो के नाम ग्रहो की गति के अनुसार निश्चित किये गये हैं।

समय का लघुतम विभाग क्षण है: १२० क्षण का एक तत्क्षण होता है; ६० तत्क्षण का एक लव होता है; ३० लव का एक मुहूर्त होता है; पांच मुहूर्त का एक काल होता है, और छ. काल का एक दिन-रात होता है। परन्तु बहुधा एक दिन-रात मे आठ काल होते हैं। नवीन चन्द्रमा से लेकर पूर्ण चन्द्र तक का समय शुल्कपक्ष, और पूर्णचन्द्र की तिथि से चन्द्रमा के अदृश्य होने तक को कृष्णपक्ष कहते हैं। कृष्णपक्ष चौदह या पन्द्रह दिन का होता है क्योंकि महीना कभी कमती होता है और कभी बढती। पहला कृष्णपक्ष और उसके बाद का शुल्कपक्ष दोनो मिल कर एक मास होता

---

(1) ताम्रजल (copper-water) से कदाचित् तांबे की उस छिद्रदार कटोरी से तात्पर्य है जो पानी मे पडी रहती है और समय का निश्चय कराती है।

है। छः मास का अयन होता है। सूर्य की गति जब भूमध्यरेखा से उत्तर में होती है तब उत्तरायण होता है और जब इसकी गति भूमध्यरेखा से दक्षिण में होती है तब दक्षिणायन होता है।

प्रत्येक वर्ष का विभाग छः ऋतुओ में भी किया गया है। प्रथम मास की १६वी तिथि से तृतीय मास की १५वी तिथि तक का समय वसन्त, तीसरे मास की १६वी तिथि से पाँचवे मास की १५वी तिथि तक ग्रीष्म, पाँचवे मास की १६वी तिथि से सातवे मास की १५ वी तिथि तक वर्षा, सातवें मास की १६ वी तिथि से नवे मास की १५ वी तिथि तक शरद् नवे मास की १६ वी से ११ वे मास की १५ वी तिथि तक हेमन्त, ११ वे मास की १६ वी तिथि से पहले मास की १५ वी तक शिशिर ऋतु कहलाती है।

तथागत भगवान् के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक वर्ष तीन ऋतुओ मे विभाजित है। पहले महीने की १६ वी तिथि से पाँचवे महीने की १५ वी तिथि तक ग्रीष्मऋतु होती है, पाँचवे महीने की १६ वी तिथि से नवे मास की १५ वी तिथि तक वर्षाऋतु होती है, और नवे महीने की १६ वी तिथि से प्रथम मास की १५ वी तिथि तक जाडा रहता है। कोई कोई चार ऋतु मानते हैं, वसन्त, ग्रीष्म, शरद् और शीत। वसन्त के तीन मास चैत, वैशाख, ज्येष्ठ जो कि पहले मास की १६ वी तिथि से चौथे मास की १५ वी तक होते है, ग्रीष्म के तीनो महीने आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, चौथे मास को १६ वी तिथि से सातवे मास की १५ वी तिथि तक होते है, शरद् के तीन महीने आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष सातवे महीने की १६ वी तिथि से १० वे मास की १५ वी तिथि तक होते हैं और शीत-ऋतु के तीन महीने पौष, माघ और फाल्गुन दसवे मास की १६ वी तिथि से पहले मास को १५ वी तिथि तक होते हैं। प्राचीन काल मे भारतीय सन्यासियों की संस्था ने महात्मा बुद्ध के शिक्षानुसार विश्राम के लिए दो काल नियत कर रक्खे थे। अर्थात्, या तो पहले तीन मास, अथवा पिछले तीन मास। यह समय पाँचवे मास की १६ वी तिथि से आठवे मास की १५ वी तिथि तक, अथवा छठे मास की १६ वी तिथि से नवे मास की १५ वी तिथि तक माना गया था। हमारे देश के प्राचीन काल के सूत्र और विनय के भाष्यकारो ने वर्षा-ऋतु के विश्राम को सूचित करने के लिए 'सोहिया' और 'सोलाहिया' शब्दो का प्रयोग किया है। परन्तु ये दूर देश निवासी लोग भारतीय भाषा का शुद्धोच्चारण नही जानते थे और या तो देश। शब्दो को अच्छी तरह समझने से पहले ही तर्जुमा कर बैठे, जिसके कारण यह भूल हो गई। और यही कारण है कि भगवान् तथागत के गर्भवास, जन्म, गृहत्याग,

सिद्धि और निर्वाण के समय को निश्चित करने में भूल कर गये हैं जिनको हम अन्यान्य पुस्तको मे सूचित करेंगे ।

नगर और इमारतें

नगरो और ग्रामो मे भीतरी द्वार होते हैं, दीवारें चौडे और ऊँची हैं, रास्ते और गली, भूलभुलैयाँ और बड़ी बड़ी सडकें हवादार हैं। सफाई नही है परन्तु रास्तो के दोनो ओर स्तम्भ लगे हुए है जिनके उचित सूचना मिल जाती है। कसाई, मछली पकड़ने वाले, नाचने वाले, जल्लाद और मेहतर इत्यादि नगर से बाहर मकान बनाते हैं। इन लोगो को सडक के बाईं ओर चलने की आज्ञा है। इनके मकान फूस के बने होते हैं, और दीवारें छोटी छोटी होती है। नगर की दीवारें प्राय ईंटो की बनती हैं। और उन पर के मीनार लकडी या बाँस के बनाये जाते हैं। मकान व बराम्दे लकडी के बनते हैं जिन पर चूना का गारा देकर खपरो से छा देते है। अन्य प्रकार के मकानात चीनी मकानो के सदृश, सूखी डालें, खपरो अथवा तख्ते से पाट दिये जाते हैं। दीवारें चूना या मिट्टी से, जिसमे पवित्रता के लिए गोबर मिला दिया जाता है, लेसी होती हैं। और किसी किसी ऋतु मे इनके निकट फूल डाले जाते हैं। अपनी अपनी रीति होती है। संघाराम विलक्षण बुद्धिमानी से बनाये जाते हैं। चारो कोनो पर तिमजिले टीले बनाये जाते हैं, कडियाँ और निकले हुए अग्रभाग अनेक रूपो तथा बडी योग्यतापूर्वक नक्काशी किये हुये होते हैं। द्वार और खिडकियाँ तथा निचली दीवारें बहुत लागत से रंगी जाती है, महन्तो की कोठरियाँ भीतर से जैसी सुसज्जित होती हैं वैसी बाहर से नही होती, परन्तु साफ खूब होती हैं। इमारत के बीच मे ऊँचा और चौडा मंडप होता है। कोठरियाँ कई-कई मंजिली होती है और कँगूरे विविध रूप तथा ऊँचाई के होते हैं जिनका कोई विशेष नियम नही है। द्वारो का मुख पूर्व दिशा की ओर होता है और राज्यसिहासन भी पूर्वाभिमुख रक्खा जाता है।

आसन और वस्त्र

जब लोग बैठते या सोते है तब आसन या चटाइयो का प्रयोग करते हैं। राज-परिवार बडे बडे आदमी और राज-कर्मचारी लोग विविध प्रकार से सुसज्जित चटाइयाँ काम मे लाते है परन्तु इनके आकार मे भेद नही होता। राजा के बैठने की गद्दी बडी और ऊँची बनती है तथा उसमे बहुमूल्य रत्न जडे होते हैं। इसको सिंहासन कहते हैं। इस पर बहुत सुन्दर कपडा मढा होता है और पायो मे रत्न जडे होते हैं। प्रतिष्ठित व्यक्ति अपनी इच्छानुसार बैठने के लिए सुन्दर, चित्रित और बहुमूल्य वस्तुएँ काम मे लाते हैं।

पोशाक और आचरण

यहाँ वालों के वस्त्र न तो काटे जाते हैं और न सुधारे जाते हैं। विशेषकर लोग श्वेत वस्त्र अधिक पसन्द करते हैं; रंग-बिरंगे अथवा बने चुने कपडों का कम आदर है। पुरुष वस्त्र को मध्य शरीर मे लपेट कर और बगल के नीचे से इकट्ठा करके शरीर के इधर-उधर निकाल देते है तथा दाहिनी ओर लटका देते है। स्त्रियों के वस्त्र भूमि तक लटके रहते है। इनके कंधे पूरे तौर पर ढके रहते हैं। सिर पर थोडे वालो का जूडा रहता है। शेष बाल इधर-उधर फैले रहते है। बहुत से लोग अपनी मूँछें कटवा कर विचित्र भाँति की कर लेते है। सिरो पर टोपी पहनते हैं, गले मे फूलो के गजरे और रत्न धारण करते हैं। इन लोगो के वस्त्र 'कौषेय' और रुई के बनते हैं। 'कौषेय' जंगली रेशम के कीडे से प्राप्त होता है। ये लोग 'क्षौम' वस्त्र भी धारण करते है जो एक प्रकार का सन होता है। कम्बल भी बनता है जो बकरी के महीन बालो से बनाया जाता है। 'कराल' से भी वस्त्र बनाया जाता है। यह वस्तु जंगली जीवो के महीन बालो से प्राप्त होती है। यह बहुत कम प्राप्त होने वाली वस्तु है इस कारण इसका दाम भी बहुत होता है। इसका वस्त्र बहुत सुन्दर होता है। उत्तरी भारत मे जहाँ की वायु बहुत ठंढी है लोग छोटे और और अच्छी तरह चिपटे हुए वस्त्र 'हु' लोगो की भाँति पहनते हैं। बौद्ध-धर्म के भिन्न मतावलम्बी विविध प्रकार के कपडे और आभूषण धारण करते हैं। कुछ मोरपंख को पहनते हैं, कुछ लोग भूषण के समान खोपडी की हड्डियो की माला गले मे धारण करते हैं, कुछ लोग कुछ भी वस्त्र नही पहनते हैं और नंगे रहते है, कुछ लोग छाल और पत्तो के वस्त्र धारण करते है, कुछ लोग बालो को बनवा डालते है और मूँछे कटा डालते हैं, और कुछ लोग दाढी मूँछ को अच्छी तरह बढा लेते है और सिर के बालो को बट लेते हैं। पोशाक एक समान नही है और रंग लाल हो या सफेद, कोई नियत नही है।

श्रमण लोगो के वस्त्र तीन प्रकार के होते हैं—'सेङ्ग कियाची' (संघाता), 'साङ्ग कियोकी' (संकाक्षिका) 'निफोसिन' (निवासन । इन तीनो की बनावट एक समान नही है बल्कि सम्प्रदाय के अनुसार होती है। कुछ के चौडे या पतले किनारे होते है और कुछ के छोटे या वडे होते हैं। 'साङ्ग कियोकी' (संकाशिका) वाम कधे को ढके रहता है और दोनो बगलो को बन्द कर लेता है। यह बाई ओर खुला और दाहिनी ओर वन्द पहना जाता है और कमर से नीचे तक बना हुआ होता है। 'निफोसेन' (निवासन) मे न कमरपट्टी होती है और न फलरा। इसमे चुनाव पडा होता है और कमर मे डोरी से बाँध लिया जाता है। सम्प्रदाय के अनुसार वस्त्रो का रंग भिन्न होता है। लाल और पीला दोनो रग काम मे आते हैं।

क्षत्रियो और ब्राह्मणो के वस्त्र स्वच्छ और आरोग्यवर्द्धक होते है। ये गृहस्थो के योग्य और किफायती होते हैं। राजा और उसके प्रधान मन्त्रियो के वस्त्रो और भूषणो मे भेद होता है। ये लोग फूलो से बालो को संवारते हैं और रत्नजटित टोपी पहनने हैं तथा कंकण और हारो से भी अपने को आभूषित करते हैं।

जो बडे-बडे सौदागर है वे सोने की अँगूटी इत्यादि पहनते हैं। ये लोग प्रायः नंगे पैर रहते हैं, बहुत कम खडाऊ पहनते है, अपने दाँतो को लाल और काले रँगते हैं, बालो को ऊपर बाँधते हैं और कानो को छेद लेते हैं। इन लोगो की नाक बहुत सुन्दर और आँख बडी-बडी होती हैं। यही इनका स्वरूप है।

पवित्रता और स्नान आदि

यहाँ के लोग अपनी दैहिक शुद्धता मे बहुत दृढ है, इस विषय मे रञ्चमात्र भी कमी नही होने देते। सब लोग भोजन से प्रथम स्नान करते है। जो भोजन एक समय कर लिया जाता है उसका शेष भाग जूठा हो जाता है। उसको ये लोग फिर नही ग्रहण करते। मिट्टी के वर्तनो (रकाबियो) को भी काम मे नही लाते और लकडी तथा पत्थर के पात्र एक बार काम मे आ चुकने के पश्चात् तोड डाले जाते है। सोना, चाँदी, ताँबा और लोहे के पात्र प्रत्येक भोजन के पश्चात् धोये और माँजे जाते है। भोजन के पश्चात् ये लोग खरिका करके अपने दाँतो को शुद्ध करते हैं तथा अपने हाथ और मुँह को धोते हैं। जब तक शौचकर्म समाप्त नही हो जाता ये लोग परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नही करते। प्रत्येक दीर्घ और लघुशका के उपरान्त ये लोग स्नान करते हैं और सुगंधिक वस्तुओ—जैसे चन्दन अथवा केसर—का लेपन करते है। राजा के स्नान के समय पर लोग नगाडे वजाते हैं, और वाद्य-यन्त्रो के साथ भजन गाते हैं। धार्मिक पूजन और प्रार्थना के पहले भी लोग शौच स्नान कर लेते हैं।

लिपि, भाषा, पुस्तकें, वेद और विद्याध्ययन

इनकी वर्णमाला के अक्षर ब्रह्मा देवता के बनाये हुए है, और वही अक्षर तब से लेकर अब तक प्रचलित है। इनकी सख्या ४७ है। तथा ऐसे प्रकार से सुसम्बद्ध हैं कि इच्छा और आवश्यकयानुसार सब प्रकार के स्वरूप (विभक्तियाँ) भी काम मे आते है। यह वर्णमाला भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे फैल गई है और आवश्यकतानुसार इसकी अनेक शाखा प्रशाखायें हो गई हैं। इस कारण शब्दो के उच्चारण मे कुछ परिवर्त्तन भी हो गया है परन्तु अक्षरो के स्वरूप कुछ भी नही बदले हैं। मध्य भारत मे पवित्रता के विचार से भाषा का मूल स्वरूप 'प्रचलित है। यहाँ का उच्चारण, देवताओ की भाषा

के समान, मधुर और ग्राह्य है; उच्चारण बहुत शुद्ध और स्पष्ट होता है तथा सब मनुष्यो के लिए उपयुक्त है। सीमान्त प्रदेश के लोगो ने, लम्पट स्वभाववश, उच्चारण मे फेर-फार करके कुछ अशुद्धियो को स्थान दे दिया है जिससे उनकी भाषा का स्वरूप बिगड़ जाने वाला है।

घटनाओ को साक्ष्य करने के लिए प्रत्येक प्रान्त मे अलग-अलग विभाग है जहाँ पर घटनाये लिखी जाती है। इस प्रकार जो पूर्ण इतिहास विरचित होता है उस को 'निरलोपिचा' (नीलषित) कहते है। इन पुस्तको मे अच्छी और बुरी घटनाये, आपत्ति और आकस्मिक संयोगो का विवरण रहता है।

बच्चो को बढावा और शिक्षा देने के लिए पहले द्वादश अध्यावाली (सिद्धवस्तु) पुस्तक पढाई जाती है। सात वर्ष अथवा इसमे अधिक अवस्था होने पर 'पंचविद्याओ' की शिक्षा होती है। पहली विद्या 'शब्दविद्या' कहलाती है। इसकी पुस्तको मे शब्दो के मेल (बनावट) का विवरण है और धातुओ की सूची रहती है। दूसरी विद्या 'शिल्पस्थानविद्या' है। इसकी पुस्तको मे कारीगरी और यन्त्र बनाने की विद्या और थिन तथा यङ्ग-सिद्धान्तो (ज्योतिष) और तिथिपत्र का वृत्तान्त है। तीसरी वैद्यक (चिकित्सा विद्या) है। इसमे शरीररक्षा, गुप्त मन्त्र, औषधि-सम्बन्धी धातुएं, शस्त्र-चिकित्सा और जडी-बूटियो का निदर्शन है। चौथी विद्या 'हेतुविद्या' कहलाती है। इसका नाम कर्मानुसार रक्खा गया है। सत्य और असत्य का ज्ञान, और अन्त मे शुद्ध और अशुद्ध का निदान इस विद्या-द्वारा होता है। पाँचवी विद्या 'अध्यात्म-विद्या' कहलाती है। इसमे पाचो 'यान[1]' का वर्णन, उनका कारण और फल तथा सूक्ष्म प्रभाव वर्णित है।

ब्राह्मण 'चार वेदो' की शिक्षा पाते है जिनमे से पहला 'शाव' (ऋग्वेद)। इसमे जीवन के स्थिर रखने का वर्णन और प्रकृति के नियमो का निरूपण है। द्वितीय यजुर्वेद है। इसमे यज्ञो और प्रार्थनाओ का विवरण है। तीसरा 'पिङ्ग' (साम) है, इसमे सभ्यता, फलित ज्योतिष, सैनिक व्यवस्था इत्यादि का वर्णन है। चौथा अथर्ववेद है। इसमे विज्ञान के अनेक तत्त्व और जादू टोना तथा औषधियो का वृत्तान्त है।

---

[1] पंचयान अर्थात् बौद्ध लोगो के धर्मोन्नति की कक्षायें (अ) बुद्धदेव का यान, (इ) बोधिसत्व लोगों का यान, (उ) प्रत्येक बुद्ध का यान, (ऋ) ... शिष्यो का यान, (लृ) गृहस्थ शिष्यो का ...

गुरु लोग स्वयं इनके गूढ और गुप्त तत्त्वो को अच्छी तरह अध्ययन करते हैं और उनके कठिन से कठिन अर्थो को जान लेते हैं। फिर वे उनका तात्पर्य प्रकट करते हैं और विद्यार्थियो को कठिन शब्दो के समझने मे सहायता देते है। अपने शास्त्रार्थ का नियम प्रचलित होने के कारण विद्यार्थियो को कठिन से कठिन विषय भी शीघ्र हृदयङ्गम हो जाता है जिसमे उनकी योग्यता बढती है और निराश जनो को उत्तेजना मिलती है। अपने विद्यार्थियो को विद्योपार्जन से सतुष्ट और सासारिक कार्यो की ओर झुकते हुए देखकर गुरु लोग इस बात का भी प्रयत्न कर देते हैं कि उनके शिष्य सदा प्रभावशाली बने रहे। शिक्षा के समाप्त होने और तीस वर्ष की अवस्था होने पर विद्यार्थियो का चरित्र शुद्ध और ज्ञान परिपक्व समझा जाता है। जब वे लोग किसी व्यवसाय मे लगते हैं तो सबसे प्रथम अपने गुरु का धन्यवाद सहित स्मरण करते हैं। ऐसे लोग बहुत थोडे हैं जो प्राचीन सिद्धान्तो मे दक्ष होकर, अपने को धार्मिक अध्ययन के भेंट कर देते है और साधारण आचरण के साथ ससार से अलग रहते है। सासारिक सुख इनको तुच्छ मालूम होते हैं। जिस प्रकार ये लोग ससार से घृणा करते हैं वैसे ही नामावरी की भी काक्षा नही रखते। तो भी इनका नाम दूर-दूर तक फैल जाता है और राजा लोग इनकी बडी भारी प्रतिष्ठा करते हैं, परन्तु किसी मे यह सामर्थ्य नही होती कि इनको अपने दरबार तक बुला सके। बडे आदमी इनके ज्ञान के कारण इनका बडा भारी सत्कार करते हैं और सवसाधारण इनकी प्रसिद्धि को बढाते हुए सब प्रकार की सेवा करके इनको सम्मानित करते हैं। यही कारण है कि ये लोग कष्ट की कुछ भी परवाह न करके बडी दृढता और शौक से विद्याभ्यास मे अपने को अर्पण कर देते है। और तर्क-वितर्क-द्वारा ज्ञान का अनुसधान करते हैं। यद्यपि इन लोगो के पास अपार द्रव्य होता है तो भी ये लोग अपनी जीविका (ज्ञानोपार्जन) की खोज मे इधर-उधर घूमा करते है। कुछ लोग ऐसे भी है जो विद्वान् होने पर भी निर्लज्ज होकर द्रव्य को केवल अपनी प्रसन्नता के लिए उडाया करते हैं और धर्म से विमुख रहते हैं। उनका द्रव्य उत्तम भोजन और वस्त्र ही मे खर्च होता है, कोई भी धार्मिक सिद्धान्त उनका नही होता और न विद्यावृद्धि ही की ओर उनका लक्ष्य रहता है। उनकी कुछ भी प्रतिष्ठा नही होती और बदनामी दूर-दूर तक फैल जाती है। इस तरह लोग सम्प्रदायानुसार तथागत भगवान् के सिद्धान्तो को प्राप्त करके ज्ञान-वृद्धि करते है; परन्तु तथागत भगवान् को हुए बहुत समय हो गया इस कारण उनके सिद्धान्तो मे कुछ विपर्यय हो गया है। अब चाहे सही हो या गलत, जो लोग इनका मनन किये हुए हैं, उन्ही की योग्यतानुसार इनकी पढाई होती है।

बौद्ध-संस्था, पुस्तकें, शास्त्रार्थ, शिष्य-वर्ग

भिन्न-भिन्न संस्थाओं मे नित्य विरोध रहता है और उनकी विरुद्ध वार्ता क्रोधित समुद्र की लहरो के समान बढ़ती जाती है। भिन्न-भिन्न समाज के अलग-अलग गुरु होते हैं जिनके भाव तो अलग-अलग होते हैं परन्तु फल एक ही होता है। अठारह संस्थाएँ प्रधान गिनी जाती है। हीनयान और महायान-सम्प्रदाय के लोग अलग-अलग निवास करते है। कुछ ऐसे लोग है जो चुपचाप विचार में मग्न रहते हैं और चलते, बैठते, खड़े होते हर समय अध्यात्म और ज्ञान के प्राप्त करने में लगे रहते हैं, विपरीत इसके, कुछ लोग इनसे भिन्न हैं जो अपने धर्म के लिए बखेडा उठाया करते हैं। उनकी जाति में बहुत से भेद फैलाने वाले नियम हैं जिनके नाम का निदर्शन करना हम नही चाहते।

विनय, उपदेश और सूत्र समानरूप से बौद्ध-पुस्तको मे है। जो इन पुस्तको की एक श्रेणी को पूर्णरूप से बतला सकता है वह 'कर्मदान' के अधिकार से मुक्त हो जाता है। यदि वह दो श्रेणी बतला सकता है तो सुसज्जित ऊपरी बैठक प्राप्त करता है। जो तीन श्रेणी पढ़ा सकता है उसको विविध प्रकार के भृत्य सेवा के लिए मिलते है। जो चार श्रेणी पढ़ा सकता है 'उपासक' सेवा के लिए मिलते हैं। जो पाँच श्रेणी की पुस्तके पढा सकता है उसको गजरथ सवारी के लिए मिलता है। जो छ श्रेणी की पुस्तके पढ़ा सकता है उसके लिए रक्षक नियम होते हैं। जब किसी विद्वान् की प्रसिद्धि अधिक फैल जाती है तब वह समय-समय पर शास्त्रार्थ के लिए लोगो को एकत्रित करता है और शास्त्रार्थ करने वालो की बुरी भली बुद्धि की परख करता है तथा उनके भले-बुरे सिद्धान्तो का विवेचन करके योग्य की प्रशंसा और अयोग्य की निन्दा करता है। सभा का यदि कोई व्यक्ति सभ्य भाषा, सूक्ष्मभाव, गूढ बुद्धिमत्ता और तर्कशास्त्र मे पारङ्गतता प्रदर्शित करता है तो वह बहुमूल्य आभूषणो से भूषित हाथी पर चढा कर बडे भारी समूह के साथ सघाराम के फाटक तक पहुँचाया जाता है। विपरीत इसके यदि कोई व्यक्ति पराजित हो जाता है, या हीन और भद्दे वाक्य प्रयोग करता है, अथवा यदि वह तर्कशास्त्र के नियम को भंग करता है और उसी मुताबिक वादविवाद करता है, तो लोग उसके मुख को लाल और सफेद रंगो मे रँग देते है और उसके शरीर मे कीचड़ और धूर लेस कर सुनसान स्थान या खंदक मे भेज देते हैं। योग्य और अयोग्य तथा बुद्धिमान् और मूर्ख मे इस तरह भेद किया जाता है।

सुखो का संपादन करना सासारिक जीवन से सम्बन्ध रखता है और ज्ञान का साधन करना धार्मिक जीवन से। धार्मिक जीवन से सांसारिक जीवन में लौट आना दोष समझा जाता है। जो शिष्य धर्म को त्याग करता है वह जन-समाज में निन्दित

होता है। थोडे से भी अपराध पर फटकार होती है अथवा कुछ दिन के लिए निकाल दिया जाता है। बडे अपराध के लिए देशनिकाला होता है। जो लोग इस तरह जीवन भर के लिए निकाल दिये जाते है वे अन्य स्थानो पर जाकर अपने निवास का प्रवन्ध करते है और जब उनको कही ठिकाना नही मिलता तब सडको पर इधर-उधर घूमा करते हैं अथवा कभी-कभी अपने प्राचीन व्यवसाय को करने लगते है (अर्थात् गृहस्थाश्रम मे लौट जाते है।)

जातिविभेद और विवाह

जातियाँ चार है—प्रथम—ब्राह्मण, शुद्ध आचरण वाले पुरुष हैं। ये लोग अपनी रक्षा धर्म के बल से करते हैं, पवित्र जीवन रखते हैं और अत्यन्त शुद्ध सिद्धान्तो को मनन करने वाले है। दूसरे—क्षत्री, राजवंशी है। सैकडो वर्षो से ये राज्याधिकारी चले आये हैं। ये धार्मिक और दयालु है। तीसरे—वैश्य, व्यापारी जाति के हैं। ये लोग वाणिज्य मे लगे रहते है तथा देश और विदेश मे व्यापार करके लाभ उठाया करते है। चौथे—शूद्र, कृषक जाति के है। यह जाति भूमि के जोतने खोदने आदि मे परिश्रम करती है। इन चारो श्रेणियो के लोगो की जाति-सम्बन्धी ऊँचाई निचाई का निश्चय इनके स्थान से होता है। जब ये लोग विवाह-सम्बन्ध करते हैं तब इनकी नवीन नातेदारी के हिसाब से ऊँचाई और निचाई का निर्णय किया जाता है। ये अपने नातेदारो से इस प्रकार का विवाह-सम्बन्ध नही करते जो मूर्खता का ज्ञापक हो। कोई स्त्री जिसका एक बार विवाह हो चुका हो दूसरा पति कदापि नही कर सकती। इसके अतिरिक्त बहुत सी दूसरे प्रकार की भी जातियाँ है जिनके लोग अपनी आवश्यकतानुसार असम्बद्ध विवाह भी कर लेते है। इनका विस्तृत वर्णन करना कठिन है।

राज-वंश, सेना और हथियार

राज्याधिकार क्षत्रिय जाति के लिए नियत है जिसने कि समय-समय पर छीनाझपटी करके और खून बहा के अपने को बलशाली बना लिया है। यह अलग जाति है और प्रतिष्ठित समझी जाती है। वीर पुरुषो में से सेनापति छाँटे जाते है और वंश-परम्परा से यही व्यवसाय करते रहने के कारण ये लोग बहुत शीघ्र युद्धकार्य मे निपुण हो जाते हैं। शान्ति के समय ये लोग महल के चारो ओर किले मे रहते हैं, परन्तु जब चढाई पर जाना होता है तब रक्षक की भाँति सेना के आगे-आगे चलते हैं। सेना के चार विभाग है—पैदल, सवार, रथी और हाथी पुष्ट कवच से ढके और सूँडो मे तेज भाले लिये रहते हैं। रथी आज्ञा देता है उस समय दो सारथि दाहिने और बायें रथ

को हाँकते हैं और चार घोड़े छाती का बल देकर रथ को खीचते है। सवारों का अधिपति रथ मे बैठता है उसके चारो ओर रक्षको की पंक्ति रथ के पहियो से सटी हुई चलती है और सवार लोग आगे बढ़ कर हमले को रोकते है। यदि हार होने का लक्षण मालूम होता है तो इधर-उधर मौके से पंक्ति जमा लेते है। पैदल सेना शीघ्रता से बढकर बचाव का प्रयत्न करती है। ये लोग अपने साहस और बल के लिए छटे हुए होते है, तथा लम्बी-लम्बी बरछियाँ और बडी-बड़ी ढाले लिये रहते है। कभी-कभी ये खड्ग लेकर बडी वीरता से आगे बढते हैं। इनके सम्पूर्ण शस्त्र पैने और नुकीले होते है जिनमे से कुछ के ये नाम है—भाला, ढाल, धनुष, तीर, तलवार, खंजर, फरसा, बल्लम, गँड़ासा, लम्बी बरछी और अनेक प्रकार के कमन्द। मुद्दतो से यही शस्त्र काम में लाये जाते हैं।

चाल-चलन, क़ानून, मुक़द्मा

साधारण लोग यद्यपि स्वभावत. छोटे दिल के होते है परन्तु बहुत ही सच्चे और आदरणीय व्यक्ति है। देन-लेन मे छलरहित और राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी न्याय को ध्यान मे रखने वाले तथा परिणामदर्शी होते हैं। परलोक-सम्बन्धी यंत्रणा का इनको बहुत भय रहता है इस कारण वर्तमान सांसारिक वस्तुओ को तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। इनका व्यवहार धोखेबाजी और कपट का नही है बल्कि ये अपनी शपथ और प्रतिज्ञा के पाबन्द हैं। जिस प्रकार इन लोगो के लिए राज्य-प्रबन्ध अत्यन्त शुद्ध है वैसे ही इनका व्यवहार भी सुशील और प्रिय है। अपराधी अथवा विद्रोही बहुत थोड़े होते हैं, सो भी विशेष अवसर पर। जब धर्मशास्त्र का उल्लंघन किया जाता है अथवा शासक के अधिकार को भंग करने का प्रयत्न किया जाता है तब मामले की अच्छी तरह छानबीन होती है और अपराधी को कारागार होता है। शारीरिक दड की व्यवस्था नही है, दोषी केवल कारागार मे छोड दिये जाते हैं फिर चाहे मरे, चाहे जीवित रहें; वे जन-समाज से सम्बन्ध-रहित हो जाते है। जिस समय स्वामी अथवा न्याय का स्वत्व भंग किया जाता है, अथवा जब कोई व्यक्ति स्वामिभक्ति अथवा संततिस्नेह को परित्याग करता है, उस समय उसका नाक या कान, अथवा उसका हाथ या पैर काट लिया जाता है, अथवा देशनिकाला होता है, या वनवास का दंड दिया जाता है। इनके अतिरिक्त दूसरे अपराधो मे थोडे से धन का दड दिया जाता है। अपराध की जाँच करते समय लाठी या छडी से काम नही लिया जाता। यदि अपराधी, पूछने पर साफ-साफ बतला देता है तो दंड अपराध के अनुसार दिया जाता है, परन्तु यदि वह अपने अपराध से हठपूर्वक इनकार करता है, अथवा विरोधपूर्वक अपने बचाने का प्रयत्न करता है तो

वास्तविक सत्य की जाँच के लिए, यदि दंड देना आवश्यक होता है, चार प्रकार की कठिन परीक्षायें काम मे लाई जाती हैं। (१) जल-द्वारा, (२) अग्नि-द्वारा, (३) तुला-द्वारा, और (४) विष-द्वारा।

जल-द्वारा परीक्षा के लिए अपराधी पत्थर-सहित एक बोरे मे बंद किया जाता है और गहरे जल मे छोड दिया जाता है और इस तरह उसके अपराधी और निरपराधी होने की जाँच की जाती है। यदि आदमी डूब जाता है और पत्थर तैरता रहता है तो वह अपराधी समझा जाता है, परन्तु यदि आदमी तैरता है और पत्थर डूबता है तो वह निरपराधी माना जाता है।

दूसरी परीक्षा अग्नि-द्वारा—एक लोहे का तख्ता गरम किया जाता है और उस पर अपराधी को बैठाया जाता है, या उस पर उसका पाँव रखवाया जाता है, अथवा हाथो पर उठवाया जाता है, यहाँ तक कि, जीभ मे भी चटवाया जाता है। यदि छाला पड जाता है तो वह अपराधी है, और यदि छाला न पडे तो निरपराधी समझा जाता है। कमजोर और भयभीत पुरुष, जो ऐसी कठिन परीक्षा नही सहन कर सकते एक फूल की कली लेकर आग मे फेकते हैं, यदि कली खिल जावे तो वह निरपराधी और यदि जल उठे तो अपराधी है।

तुला-द्वारा परीक्षा यह है—आदमी और पत्थर एक शुद्ध तराजू मे चढाये जाते हैं। और फिर हलकेपन और भारीपन से परीक्षा होती है। यदि पुरुष निर्दोष है तो उसका पलडा नीचा हो जाता है और पत्थर उठ जाता है, और यदि दोषी है तो पत्थर नीचे होता है और आदमी ऊपर।

बिष-द्वारा परीक्षा इस भाँति होती है—एक मेढा मँगाया जाता है और उसकी दाहिनी जाँघ मे घाव किया जाता है, फिर सब प्रकार के विष अपराधी के भोज्य पदार्थ के कुछ भाग मे मिला कर (पशु के) जाँघ वाले घाव पर लगाते हैं। यदि पुरुष अपराधी है तब तो विष का प्रभाव देख पडता है और पशु मर जाता है, अन्यथा विष का कुछ प्रभाव नही होता।

इन्ही चार प्रकार की परीक्षाओ-द्वारा अपराध का निश्चय किया जाता है।

सभ्यता

बाहरी आदर-सत्कार और आवभगत प्रदर्शित करने के नौ तरीके हैं—

(१) उत्तम शब्दो मे प्रार्थना करना।

(२) मस्तक झुकाना।

(३) हाथ उठाकर सिर झुकाना ।
(४) हाथ जोड कर वन्दना करना ।
(५) घुटनो के बल झुकना ।
(६) दंडवत् करना ।
(७) हाथो और घुटनो के द्वारा दंडवत् करना ।
(८) पच-परिक्रमा करके भूमि को छूना ।
(९) शरीर के पाँचो अवयवो को भूमि पर फैला देना ।

पृथ्वी पर दंडवत् करके फिर एक घुटनो के बल होना और उसके बाद प्रशंसा के शब्दों मे स्तुति करना ऊपर लिखे नवो प्रकारो मे विशेष बढ़ा-चढा सत्कार समझा जाता है। दूर से केवल झुक कर प्रणाम करना काफी है, परन्तु निकट जाने से पैरो को चूमना और घुटनो को सहराना रीति के अनुकूल समझा जाता है।

जब श्रेष्ठ पुरुष किसी को कुछ आज्ञा देता है तो आज्ञापित व्यक्ति अपने कुरते का दामन फैला कर दंडवत् करता है। वह श्रेष्ठ अथवा महात्मा पुरुष, जिसके प्रति इस प्रकार सम्मान दिखाया जाता है, बहुत मधुर शब्दो मे, उसके सिर पर हाथ रख कर या उसकी पीठ ठोक कर, उत्तम शिक्षादायक वचनो के सहित उसको आशीर्वाद देता है, अथवा अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिए मन्द मुसकान के सहित दो चार शब्द कह देता है। जब किसी श्रमण अथवा धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले पुरुष के प्रति इस प्रकार का आदर प्रकट किया जाता है तो वह केवल आशीर्वाद से उत्तर देता है। सम्मान प्रदर्शित करने के लिए लोग केवल दंडवत् ही नही करते बल्कि सम्मानित व्यक्ति की परिक्रमा भी करते हैं—कभी एक परिक्रमा की जाती है और कभी तीन परिक्रमायें। यदि बहुत दिनो की अभिलाषा किसी के हृदय मे होती है तो इच्छानु-रूप सम्मान भी बढिया होता है।

औषधियाँ और अन्तिम संस्कार आदि

प्रत्येक पुरुष जो रोगग्रसित होता है सात दिन तक उपवास करता है। इस बीच में बहुत से अच्छे हो जाते हैं। परन्तु यदि रोग नही जाता है तो औषधि लेते हैं। इन औषधियो के स्वरूप और नाम भिन्न होते है। और वैद्य भी परीक्षा और इलाज के विचार से अलग-अलग है। किसी रोग मे कोई वैद्य विशेषज्ञ होता है और किसी मे कोई।

जब कोई पुरुष कालवंश होता है तो सम्बन्धी लोग एक साथ जोर-जोर से

चिल्लाते और रोते है, अपने कपडो को फाड डालते हैं और वाल बनवा डालते हैं, तथा अपने सिर और छाती को पीट डालते हैं। न तो शोकसूचक वस्त्र धारण करने का ही कोई नियम है और न शोक-काल की कोई अवधि ही नियत है। शव का अन्तिम संस्कार तीन प्रकार से होता है, (१) अग्निदाह—लकडी से एक चिता बनाई जाती है और शव भस्म कर दिया जाता है, (२) जल-द्वारा बहते हुए गहरे पानी मे मृतक शरीर को डुबो देते हैं, (३) परित्याग– शरीर को घने जङ्गल में छोड देते है और उसको जङ्गली जीव भक्षण कर जाते है। जब राजा मृत्यु को प्राप्त होता है तब उसका उत्तराधिकारी पहले नियत होता है, ताकि वह मृतक-संस्कार और उसके पश्चात् के कार्यों को करे। राजा को जीवित दशा मे, उसके कार्यानुरूप, जो कुछ पदवियाँ मिली होती हैं वह उसके मरने पर जाती रहती है।

जिस मकान मे मृत्यु होती है उसमे भोजन नही किया जाता, परन्तु क्रियाकर्म समाप्त हो जाने पर फिर सब काम जैसा का तैसा चलने लगता है। वार्षिक करने का रिवाज नही है। जो लोग मृतक के दाह आदि कर्मो मे योग देते है वे अशुद्ध समझे जाते है, और उनको नगर के बाहर स्नान करके अपने मकानो मे जाना होता है।

बूढे और बलहीन पुरुष जिनका मृत्यु-काल निकट होता है और जो कठिन रोग से ग्रस्त होते हैं। तथा जो अपने अन्तिम दिनो को अधिक बढाने से डरते हैं और जीधन के कष्टो से बचना चाहते है, अथवा जो ससार के जीवन-सम्बन्धी कष्ट-दायक कार्यो से बचने की इच्छा करते है, वे लोग अपने मित्रो और सम्बन्धियो के हाथो से उत्तम भोजन ग्रहण करके, गाने बजाने के समारोह-सहित एक भाव मे बैठते है, और नाव को गंगाजी के बीच धार मे ले जाकर डूब मरते है। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से देवताओ मे जन्म होता है। इनमे से मुश्किल से एकाध ही नदी के किनारे जीवित देखा गया है।

मृतक के वास्ते रोने और शोक करने की आज्ञा संन्यासियो को नही है। जब किसी संन्यासी के माता-पिता का शरीर-त्याग होता है तब उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुए वह प्रार्थना करता है, और उनके प्राचीन उपकारो को स्मरण करके बहुत तत्परता के साथ शुश्रूषा करता है। संन्यासियो का विश्वास है कि ऐसा करने से उनके धार्मिक ज्ञान मे गुप्त रूप मे वृद्धि होती है।

मुल्की प्रबन्ध और मालगुजारी आदि

जिस प्रकार राज्य-प्रबन्ध के नियम इत्यादि कोमल है उसी प्रकार प्रबन्धकर्ता भी साधु है। न तो मनुष्यो की सूची बनाई जाती है और न लोगो से बलपूर्वक (बेगार)

काम लिया जाता है। राज्य की भूमि चार भागो में विभक्त है। पहले भाग से राज्य-सम्बन्धी काम और धार्मिक उत्सव (यज्ञादिक) होते हैं, दूसरे से राज्य-मंत्रा तथा अन्य कर्मचारियो की धन-सम्बन्धी आवश्यकताये पूर्ण होती है, तीसरे से गुणी आदमियों को पारितोषिक दिया जाता है, और चौथे से धार्मिक पुरुषो को दान दिया जाता है जिससे कि ज्ञान की खेती होती है। इन कामो के लिए लोगों से कर भी थोडा लिया जाता है और उनमे शारीरिक सेवा भी, यदि आवश्यक हो तो, कम ही ली जाती है। प्रत्येक व्यक्ति की गृहस्थी सब प्रकार से सुरक्षित रहती है, और सब लोग भूमि खोद कर अपना भरणपोषण करते है। राज्य के कृषक अपनी पैदावार का छठा भाग सहायता-स्वरूप देते है। व्यापारी जो देश-विदेश घूम फिर कर व्यवसाय करते हैं उनके लिए नदियों के घाट और सडकें थोड़े महसूल पर खुली हुई है। जब कोई सर्वसाधारण के उपयोग का काम होता है और उसके लिए आवश्यकता होती है तब मजदूर बुलाये जाते है और मजदूरी दी जाती है। काम के मुताबिक मजदूरी बहुत वाजिबी दी जाती है।

सेना सीमा की रक्षा करती है तथा विद्रोही को दण्ड देने के लिए भेजी जाती है। सेना के लोग रात्रि मे किले की भी निगरानी करते हैं। कार्य की आवश्यकतानुसार सैनिक भरती किये जाते है। उनका वेतन नियत हो जाता है और गुप्तरीति से नही बल्कि प्रकटरूप से नाम लिखा जाता है। शासक, मन्त्री, दडनायक तथा दूसरे कर्मचारी अपने भरण-पोषण के लिए थोड़ी-थोडी भूमि पाये हुए है।

पौधे और वृक्ष, खेती, खाना-पीना और रसोई

जल-वायु और भूमि का गुण स्थान के अनुसार जुदा-जुदा है और पैदावार भी उसी के अनुसार जुदी-जुदी है। फूल और पौधे, फल, और वृक्ष, और अनेक के तथा विविध नामो वाले है—जैसे अमल, आम्ल, मधूक, भद्र, कपित्थ, आमला, तिन्दुक, उदुम्बर, मोच, नारिकेल, पनस इत्यादि। सब प्रकार के फलो की गणना करना कठिन है; हमने थोडे से उन फलो का नाम लिख दिया जो लोगो को अधिक प्रिय है। छुहारा, अखरोट, लुकाट और परमिम्मन (Persimmon) नही होते। नासपाती, बेर, शफतालू, खुब्बानी, अंगूर इत्यादि इस देश में कश्मीर से लाये गये है और प्रत्येक स्थान पर उत्पन्न होते है। अनार और नारंगी भी सब जगह होती है। खेती करने वाले लोग भूमि जोतते और ऋतु के अनुकूल वृक्षारोपण करते है, और अपनी मेहनत के बाद कुछ देर विश्राम करते है। भूमि-सम्बन्धी उपज में चावल और अन्यान्य अन्न बहुतायत से होतें है। खाने योग्य जडी और पौधो मे अदरख, सरसो या राई, खरबूजा या

तरबूज, कद्दू, हिग्रनटू (Heu -to) इत्यादि हैं; लहसुन और पियाज थोडा होता है और बहुत कम लोग खाते हैं। यदि कोई इनको काम मे लावे तो नगर के बाहर निकाल दिया जाता है। सबसे उपयोगी भोज्य पदार्थ दूध, मक्खन और मलाई है। कोमल शकर (गुड या राब), मिश्री, सरसो के तेल और अन्न से बने हुए अनेक प्रकार के पदार्थ भोजन मे काम आते है। मछली, भेड और हरिण इत्यादि का मास ताजा बनाकर खाया जाता है। बैल, गवा, हाथी, घोडा, सुअर, कुत्ता, लोमडी, भेडिया, शेर, बन्दर और सब प्रकार के बाल वाले जीवो का मास खाना निषेध किया गया है। जो लोग इन पशुओ को खाते हैं उनमे घृणा की जाती है और देश भर मे उनकी अप्रतिष्ठा होती है, वे लोग नगर के बाहर रहते हैं और जनसमुदाय मे कम दिखाई पडते हैं। मदिरा और आसव इत्यादि अनेक प्रकार के होते है। अगूर और गन्ने का रस क्षत्रिय लोग पीते है, वैश्य लोग तेज जायकेदार शराब पीते है, ब्राह्मण और श्रमण अंगूर और गन्ने से बना हुआ एक प्रकार का शरबत पीते हैं जो कि शराब की भाँति नही होता। साधारण लोगो और वर्णशंकर तथा नीच जाति मे कोई भेद नही होता, केवल बरतन जो काम मे आते हैं उनकी कीमत और धातु मे फर्क होता है। गृहस्थी के काम लायक किसी वस्तु की कमी नही है। कढाई और कलछी के होते हुए भी ये लोग वाष्प से चावल पकाना नही जानते। इन लोगो के पास बहुत से बरतन मिट्टी के बने हुए होते है। ये लोग लाल ताँबे के पात्र बहुत कम काम मे लाते हैं और एक ही पात्र मे सब प्रकार का खाना एक मे मिला कर, हाथ से उठा-उठा कर खाते हैं। इन लोगो के पास चम्मच या प्याले आदि नही हैं। परन्तु जब बीमार होते है तब ताँबे के प्याले मे पानी पीते हैं।

वाणिज्य

सोना, चाँदी, ताँबा और अम्बर आदि देश की प्राकृतिक उपज है। इनके अतिरिक्त बहुत से बहुमूल्य रत्न तथा अनेक नामो के कीमती पत्थर होते हैं जो समुद्री टापुओ से लाये जाते हैं और जिनको लोग दूसरी वस्तुओ मे बदल लेते है। वास्तव में उनका व्यापार अदला-बदली का ही है, क्योंकि उनके यहाँ सोने-चाँदी के सिक्को का प्रचार नही है।

भारत की सीमाएँ और निकटवर्त्ती प्रदेशो का पूरे तौर पर वर्णन हो चुका; जल-वायु और भूमि का भी भेद सक्षेप मे दिखाया गया। इन सब का वर्णन विस्तृत होने पर भी थोड़े मे दिखाया गया है, तथा अनेक देशो का हाल लिखते समय अनेक प्रकार की रीतियो और राज्य-सम्बन्धी इत्यादि का वर्णन किया गया है।

लैनयो (लमगान[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग १००० ली है। इसके उत्तर में बरफीला पहाड़ और शेष तीन ओर स्याहकोह पहाड है। राजधानी का क्षेत्रफल लगभग १० ली है। कई सौ वर्ष मे यहाँ का राज्यवंश नष्ट हो चुका है। बड़े-बडे सरदार प्रभावशाली बनने के लिए लडते रहते है और किसी का बडप्पन स्वीकार नही करते। थोडे दिनो से यह देश 'कपिसा' के अधीन हुआ है। इस देश मे चावल और ईख की पैदावार बहुत उत्तम होती है। वृक्षो में यद्यपि बहुत फल होते है परन्तु पकते नही। जलवायु निकृष्ट है, पाला अधिक गिरता है, और बर्फ कम। प्रायः सब प्रकार की वस्तुओं की अधिकता होने से लोग सन्तुष्ट हैं। गाने-वजाने की अच्छी चर्चा है परन्तु स्वभावत. लोग अविश्वसनीय और उठाईगीर है; इनकी रुचि एक दूसरे से छीना-झपटी करने की रहती है; ये अपने से अधिक किसी को कभी नही समझते। डीलडौल तो छोटा होता है परन्तु तेज और कामकाजी वडे होते है। ये लोग अधिकतर सफेद सन का कपड़ा पहनते है। जो कि अच्छी तरह पर सिला हुआ होता है। लगभग १० संघाराम और थोडे से अनुयायी है। अधिकतर लोग महायान-सम्प्रदाय के मानने वाले है। अनेक देवताओ के भी बहुतेरे मन्दिर है। कुछ अन्यमतावलम्बी भी है। इस स्थान मे दक्षिण-पूर्व १०० ली जाने पर एक पहाड और एक बड़ी नदी पार करके 'नाकइ लोहो' देश मे आये।

नाकइलोहो (नगरहार[2])

यह देश लगभग ६०० ली पूर्व से पश्चिम और २५० या २६० ली उत्तर से

---

[1] लेन-पो वर्तमान काल मे लमगान निश्चय किया जाता है। यह काबुल नदी के किनारे पर है तथा इसके पश्चिम और पूर्व मे अलिङ्गर और कुनर नदियाँ है। (यह कनिघम साहब की राय है।) इस भाग का सस्कृत नाम लम्पक है; लम्पाक लोग मुरण्ड भी कहलाते ह। (महाभारत)।

[2] नगरहार नगर के प्राचीन स्थान (जलालाबाद की प्राचीन राजधानी) को सिम्पसन साहब ने भलीभाँति खोज निकाला है। आप लिखते हैं कि सुर्खर और काबुल नदियो के संगम से जहाँ पर कोण बन गया है वही पर इन नदियो के दक्षिणी किनारे पर नगरहार नगर था। इस स्थान की दूरी और दिशा इत्यादि लमगान मे ठीक-ठीक मिलती है। पहाड जो यात्री को पार करना पडा था वह स्याहकोह होगा, और नदी काबुल नदी होगी। संस्कृत नाम (नगरहार) एक लेख मे लिखा हुआ पाया गया है; जिसको मेजर किट्टो ने विहार-प्रान्त के गोसावा स्थान के डीह से खोज निकाला है। हुइली ने इसको दीपाङ्कर नगर लिखा है।

दक्षिण तक है। इसके चारो ओर ऊंचे-ऊँचे करारे और प्राकृतिक सीमाएँ है। राजधानी का क्षेत्रफल लगभग २० ली है। इसका कोई प्रधान राजा नही है; शासक और उसके निम्न कर्मचारी कपसिा से आते है। फल-फूल और अन्न इत्यादि देश मे उत्तम होता है। जल-वायु गर्म-तर है।

लोग सीधे सच्चे हैं, तथा इनका स्वभाव उत्सुकता और साहसपूर्ण है। ये लोग द्रव्य को तुच्छ और विद्या को प्रेम-दृष्टि मे देखते हैं, कुछ को छोड कर, जो दूसरे सिद्धान्तो पर विश्वास करते है, और सब लोग बौद्ध-धर्म के माननेवाले है। सघाराम बहुत हैं परन्तु सन्यासी कम है। स्तूप भग्न और उजडी अवस्था मे है। पाँच देवमन्दिर है जिनमे लगभग १०० पुजारी हैं।

नगर के पूर्व ३ ली की दूरी पर ३०० फीट ऊँचा, अशोक राजा का बनवाया हुआ, एक स्तूप है। इसकी बनावट बडी अद्भुत है, और पत्थरो पर उत्तम कारीगरी की गई है। इस स्थान पर बोधिसत्व अवस्था मे शाक्य से दीपाङ्कर[1] बुद्ध की भेंट हुई थी और मृगछाला बिछाकर तथा अपने खुले हुए बालो मे भूमि को आच्छादित करके उन्होने भविष्यवाणी को सुना था। यद्यपि कल्पान्तर हो जाने से संसार मे उलट-फेर हो गया है परन्तु इस बात का चिन्ह अब तक वर्तमान है। धार्मिक दिनो मे आकाश से फूलो की वृष्टि होती है, जिससे लोगो के हृदय मे धर्म की जागृति होती है और लोग धार्मिक पूजा इत्यादि का समारोह करते है। इस स्थान के पश्चिम मे एक सघाराम कुछ पुजारियो सहित है। इसके दक्षिण मे छोटा सा एक स्तूप है। यह वही स्थान पर बोधिसत्व ने भूमि को बालो से आच्छादित किया था। अशोक राजा ने इस स्तूप को सडक से कुछ हटा कर बनवाया है।

नगर के भीतर एक बडे स्तूप की टूटी फूटी नीव है। कहा जाता है कि यह स्तूप जिसमे महात्मा बुद्ध का दाँत था, वह बहुत सुन्दर और ऊँचा था। परन्तु अब दाँत नही है, केवल प्राचीन नीव टूटी फूटी अवस्था मे है। इसके निकट ही एक स्तूप ३० फीट ऊंचा है। इसका वास्तविक वृत्तान्त किसी को मालूम नही, केवल यह कहा जाता है कि यह स्वर्ग से गिर कर स्वयं यहाँ पर खडा हो गया। दैवी विलक्षणता के अतिरिक्त इसमे मनुष्यकृत कारीगरी का पता नही लगता। नगर के दक्षिण-पश्चिम १० ली पर

---

[1] दीपाङ्कर बुद्ध और सुमेध बोधिसत्व की भेंट का वर्णन, बौद्ध-पुस्तको और शिलालेखो मे बहुधा आया है। इस वृत्तान्त का एक चित्र लाहोर के अजायबखाने मे और दूसरा चित्र कन्हेरी की गुफा मे वर्तमान है। फाहियान ने भी इसका वृत्तान्त लिखा है।

एक स्तूप है। इस स्थान पर तथागत भगवान् लोगो को शिक्षा देने के लिए, मध्य भारत से वायुद्वारा गमन करते हुए उतरे थे। लोगो ने भक्ति के आवेश मे इसको बनवाया है। पूर्व दिशा मे थोडी दूर पर एक स्तूप है। इस स्थान पर बोधिसत्व दीपाकुर से मिला था और बुद्ध ने फूल खरीदे थे।[1]

नगर से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग २० ली जाकर हम एक छोटे पहाड़ी टीले पर पहुँचे जहाँ पर एक संघाराम है, जिसमे एक ऊँचा कमरा और एक दुमंजिला बुर्ज है जो कि पत्थरो के ढोको से बनाया गया है। इस समय यह सुनसान और उजाड है, कोई भी पुरोहित इसमे नही है। बीच मे २०० फीट ऊंचा, अशोक राजा का बनवाया हुआ एक स्तूप है। इस सघाराम के दक्षिण-पश्चिम मे एक ऊँची पहाडी मे एक गहरी धारा चलती है और अपने जल को उछलते हुए झरनो मे फला देती है। पहाड के पार्श्व दीवार के समान है। इसकी पूर्व दिशा मे एक बडी और गहरी गुफा है जिसमे 'नाग-गोपाल' रहा करता था। गुफा अँधेरी है, और इसमे जाने का द्वार तङ्ग है, तथा ढालू चट्टान होने के कारण पानी के कई नाले इसमे बहते है। प्राचीन काल मे इस स्थान पर महात्मा बुद्ध की परछाईं ऐसी स्पष्ट दिखाई पडती थी मानो यथार्थ ही हो। इधर लोगो ने इसको अधिक नही देखा है; जो कुछ दिखलाई भी पडता है वह केवल अस्पष्ट स्वरूप है, परन्तु जो विशेष विश्वास से प्रार्थना करता है उसको विचित्रता देख पडती है और परछाईं को थोड़ी देर के लिए स्पष्ट रूप मे देख लेता है। प्राचीन काल मे जब भगवान् तथागत संसार मे थे, यह नाग एक ग्वाला था जो राजा को दूध और मलाई पहुचाया करता था। एक समय इस काम में इससे भूल हो जाने पर बडी डाट-डपट हुई जिससे यह क्रुध होकर भविष्यवाणी वाले स्तूप के निकट गया और बहुत से फूल चढा कर यह प्रार्थना करने लगा कि 'मैं एक बलवान् नाग का तन धारण करके इस राजा को मार डालूँ और उसके देश का सत्यानाश कर दूँ'। फिर वह एक पहाड़ की चट्टान पर से कूद कर मर गया और एक बली नाग का तन धारण करके इस गुफा मे रहने लगा। इसके उपरान्त उसने अपने दुष्ट विचार की पूर्ति की इच्छा की। ज्योही इसके चित्त मे यह धारणा हुई तथागत भगवान् इसके विचार को समझ गये और नाग के निकट पहुँचे हुए देश तथा जनसमुदाय के लिए

[1] बुद्ध ने एक लड़की से फूल खरीदे थे जिसने इस प्रतिज्ञा पर फूल बेचना स्वीकार किया था कि दूसरे जन्म मे वह उसकी स्त्री हो। दीपाङ्कर बुद्ध की कथा में इसका वृत्तान्त देखो इस कथा की सूचक एक मूर्ति लाहोर मे है जिसके सिर पर फूलो का छत्र लगा हुआ है।

दयार्द्र होकर, अपने आध्यात्मिक बल से मध्य भारत से चल कर नाग के पास पहुँच गये। भगवान् तथागत का दर्शन करते ही उस दुष्ट नाग का कुत्सित विचार टल गया और सत्यधर्म की वन्दना करते हुए भवगान् की आज्ञा को उसने शिरोधार्य किया। उसने तथागत से यह भी प्रार्थना की कि आप इस गुफा मे सदा निवास कीजिए कि जिससे आपके पुनीत स्वरूप की भेट-पूजा मैं सदा कर सकूँ। तथागत ने उत्तर दिया कि जब मैं मरने के निकट हूँगा अपनी परछाइँ तेरे पास छोड दूँगा, और अपने पाँच अरहट तेरी भेट लेने के लिए सदा भेजा करूँगा। सत्यधर्म के नाश हो जाने पर भी तेरी यह सेवा जारी रहेगी[1]। यदि तेरा हृदय कभी दूषित हो तो तुझको मेरी परछाइँ की ओर अवश्य देखना चाहिये क्योकि इसके प्रेम और साधुता के गुण मे तेरी दुष्ट धारणा दूर हो जायगी। इस भद्र कल्प मे[2] जितने बुद्ध होगे वे सब दयावश होकर अपनी-अपनी परछाइँ तेरे सुपुर्द करेंगे। गुफा के बाहर दो चौकोर पत्थर हैं जिनमे से एक पर महात्मा बुद्ध का चक्र-सहित चरण-चिन्ह है, जो समय समय पर चमकने लगता है। गुफा के दोनो ओर कुछ पत्थर की कोठरियाँ हैं जिनमे तथागत के पुनीत शिष्य ध्यान धारणा किया करते थे। गुफा के पश्चिमोत्तर कोने पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ बुद्धदेव तप करते हुए उठते-बैठते रहे थे। इसके अतिरिक्त एक स्तूप और है जिसमे तथागत भगवान् के बाल और नाखून की कतरन रक्खी हुई है। इसके निकट ही एक और स्तूप है। इस स्थान पर तथागत ने अपने सत्यधर्म के गुप्त सिद्धान्त 'स्कंधधातु आयतन' को प्रकट किया था। गुफा के पश्चिम मे एक बडी चट्टान है जहाँ पर तथागत ने अपने कषाय[3] वस्त्र को धोकर फैलाया था। अब भी इस स्थान पर उसकी छाप के चिन्ह दिखलाई पडते है।

नगर के दक्षिण-पूर्व, ३० ली पर, हिलो (हिदा)[4] नामक एक कस्बा है।

---

[1] सत्यधर्म की अवधि ५०० वर्ष और इसके पश्चात् प्रतिमा-पूजन-धर्म की अवधि १००० वर्ष मानी गई है।

[2] बौद्धो के अनुसार वर्तमान काल भद्रकाल कहा जाता है। जिसमे १००० बुद्ध उत्पन्न होगे।

[3] कषाय यह रङ्ग का नाम है जो कुछ पीलापन लिये हुए, अथवा ईंट के समान लाल होता है। इस रङ्ग का रंगा हुआ वस्त्र बौद्ध-सन्यासी सबसे ऊपर पहनते थे।

[4] नगरहार नगर से दक्षिण-पूर्व दिशा मे हिलो (हिद्दा) नगर लगभग ६ मील पर था। इस स्थान का वृत्तान्त फाहियान ने भी लिखा है, कि सिर की अस्थि वाले बिहार के चारो ओर चौकोर चहार-दीवारी बनी हुई है। वह यह भी लिखता है कि चाहे स्वर्ग हिल जाय और भूमि फटकर टुकडे टुकडे हो जाय परन्तु यह स्थान सदा अचल बना रहेगा।

इसका क्षेत्रफल ४ या ५ ली है। यह ऊँचाई पर बसा हुआ है और ढालू होने के कारण वहुत पुष्ट है। यहाँ फूल, जङ्गल और स्वच्छ शीशे के समान जलवाली झीलें हैं। मनुष्य सीधे, धार्मिक और सच्चे हैं। यहाँ एक दोमंजिला बुर्ज है जिसकी कड़ियों में चित्रकारी और खम्भे लाल रँगे हुए हैं। दूसरी मंजिल मे मूल्यवान् सप्तधातुओ मे वना हुआ एक स्तूप है। इसमें 'तथागत' के सिर की हड्डी, १ फुट दो इंच गोल, रक्खी हुई है जिसका रंग कुछ सफेदी लिये हुए पीला है, और वालो के कूप सुस्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। यह स्तूप के मध्य में एक कीमती डिब्वे मे बन्द रक्खी हुई है। जिनको अपने भाग्य अथवा अभाग्य के चिन्ह का हाल जानना होता है वे सुगंधित मिट्टी की टिकिया वनाकर सिर की अस्थि पर छाप देते हैं, तो जैसा होता है वैसा ही चिन्ह वन जाता है। इसकी बहुमूल्य सप्तधातुओ का एक और भी छोटा स्तूप है जिसमें तथागत भगवान् का 'उष्णीप'[1] रक्खा हुआ है। इसकी सूरत कपलपत्र के समान है। और रंग सफेदी लिये हुए पीला है, तथा यह एक बहुमूल्य डिब्वे मे सुरक्षित और बन्द है। एक और भी छोटा स्तूप सप्तधातुओ का बना हुआ है जिसमे तथागत भगवान् का आम्रफल के वरावर वड़ा और चमकदार तथा आर पार स्वच्छ नेत्रपुट (दीदा) रक्खा हुआ है। यह भी एक बहुमूल्य डिब्वे मे सुरक्षित है। तथागत भगवान् का पीले रंग का और सुन्दर रुई से वना हुआ 'संघाती' वस्त्र भी एक उत्तम सन्दूक में बन्द है। वहुत से मास और वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु यह वहुत कम विगड़ा है। तथागत भगवान् की एक लाठी जिसके छल्ले सफेद लोहे (टीन) के हैं और चन्दन की एक छड़ी एक कीमती सन्दूक मे रक्खी हुई हैं। थोड़े दिन हुए एक राजा ने, यह सुन के कि ये वस्तुएँ भगवान् तथागत की निज की हैं, जवरदस्ती इनको अपने देश मे ले जाकर महल मे रक्खा। घन्टे भर के भीतर उसने देखा कि वे सब वस्तुएँ नदारद हैं। अधिक जाँच करने से विदित हुआ कि वे अपने पूर्वस्थान को चली गईं। इन पाँचो पुनीत वस्तुओ मे कभी-कभी अद्भुत चमत्कार दिखाई पड जाता है।

कपिसा के राजा ने इन पवित्र वस्तुओ पर धूप-वत्ती और फूल इत्यादि चढ़ाने के लिए पाँच सदाचारी ब्राह्मणो को नियत कर दिया है। इन ब्राह्मणो ने अपने ध्यान-धारणा को स्थिर रखने के लिए, और यात्रियो की भीड़ें जो लगातार यहाँ दर्शन-पूजन के निमित्त आती हैं उनके प्रवन्ध के लिए कुछ भेट मुकर्रर कर रक्खी है। वह संक्षेप से यह है कि जो 'तथागत' के सिर की अस्थि के दर्शन किया चाहते हैं उनको एक सोने

[1] बौद्धो का एक चिन्ह-विशेष जो सिर पर रहा करता था। यह सिर के वालो ही का होता था।

की मुहर, और उस पर से चिन्ह जो लिया चाहते हैं उनको पाँच मुहरें देनी होती है। दूसरी वस्तुओं के लिए भी इसी तरह पर भेंट नियत है। यद्यपि भेंट बहुत अधिक है तो भी अगणित यात्री आते हैं।

दो मंजिले बुर्ज के दक्षिण-पश्चिम मे एक स्तूप है। यद्यपि यह वहुत ऊँचा और वडा नही है परन्तु अद्भुत वस्तुओ मे एक है। यदि मनुष्य इसको केवल एक उँगली से छू दे तो यह नीचे तक हिल और काँप उठता है और घंटी घटे वडे मधुर स्वर में बजने लगते हैं। यहाँ से दक्षिण-पूर्व जाकर और पहाड तथा घाटियो को पार करके लगभग ५०० ली की दूरी पर हम 'कयीनटोलो' राज्य मे आये।

कयीनटोलो (गंधार[1])

गधार राज्य १००० ली पूर्व मे पश्चिम और ८०० ली उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ है। इसकी पूर्वी हद पर सिन्धु नदी बहती है। राजधानी का नाम पोलुशपूलो (पुरुषपुर--पेशावर) है और क्षेत्रफल ४० ली है। राज्यवंश नष्ट हो गया है और यह कपिसा के शासकों-द्वारा शासित होता है। नगर और गाँव उजडे पडे हैं, कुछ ही ऐसे है जो थोडे बहुत बसे हुए है। राजमहल की भी रेढ हो गई है। उसके एक कोने मे लगभग १००० परिवार वसे हुए हैं। देश अन्नादि से भरा पूरा है तथा अनेक प्रकार के फल और फूल होते है। यहाँ ईख भी वहुत होती है जिसके रस से गुड बनाया जाता है। प्रकृति गर्म और तर है तथा वर्षा नही होती। मनुष्यो का स्वभाव दब्बू और कोमल है। साहित्य से इनको वहुत प्रेम है। अधिकतर लोग भिन्न धर्मावलम्बी है। थोडे से लोग सत्यधर्म (बौद्धधर्म) के अनुयायी है। प्राचीन काल से लेकर अब तक कितने ही शास्त्र-रचयिता भारत के इस सीमा-प्रदेश मे उत्पन्न हो चुके हैं जैसे नारायण देव, असङ्ग बोधिसत्व, वसुबन्धु बोधिसत्व,[2] धर्मत्रात, मनोहित, पार्श्व महात्मा इत्यादि। लगभग १००० संघाराम है जो सबके सब उजडी और बिगडी अवस्था मे हैं; घास फूस उगा हुआ है; और नितान्त जनशून्य हैं। स्तूप भी अधिकतर भग्नावस्था मे हैं। भिन्न-धर्मियो के मन्दिर लगभग सौ हैं जो अच्छी तरह आबाद हैं। राजधानी के भीतर पूर्वोत्तर दिशा मे एक पुराना खँडहर है; पहले इस स्थान पर एक बहुत सुन्दर बुर्ज था

---

[1] काबुल के निचले भाग का नाम गधार देश है। यह देश काबुल नदी के किनारे किनारे कुनर नदी से सिंधु नदी तक फैला हुआ है।

[2] वसुबन्धु बोधिसत्व पुरुषपुर का निवासी था।

जिसके भीतर बुद्ध-देव का भिक्षापात्र था। निर्वाण के पश्चात् बुद्धदेव का पात्र इस देश मे आया और कई सौ वर्षो तक उसका पूजन होता रहा तथा अब भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे होता हुआ फारस मे पहुंचा है।

नगर के बाहर दक्षिण-पूर्व दिशा मे ८ या ९ ली की दूरी पर एक पीपल का वृक्ष लगभग १०० फीट ऊँचा है। इसकी डालें बहुत मोटी और छाया इतनी घनी है कि प्रकाश नही पहुँचता। विगत चार बुद्ध इस वृक्ष के नीचे बैठ चुके है। इस समय भी बुद्ध की चार बैठी हुई मूर्तियो के दर्शन इस स्थान पर किये जाते है। भद्रकल्प मे शेष ९९६ बुद्ध भी इस वृक्ष के नीचे बैठेंगे। गुप्त दैवी-शक्ति इस वृक्ष की हद की रक्षा करती है और वृक्ष को नाश होने से बचाती है: 'शाक्य तथागत' ने इस वृक्ष के नीचे दक्षिण-मुख बैठकर इस प्रकार 'आनन्द' से समापण किया था—"मेरे संसार त्याग करने के चार सौ वर्ष पश्चात् कनिष्क नामक राजा इस स्थान का स्वामी होगा, वह इस स्थान से निकट ही दक्षिण की ओर एक स्तूप बनवावेगा जिसमे मेरे शरीर के माँस और हड्डी का बहुत अश होगा।" पीपल वृक्ष के दक्षिण एक स्तूप कनिष्क राजा का बनवाया हुआ है। यह राजा निर्वाण के चार सौ वर्ष पश्चात सिंहासन पर बैठा था और सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का स्वामी था। उसको सत्य और असत्य-धर्म पर विश्वास न था और इस कारण बौद्ध धर्म को हीन दृष्टि से देखता था। एक दिन वह एक दलदल वाले जंगल मे होकर जा रहा था कि एक श्वेत खरगोश उसको देख पड़ा जिसका पीछा करता हुआ वह इस स्थान तक आ पहुँचा। यहाँ आकर वह खरगोश सहसा अदृष्ट हो गया। इस स्थान पर उसने देखा कि एक छोटा सा ग्वाले का बालक कोई तीन फुट ऊँचा स्तूप बड़े श्रम से बना रहा है। राजा ने पूछा, क्या कर रहे हो?' ग्वाल-बालक ने उत्तर दिया कि "प्राचीन काल मे शाक्य बुद्ध ने अपने दैवी ज्ञान से यह भविष्यद्वाणी की थी कि 'इस उत्तम भूमि का एक राजा होगा जो एक स्तूप बनावेगा जिसमे बहुत सा भाग मेरे शरीरावशेष का होगा, महाराज! आपके पूर्वजन्म के श्रेष्ठ पुण्य ने यह बहुत उत्तम अवसर दिया है कि दैवी ज्ञानसम्पन्न प्राचीन भविष्यद्वाणी की पूर्ति हो और मनुष्योचित धर्म की प्रतिष्ठा हो तथा आपकी प्रसिद्धि हो। इस समय मैं उसी पुरानी बात की सूचना देने के लिए आया हूँ।" यह कह कर वह अन्तर्धान हो गया। राजा इस बात को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ तथा अपनी प्रशंसा करने लगा कि 'धन्य हूँ मैं, जो इतने बड़े महात्मा ने अपनी भविष्यद्वाणी मे मेरा नाम लिया।' उसी समय से उसका विश्वास दृढ़ हो गया और वह बौद्ध-धर्म का भक्त बन गया। उस छोटे से स्तूप को घेर कर उसने एक उससे ऊँचा स्तूप पत्थर का बनवाना चाहा जिसमे उसका धार्मिक विश्वास प्रकट हो जाय, परन्तु ज्यो ज्यों उसका स्तूप बनता

गया दूसरा भी उससे तीन फुट अधिक ऊँचा होता गया, यहाँ तक कि ४०० फीट तक पहुँच गया और उसकी नीव का घेरा डेढ ली हो गया। जब पाँच मंजिलें प्रत्येक १५० फीट की ऊँची बन कर तैयार हुईं उस समय दूसरे स्तूप को आच्छादन करने मे यह स्तूप समर्थ हो सका। राजा को बहुत प्रसन्नता हुई और उसने २५ तावे के स्वर्णजटित खम्भे स्तूप के ऊपर खडे किये और स्तूप के मध्य मे तथागत भगवान् का शरीर रख के बहुत बडी भेट-पूजा की। यह काम समाप्त भी न होने पाया था कि उसने देखा कि छोटा स्तूप नीव के दक्षिण-पूर्व मे वर्तमान है और बिलकुल सटा हुआ लगभग आधी ऊँचाई तक पहुँचा हुआ है। राजा इससे घबडा उठा और उसने आज्ञा दे दी कि स्तूप खोद डाला जाय। जैसे ही दूसरी मंजिल तक खुदाई पहुँची दूसरा स्तूप अपनी जगह से हट कर फिर इसके भीतर से निकल आया और राजा के स्तूप से ऊँचा हो गया। राजा ने विवश होकर कहा कि मनुष्य के काम मे भूल हो जाना सहज है परन्तु जब दैवी शक्ति अपना काम कर रही है तब उससे सामना करना कठिन है। जो काम दैवी आज्ञा से हो रहा है उस पर मानुषी क्रोध का क्या प्रभाव पड सकता है? यह कह कर और अपने अपराधो की क्षमा माँग कर वह शान्त हो गया। यह दोनो स्तूप अब भी हैं। बीमारी की असाध्य अवस्था मे, आरोग्याकांक्षी लोग धूप जलाते हैं और फूल चढाते है तथा बडे विश्वास के साथ अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हैं। उस समय बहुत से रोगियो को दवा मिल भी जाती है।

कनिष्क वाले बडे स्तूप के पूर्व की ओर सीढियो के दक्षिण मे दो और स्तूप चित्रकारी किये हुए हैं—एक तीन फीट ऊँचा और दूसरा पाँच फीट। इन दोनो की बनावट और ऊँचाई बडे स्तूप के समान है। महात्मा बुद्ध की दो मूर्तियाँ भी हैं। एक ४ फीट ऊँची और दूसरी ६ फीट ऊँची है। बुद्ध-देव जिस प्रकार पद्मासन होकर बोधिवृक्ष के नीचे बैठे थे उसी भाव को यह मूर्ति प्रदर्शित करती है। जिस समय सूर्य अपनी सम्पूर्ण किरणो से प्रकाशित होता है और वह प्रकाश मूर्तियो पर पडता है तब उनका रङ्ग सुवर्ण के समान चमकने लगता है परन्तु ज्यो-ज्यो प्रकाश घटता जाता है पत्थर का भी रङ्ग ललाई लिये हुए नीले रग का होता जाता है। बूढे मनुष्य कहते हैं कि कई सौ वर्ष हुए जब नीव के पत्थरो की दरार मे कुछ चीटियाँ सुनहरे रग की रहती थी। सबसे बडी चोटी उँगली के बराबर थी, और दूसरी चीटियो की लम्बाई अधिक से अधिक जौ के बराबर थी। इन्ही चीटियो ने मिलकर और पत्थर को खुतर-खुतर कर बहुत प्रकार की लकीरें और चिह्न ऐसे बनाये जो चित्रकारी के समान बन गये और जो सुनहरी रेणु उन्होने छोडी उसके कारण मूर्तियो पर चमक आ गई।

बडे स्तूप की सीढियो के दक्षिण मे महात्मा बुद्ध का एक रंगीन चित्र लगभग

१६ फीट ऊँचा वना हुआ है। ऊपरी अर्द्ध भाग में तो दो मूर्त्तियाँ है पर नीचे वाले अर्द्धभाग में एक ही है। प्राचीन कथा है कि 'पहले एक दरिद्र आदमी था जो जीविका की तलाश में परदेश चला गया था। उसको एक सोने की मुहर मिली जिसको व्यय करके उसने महात्मा बुद्ध की एक मूर्ति वनवानी चाही। स्तूप के निकट आकर उसने चित्रकार से कहा कि 'मैं भगवान् तथागत का एक वहुत ही उत्तम और मनोहर चित्र सुन्दर रंगों मे चित्रित कराना चाहता हूँ, परन्तु मेरे पास केवल एक स्वर्ण मुहर है जो कारीगर को देने के लिए वहुत ही कम है। मुझको शोक है कि मेरी अभिलाषा के पूर्ण होने में मेरी दरिद्रता वाधा देती है।" चित्रर्कार ने उसकी सच्ची वात पर विचार करके उत्तर दिया कि दाम के लिए कुछ सोच न करो, चित्र तुम्हारी इच्छानुसार वना दिया जायगा। एक और भी आदमी इसी प्रकार का था, उसके प.स भी एक सोने की मुहर थी और उसने भी महात्मा वुद्ध का एक्त रगीन चित्र वनवाना चाहा। चित्रकार ने इस प्रकार एक-एक मुहर प्रत्येक से पाकर वहुत सुन्दर रंग लेकर एक बढिया चित्र वनाया। दोनो आदमी एक ही दिन और एक ही समय मे उस चित्र को लेने से लिए आये जो उन्होने वनवाया था। चित्रकार ने एक ही चित्र को उन दोनो को यह कह कर दिखलाया कि यह भगवान् वुद्ध का चित्र है जिसके लिए तुमने कहा था। दोनो मनुष्य घवडा कर एक दूसरे का मुँह देखने लगे। चित्रकार उनके सन्देह को समझ गया और कहने लगा, "तुम वडी देर से क्या विचार कर रहे हो ? यदि तुमको द्रव्य का विचार है तो मेरा उत्तर है कि मैंने तुमको रचमात्र भी धोखा नही दिया है। मेरी वात सत्य प्रमाणित करने के लिए चित्र मे अवश्य कुछ न कुछ विलक्षणता इसी क्षण प्रकट हो जायगी"। उसकी वात समाप्त भी न होने पाई थी कि किसी दैवो शक्ति के प्रभाव मे चित्र का ऊपरी अर्द्ध भाग स्वयं विभक्त हो गया और दोनो भागो मे से प्रताप परिलक्षित होने लगा। यह दृश्य देख कर वे दोनो पुरुष विश्वास और आनन्द मे मग्न हो गये। वडे स्तूप के दक्षिण-पश्चिम लगभग १०० पग की दूरी पर भगवान् वुद्ध की एक श्वेत पत्थर की मूर्ति कोई १८ फीट ऊँची है। यह मूर्ति उत्तराभिमुख खड़ी है। इस मूर्त्ति मे अद्भुत शक्ति तथा वड़ा सुन्दर प्रकाश है। कभी कभी संध्या-समय इस मूर्त्ति को लोगों ने स्तूप की प्रदक्षिणा करते हुए भी देखा है। थोडे दिन हुए जव लुटेरो का एक समूह चोरी करने की इच्छा से आया था: मूर्त्ति तुरन्त ही आगे वढ कर लुटेरों के सम्मुख गई। वे लोग इस दृश्य को देखते ही भयातुर होकर भाग गये और मूर्त्ति अपने स्थान को लौट आई और सदा के समान स्थिर हो गई। लुटेरो का इस दृश्य के प्रभाव से नवीन जीवन हुआ। वे लोग ग्रामो और नगरो मे घूम घूम कर जो कुछ हुआ था कहने लगे।

वडे स्तूप के दाहिने वाएँ सैकडो छोटे-छोटे स्तूप पास पास बने हुए हैं जिनमे उच्चकोटि की कारीगरी की गई है।

कभी कभी ऋषि, महात्मा और वडे वडे विद्वान् स्तूपो के चारो ओर प्रदक्षिणा देते हुए दिखाई पडते हैं तथा सुगन्धित वस्तुओ की महक और गाने-वजाने के विविध प्रकार के शब्दो का भी समय समय पर अनुभव होता हैं।

भगवान् तथागत की भविष्यद्वाणी है कि सात बार इस स्तूप के अग्निसात् होते और फिर बनने पर बौद्धधर्म का विनाश हो जायगा। प्राचीन इतिहास मे पता चलता है कि अब तक तीन बार यह स्तूप नाश होकर वनाया जा चुका है। पहले-पहल जब मैं इस देश मे गया था। उसके थोडे ही दिन पहले यह स्तूप अग्नि-द्वारा नाश हो चुका था। सीढियाँ अब भी अध-बनी है जिनकी मरम्मत जारी है।

बडे स्तूप के पश्चिम मे एक प्राचीन सघाराम है जिसको कनिष्क राजा ने बनवाया था। इसके दुहरे टीले, चौतरे, शिलायें और गहरी गुफायें उन बडे बड़े महत्माओ के प्रभाव की सूचक है जिन्होने इस स्थान पर निवास करके अपने पवित्र धर्माचरण को परिपुष्ट किया था। यद्यपि किसी किसी स्थान पर यह भग्न हो चला है तथापि इसकी अद्भुत बनावट अब भी बिलकुल लुप्त नही हुई है। जो साधु यहाँ रहते हैं उनकी संख्या थोडी है और वे लोग 'हीनयान' सम्प्रदाय के आश्रित हैं जिस समय यह वनाया गया था उस समय से लेकर अब तक कितने ही शास्त्रकार इनमे निवास करके परमपद को प्राप्त हो चुके है जिनकी प्रसिद्धि देश मे व्याप्त और जिनका धार्मिक व्यापार अब तक उदाहरण-रूप मे सजीव है। तीसरे बुर्ज मे एक गुफा महात्मा पार्श्विक की है, परन्तु बहुत काल से यह उजाड है। लोगो ने इस स्थान पर महात्मा के स्मारक का पत्थर लगा दिया हैं। पहले यह एक विद्वान् ब्राह्मण था, जब इसकी अवस्था ८० वर्ष की हुई इसने गृहपरित्याग कर दिया और गेरुवे वस्त्र (बौद्ध शिष्यो के) धारण कर लिये। नगर के लडको ने उसकी हँसी उडाते हुये कहा कि ऐ मूर्ख बुड्ढे आदमी! तुझको वास्तव मे कुछ भी बुद्धि नही है। क्या तुझको विदित नही है कि जो लोग बौद्ध-धर्म को अङ्गीकार करते है उनको दो कार्य करने होते हैं—अर्थात् ध्यानावस्थित होना और पुस्तको का पाठ करना। और, इस समय तुम बुड्ढे और बलहीन हो, तुम इस धर्म के शिष्य होकर क्या पदार्थ प्राप्त कर लोगे? वास्तव मे यह सब ढकोसला तुम्हारा पेट भरने के लिए है।

पार्श्विक ने इस प्रकार के व्यङ्ग वचनो को सुनकर संसार-त्याग करते हुए यह संकल्प किया कि "जब तक मैं पितृकनय के ज्ञान से पूर्णतया ज्ञानवान् न हो जाउँगा

और त्रिलोक की दुर्वासनाओ को न दूर कर लूँगा, और जब तक मैं छहो आध्यात्मिक शक्तियो को न प्राप्त कर लूँगा तथा अष्ट विमोक्ष के पद तक न पहुँच जाऊँगा तब तक मैं विश्राम नही करूँगा (अर्थात् शयन नही करूँगा ।) उसी दिन से दिन का समय उत्कृष्ट सिद्धान्तो के गूढ़ तत्वों के लगातार पठन मे और रात्रि का समानरूप से ध्याना-वस्थित होकर बैठने मे व्यतीत होता था । तीन वर्ष के कठिन परिश्रम मे उसने तीनो पिटको के गूढ़ आशय को मनन करके सासरिक कामनाओ को परित्याग कर दिया और 'त्रिविद्या'[1] को प्राप्त कर लिया । उस समय से लोग उसकी प्रतिष्ठा करने लगे और महात्मा पार्श्विक के नाम से सम्बोधन करने लगे ।

पार्श्विक गुफा के पूर्व एक प्राचीन भवन है जहाँ पर 'वसुबंधु बोधिसत्व[2]' ने 'अभिधर्म कोशशास्त्र[3]' की रचना की थी । लोगो ने उसके सम्मानार्थ एक शिलालेख इस आशय का इस स्थान पर लगा रक्खा है .—

वसुबंधु-भवन के दक्षिण लगभग ५० पग की दूरी पर एक दूसरा दो खंड का गुम्बजदार मकान है जहाँ पर 'मनोर्हिता शास्त्री'[4] ने विभाषा शास्त्र को संकलित किया था । यह विद्वान् महात्मा बुद्ध-निर्वाण के बाद एक हजार वर्ष के भीतर ही हुआ था । अपनी युवावस्था मे भली भाँति विद्योपार्जन करने के कारण यह बहुत विद्वान् गिना जाता था । धार्मिक विषयो मे इसकी बडी ख्याति थी और गृहस्थ लोग इसकी आतरिक प्रतिष्ठा

---

[1] त्रिविद्या मे (अ, ससार की अनित्यता का वृत्तान्त (ई) दुख क्या है (उ) आत्मा-अनात्मा क्या है, इन्ही तीन विषयो का वर्णन है ।

[2] वसुबधु २१ वा महात्मा हुआ है । यह असङ्ग का भाई था । परन्तु बहुत से लोग इससे सहमत नही हैं और 'बुधि धर्म' ग्रन्थ के अनुसार उसको २८वाँ महात्मा मानते हैं जिसका काल लगभग ५२० ईसवी सन् होता है । मेक्समूलर छठी शताब्दी के अन्तिम भाग में उसका होना निश्चय करते है ।

[3] इस पुस्तक की प्रसिद्धि बहुत है । इसको वसुबन्धु ने वैभाषिका की भूलो को दूर करने के लिए लिखा था; जिसका चीनी अनुवाद परमार्थ ने सन् ५५७-५८२ ई० मे किया ।

[4] मनोर्हित इसको दूसरे प्रकार से मनोरत, मनोर्हत, मनोरथ और मनुर भी लिखा है । इसके लिए जो विशेषण चीनी-भाषा मे प्रयोग किया गया है उसका अर्थ है कल्पवृक्ष; अर्थात् यह ऐसा महात्मा था कि प्रत्येक वस्तु देने मे समर्थ था । यह बाईसवाँ महात्मा कहलाता है । बस लीफ साहब ने जिस मणिरत नामक महात्मा का उल्लेख किया है सम्भव है व्यक्ति भी मनोर्हित ही हो ।

के लिए उत्सुक रहा करते थे। उस समय श्रावती का राजा विक्रमादित्य वहुत प्रसिद्ध था। उसने अपने मत्रियो को आज्ञा देदी थी कि पाँच लाख स्वर्णमुहर दान होकर सम्पूर्ण भारतवर्ष मे नित्य वितरण की जायँ। प्रत्येक स्थान के ददिद्री दुखी और अनाथो की याचनाओ को वह पूरा किया करता था। उसके कोषाध्यक्ष ने इस वात के भय से कि सम्पूर्ण राज्य की आय समाप्त हुई जाती है राजा के सामने व्यवस्था प्रकट करते हुये निवेदन किया कि "महाराज। आपकी ख्याति छोटे से छोटे व्यक्ति तक पहुँच गई और अब पशुओ मे फैल रही है, आपने आज्ञा दी है कि (अन्यान्य व्यय के अतिरिक्त) पाँच लाख स्वर्णमुहरें संसार भर के दीनो की सहायता के लिए व्यय की जायँ। ऐसा करने से श्रीमान् का कोष खाली हो जायगा, कोष मे द्रव्य के रहने मे और भूमि-सम्बन्धी आय के समाप्त हो जाने पर नवीन कर की व्यस्था करनी पडेगी, नही तो खर्च पूरा न पडेगा। कर की योजना होने से प्रजा की कष्ट-प्रार्थनायें सुनाई पडने लगेंगी तथा विद्वेष मच जायगा। इस कार्य से महाराज की उदारता की चाहे प्रशसा हो परन्तु आपके मत्री सर्वसाधारण मे अप्रतिष्ठित हो जायँगे।" राजा ने उत्तर दिया कि "मैं अपने पुण्य के लिए किसी तरह भी वेपरवाही के साथ देश को पीडित नही करूँगा वल्कि अपनी निज की सम्पत्ति से यह दान जारी रखूँगा।" यह कह कर उसने कोषाध्यक्ष की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया और दुखियो से सहायतार्थ पाँच लक्ष वढा दिया। इससे कुछ दिनो वाद एक दिन राजा शूकर के शिकार को गया। रास्ता भूल जाने पर उसने एक आदमी को एक लाख इसलिए दिया कि वह उसको फिर शिकार तक पहुँचा देवे। इधर मनोर्हित शास्त्री ने एक दिन एक मनुष्य को हजामत वना देने के उपलक्ष मे एक लाख अशर्फियाँ दी। इस उदारता के कार्य को इतिहास-लेखको ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तको मे स्थान दिया। राजा इस समाचार को पढकर वहुत लज्जित हुआ और उसका गर्वित हृदय क्रोध से भर गया। उसकी इच्छा हुई कि मनोर्हित पर कोई अपराध लगाकर उसको दड दिया जावे। यह विचार करके उसने भिन्न-भिन्न धर्मो के प्रसिद्ध प्रसिद्ध सौ विद्वानो को एकत्रित किया और आज्ञा दी कि "नाना प्रकार के मतो मे जो विभिन्नता है उसको दूर करके मैं सत्य मार्ग को निर्णीत किया चाहता हूँ। भिन्न-भिन्न धर्मो के सिद्धान्त ऐसे विपरीत हैं कि किस पर विश्वास करना चाहिए और किस पर नही यह समझना कठिन है। इस कारण अपनी सम्पूर्ण योग्यता को प्रकट करके मेरी इच्छा के पूर्ण करने का प्रयत्न आज आप लोग कीजिए।" शास्त्रार्थ के समय उसने दूरी आज्ञा सुनाई कि "अन्य-धर्मावलम्बी विद्वान् अपनी योग्यता के लिए प्रसिद्ध हैं, श्रमण और वौद्ध-धर्मावलम्वियो को इनके सिद्धान्तो पर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिए। यदि बौद्ध लोग जीत जायँगे तो अपने धर्म का प्रतिपालन करने पावेंगे, और यदि हार गये तो इनका नाश

कर दिया जायगा।' शास्त्रार्थ होने पर मनोर्हित ने निन्नानवे व्यक्तियों को पराजित करके चुप कर दिया, केवल एक व्यक्ति जो विशेष विद्वान् न था उसके सामने उपस्थित था। मनोर्हित ने एक तुच्छ प्रश्न अग्नि और धुएँ का उठाया। इस पर राजा और सब अन्य-धर्मावलम्बी चिल्ला उठे कि मनोर्हित शास्त्री की पद-योजना अशुद्ध है उसको पहले धुएँ का नाम लेना चाहिए तब अग्नि का। यही इन शब्दों के लिए नियम है।'' मनोर्हित ने अपनी कठिनता को वर्णन करना चाहा परन्तु कुछ सुनवाई नहीं हुई। लोगों की ऐसी कार्यवाही पर खिन्न होकर उसने अपनी जीभ को काट डाला और एक सूचना अपने शिष्य वसुबंधु को लिखी कि ''पक्षपातियों के समूह में न्याय नहीं है, भटके हुए लोगों में अज्ञान का निवास है।'' यह लिख कर वह मर गया था। थोड़े दिनों के पश्चात् विक्रमादित्य का राज्य जाता रहा और उसका स्थानाधिपति एक ऐसा राजा हुआ जिसने सुयोग्य विद्वानों की रक्षा का भार पूरे तौर पर लिया। वसुबंधु ने पुरानी अप्रतिष्ठा को दूर करने के लिए राजा के पास जाकर प्रार्थना की कि ''महाराज अपनी पुनीत योग्यता से राज्य का शासन करते हैं और बहुत बुद्धिमानी से कार्य करते हैं। मेरा गुरु मनोर्हित का बड़ा दूरदर्शी और सुदक्ष विद्वान् था। उसकी सम्पूर्ण कीर्ति को भूतपूर्व राजा ने द्वेषवश मिटा दिया है। इसलिए जो कुछ मेरे गुरु के साथ बुराई हुई है उसका मैं बदला लेना चाहता हूँ। मनोर्हित की महान् विद्वत्ता का हाल सुनकर राजा ने वसुबंधु के विचार की सराहना की और जिन अन्य धर्मावलम्बियों से मनोर्हित का शास्त्रार्थ हुआ था उनको बुलवा भेजा। वसुबंधु ने अपने गुरु के पूर्वप्रसङ्ग को फिर से उठाकर विधर्मियों को लज्जित और शान्त कर दिया।

कनिष्क राज के संघाराम के पूर्वोत्तर में लगभग ५० ली पर हमने एक बड़ी नदी पार करके पुष्कलावती[1] नगरी में प्रवेश किया। इसका क्षेत्रफल १४ या १५ ली है और जन संख्या भी अधिक है; भीतरी द्वार एक सुरङ्ग से जुड़े हुए हैं। पश्चिमी फाटक के बाहरी ओर एक देव-मन्दिर है। इसमें की देवमूर्ति प्रभावशाली तथा विलक्षण कार्यों की द्योतक है—चमत्कार रखती है।

---

[1] पुष्कलावती या पुष्करावती नगर गंधार-प्रदेश की राजधानी था। विष्णु पुराण में लिखा है कि पुष्करावती नगर को रामचन्द्र के भतीजे और भरत के पुत्र पुष्कर ने बसाया था। सिकन्दर की चढ़ाई में भी इसका वर्णन आया है कि उसने हस्ती राजा से इसको छीनकर संजय को अपना स्थापन्न नियत किया था। परन्तु यह कदाचित् हस्तनगर था जो पेशावर से १८ मील उत्तर स्वात नदी के किनारे उस स्थान पर था जहाँ पर इस नदी का संगम काबुल नदी से हुआ था।

नगर के पूर्व एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यह वही स्थान है जहाँ पर भूतपूर्व चारो बुद्धो ने धर्मोपदेश किया था। बहुत से साधु और महात्मा मध्य-भारत मे इस स्थान पर आकर लोगो को शिक्षा देते रहे हैं जैसे 'वसु मित्र'[1] शास्त्री; जिसने इस स्थान पर 'अभिधर्मप्रकरण' शास्त्र का संकलन किया था।

नगर के उत्तर चार पाँच ली की दूरी पर एक प्राचीन सघाराम है जिसके कमरे टूट फूट रहे हैं। साधु बहुत थोडे है और सबके सब हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। धर्मत्रात शास्त्री ने[2] 'सयुक्ताभिधर्मशास्त्र' को इस स्थान पर निर्माण किया था।

सघाराम के निकट एक स्तूप कई सौ फीट ऊँचा है जिसको अशोक राजा ने बनवाया था। यह लकडी और पत्थरो पर उत्तम नक्काशी और विविध प्रकार की कारीगरी करके बनाया गया है। प्राचीन काल मे शाक्य बुद्ध जब इस देस का राजा था तब वह इसी स्थान पर बोधिसत्व दशा को प्राप्त हुआ था। उसने अपना सर्वस्व याचको को दान कर दिया था, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी दान करने मे उसको संकोच नहीं हुआ था। सहस्र बार इस देश मे जन्म लेकर वह यहाँ का राजा हुआ था और इन सब जन्मो मे उसने अपने नेत्रो को भेट कर दिया था।

इस स्थान के निकट पूर्व दिशा मे दो स्तूप पत्थर के, प्रत्येक सौ सौ फीट ऊँचे बने हैं। दाहिनी ओर का स्तूप ब्रह्मा का और बाई ओर वाला शक्र (देवराज इन्द्र) का बनवाया हुआ है। ये दोनो रत्नो से बनाये गये थे, परन्तु बुद्ध भगवान् के निर्वाण के पश्चात् सम्पूर्ण रत्न साधारण पत्थर बन गये। यद्यपि स्तूपो की दशा बिगडती जाती है परन्तु उनकी ऊँचाई और महिमा अब भी वर्तमान है।

इन स्तूपो के पश्चिमोत्तर लगभग ५० ली की दूरी पर एक और स्तूप है इस

---

[1] वसुमित्र ५०० महात्मा अरहटो मे प्रधान था जो कि कनिष्क की सभा मे बुलाये गये थे।

[2] धर्मत्रात वसुमित्र का चचा था (उदानवर्ग तारानाथ ने एक और धर्मत्रात का उल्लेख किया है जो वैभाषिका संस्था का प्रधान था। वसुमित्र भी एक और हुआ है जिसने वसुबन्धु के लिखे हुए अभिधर्म कोष की टीका बनाई थी।) इसका जीवनकाल कदाचित् पचमशताब्दी माना जाता है। धर्मपाद की रचना चीनी भाषा मे वसुबन्धु से प्रथम हुई थी और वसुमित्र वसुबन्धु के पीछे हुआ था, क्योकि उसने उसके ग्रन्थ की टीका बनाई थी इसलिए ह्वेनसाग ने जिस धर्मत्रात का वर्णन किया था वही व्यक्ति धर्मपाद का संग्रहकर्ता माना जाता है।

स्थान पर शाक्य तथागत ने दैत्यों की माता को शिष्य करके[1] उसकी नृशंसता को रोक दिया था। यही कारण है कि देश के साधारण लोग संतति प्राप्त करने के लिए उसके निमित्त बलिप्रदान किया करते हैं।

इस स्थान से ५० ली जाने पर उत्तर दिशा में एक और स्तूप मिलता है। इस स्थान पर 'सामकबोधिसत्व'[2] धर्माचरण करते हुए अपने नेत्रहीन माता-पिता की सेवा

---

[1] दैत्यों की माता का नाम 'हारिती' था। बौद्ध लोग इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। इस स्त्री ने अपने पूर्वजन्म में इस बात का संकल्प किया था कि राजगृह के बालकों को वह भक्षण कर डालेगी; अतएव उसका जन्म यक्ष कुल में हुआ था। इस शरीर से उसके ५०० पुत्र भी उत्पन्न हुए थे। इन पुत्रों के खाने के लिए वह प्रतिदिन एक बच्चा राजगृह से उठा लाती थी। लोगों ने दुखित होकर सम्पूर्ण वृत्तान्त बुद्धदेव से निवेदन किया; जिस पर उन्होंने उसके सबसे प्यारे बच्चे को चुरा लिया। यक्षिणी ने सर्वत्र अपने बच्चे को ढूँढा, अन्त में उसने उसको बुद्ध के पास देखा। बुद्धदेव ने उससे पूछा "तुम्हारे तो ५०० पुत्र हैं तिस पर भी तुम अपने बच्चे से इतना अधिक प्रेम करती हो अब बताओ वह बेचारे कितना अधिक प्रेम करते होंगे जिनके एक ही दो बच्चे होते हैं।" यक्षिणी पर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसी क्षण से वह उपासक हो गई। इसके उपरान्त उसने पूछा कि वह अब अपने ५०० बच्चों के पोषण का क्या प्रबन्ध करे। बुद्धदेव ने उत्तर दिया, "भिक्षु लोग प्रत्येक दिन अपने भोजन में से कुछ भाग निकाल कर तुमको दिया करेंगे।" इस कारण पश्चिम के सब संघारामों में या तो फाटक की ड्योढ़ी में और या रसोईघर के निकट दीवार पर यक्षिणी का चित्र बालक लिये हुये बना हुआ है और नीचे सामने की भूमि पर कहीं पाँच और कहीं तीन दूसरे बालकों के चित्र बने हुए हैं। प्रत्येक दिन इस चित्र के सामने भिक्षु लोग भोजन की थाली चढ़ाते हैं। चारों देवराज उपासकों में इस स्त्री का प्रभाव विशेष है। रोगी और निःसन्तान पुरुष अपनी कामना के लिए इनको भोजन भेंट करते हैं। चालुक्य तथा दक्षिण के अन्य राजपरिवार वाले अपने को हारिती का वंशज बतलाते हैं। हारिती का यह सम्पूर्ण वृत्तान्त इत्सिङ्ग (I-tsing) ने ताम्रलिप्त देश के वराह मन्दिर में बने हुए उनके चित्र पर लिखा है। सम्भव है यह मन्दिर चालुक्य लोगों का बनवाया हुआ हो, क्योंकि वराह इन लोगों का मुख्य निशान था।

[2] यह वृत्तान्त कुरु के पुत्र साम का मालूम होता है जिसका वर्णन साम-जातक में आया है। फाहियान ने इसको 'शेन' लिखा है। मूल पुस्तक में भी यह शब्द आया है।

किया करता था। एक दिन जब वह उनके लिए फल लेने गया था, राजा से, जो शिकार खेल रहा था, उसका सामना हो गया और अनजानपन से राजा का एक विष-बाण उसके शरीर मे लग गया, परन्तु उसका धार्मिक बल ऐसा प्रबल था जिससे उसका कुछ भी अनिष्ट नही हुआ। देवराज इन्द्र उसके धर्माचरण से दयार्द्र होकर कुछ औषधियाँ लेकर आये और उन औषधियो के प्रभाव से उसका घाव अच्छा हो गया।

इस स्थान के पूर्व-दक्षिण की ओर लगभग २०० ली जाने पर हम 'पोलुश'[1] नगर मे आये। इस नगर के उत्तर मे एक स्तूप है जहाँ पर सुदान राजकुमार[2] अपने पिता का एक विशाल हाथी ब्राह्मणो को दान कर देने के कारण दंडित होकर देश से निकाल दिया गया था, और फाटक के बाहर जाकर अपने मित्रो से बिदा हुआ था। इसके अतिरिक्त एक सघाराम भी है जिसमे लगभग ५० साधु हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी निवास करते है। प्राचीन काल मे 'ईश्वर शास्त्री' ने इस स्थान पर 'ओपीतमोमिङ्ग चिङ्गलुन[3]' ग्रन्थ का संकलन किया था।

---

[1] मूल पुस्तक मे जो मार्ग लिखा गया है वह इस प्रकार है कि पुष्कलावती से ४ या ५ ली उत्तर, फिर कुछ दूर पूर्व, फिर ५० ली उत्तर-पश्चिम, फिर इस स्थान से पोलुश तक दक्षिण-पश्चिम २०० ली गिनना चाहिये। परन्तु मारटिन साहब ने २०० के स्थान पर २५० माना है और पुष्कलावती से शुमार किया है, जो ठीक नही है। इन्ही की गणना के समान कनिंघम साहब भी स्थान का निश्चय करने मे भूल कर गये हैं जो पालोढेरी को, अथवा एक उजडे डीह पर बसे हुए पाली गाँव को उन्होने पोलुश निश्चय किया है। मूल-पुस्तक के अनुसार सामक का स्तूप पुष्कलावती से ९० या १०० ली पर उत्तर-पूर्व मे होता है, वहाँ से २०० ली दक्षिण-पश्चिम दिशा मे खोज होने मे पोलुश का ठीक ठीक निश्चय हो सकेगा।

[2] अर्थात् विस्वान्तर, विस्वन्तर या वेस्सन्तर राजकुमार। इस राजकुमार का इतिहास बौद्धो मे बहुत प्रसिद्ध है। इस जातक का वृत्तान्त अमरावती के शिलालेखो मे भी पाया गया है। जुलियन साहब का मत है कि चीनी भाषा मे कुछ भूल है जिससे सुदान शब्द समझा जाता है। सुदन्त एक प्रत्येक बुद्ध का नाम है जिसका वर्णन त्रिकाण्डशेष मे आया है।

[3] जुलियन साहब इस वाक्य से 'अभिधर्मप्रकाशसाधनशास्त्र' अनुमान करते है, परन्तु मेम्युल वील साहब का अनुमान है कि कदाचित् यह 'संयुक्तअभिधर्महृदयशास्त्र' है जिसको ईश्वर नामक विद्वान् ने सन् ४२९ ई० के लगभग अनुवाद किया था।

ह्वेनसाँग की भारत यात्रा
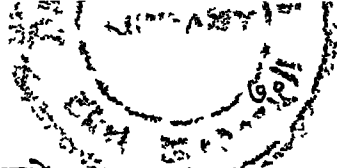
पोलुश नगर के पूर्वी द्वार के बाहर एक संघाराम है जिसमे लगभग ५० साधु महायान-सम्प्रदाय के अनुयायी निवास करते है। यहाँ पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। प्राचीन काल मे सुदान राजकुमार अपने घर से निकाला जाने पर 'दन्वलोक' पहाड़ मे जाकर रहा था। इस स्थान पर एक ब्राह्मण ने उसमे उसके पुत्र और कन्या की याचना की थी और उसने उनको उसके हाथ बेच दिया था।

पोलुश नगर के पूर्वोत्तर लगभग २० ली की दूरी पर 'दन्तलोक' पहाड की चोटी पर एक स्तूप अशोकराज का बनवाया हुआ है। इसी स्थान पर सुदान राजकुमार एकान्तवास करता था। इस स्थान के पार्श्व मे निकट ही एक स्तूप है जहाँ पर ब्राह्मण ने राजकुमार के पुत्र और कन्या को लेकर इतना अधिक मारा था कि रक्त की धार बह चली थी। इस समय भी यहाँ के घास-पात लाल रङ्ग के है। करार (पहाड का) के मध्य में एक पत्थर की गुफा है जहाँ पर राजकुमार और उसकी स्त्री निवास और ध्यानाभ्यास किया करते थे। घाटी के मध्य मे वृक्षो की शाखायें परदे के समान लटकी हुई है। इस स्थान पर प्राचीनकाल मे राजकुमार अपना मन बहलाया करता था; और विश्राम किया करता था। इस वृक्षावली के निकट ही पार्श्व में एक पथरीली गुफा है जिसमे किसी प्राचीन ऋषि का निवास था।

इस पथरीली गुफा से लगभग १०० ली पश्चिमोत्तर जाने पर हम एक छोटी पहाड़ी पार करके एक बड़े पहाड पर पहुँचे। इस पहाड़ के दक्षिण मे एक संघाराम है जिसमे थोड़े से महायान-सम्प्रदायी साधु निवास करते है। इसके पास ही एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर प्राचीन-काल मे एक श्रृङ्ग नाम का ऋषि रहता था। यह ऋषि एक सुन्दर स्त्री के मोह मे फँस कर तपभ्रष्ट हो गया था और वह स्त्री उसके कंधे पर चढकर नगर में लौट आई थी।

पोलुस नगर के पूर्वोत्तर ५० ली जाने पर हम एक पहाड पर आये। इस स्थान पर एक मूर्ति ईश्वरदेव की पत्नी भीमादेवी की हरे पत्थर पर खुदी हुई है। छोटे और बड़े सब प्रकार के लोग इस बात को मानते है कि यह मूर्ति स्वयं निर्मित हुई है। अपने अद्भुत चमत्कारो के कारण इस मूर्ति की बडी प्रतिष्ठा है तथा सब श्रेणी के लोग इसकी पूजा करते है और इसलिए भारत के सम्पूर्ण प्रान्तो के लोग यहाँ आते है और दर्शन पूजन करके अपने मनोरथो की याचना करते है। दूर और निकट के प्रत्येक प्रान्त से धनी और दरिद्र इस स्थान की यात्रा करते हैं। जो लोग देवी के स्वरूप का प्रत्यक्ष

---

[1] बौद्ध पुस्तको मे इस कथा का वर्णन अनेक स्थानो पर आया है; यह कथा रामायण के शृंगी ऋषि की कथा से मिलती-जुलती है।

दर्शन किया चाहते हैं वे विश्वासपूर्वक और सन्देहरहित होकर सात दिन का उपवास करते है, तब जाकर देवी के दर्शन प्राप्त होते हैं[1] और उनकी प्रार्थना सुफल होती है। पहाड के नीचे एक मन्दिर महेश्वर देव का है। भस्मधारी (पाशुपतधर्मवाले) लोग यहाँ आकर अर्चन-पूजन किया करते हैं।

भीमादेवी के मन्दिर के पूर्व दक्षिण १५० ली जाने पर हम 'उटो किया हान चा'[2] स्थान मे पहुँचे। इस नगर का क्षेत्रफल २० ली के लगभग है। इसके दक्षिणी किनारे पर सिन्धु नदी वहती है। निवासी धनी और सुखी है। इस स्थान पर बहुमूल्य व्यापार की वस्तुएँ और सब प्रकार का माल सब देशो से आता है। इस नगर के पश्चिमोत्तर लगभग २० ली चलकर हम 'पोलोटुलो'[3] नगर मे आये। यह वही स्थान है जहाँ पर व्याकरण-शास्त्र के रचयिता महर्षि पाणिनि का जन्म हुआ था। अत्यन्त प्राचीन काल मे अक्षरो की सख्या बहुत थी, परन्तु कुछ दिनो बाद जब संसार मे लय होकर शून्यता छा गई उस समय दीर्घजीवी देवता लोग, जीवो को सुमार्ग पर लाने के लिए ससार मे आये थे और अक्षरो का प्रचार किया था।

प्राचीन अक्षरो और वाक्यो का यही वास्तविक कारण है। इस समय से भाषा का स्वरूप फैलता रहा और अपनी प्राचीन अवस्था को पहुँच गया। ब्रह्मा देवता और शक्र (देवराज इन्द्र) ने आवश्यकता के अनुसार व्याकरण को बनाया। ऋषियो ने अपनी-अपनी पाठशाला के अनुसार भिन्न-भिन्न अक्षर निर्मित कर लिये। लोग कई पीढी तक तो जो कुछ उनको बताया गया था। उसका प्रयोग करते रहे परन्तु विद्यार्थियो को विना (धार्मिक) योग्यता के उन (शब्दो या अक्षरो) का काम मे लाना कठिन हो गया। इस प्रकार सौ वर्ष तक हीनावस्था रही। जब पाणिनि ऋषि का जन्म हुआ। वह जन्म से ही वस्तु-ज्ञान विशेष परिचित था, इस कारण समय की निकृष्ट

---

[1] भीमा नाम दुर्गा का है। जो बात इस देवी के विषय मे लिखी गई है वही अवलोकितेश्वर के विषय मे भी प्रचलित है। दुर्गा या पार्वती और अवलोकितेश्वर को पहाडी देवता मान कर रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल मे अच्छा लेख है।

[2] जुलियन साहब इस शब्द को 'उडखाण्ड, समझते हैं जिसका पता लगा कर मारटीन साहब ने सिंधु नदी के तट वाले ओहिन्द का निश्चय किया है।

[3] पाणिनि का जन्मस्थान सलातुर नगर है जो सालातुरीय के नाम से प्रसिद्ध है। कनिंघम साहब इसका निश्चय लाहोर नामक ग्राम से करते हैं जो ओहिन्द से उत्तर-पश्चिम मे है।

दशा देख कर उसकी इच्छा अस्थिर और दोषपूर्ण नियमो को हटाकर और (लिखने तथा बोलने के) अनौचित्य को सुधार कर शुद्ध नियम संकलित करने की हुई। जिस समय वह शुद्ध मार्ग की प्राप्ति के लिए इधर-उधर घूम रहा था उसकी भेंट ईश्वर देवता से हुई। उसने अपने विचार को देवता पर प्रकट किया। ईश्वर देवता ने उत्तर दिया, "अहो आश्चर्य ! मै तुम्हारी इस काम में सहायता करूँगा।" ऋषि ने उनसे शिक्षा पाकर और लौट कर अपनी सम्पूर्ण मस्तिष्क-शक्ति से काम लेना और लगातार परिश्रम करना प्रारम्भ किया। उसने सम्पूर्ण शब्द-समूह को संग्रह करके एक पुस्तक व्याकरण की बनाई जिसमे एक सहस्र श्लोक थे, और प्रत्येक श्लोक ३२ वाक्यो का था। इस पुस्तक मे अनादि काल से लेकर उस समय तक की सम्पूर्ण वस्तुओ का समावेश हो गया, शब्द और अक्षर-विषयक कोई भी बात नही छूटने पाई। फिर उसने इसको, समाप्त होने पर, राजा के निकट भेजा, जिसने उसको बहुत बडा पारितोषिक देकर यह आज्ञा प्रचारित की कि सम्पूर्ण राज्य भर मे यह पुस्तक पढाई जाय। उसने यह भी आज्ञा दे दी कि जो व्यक्ति इसको आदि से अन्त तक पढ लेगा उसको एक सहस्र स्वर्णमुद्रा उपहार मे मिला करेंगे। उस समय से विद्वानो ने इसको अङ्गीकार किया और संसार की भलाई के लिए इसका प्रचार किया। इस कारण इस नगर के ब्राह्मणो को विद्याभ्यास का बहुत सुभीता है और अपनी विद्वत्ता, शाब्दिक ज्ञान, तथा तीव्र बुद्धिमत्ता के लिए ये लोग बहुत प्रसिद्ध हैं।

'सोलाटुलो' नगर में एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर एक अरहट ने पाणिनि के एक शिष्य को अपने धर्म का अनुयायी बनाया था। तथागत को संसार परित्याग किये हुए लगभग ५०० वर्ष हो चुके थे जब एक बहुत बडा अरहट कश्मीर-प्रदेश मे पहुँचा और इधर-उधर लोगो को अपना अनुयायी बनाने के लिए घूमने लगा। इस स्थान पर पहुँच कर उसने देखा कि एक ब्रह्मचारी एक बालक को जिसको वह शब्दविद्या पढ़ा रहा था दंड दे रहा है। उस समय अरहट ने ब्राह्मण से इस प्रकार कहा कि "तुम इस बालक को क्यो कष्ट दे रहे हो ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि "मै इसको शब्दविद्या पढा रहा हूँ, परन्तु जैसी चाहिए वैसी उन्नति यह नही करता।" इस पर अरहट को हँसी आ गई। ब्राह्मण ने कहा कि 'श्रमण लोग बडे दयालु और उत्तम स्वभाव के होते है। मनुष्यो से लेकर पशुओ तक के प्रति समानरूप मे प्रेम प्रदर्शित करते है। ए महात्मा ! आप मुझे कृपा करके कारण बतलाइए कि आप हँसे क्यो ?' अरहट ने उत्तर दिया कि 'शब्द तुच्छ नही हैं, परन्तु मुझको भय होता है कि तुमको सन्देह और अविश्वास होगा। अवश्य तुमने पाणिनि ऋषि का नाम सुना होगा जिसने संसार की शिक्षा के लिए शब्दविद्या-शास्त्र को विरचित किया था।' ब्राह्मण ने

कहा कि 'इस नगर के बालक जो उसके विद्यार्थी हैं उसके पूज्य गुणो की प्रतिष्ठा करते हैं और उन्होने उसका स्मारक बना रक्खा है जो अब तक मौजूद है।' श्रमण कहने लगा कि 'यह बालक जिसको तुम पढ़ा रहे हो वही पाणिनि ऋषि है। इसने अपना सम्पूर्ण मस्तिष्क-बल सांसारिक साहित्य के अन्वेषण मे लगा दिया था और कच्चे मत की पुस्तक को बनाया था कि जिसमे कुछ भी सात्विक अश नही है। इस कारण इसकी आत्मा और बुद्धि भटकी हुई है, और यह तब से लेकर अब तक बराबर जन्म-मरण के चक्र मे पडा हुआ चक्कर खा रहा है। इसके कुछ थोडे से सच्चे पुण्य को धन्यवाद है जिसके बल से यह तुम्हारा बालक होकर उत्पन्न हुआ है। सासारिक साहित्य और शाब्दिक लेख इसके लिए व्यर्थ प्रयत्न ही कहे जायँगे। भगवान् तथागत की पुनीत शिक्षा के सामने इनका कुछ भी मूल्य नही है जो अपने गुप्त बल से सुख और बुद्धि दोनो की देने वाली है। दक्षिण सागर के किनारे पर एक प्राचीन शुष्क वृक्ष था जिसके खोखल मे ५०० चमगादर निवास करते थे। एक बार कुछ व्यापारी उस वृक्ष के नीचे आकर ठहरे, उस समय बहुत ठंडी हवा चल रही थी; सौदागरो ने भूख और शीत से विकल होकर कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी करके वृक्ष की जड़ के पास जला दी। अग्नि की लपट वृक्ष तक पहुँच गई और वह वृक्ष धीरे-धीरे सुलगने लगा। उन सौदागरो के झुण्ड मे से एक ने रात्रि के अन्त मे अभिधर्मपित्तक के एक अश का गान करना प्रारम्भ किया। चमगादर उस मधुर गान पर ऐसे मोहित हुए कि धैर्य के साथ अग्नि के कष्ट को सहन करते रहे और बाहर नही निकले। इसके पश्चात् वे सब मर गये और अपने कर्म के प्रभाव से मनुष्य-योनि मे प्रकट हुए। ये सब बडे तपस्वी और ज्ञानी हुए और उस धर्म-ध्वनि के बल से, जो उन्होने सुना था, उनका ज्ञान इतना अधिक हुआ कि वे सबके सब अरहट हो गये जैसा होना कि उच्च कोटि के सासारिक ज्ञान का फल है। थोडे दिन हुए कनिष्क राजा ने महात्मा पार्श्विक के सहित पाँच सौ साधु और विद्वानो को कश्मीर-प्रदेश मे बुला कर एक सभा की थी; उन लोगो ने विभाषा शास्त्र को बनाया। वे लोग वही पाँच सौ चमगादर हैं जो पहले उस सूखे वृक्ष मे रहते थे। मै स्वय भी, यद्यपि थोड़ी योग्यता रखता हूँ, उन्ही मे से एक हूँ। इस प्रकार मनुष्यो में ऊँची-नीची योग्यता के बल से विभिन्नता हो जाती है। कुछ लोग बढ जाते हैं और कुछ अधकार ही मे पडे रहते हैं। परन्तु अब, ऐ धार्मिक! अपने शिष्य को गृह परित्याग करने की आज्ञा दीजिए। बुद्ध का शिष्य होकर जो ज्ञान हमने प्राप्त किया वह कहने के योग्य नही है।' अरहट यह कह कर अपने आत्मिक-बल को प्रकट करने के लिए उसी समय अन्तर्धान हो गया।

ब्राह्मण ने जो कुछ देखा उसका उस पर बडा प्रभाव हुआ और वह विश्वास

में पग गया। जो कुछ घटना हुई थी उसका समाचार निकटवर्ती नगरो मे फैला कर उसने अपने पुत्र को बुद्ध का शिष्य होने और ज्ञान प्राप्त करने की आज्ञा दे दी। इसके अतिरिक्त वह स्वयं भक्त होकर रत्नत्रयी की बड़ी प्रतिष्ठा करने लगा। ग्राम के लोग भी उसके अनुगामी होकर शिष्य हो गये और तब से अब तक लोग अपने व्रत में दृढ़ हैं।

'उटोकियाहानचा' से उत्तर जाकर कुछ पहाड़ और एक नदी पार करके तथा लगभग ६०० ली भ्रमण करके हम उचङ्गना-राज्य मे पहुँचे।

— — — —

तीसरा अध्याय

आठ प्रदेशो का वर्णन अर्थात् :(१) उचङ्गना (२) पोलूलो (३) टाचाशिपालो (४) संगहोपूलो (५) बुलाशो (६) कियाशीमीलो (७) पुन्नूसो (८) कोलोचिपूलो ।

(१) उचङ्गना (उद्यान[1])

उचगना प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग ५००० ली है । पहाड और घाटियाँ लगातार मिली चली गई हैं । घाटिया और दलदल ऊँचे-ऊँचे चट्टानो से सटे हुए हैं । यद्यपि अनेक प्रकार का अन्न बोया जाता है परन्तु पैदावार उत्तम नही होती । अंगूर वहुत होता है, ऊख कम है; सोना और लोहा भी निकलता है, परन्तु सबसे अधिक खेती सुगन्ध की, जिसको योगिक (केसर) कहते हैं, होती है । जगल घने और छायादार हैं, फल और फूलो की बहुतायत है । सरदी और गरमी सहन हो सकने वाली है; आँधी और मेघ अपने ऋतु मे होते है। पुरुष कोमल और बलहीन हैं; इनका स्वभाव कुछ चतुरता और धूर्ततायुक्त है । विद्या से प्रेम तो लोग करते हैं परन्तु प्रचार अधिक नही है । मन्त्र-शास्त्र[2] की विद्या इनको अच्छी आती है । इनका वस्त्र रुई का बना श्वेत होता है, परन्तु पहनते कम है । इनकी भाषा—यद्यपि कही-कही विभिन्न भी है, तो भी अधिकतर भारतवर्ष ही के समान है । इनकी लिखावट और सभ्यता के नियम भी उसी प्रकार के मिले-जुले हैं । ये लोग बुद्धधर्म का बडा आदर करते हैं और महायान-सम्प्रदाय के भक्त हैं[3] । सुपोफासुट[4] नदी के दोनो किनारो पर कोई १४०० प्राचीन

---

[1] 'उद्यान' (प्राकृत उज्जान) देश पेशावर के उत्तर मे स्वात नदी पर था, परन्तु ह्वेनसांग के अनुसार सम्पूर्ण पहाडी प्रान्त जो हिन्दू-कुश के दक्षिण चित्राल से सिन्धु नदी तक फैला था, उद्यान कहलाता था । इसके बारे मे कनिघम साहब और लैसन साहब के विचार भी देखने योग्य हैं ।

[2] यूल साहब लिखते है कि पद्मसम्भव नामक मन्त्रशास्त्री का जन्म उद्यान में हुआ था ।

[3] फाहियान लिखता है कि उसके समय मे हीनयान-सम्प्रदाय का प्रचार था ।

[4] अर्थात् शुभवस्तु, वर्तमान समय मे इसका नाम स्वात नदी है ।

संघाराम हैं परन्तु इस समय प्राय: जनशून्य और उजाड़ हैं। प्राचीन काल में १८००० साधु इनमे निवास करते थे जो धीरे-धीरे घट गये, यहाँ तक कि अब बहुत थोड़े हैं। ये सब महायान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। ये लोग चुपचाप ध्यानावस्थित होने का अभ्यास करते हैं और जिन पुस्तको में इस क्रिया का वर्णन होता है उनके पढ़ने मे बहुत प्रसन्न रहते है; परन्तु इस विषय मे विशेष विज्ञ नही है। साधु लोग धार्मिक नियमो का प्रतिपालन करते हुए पवित्र जीवन धारण करते हैं और मंत्रशास्त्र के प्रयोगो का विशेष निषेध करते हैं। विनय की संस्थायें सर्वास्तिवादिन, धर्मगुप्त महीशासक, काश्यपीय और महासंघिक यही पाँच[1] इन लोगो मे अधिक विख्यात है।

देवताओ के लगभग १० मन्दिर है जिनमे विधर्मी लोग निवास करते हैं। चार या पाँच बड़े-बड़े नगर है। राजा अधिकतर मुङ्गाली में[2] शासन करता है क्योकि यही उसकी राजधानी है। इस नगर का क्षेत्रफल १६ या १७ ली है, तथा आबादी सघन है। मुङ्गाली के पूर्व चार पाँच ली की दूरी पर एक स्तूप है जहाँ पर बहुत सी दैवी घटनायें दृष्टिगोचर हुआ करती हैं। यही स्थान है जहाँ पर महात्मा बुद्ध, जीवित अवस्था में, शान्ति के अभ्यासी ऋषि 'क्षान्ति-ऋषि' थे[3] और कलिराज के लिए अपने शरीर के टुकडे-टुकड़े करने की यातना को सहन करते थे।

मुङ्गाली के पूर्वोत्तर लगभग २५० या २६० ली की दूरी पर हम एक बड़े पहाड़ पर होकर 'अपलाल नाग' नामक जलप्रपात तक आये। यही मे' सुपोफासुट' (शुभ वस्तु) नदी निकली है। यह नदी दक्षिण पश्चिमाभिमुख वहती है। ग्रीष्म और वसन्त मे यह नदी जम जाती है और सबेरे से शाम तक बरफ के ढोके बादलो मे फिरा करते हैं जिनकी सुन्दर परछाईं का रंग प्रत्येक दिशा में दिखाई पड़ता है।

यह नाग काश्यप बुद्ध के समय उत्पन्न हुआ था। उस समय यह मनुष्य था और इसका नाम गांगी था। यह अपने मन्त्रो के प्रभाव मे नागो की सामर्थ्य को रोकने मे समर्थ था इस कारण वे लोग सत्यानाशी वृष्टि का उपयोग नही कर सकते थे, और इसकी कृपा से लोग अधिक उपज प्राप्त कर लेते थे। प्रत्येक परिवार ने, इसके प्रत्युपकार को प्रदर्शित करने के लिए, सहायता-स्वरूप थोड़ा सा अन्न प्रतिवर्ष देना स्वीकार कर

---

[1] यही पांच संस्थायें हीनयान-सम्प्रदाय वालों की हैं।

[2] यह नगर स्वात-नदी के बाएँ किनारे पर था।

[3] अर्थात् बोधिसत्व थे। चीनी-भाषा की पुस्तकों में, बोधिसत्व का इतिहास—जब वह क्षान्ति ऋषि के स्वरूप में थे—बहुधा मिलता है।

लिया था। कुछ काल व्यतीत होने पर कुछ ऐसे लोग हुए जिन्होने भेट देना बन्द कर दिया जिस पर कि गाँगी ने क्रोधित होकर विषधर नाग का तन पाने की प्रार्थना की जिसमे भयंकर जल-वृष्टि करके लोगो की फसल को नाश करते हुए भलीभाँति उनका ताड़ना कर सके। मृत्यु होने पर वह इस देश का नाग हुआ और एक सोते से एक बडी भारी श्वेत जलधारा निकाल कर उसने भूमि के सब उपज को विनाश कर दिया।

इस समय परमकृपालु भगवान् शाक्यबुद्ध संसार के रक्षक थे, वह इस देश के विकल लोगो की दशा पर जो इस तरह पर सताये गये थे अत्यन्त दु खी हुए। उस दारुण नागराज को शिष्य बनाने की इच्छा से भगवान् शाक्य हाथ मे वज्र और गदा धारण किये हुए अपने आध्यात्मिक बल से इस स्थान पर पहुँचे और पहाडो पर प्रहार करने लगे। इस समय नागराज भयभीत होकर आपकी शरण मे आ गिरा। बुद्ध-धर्म की शिक्षा पाकर उसका हृदय मे धार्मिक वृत्ति का विकास हुआ। भगवान् तथागत ने उसको कृषको की खेती नाश करने से रोका जिस पर नागराज ने उत्तर दिया कि मेरी सारी जीविका मनुष्यों के खेतो से मिलती है, परन्तु अब उस पुनीत शिक्षा को धन्यवाद देते हुए, जो आपकी कृपा मे मुझको प्राप्त हुई है, मुझको भय होता है कि ऐसा करने से मेरा जीना कठिन हो जायगा। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि प्रत्येक बारह वर्ष पर एक बार मुझे जीविका प्राप्त करने की आज्ञा दी जावे। भगवान् तथागत ने दयावश उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, इस कारण प्रत्येक बारह वर्ष पर श्वेत नदी की बाढ़ से यहाँ विपत्ति का फेरा हो जाता है।

अपलाल नाग के सोते के दक्षिण-पश्चिम लगभग ३० ली की दूरी पर नदी के उत्तरी किनारे एक चट्टान पर भगवान् बुद्ध का चरण-चिह्न अंकित है। लोगो के धार्मिक ज्ञानानुसार यह चिह्न छोटा और बडा देख पडता है। नाग को पराजित करने के उपरान्त भगवान् ने यह चरण-चिह्न अंकित कर दिया था जिस पर पीछे से लोगो ने पत्थर का भवन बना दिया है। बहुत दूर-दूर से लोग यहाँ सुगन्धित वस्तु और फूल चढाने आते हैं। नदी के किनारे-किनारे लगभग ३० ली जाने पर हम उस शिला तक आये जहाँ तथागत भगवान् ने अपना वस्त्र धोया था। कषाय वस्त्र के तन्तुओ की छाप अब भी ऐसी देख पडती है मानो शिला पर नक्काशी की गई हो।

मुङ्गाली नगर के दक्षिण लगभग ४०० ली जान पर हम 'हीलो' (Mount Hila) पहाड पर आये। घाटी मे होकर बहती हुई जलधारा यहाँ से पश्चिम ओर को बहती है फिर पूर्व की ओर पलट कर मुहाने की ओर चढती है। पहाड के पार्श्व मे तथा नदी के किनारे-किनारे अनेक प्रकार के फल और फूल लगे हुए हैं। ऊँचे-ऊँचे करारे, गहरी गुफाएँ और घाटियो मे घूम घुमैली जल-धारायें भी अनेक हैं। कभी-कभी

लोगो के बोलने का शब्द और गान-वाद्य की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त चौकोने, लम्बे, पतले पत्थर मनुष्य-रचित वस्तु के समान, पहाड के पार्श्व से लेकर घाटी तक बहुत दूर फैले चले गये है। इसी स्थान पर प्राचीन समय में भगवान् तथागत, जब यहाँ निवास करते थे, धर्म की आधी गाथा को सुनकर प्राण परित्याग करने पर उद्यत हो गये थे।[1]

मुङ्गाली नगर के दक्षिण पहाड के किनारे किनारे लगभग २०० ली जाने पर हम महावन संघाराम में पहुँचे। इसी स्थान पर प्राचीन काल मे भगवान् तथागत ने सर्वदत्त राजा के नाम से बोधिसत्व जीवन का अभ्यास किया था। सर्वदत्त राजा ने शत्रु से पराजित होकर देश छोड दिया था और वह चुपचाप भाग कर इस स्थान पर चले आये थे। इस स्थान पर एक ब्राह्मण मिला जिसने भिक्षा माँगी परन्तु राज-पाट छूट जाने के कारण राजा के पास कुछ भी न था। राजा ने ब्राह्मण से कहा कि मुझको बाँधकर कैदी के समान मेरे शत्रु राजा के पास ले चलो। ऐसा करने से तुमको जो कुछ पारितोषिक मिलेगा वही तुम्हारे लिए दान-स्वरूप होगा।

महावन सघाराम के पश्चिमोत्तर पहाड़ के नीचे-नीचे लगभग ३०-४० ली जाने पर हम मोसू संघाराम में पहुँचे। यहाँ पर एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा है। इसके निकट ही एक बड़ा सा चौकोना पत्थर है जिस पर भगवान् बुद्ध का चरण-चिह्न बना हुआ है। यही स्थान है जहाँ पर भगवान् बुद्ध ने प्राचीन समय में अपना पैर जमा दिया था, उस समय ऐसी किरण-कोटि निकली थी जिससे महावन संघाराम प्रकाशित हो गया था और फिर देवताओ और मनुष्यो के लाभार्थ उन्होने अपने पूर्व जन्मो का हाल वर्णन किया था। (जातक) इस स्तूप के नीचे (या चरण-चिह्न के पास। एक पत्थर श्वेत पीले रंग का है जो सदा चिकनापन लिये हुए चिपचिपा या गीला बना रहता है। यह वह स्थान है जहाँ पर बुद्ध भगवान् ने, जब प्राचीन काल मे बोधिसत्व अवस्था का अभ्यास करते थे, सत्य धर्म के उपदेश को श्रवण किया था। और जो कुछ शब्द उनके कर्णगोचर हुए थे उनको पुस्तक-प्रणयन करने के लिए इस पत्थर पर अपने शरीर की हड्डी तोड़ कर (उसके गूदा मे) लिखा था।

मोसू संघाराम के पश्चिम ६०-७० ली पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यही स्थान है जहाँ पर तथागत भगवान् ने प्राचीन काल में शिविक राजा के नाम से बोधिसत्व धर्म का अभ्यास किया था और बौद्ध-धर्म का फल-

[1] अर्द्ध गाथा के निमित्त बुद्धदेव के प्राण परित्याग करने का वृत्तान्त; उत्तरी संस्था के महापरिनिर्वाण-सूत्र में लिखा है।

प्राप्त करने के लिए अपने शरीर को काट-काट कर एक पिडकी को वाज पक्षी से बचा लिया था।

उस स्थान से पश्चिमोत्तर मे जहाँ पर पिडकी की रक्षा हुई थी, २०० ली जाने पर हम शान्नालोशी घाटी मे पहुँचे जहाँ पर 'सर्पाव शाटी'[1] संघाराम हैं। यहाँ एक स्तूप लगभग ८० फीट ऊँचा है। प्राचीन समय मे जब भगवान् बुद्ध राजा शक्र के स्वरूप मे थे, इस देश मे अकाल और रोगो की सर्वत्र वहुतायत थी। कोई दवा काम नही करती थी, रास्ते मुर्दो से भरे हुए थे। राजा शक्र को बहुत करुणा उत्पन्न हुई और ध्यानावस्थित होकर विचारा कि किस प्रकार मनुष्यो की रक्षा हो सकती है। फिर अपने स्वरूप को बदल कर एक बडे भारी सर्प के समान हो गये और अपने मृत शरीर को तमाम घाटी मे फैला कर चारो दिशा के लोगो को सूचना दे दी। इस वात को सुनते ही सब लोग प्रसन्न हो गये और दौड-दौड कर उस स्थान पर पहुँचने लगे। जिसने जितना ही अधिक सर्प के शरीर को काट लिया वह उतना ही अधिक सुखी हुआ और इस प्रकार अकाल तथा रोग से लोगो को छुटकारा मिला।

इस स्तूप के बगल मे पास ही एक वडा स्तूप सूम नामक है। इस स्थान पर प्राचीन काल मे, तथागत भगवान् ने जब राजा शक्र के स्वरूप मे थे, संसार-सम्बन्धी यावत् रोग और कष्टो से विकल होकर और अपने पूर्ण ज्ञान से कारण जान कर सूम सर्प का स्वरूप धारण किया था। जिसने उस सर्प के मांस को चक्खा वह रोग से मुक्त हो गया।

शात्री लो घाटी के उत्तर मे एक ढालू चट्टान के निकट एक स्तूप है। जो कोई रोगग्रस्त होकर इस स्थान पर आया अधिकतर अच्छा ही हो कर गया। प्राचीन काल मे मोरो का एक राजा था। एक समय अपने साथियो सहित इस स्थान पर आया। प्यास से दुःखित होकर सर्वत्र उसने जल की खोज की परन्तु कही न मिला। तब उसने अपनी चोच से चट्टान मे छेद कर दिया जिसमे से बडो भारी जल-धारा प्रकट हो गई। आज-कल यह झील के समान है। रोगी पुरुष इसके जल को पीने अथवा इसमे स्नान करने से अवश्य नीरोग हो जाते हैं। चट्टान पर मयूरो के चरण-चिह्न अब तक बने हुए हैं।

मुङ्गाली नगर के दक्षिण-पश्चिम ६० या ७० ली पर एक बडी नदी है[2]

---

[1] सर्पौषध।

[2] यह नदी शुमवस्तु अथवा सुवस्तु है। इसका वर्णन ऋग्वेद और महाभारत में भी आया है। वर्तमान काल मे इसका नाम स्वात नदी है।

जिसके पूर्व मे एक स्तूप ६० फीट ऊँचा है। यह उत्तरसेन का बनवाया हुआ है। प्राचीन काल मे जब तथागत भगवान् मृतप्राय हो रहे थे उन्होने बहुत से लोगो को बुला कर यह आज्ञा दी कि मेरे निर्वाण के पश्चात् उद्यान-प्रदेश का राजा उत्तरसेन भी मेरे शरीरावशेष में भाग पावेगा। जिस समय राजा लोग शव को परस्पर बाँट रहे थे उत्तरसेन राजा भी पीछे से आया। सीमान्त-प्रदेश से आने के कारण दूसरे राजा लोगो ने इसकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया। तब देवताओ ने तथागत के मृत्युकालिक शब्दो को फिर से दुहराया। अपना भाग पाकर राजा अपने देश को लौट आया तथा अपनी भक्ति प्रदर्शित करने के लिए इस स्तूप को बनवाया। इसके पास ही नदी के किनारे एक बडी चट्टान हाथी की सूरतवाली है। प्राचीनकाल मे उत्तरसेन राजा बुद्ध का मृत शरीर एक बडे भारी श्वेत हाथी पर चढ़ा कर अपने देश को लाता था। इस स्थान पर पहुँच कर अकस्मात् हाथी गिर कर मर गया और तुरन्त ही पत्थर हो गया। उसी के बगल मे यह स्तूप बना हुआ है।

मुङ्गाली नगर के पश्चिम ५० ली की दूरी पर एक नदी पार करके हम रोहितक स्तूप तक आये। यह ५० फीट ऊँचा है और अशोक राजा का बनवाया हुआ है। प्राचीन काल मे जब तथागत भगवान् बोधिसत्व-अवस्था का अभ्यास कर रहा था वह एक बडे देश का राजा था और उसका नाम मैत्रीबल था। इस स्थान पर उसने अपने शरीर को फाड़ कर पाँच यक्षों को रुधिरपान कराया था।

मुङ्गाली नगर के पूर्वोत्तर ३० ली पर होपूटोशी (अद्भुत) स्तूप लगभग ४० फीट ऊँचा है। प्राचीन काल मे तथागत भगवान् ने देवता और मनुष्यों की शिक्षा और सुधार के लिए इस स्थान पर धर्मोपदेश किया था। भगवान् के जाते ही भूमि एकदम से ऊँची (स्तूप-स्वरूप) हो गई। लोगो ने स्तूप की बहुत बड़ी पूजा की और धूप, फूल इत्यादि चढाये।

स्तूप के पश्चिम एक बड़ी नदी पार करके और ३० या ४० ली जाने पर हम एक विहार मे आये जिसमे अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की एक मूर्ति है। इसकी आध्यात्मिक शक्ति की सूचना बहुत गुप्तरीति से मिलती है और इसके अद्भुत चमत्कार प्रत्यक्षरूप मे प्रदर्शित होते रहते हैं। धार्मिकजन प्रत्येक प्रान्त से अपनी भेंट अर्पण करने के लिए यहाँ बराबर आया करते हैं।

अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की मूर्ति के पश्चिमोत्तर १४० या १५० ली जाने पर हम लानपोलू पहाड़ के निकट आये। इस पहाड़ की चोटी पर एक नाग झील लगभग ३० ली विस्तृत है; लहरें अपने घेरे में तरंग ले रही हैं और पानी शीशे के

समान स्वच्छ है। प्राचीन काल मे विरुद्धक राजा ने सेना सजा कर शाक्य लोगो पर चढाई की थी। इस जाति के चार मनुष्यो ने चढ़ाई को रोका था[१]। इन लोगो को इनकी जाति वालो ने निकाल दिया था जिससे चारो चार दिशा को भाग गये। इन शाक्यो मे से एक, राजधानी छोड कर और घूमते-घूमते थक कर विश्राम करने के निमित्त रास्ते के एक भाग मे वैठ गया। उसी समय एक हँस उडता हुआ आकर उसके सामने उतरा और वह उसके सिखाने से उस पर सवार हुआ। हँस उडता हुआ उसको इस झील के किनारे ले आया। इस सवारी के द्वारा उस भगोडे शाक्य ने अनेक दिशाओ के बहुत से राज्य देखे। एक दिन रास्ता भूल कर वह झील के किनारे एक वृक्ष की छाया में सोने लगा। इसी समय एक नाग-कन्या झील के किनारे टहल रही थी। अकस्मात् उसकी दृष्टि युवा शाक्य पर पडी। यह सोच कर कि दूसरे प्रकार से उसकी इच्छा पूरी न होगी। उसने अपना स्वरूप स्त्री के समान बना लिया और उसके निकट आकर उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगी[२]। वह युवा घबडा कर जग पडा और उससे कहने लगा कि "मैं एक दरिद्र और भगेडूपन मे पीड़ित व्यक्ति हूँ, तू क्यो मेरे साथ ऐसा प्रेम करती है?" इसी प्रकार की बात-चीत मे वह युवा भी उस पर आसक्त हो गया और अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उससे बिनती करने लगा। स्त्री ने उत्तर दिया कि "मेरे माता-पिता मे इसकी प्रार्थना करनी चाहिए, इस विषय मे उनकी आज्ञा मानवीय है। आपने तो प्रेम-दान देकर मुझ पर कृपा की है परन्तु उनकी आज्ञा अभी नही मिली है।" युवा शाक्य ने उत्तर दिया कि "मुझको चारो ओर पहाड और घाटियाँ जन-शून्य दिखाई पड रही हैं। तुम्हारा मकान कहाँ है?" उसने कहा, "मैं इस झील की रहने वाली नागकन्या हूँ, मैंने आपकी पुनीत जाति के कष्टो का हालो और घर से निकाले जाकर इधर-उधर मारे-मारे फिरने का वृत्तान्त बडे दुख से सुना है, भाग्य से मैं इधर आ गई और जो कुछ मुझसे सम्भव था आपको सुखी करने का प्रयत्न कर सकी। आपने भी अपनी कामना को दूसरे प्रकार से मुझसे पूरी करने की इच्छा की है परन्तु मैंने इस बारे मे अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त नही की है। इसके अतिरिक्त मेरे पापो के फल से मेरा शरीर भी नाग का है।" शाक्य ने उत्तर दिया कि "एक शब्द मे सब मामला समाप्त होता है। वह शब्द हृदय से निकला हुआ तथा स्वीकृति का होना चाहिए।" उसने कहा, "मैं बडे प्रेम से आपकी आज्ञा को

---

[१] यह वृत्तान्त चौथे अध्याय मे आवेगा।

[२] इस स्थान पर, चीनी भाषा का जो वाक्य है उसका अर्थ यह भी होता है कि उसने आकर उसका सिर दबाया या थपथपाया।

शिरोवार्य करूँगी फिर चाहे जो हो।" शाक्य युवक ने कहा "जो कुछ मेरा संचित पुण्य हो उसके बल से यह नागकन्या मनुष्य-स्वरूप हो जावे। वह स्त्री तुरन्त वैसी ही हो गई। अपने को इस तरह मनुष्य-स्वरूप में देख कर उस स्त्री की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और कृतज्ञता प्रकाश करती हुई उस शाक्य युवा से इस प्रकार कहने लगी कि "मै अपने पातक-पुञ्ज के प्रभाव से इस पतितोयोनि मे जन्म लेने के लिए बाध्य हुई थी, परन्तु प्रसन्नता की बात है कि आपके धार्मिक-पुण्य के बल से मेरा वह शरीर, जो मैं बहुत कल्पो से धारण करती आई थी, पल-मात्र मे परिवर्तित हो गया; मैं आ।की बडी कृतज्ञ हू। मै किसी प्रकार उस निस्सीम कृतज्ञता को प्रकाशित नही कर सकती, चाहे मैं अपने शरीर को भूमि ही पर क्यो न लुठार दूँ[1] (अर्थात् दडवते करूँ)। अब मुझको अपने माता-पिता से भेंट कर लेने दीजिए, फिर मै आपके साथ हूँ और आपकी आज्ञा का सब तरह पर पालन करूँगी।" फिर नागकन्या झील मे जाकर अपने माता-पिता से इस प्रकार कहने लगी, "अभी-अभी जब मै बाहर घूम रही थी मैं एक शाक्य युवक के निकट पहुंच गई और उसने अपने धार्मिक पुण्य के बल मे मेरा तन मनुष्य का सा कर दिया; अब वह मेरे साथ बडे प्रेम से विवाह किया चाहता है। यह सब सच्चा-सच्चा हाल आपके सम्मुख मैं उपस्थित करती हूं।" नागराजा अपनी कन्या को मनुष्य-तन मे देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और पुनीत जाति के प्रति भक्ति प्रदर्शित करके अपनी कन्या की बात म सहमत हो गया। फिर वह झील से निकल कर शाक्य युवक के निकट पहुंचा और बड़ी कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए प्रार्थना करने लगा, "आपने दूसरी जाति के जीवो के प्रति घृणा नही की और अपने से नीचे लोगो पर कृपा की है; मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मेरे स्थान पर पधारिये और मेरे तुच्छ सेवा को स्वीकार कीजिए।"

"शाक्य युवक नाग-राज के निमन्त्रण को स्वीकार करके उसके स्थान पर गया। नाग के समस्त परिवारवालो ने युवक की बडी आवभगत की और उसके मनोविनोद के लिए बडी भारी ज्योनार और उत्सव का समारोह किया। परन्तु अपने सत्कार करने-वालो के नागतन को देख कर वह युवक भयभीत और घृणायुक्त हो गया, तथा उसने जाने की इच्छा प्रकट की। नागराज ने उसको रोक कर कहा, "कृपा करके आप जाइए नही, निकटवर्ती मकान मे निवास कीजिए; मैं आपको इस भूमि का स्वामी और ऐसा

---

[1] इस स्थान पर यह भी अर्थ हो सकता है कि 'चाहे मेरा शरीर कूट-पीस कर बालू के कण के समान ही क्यो न कर डाला जाय तो भी मै आपसे उऋण नही हो सकती।'

नामी गरामी बना दूँगा कि जिससे आपकी कीर्ति का नाश न हो। ये सब लोग आपके सेवक रहेगे और आपका राज्य सैकडो वर्ष तक रहेगा।" शाक्य युवक ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि "मुझको आशा नही है कि आपकी वाणी पूरी हो।" तब नागराज ने एक बहुमूल्य तलवार लाकर एक बहुत सुन्दर सफेद रेशमी वस्त्र चढी हुई म्यान मे रक्खी और शाक्य युवक से कहने लगा, "अब आप कृपा करके राजा के पास जाइए और यह श्वेत रेशमी वस्त्र भेट कीजिए। एक दूर देशनिवासी व्यक्ति की भेट को राजा अवश्य स्वीकार करेगा। जैसे ही वह इसको ग्रहण करे वैसे ही तलवार को खीच कर उसे मार डालिए। इस तरह आप उसके राज्य को पा जायँगे। क्या यह उत्तम नही है?" शाक्य युवक नाग की शिक्षानुसार उद्यान के राजा के पास भेट लेकर गया। जैसे ही राजा ने उस श्वेत रेशमी वस्त्रवाली वस्तु को लेने के लिए हाथ बढाया युवक ने उसका हाथ पकड लिया और उसे तलवार मे टुकडे टुकडे कर दिया। कर्मचारी, मन्त्री और रक्षक लोगो ने बडा गुल-गपाडा मचाया और सब लोग घबडा कर उठ दौडे। शाक्य युवक ने अपनी तलवार को हिलाते हुए पुकार कर कहा, "यह तलवार जो मेरे हाथ मे है, दुष्टो को दण्ड और घमडियो को अधीन करने लिए नाग-देवता की दी हुई है।" दैवी शस्त्र से भयभीत होकर वे सब लोग उसके अधीन हो गये और उसको राजा बनाया। इसके उपरान्त उसने बुराइयो को हटा करके शान्ति स्थापन की और भलाई की बहुत सी बातें करके दुखियो को सुखी किया। इसके उपरान्त बहुत से सेवको को साथ लेकर अपनी सफलता की सूचना देने के लिए नागराज के स्थान को गया और वहाँ से अपनी स्त्री को साथ लेकर राजधानी को लौट आया।

नागकन्या के प्राचीन पापो के दूर न होने का प्रत्यक्ष प्रमाण अब तक वर्तमान था। जब राजा उसके समीप शयन करने जाता था नागकन्या के सिर से एक नाग नौ फनवाला बाहर निकला। शाक्य राजा यह दृश्य देख कर भय और घृणा से व्याकुल हो गया। केवल यही उपाय उससे बन पडा कि नागकन्या के सो जाने पर उसने उस नाग का सिर तलवार से काट लिया। नागकन्या भयातुर होकर जग पडी और कहने लगी कि "आपने बुरा किया इसका फल आपकी सन्तान की लिए अच्छा न होगा। इस समय जो थोडा सा कष्ट मुझको पहुचा है उसका प्रभाव यह होगा कि आपके बेटे और पोते शिर-वेदना से सदा पीडित रहेंगे"। उस समय से राजवश सदा इस रोग से पीडित रहता है। यद्यपि इस समय सब लोगो की यह दशा नही है तो भी प्रत्येक पीढी मे रोग से एक व्यक्ति पीडित अवश्य रहता है। शाक्य युवक की मृत्यु होने पर उसका पुत्र उत्तरसेन राज्य पर बैठा। जैसे ही उत्तरसेन गद्दी पर बैठा उसकी माता के नेत्र जाते रहे। इसके कुछ दिनो बाद भगवान् तथागत जिस समय अपलाल नाग को दमन करके

आकाश-मार्ग-द्वारा लौटे जा रहे थे रास्ते मे उसके महल मे उत्तर पड़े। उत्तरसेन उस समय शिकार को गया था, भगवान तथागत ने एक छोटा सा धर्मोपदेश उसकी माता को सुनाया। भगवान् के मुख से पवित्र धर्मोपदेश को सुनते ही उसके नेत्र फिर ठीक हो गये। तथागत ने तब उससे पूछा कि "तुम्हारा पुत्र कहाँ है ? वह मेरे वंश का है।" उसने उत्तर दिया कि "वह आज प्रात. समय शिकार को गया था, थोडी देर मे आता ही होगा।" जिस समय तथापत अपने सेवको-सहित जाने के लिए प्रस्तुत हुए राजमाता ने निवेदन किया कि "मेरे बडे भाग्य है कि मेरे पुत्र का सम्बन्ध पवित्र जाति से है, और उसी सम्बन्ध के दयावश भगवान् तथागत ने मेरे स्थान पर पदार्पण किया है; मेरी प्रार्थना है कि मेरा पुत्र आता ही होगा, कृपा करके थोडा और ठहर जाइए।" भग ान् ने उत्तर दिय कि 'तुम्हारा पुत्र मेरा वंशज है, सत्यधर्म पर विश्वास कराने और उसके जानने के लिए केवल उससे हाल कह देना यथेष्ट है। यदि वह मेरा सम्बन्धी न होता तो मैं उसकी शिक्षा के लिए अवश्य ठहर जाता, परन्तु अब मैं जाता हुँ। जब वह लौट आवे तब उससे कह देना कि यहाँ से तथागत कुशीनगर को गया है। जहाँ शालवृद्धों के नीचे वह प्राण त्याग करेगा। अपने पुत्र को भेज देना कि वह भी मेरे शरीरावयवो में से भाग ले आवे और उसकी पूजा करे।" फिर तथागत भगवान् अपने सेवको सहित आकाश-गामी होकर चले गये। इसके थोडी देर बाद उत्तरसेन राजा जिस समय शिकार खेलते-खेलते बहुत दूर निकल गया था उसने अपने महल की ओर बहुत प्रकाश देखा मानो आग लग गई हो। इस कारण सन्देहवश वह शिकार छोड कर अपने घर लौट आया। घर पर आकर अपनी माता के नेत्रो की ज्योति को ठीक देख कर वह आनन्द से फूल उठा और अपनी माता से पूछने लगा, "मेरी थोड़ी देर की अनुपस्थिति मे किस भाग्य के के बल से आपके नेत्रो मे सदा के समान प्रकाश आ गया ?" माता ने उत्तर दिया, "तुम्हारे शिकार खेलने जाने के उपरान्त भगवान् तथागत यहाँ पधारे थे, उनके उपदेशो को सुन कर मेरी दृष्टि ठीक हो गई। बुद्ध भगवान् यहाँ से कुशीनगर को गये है और वहाँ शालवृक्षो के नीचे प्राण त्याग करेगे। तुमको आज्ञा दे गये है कि शीघ्र उस स्थान पर जाकर भगवान के शरीरावयवो मे से कुछ भाग ले आओ।" राजा इन शब्दो को सुनते ही शोक से चिल्ला उठा और मूर्छित होकर गिर पडा। होश मे आने पर अपने अनुचर-वग को साथ लेकर उन शालवृक्षो के पास गया जहा भगवान् बुद्ध की स्वर्ग-यात्रा हुई थी। उस देश के राजाओ ने इसका यथोचित आदर नही किया और न उस बहु-मूल्य शरीरावयव मे से, जो अपने देश को लिये जा रहे थे, उसको भाग देना चाहा। इस पर सब देवताओ ने भगवान् बुद्ध की आज्ञा का वृत्तान्त उन लोगो को सुनाया तब राजा लोगो को ज्ञान हुआ और उन लोगो ने इसके सहित बराबर भाग बाँट लिया।

मुङ्गकियाली नगर से पश्चिमोत्तर एक पहाड पार करके और एक आटी में होते हुए हम सिटू[1] नदी पर पहुंचे। रास्ता पथरीला और ढालू है, पहाड और घाटियाँ अंधकारमय हैं। कही कही रस्सियो और लोहे की जंजीरो के सहारे चलना पडता है, और कहीं कही छोटे छोटे पुल और भूले लटके हुए हैं तथा ढालू कगारो पर चढने के लिए लकडी की सीढियाँ बनी हुई हैं। इस तरह पर अनेक प्रकार के कष्ट हैं जिनको झेलते हुए लगभग १,००० ली जाने पर हम टालीलो[2] नामक नदी की खोह मे पहुँचे। इस स्थान पर किसी सयय मे उद्यान-प्रदेश की राजधानी थी। इस प्रदेश में सोना और केशर अधिक होती है। टालीलो घाटी मे एक बडे संघाराम के निकट मैत्रेय बोधिसत्व[3] की एक मूर्ति लकडी की बनी हुई है। इसका रङ्ग सुनहरा और बहुत ही चमकदार है, देखने से आँखें चौंधिया जाती हैं। आश्चर्यदायक चमत्कारो के लिए भी यह प्रतिमा प्रसिद्ध है। इस मूर्ति की उँचाई लगभग १०० फीट है और मध्यान्तिक[4] अरहट की बनवाई हुई है। इस साधु ने अपने आध्यात्मिक-वल मे तीन बार एक मूर्तिकार को स्वर्ग (तुषित)

---

[1] सिंघुनद।

[2] कनिंघम साहब लिखते हैं, टालीलो या दारिल अथवा दारेल, यह एक घाटी सिंघुनद के दाहिने अथवा पश्चिमी किनारे पर है जिसमे दारिल नदी का जल बहता है। यहाँ पर कोई छ ग्राम दार्दस अथवा दार्द लोगो के हैं, इसी सबब से इसका यह नाम पडा है।

[3] भविष्य बुद्धदेव का नाम मैत्रेय है। इस बोधि का निवास आज-कल चौथे स्वर्ग मे, जिसका नाम तुषित है, बताया जाता है। हुएनसाग सरीखे सभी बौद्धो की इच्छा यही रहती है कि मरने पर इसी स्वर्ग मे जन्म प्राप्त करें। हाल मे जो लेख चीनवालो का बुद्ध- गया मे पाया गया है उसमे इस स्वर्ग के लिए इच्छा प्रकट की गई है।

[4] बौद्धो की उत्तरी संस्थावाले इसको आनन्द का शिष्य मानते हैं। तिब्बतवाले इसको तिमाही गंग कहते हैं। कुछ लोग इसको पहले पाँच महात्माओ मे मान कर आनन्द और शाणवास के मध्य मे स्थान देते हैं। परन्तु कुछ लोग इसको नही मानते। इस महात्मा के विषय मे लिखा है कि एक बार बनारसवाले भिक्षुओ की अधिकता से घबडा उठे थे; उस समय मध्यान्तिक उनमे से १० हजार भिक्षुओ को अपने साथ लेकर आकाश-द्वारा कश्मीर को चला आया था और वहाँ पर जाकर उसने बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था। फाहियान लिखता है कि बुद्धनिर्वाण के ३०० वर्ष पश्चात् मध्यान्तिक ने मैत्रेय की मूर्ति को बनवाया था।

भेजकर मैत्रेय भगवान् के स्वरूप को दिखला लिया था और उस मूर्तिकार ने उसी प्रकार की मूर्ति को बनाकर तैयार किया था। इसी मूर्ति के बनने के समय से पूर्वी देशो मे बोद्ध-धर्म का अधिक प्रचार हुआ।

यहा से पूर्व दिशा मे करारो पर चढ़कर और घाटियो को पार करके हम सिट्ठ नदी पर पहुँचे, और फिर झूलो की सहायता से तथा लकड़ी के तख्तो पर, जिन पर केवल पैर रखने की जगह होती है, चढ़कर करारो और खोहो को नाघते हुए लगभग ५०० ली जाने के उपरान्त हम 'पोलूलो' प्रदेश में पहुँचे।

'पोलूलो' (वोलर[1])

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ४००० ली है। यह हिमालय पहाड़ का मध्यवर्ती प्रदेश है। यह उत्तर से दक्षिण की ओर चौडा और पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बा है। यहाँ गेहूं, अरहर सोना और चाँदी उत्पन्न होती है। सोने की अधिकता होने के कारण लोग धनी हैं। जलवायु सर्वदा शीत रहता है। मनुष्यो का आचरण असभ्य और सज्जनता रहित है। दया न्य य और कोमलता का स्वप्न मे भी नाम नही सुनाई पड़ता। इनका रूप भद्दा और भौंडा होता है और ये लोग ऊनी वस्त्र पहिनते हैं। इनके अक्षर तो अधिकतर भा तवर्ष के समान है परन्तु भाषा कुछ विपरीत है। लगभग १०० संघाराम इस देश मे हैं जिनमे १००० साधु निवास करते है। ये साधु न तो विद्या पढ़ने ही में अधिक उत्साह दिखाते है और न आचरण ही शुद्ध रखते है। इस देश मे चल कर और उदखण्ड[2] को लौट कर दक्षिण दिशा मे हमने सिट्ठ नदी को पार किया। यह नदी लगभग तीन या चार ली चौड़ी है और दक्षिण-पश्चिम को बहती है। इसका जल उत्तम और स्वच्छ है, तथा जब यह नदी वेग से बहती है तब जल काँच के समान चमकने लगता है। विषैले नाग और भयानक जन्तु इसके किनारे की खोहो और दरारों

---

[1] कनिंघम साहब आज-कल के वल्टी, वल्टिस्टान अथवा छोटे तिब्बत को वोलर मानते है यूल साहब भी वोलर देश का निश्चय करते हैं परन्तु वह पामीर से पूर्व-उत्तर-पूर्व मानते हैं। प्राचीनकाल मे यह देश सोने के लिए प्रसिद्ध था।

[2] इसमें सन्देह नही कि यह सिंधुनद के दक्षिणी किनारे वाला 'ओहिन्द' अथवा 'वाहन्द' है; जो अटक से १६ मील है। अलबेरुनी इसको कंधार की राजधानी 'वेहन्द' मानता है।

मे भरे पडे हैं। यदि कोई व्यक्ति बहुमूल्य वस्तु या रत्न अथवा अलभ्य फूल फल और विशेष कर भगवान् बुद्ध का शरीरावयव अपने साथ लेकर नदी को पार करना चाहे तो नाव अवश्य लहर की तरंगो मे पड कर डूब जायगी।[१] नदी पार करके हम टचाशिलो राज्य मे पहुंचे।

टचाशिलो (तक्षशिला[२])

तक्षशिला का राज्य लगभग २००० ली विस्तृत है और राजधानी का क्षेत्रफल १० ली है। राज्यवश नष्ट हो गया है, बड़े-बड़े लोग वलपूर्वक अपनी सत्ता स्थापन करने में लगे रहते हैं। पहले यह राज्य कपिशा के अधीन था परन्तु थोडे दिन हुए जब से कश्मीर के अधिकार मे हुआ है। यह देश उत्तम पैदावार के लिए प्रसिद्ध है। फसलें सब अच्छी होती हैं। नदियाँ और सोते बहुत हैं। मनुष्य वली और साहसी हैं तथा रत्नत्रयी को मानने वाले हैं। यद्यपि संघाराम बहुत हैं परन्तु सबके सब उजडे और टूटे-फूटे हैं जिनमे साधुओ की संख्या भी नाम-मात्र को है। ये लोग महायान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

---

[१] जब ह्वेन साग लौटते समय इस स्थान पर नदी के पार उतरा था तब यही बात उसे भी झेलनी पडी थी। उसके पुष्प और पुस्तकें इत्यादि बह गई थी और वह डूबता डूबता बचा था।

[२] लौटते समय ह्वेन साग ने सिंधुनद से तक्षशिला तक तीन दिन का मार्ग लिखा है। फाहियान गान्धार मे यहाँ तक सात दिन का मार्ग लिखता है। सङ्गयन भी सिंधुनद के पूर्व इस स्थान तक की दूरी तीन दिन की बतलाता है। जनरल कनिंघम साहब इस नगर का स्थान शाहढेरी के निकट निश्चय करते हैं जो कालका-सराय से एक मील उत्तर-पूर्व है। इस स्थान पर बहुत से डीह हैं। लगभग ५५ स्तूपो से भग्नावशेष भी पाये गये है जिनमे से दो मानिक्याल स्तूप के बराबर बड़े है। लगभग २८ पक्के मकान और मन्दिरो का भी पता चला है। अपोलोनियस और डामिस साहबो के विषय मे भी प्रसिद्ध है कि उन्होने सन् ४५ ई० के लगभग तक्षशिला को देखा था फिलास्ट्रेटस लिखता है कि नगर के निकट एक मन्दिर था जिसमे पारस और सिकन्दर के युद्ध-सम्बन्धी चित्र बने हुए थे।

राजधानी के पश्चिमोत्तर लगभग ७० ली की दूरी पर नागराज इलापत्र[1] का तालाब है। इस तालाब का घेरा १०० कदम से अधिक नहीं है। पानी मीठा और उत्तम है। अनेक प्रकार के कमल-फूल जिनका सुहावना रङ्ग बहुत ही सुन्दर मालूम होता है किनारे की शोभा को बढ़ाते है। यह नाग एक भिक्षु था जिसने काश्यप बुद्ध के समय में इलापत्र वृक्ष का नाश कर दिया था। लोगो को जब कभी वृष्टि अथवा सुकाल होने की आवश्यकता पड़ती है तब वे अवश्य तालाब के किनारे श्रमण के पास जाते हैं और अपनी कामना निवेदन करने के उपरान्त उंगलियाँ चटकाते है। जिससे मनोरथ पूरा होता है। यह दस्तूर प्राचीन समय मे लेकर अब तक चला आता है।

नाग-तालाब के दक्षिण-पूर्व ३० ली जाने पर हम दो पहाड़ो के मध्यवर्ती रास्ते में पहुँचे जहाँ पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यह लगभग १०० फीट ऊँचा है। यही स्थान है जहाँ के लिए शाक्य तथागत ने भविष्यद्वाणी की थी कि "कुछ दिनो बाद जब भगवान् मैत्रेय अवतार धारण करेंगे, तब चार रत्नकोष भी प्रकट होगे जिनमे से कि यह उत्तम भूमि भी एक होगी। इतिहास से पता लगता है कि जब कभी भूडोल होता हे अथवा आस-पास के पहाड़ हिलने लगते है तब भी इस स्थान के चारो ओर १०० कदम तक पूर्ण निश्चलता रहती है। यदि मनुष्य मूर्खतावश इस स्थान को खोदने का उद्योग करते है तो पृथ्वी हिलने लगती है और खोदने वाले सिर के बल गिर कर धराशायी हो जाते है। स्तूप के बगल मे एक संघाराम उजाड दशा में है। बहुत समय से यह निर्जन है। एक भी साधु इसमें नही रहता। नगर के उत्तर १२ या १३ ली की दूरी पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। धर्मोत्सव के दिन यह स्तूप चमकने लगता है तथा देवता इस पर पुष्प वरसाते हैं और स्वर्गीय गान का शब्द सुनाई पडता है। इतिहास से पता चलता है कि प्राचीनकाल मे एक स्त्री भयानक कुष्ट रोग से अत्यन्त पीड़ित थी। वह स्त्री चुपचाप स्तूप के निकट आई और बहुत कुछ पूजा-अर्चा के उपरान्त अपने पापो की क्षमा माँगने लगी। उसने देखा कि स्तूप का खुला हुआ भाग विष्ठा और करकट से भरा हुआ है। इस कारण उसने उस

---

[1] नागराज इलापत्र का वृत्तान्त चीनी-बौद्ध पुस्तको मे बहुत मिलता है कर्निघम साहब निश्चय करते हैं कि हसन अब्दुल का सोता ही, जिसको बाबावली कहते है, ईलापत्र ड़ाग है। इसकी कथा मे लिखा है कि इस नाग ने अपने शरीर को बढ़ाकर तक्षशिला से बनारस तक फैला दिया था। इस कथा के अनुसार अनुमान होता हैं कि हसन अब्दुल जिस स्थान पर है वही पर तक्षशिला का नगर था। इस नगर का वर्णन महाभारत, हरिवंश और विष्णु पुराण मे भी आया है। इसको कश्यप और कद्रु का सुत लिखा है।

मलिनता को हटाकर अच्छी तरह पर स्थान को धोया पोछा और फूल तथा सुगंधित वस्तुओं को छिडक कर थोडे से कमल-पुष्प भूमि पर फैला दिए। इस सेवा के प्रभाव से उसका दारुण कुष्ठ दूर हो गया और सम्पूर्ण शरीर से मनोहरता की झलक तथा कमल-पुष्प को महक आने लगी। यही कारण है कि यह स्थान बडा सुगंधित है। प्राचीन समय मे भगवान् तथागत इस स्थान पर निवास करके बोधिसत्व अवस्था का अभ्यास करते थे। उस समय वह एक बडे प्रदेश के राजा थे और उनका नाम चन्द्रप्रभा था। बोधिदशा को बहुत शीघ्र प्राप्त करने की उत्कन्ठा से उन्होने अपने मस्तक को काट डाला था। यह भीषण कर्म उन्होने लगातार अपने एक हजार जन्मो तक किया था[1]। इस स्तूप के निकट ही एक संघाराम है जिसके चारो ओर की इमारत गिर गई है और घास-पात से आच्छादित है, भीतरी भाग मे थोडे से साधु निवास करते हैं। इस स्थान पर सौत्रान्तिक साम्प्रदायी[2] कुमारलब्ध शास्त्री ने प्राचीन समय मे कुछ ग्रन्थ निर्माण किये थे।

नगर के बाहर दक्षिण-पूर्व दिशा मे पहाड़ के नीचे एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा है। इस स्थान पर लोगो ने राजकुमार कुलंगन की जिसको अन्याय से उसकी सौतेली माता ने दोषी ठहराया था, आँखें निकलवा ली थी। यह अशोक राजा का बनवाया हुआ है। अंधे आदमी यदि विशेष विश्वास में इस स्थान पर प्रार्थना करते है तो अधिकतर आँखें पा जाते हे। यह राजकुमार बडी रानी का पुत्र था। इसका स्वरूप अत्यन्त मनोहर और आचरण सुशीलता और सौजन्य का आकर था। सयोगवश कुमार की माता का परलोकवास हो गया। उस समय उसकी स्थानापन्न रानी (कुमार की विमाता) ने जो बहुत ही व्यभिचारिणी और विवेकरहित थी, राजकुमार के सुन्दर स्वरूप पर मोहित होकर, अपनी घृणित इच्छा और मूर्खता को राजकुमार पर प्रकट किया। राजकुमार के नेत्रो मे आँसू भर आये और वह माता को झिडकी बताकर उस स्थान से उठ कर चला गया। विमाता को उसके व्यवहार पर क्रोध हो आया। जिस समय राजा का और उसका सामना हुआ उसने इस प्रकार राजा से निवेदन किया, "महाराज ने तक्षशिला का राज्य किसके सुपुर्द करना विचारा है ? आपका पुत्र

---

[1] वास्तव मे यह कथा तक्षशिर की है जैसा कि फाहियान और सुङ्गयान लिखते है। जिस व्यक्ति के लिए बोधिसत्व ने अपना शिर काट डाला था वह एक ब्राह्मण था।

[2] बैसलीफ साहब लिखते हैं कि बौद्धो की सौत्रान्तिक सम्प्रदाय धर्मोत्तर अथवा उत्तर धर्म के द्वारा स्थापित हुई थी। हीनयान-सम्प्रदाय की मुख्य दो शाखायें है जिनमे से एक यह है और दूसरी वैभाषिका-सम्प्रदाय है।

सेवा और सज्जनता के लिए प्रशंसित है। सब लोग उसकी भलमंसी की बड़ाई करते हैं। इस कारण यह राज्य उसी को दीजिए।" रानी के शब्दों में जो आन्तरिक कपट भरा हुआ था उसको राजा समझ गया और इस कारण वह उसके अधम कार्य में बहुत प्रसन्नता से सहमत हो गया।

इसके उपरान्त अपने बड़े पुत्र को बुला कर उसने इस प्रकार आज्ञा दी, "मैंने राज्य को अपने पूर्वजों से पाया है इस कारण मेरी इच्छा है कि मैं अपना उत्तराधिकारी उसी को नियत करूँ जो मेरे वशवर्ती रहे, जिसमें किसी प्रकार की त्रुटि होने का भय न रहे और न मेरे पूर्वजों की प्रतिष्ठा में ही बट्टा लगे। मुझको तुम पर सर्वथा विश्वास है इस कारण मैं तुमको तक्षशिला का राज्य सुपुर्द करता हूँ[1]। राज्यकार्य सँभालना बहुत कठिन काम है, तथा मनुष्यों का स्वभाव परस्पर विरुद्ध होता है इस कारण कोई भी काय शीघ्रतावश न करना जिससे तुम्हारी प्रभुता को हानि पहुँचे। जो कुछ आज्ञा समय-समय पर तुम्हारे पास मैं भेजूँ उसकी सत्यता मेरे दाँतों की मुहर देख कर निश्चय करना, मेरी मुहर मेरे मुँह में है जिसमें कभी भूल नहीं हो सकती।"

राजकुमार इस आज्ञा को पाकर उस देश को चला गया और राज्य करने लगा। इस प्रकार महीने पर महीने व्यतीत हो गये परन्तु रानी की शत्रुता में कमी नहीं हुई। कुछ दिनों बाद रानी ने एक आज्ञापत्र लिख कर उस पर लाल मोम से मुहर की और जब राजा सो गया तब उसके मुँह में बहुत सावधानी के साथ पत्र को रख कर दाँतों की छाप बना ली और उस पत्र को एक दूत के हाथ भेज दिया। मंत्री लोग पत्र को पढ़ते ही घबड़ा गये और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। राजकुमार ने उन लोगों की घबड़ाहट का कारण पूछा तब उन लोगों ने निवेदन किया कि "महाराज ने एक आज्ञापत्र भेजा है जिसमें आपको अपराधी बताया गया है और आज्ञा दी है कि 'राजकुमार के दोनों नेत्र निकाल लिये जावें और वह अपनी स्त्री-सहित जीवन-पर्यन्त पहाड़ों पर निवास करे।' यद्यपि इस प्रकार की आज्ञा लिखी है परन्तु हमको

---

[1] सिकन्दर की चढ़ाई के पचास वर्ष पश्चात् तक्षशिला के लोगों ने मगधदेश के राजा बिन्दुसार के प्रतिकूल विद्रोह किया था। जिस पर उसने अपने बड़े पुत्र 'सुसीम' को शान्ति स्थापन करने के लिए भेजा। उसके असमर्थ होने पर उसके छोटे पुत्र 'अशोक' ने जाकर सब को अधीन किया। अपने पिता के जीवनपर्यन्त 'अशोक' जाब में राजप्रतिनिधि के समान शासन करता रहा। जब फिर द्वितीय वार देश में विद्रोह हुआ तब अशोक ने अपने पुत्र 'कुणाल' को जो इस कथा का नायक है तक्षशिला का शासन-

ऐसा करने का साहस तब तक नही हो सकता जब तक हम राजा से फिर न पूछ लें। इसलिए उत्तर आने तक आप चुपचाप रहे।"

राजकुमार ने उत्तर दिया, "यदि मेरे पिता की आज्ञा मेरे वध करने की है तो वह अवश्य पालन की जानी चाहिये, इस पर राजा के दाँतो की छाप भी है जिससे इसकी सचाई मे कुछ भी सन्देह नही है, और न कुछ भूल होने का ही अनुमान किया जा सकता है।" इसके उपरान्त राजकुमार ने एक चाण्डाल को बुला कर अपनी आँखें निकलवा डाली और इधर-उधर अपने निर्वाह के लिए भिक्षाटन करने लगा। अनेक देशो में घूमता फिरता वह एक दिन अपने पिता के नगर में पहुँचा। अपनी स्त्री[1] के मुख मे वह सुन कर कि राजधानी यही है उसको बडा शोक हुआ। वह कहने लगा, "हा हन्त। कैसे-कैसे कष्ट मुझको भूख और शीत से उठाने पडते हैं। एक समय वह था जब मै राजकुमार था और एक समय आज है जब भिखारी हो गया हूँ। हा! किस तरह पर मैं अपने को प्रकट करके अपने अपराधो को, जो मुझ पर लगाये गये हैं, अप्रमाणित कर सकूँ? इसके उपरान्त वह बहुत कुछ प्रयत्न करके राजा के भीतरी महल मे पहुँचा और रात्रि के पिछले पहर जोर-जोर मे रोने लगा तथा विलाप-व्यंजक ध्वनि मे अपनी वीणा बजा-बजा कर बडा ही हृदयद्रावण गीत गाने लगा। राजा जो कोठे पर सोता था, इस शोक-भरे अद्भुत पद को सुनकर विस्मित हो गया और सोचने लगा कि वीणा के सुरो और आवाज से मुझको ऐसा मालूम होता है कि यह मेरा पुत्र है, परन्तु वह यहाँ क्यो आया?" उसने बहुत शीघ्रता के साथ अपने सेवक को इसका पता लगाने की आज्ञा दी कि यह कौन व्यक्ति है। सेवक ने राजकुमार को राजा के सामने लाकर खडा कर दिया। राजा उसकी यह दशा देखकर शोक से विकल हो गया और पूछने लगा, "किसने तुमको यह हानि पहुँचाई है? किसका यह नीच कर्म है जिसके कारण मेरे पुत्र की आँखें जाती रही? वह अब अपने किसी परिजन को नही देख सकता। हा शोक। क्या होने वाला है, हे परमात्मा! हे परमात्मा। यह कैसा भाग्य-परिवर्तन है?"

राजकुमार ने रोते हुए राजा को धन्यवाद दिया और कहने लगा कि 'अपने पूज्य पिता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यह स्वर्गीय दण्ड मुझको मिला है। अमुक वर्ष के अमुक मास की अमुक तिथि को अनायास मेरे पास एक पूज्य आज्ञा पहुँची। कोई उपाय बचाव का न होने के कारण मैं दण्डाज्ञा से विरोध करने का

---

[1] कुणाल की स्त्री का नाम कञ्चनमाला, माता का नाम पद्मावती और सौतेली माता का नाम तिष्यरक्षिता था। राजकुमार को लोग प्राय कुनाल भी कहते हैं।

साहस न कर सका।' राजा अपने मन में समझ गया कि यह सब चरित्र मेरी रानी का है इस कारण बिना किसी प्रकार की पूछ जाँच के उसने रानी को मरवा डाला।

इस समय 'बोधिवृक्ष'[1] के संघाराम में एक बड़ा महात्मा अरहट रहता था जिसका नाम 'घोष' था और जिसमें प्रत्येक वस्तु के सहज विवेचन की चतुर्गुण शक्ति थी तथा त्रिविद्याओं का पूर्ण विद्वान् था। राजा अपने अन्धे पुत्र को उसके पास ले गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करने के उपरान्त उसने प्रार्थना की कि 'कृपा करके ऐसा उपाय कीजिए जिसमें कि मेरे पुत्र को सूझने लगे।' उसने राजा की प्रार्थना को स्वीकार करके और लोगो को सम्बोधन करके यह आज्ञा दी कि 'कल मैं धर्म के कुछ गुप्त सिद्धान्तो को वर्णन किया चाहता हूँ इस कारण सब लोगो को अपने हाथ में एक-एक पात्र लेकर धर्म-ज्ञान सुनने के लिए और अपने-अपने अश्रुविन्दु उस पात्र में एकत्रित करने के लिए अवश्य आना चाहिये। दूसरे दिन उस स्थान मे स्त्री-पुरुषो के समूह के समूह चारो दिशाओं से आकर जमा हुए। जिस समय अरहट 'द्वादश निदान' पर व्याख्यान दे रहा था उस समाज मे कोई भी ऐसा श्रोता न था जिसके आँसुओ की धारा न चलती हो। वह सब अश्रुजल पात्रो मे एकत्रित होता रहा और धर्मोपदेश के समाप्त होने पर अरहट ने उन सब पात्रो के अश्रुजल को एक सोने के पात्र मे भर लिया फिर बहुत दृढता के साथ उसने यह प्रार्थना की, "जो कुछ मैंने कहा है वह बुद्ध भगवान् के अत्यन्त गुप्त सिद्धान्तो का निचोड है; यदि यह सत्य नही है, अथवा जो कुछ मैंने कहा है उसमें कुछ भूल है, तो प्रत्येक वस्तु ज्यों की त्यो बनी रहे, अन्यथा मरी कामना है कि इस अश्रुजल से आँखे धोने पर इस अन्धे आदमी मे अवलोकन शक्ति का समावेश हो।" उपदेश के समाप्त होने पर जैसे ही उसने अपनी आँखो को उस जल से धोया उसके नेत्रो मे दृष्टि-शक्ति आ गई।

फिर राजा ने मंत्रियो और उनके सहायको को अपराधी बना कर (जिन्होने उस आज्ञा का प्रतिपालन किया था) किसी का पद घटा दिया किसी को देश निकाला दिया, किसी को पदच्युत किया और कितनो को प्राणदण्ड दिया। दूसरे लोगो को (जिन्होने इस अपराध मे भाग लिया था) हिमालय पहाड़ की पूर्वोत्तर दिशावाले रेगिस्तान मे छुडवा दिया। इस राज्य से दक्षिण-पूर्व जाकर और पहाड तथा घाटियों को पार करके लगभग ७०० ली की दूरी पर हम साङ्गहोपुलो राज्य मे पहुंचे।

---

[1] यह सघाराम, जिस स्थान पर आज-कल बुद्धगया का मन्दिर है उसी स्थान पर था।

साङ्गहोपुलो (सिंहपुर[1])

यह राज्य लगभग ३५०० या ३६०० ली के घेरे मे है। इसके पश्चिम मे सिन्धु नदी है। राजधानी का क्षेत्रफल १४ या १५ ली है। यह पहाड की तराई मे बसी है। चट्टानें और कगार इसको चारो ओर से घेर कर इसको सुरक्षित बनाये हुए हैं। भूमि मे अधिक खेती नही होती है परन्तु पैदावार अच्छी है। प्रकृति ठंढी है मनुष्य भयानक साहसी तथा विश्वासघाती है। देश का कोई अपना शासक या राजा नही है, बल्कि कश्मीर का अधिकार है। राजधानी के दक्षिण मे थोडे फासले पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यद्यपि इसकी सुन्दरता का बहुत कुछ ह्रास हो गया है परन्तु अद्भुत चमत्कारो का निदर्शन समय-समय पर हो ही जाता है। इसके निकट ही एक उजाड सघाराम है जिसमे एक भी सन्यासी का निवास नही है। नगर के दक्षिण-पूर्व ४० या ५० ली की दूरी पर एक पत्थर का स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ लगभग २०० फीट ऊंचा रक्खा है। यहाँ दस तालाब हैं जो गुप्त-रूप मे परस्पर मिले हुए है। इनके दाहिने और बायें जो पत्थर बिछे हुए हैं उनका अद्भुत स्वरूप है और वे अनक प्रकार के है। जल स्वच्छ है, कभी-कभी लहरें बडे वेग और शब्द से उठने लगती हैं। तालाबो के किनारे की गुफाओ और गढों मे तथा पानी के भीतर बहुत से नाग और मछलियाँ रहती हैं। चारो रंग के कमल-पुष्प निर्मल जल को आच्छादित किये रहते हैं। सैकडो प्रकार के फलदार वृक्ष इनके चारो ओर लगे हुए हैं जिनकी शोभा अकथनीय है। ऐसा मालूम होता है कि वृक्षो की परछाईं जल के भीतर तक धसी चली जाती है। तात्पर्य यह कि स्थान बहुत ही मनोहर और दर्शनीय है। इसके पार्श्व मे एक सघाराम हे जो बहुत दिनो से शून्य पड़ा है। स्तूप के बगल मे

---

[1] तक्षशिला से सिंहपुर की दूरी ७०० ली अर्थात् १४० मील, जैसा कि ह्वेनसाग ने लिखा है, अनुमान से यह स्थान टको (Toko) अथवा नरसिंह के निकट होना चाहिए। परन्तु यह स्थान मैदान मे है और ह्वेनसाग इसको पहाडी अथवा पहाड का निकटवर्ती स्थान लिखता है, इस कारण इस स्थान को 'सिंहपुर' मानना उचित नही है। इसी प्रकार मारटीन साहब का 'संगोही' स्थान भी नही माना जा सकता। कनिंघम साहब खेतास अथवा खेताक्ष को यह स्थान निश्चय करते हैं जिसके पवित्र तीर्थों मे अब भी अगणित यात्री यात्रा करके स्नान-दान किया करते हैं। परन्तु इस स्थान की दूरी कदाचित् दूनी के लगभग है। अस्तु जो कुछ हो, या तो ह्वेनसाग की लिखी दूरी गलत है या अभी तक स्थान का ठीक पता नही चला है।

थोड़ी दूर पर एक स्थान है जहाँ श्वेताम्बर[1] साधु को सिद्धान्तो का ज्ञान हुआ था और उसने सबसे पहले धर्म का उपदेश दिया था। इस बात का सूचक एक लेख भी यहाँ लगा है। इस स्थान के निकट एक मन्दिर देवताओ का है। इस मन्दिर से सम्बन्ध रखने वालो को बड़ी कठिनाई का सामना करना पडता है परन्तु वे लोग रातदिन लगातार परिश्रम कि‌ा करते हैं, जरा भी ढील नही होने देते। इन लोगो ने अधिकतर बौद्ध-पुस्तकों मे से सिद्धान्तो को उड़ाकर अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया है। ये लोग अनेक श्रेणी के हैं और अपनी-अपनी श्रेणी के अनुसार नियम और धर्म को अलग अलग बनाये हुए है। जो बड़े हैं वे भिक्षु कहलाते है, और जो छोटे हैं वे श्रमणेर कहलाते हैं। इनका चरित्र और व्यवहार अधिकतर बौद्ध-संन्यासियो से समान है, केवल इतना भेद है कि ये लोग अपने सिर पर चोटी रखते है और नंगे रहते है। यदि कपडा पहनते हैं तो वह श्वेत रंग का होता है। बस यही थोडा सा भेद इनमे और दूसरे लोगो मे है। इनके देवताओ की मूर्तियाँ भी आकार प्रकार में सुन्दर तथागत भगवान् के समान सुन्दर हैं, केवल पहनावे मे भेद है[2]।

इस स्थान से पीछे लौटकर, तक्षशिला की उत्तरी हद पर सिन्धु नदी पार करके और दक्षिण-पूर्व २०० ली जाकर हमने एक पत्थर के फाटक को पार किया। यह वह स्थान है जहाँ पर राजकुमार महासत्व[3] ने प्राचीन काल में अपने शरीर को एक भूखी बिल्ली को खिला दिया था। इस स्थान के दक्षिण ४० या ५० कदम की दूरी पर एक पत्थर का स्तूप है। इसी स्थान पर महासत्व ने, उस पशु को भूख से आसन्नमरण अवस्था मे पाकर दयावश अपने शरीर को बाँस के खपाँच से नोच डाला था और अपने रक्त से उस पशु का पालन किया था, जिससे कि वह फिर जीवित हो गया था। इस स्थान की समस्त भूमि और वृक्षावली रुधिर के रंग से रँगी हुई है तथा भूमि के भीतर खोदने से काँटेदार कीले निकलती है। यह स्थान ऐसा करुणोत्पादक है कि यहाँ इस बात का प्रश्न ही नही उठता कि इस कथा पर विश्वास किया जाय या नही। इस स्थान से उत्तर को एक पत्थर का स्तूप[4] अशोक राजा का बनवाया हुआ

---

[1] यह जैनियो की एक शाखा है।

[2] अर्थात् जैनियो की मूर्तियाँ नंगी रहती हैं सो भी दिगम्बर जैन लोगो की।

[3] हार्डी साहब की मैनवल ने इस कथा का उल्लेख है; परन्तु उसमे बोधिसत्व ब्राह्मण लिखा है, ह्वेनसाग उसी को राजकुमार लिखता है।

[4] इस स्तूप को जनरल कनिंघम साहब ने खोज निकाला है; यहाँ की भूमि अब तक लाल रंग की है।

२०० फीट ऊँचा है। यह अनेक प्रकार की मूर्तियो से सुसज्जित और बहुत मनोहर बना हुआ है। समय-समय पर अद्भुत चमत्कार परिलक्षित होते रहते हैं। लगभग १०० छोटे-छोटे स्तूप और भी हैं जिनके पत्थरो के आलो मे चल मूर्तियाँ स्थापित है। रोगी लोग जो इस स्थान के चारो ओर प्रदक्षिणा करते हैं अधिकतर अच्छे हो जाते है। स्तूप के पूर्व एक संघाराम है जिसमे कोई १०० संन्यासी महायान-सम्प्रदाय के अनुयायी निवास करते हैं। यहाँ से ५० ली पूर्व दिशा मे जाकर हम एक पहाड के निकट आये जहाँ पर एक सघाराम २०० साधुओ समेत है। ये सब महायान-सम्प्रदायी है। फूल और फल बहुत हैं तथा सोतो और तालाबो मे पानी बहुत स्वच्छ है। इस सघाराम की बगल मे एक स्तूप ३०० फीट ऊँचा है। प्राचीन समय मे इस स्थान पर तथागत भगवान् ने निवास करके एक यक्ष का माँस-भक्षण छुडा दिया था।

यहाँ से ५०० ली जाने पर पहाड के किनारे-किनारे दक्षिण-पूर्व दिशा मे हम 'उलशी' प्रदेश मे पहुँचे।

उलशी (उरश[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग २००० ली है। पहाड और घाटियो का प्रदेश भर मे जाल विछा हुआ है। खेती के योग्य भूमि पर बस्तियाँ बसी हुई है। राजधानी का क्षेत्रफल ७-८ ली है। यहाँ का कोई राजा नही है बल्कि कश्मीर का अधिकार है। भूमि जोतने और बोने के योग्य हे, परन्तु फल-फूल विशेष नही होते। वायु मन्द और अनुकूल है, हिम और पाला नही है। लोगो मे सुधार की आवश्यकता है। इनका आचरण कठोर और स्वभाव दुष्ट है। धोखेबाजी का बहुत चलन है। बौद्ध-धर्म पर इनका विश्वास नही है। राजधानी के दक्षिण-पश्चिम ४ या ५ ली की दूरी पर एक स्तूप २०० फीट ऊँचा, अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इसकी बगल मे एक संघाराम है जिसमे महायान-सम्प्रदायी थोड़े से साधु निवास करते हैं।

यहाँ से दक्षिण-पूर्व जाकर, पहाड़ो और घाटियो को नाँघते तथा पुलो की

---

[1] यह स्थान हजारो मे एक है। महाभारत मे एक नगर का नाम 'उरगा' आया है, कदाचित् उसी का अपभ्रंश 'उरश' है। राज-तरंगिणी मे उरशा लिखा हुआ है। पाणिनि ने भी इसकी राजधानी का नामोल्लेख ४-१ १५४ और १७८ और ४-२-४२ और ४-३-९३ मे किया है।

शृङ्खला पार करते हुए लगभग २००० ली की दूरी पर हम कश्मीर[1] प्रदेश में पहुँचे।

कियाशीमिलो (कश्मीर)

कश्मीर-राज्य का क्षेत्रफल लगभग ७००० ली है। इसके चारो ओर पहाड हैं। ये पहाड बहुत ऊँचे है। पहाड़ों में होकर जो दर्रे गये है वे बहुत ही तंग और पतले हैं। निकटवर्ती राज्यो ने चढाई करके कभी भी इसको विजय नही कर पाया है। राजधानी उत्तर से दक्षिण १२ या १३ ली और पूर्व से पश्चिम ४ या ५ ली विस्तृत है, तथा इसकी पश्चिमी हद पर एक बड़ी नदी बहती हे। भूमि अन्नादि के लिए जिस प्रकार उपजाऊ है उसी प्रकार फल-फूल भी बहुत होते हैं। घोड़े, केशर और अन्यान्य औषधियाँ भी अच्छी होती हैं।

जलवायु अत्यन्त शीत है। बर्फ अधिक पड़ती है परन्तु वायु विशेष जोर की नही चलती। लोग चर्म-वस्त्र को सफेद अस्तर लगाकर धारण करते है। ये लोग स्वभाव के नीच, ओछे और कायर होते हैं। इस प्रदेश की रक्षा एक नाग करता है इस कारण निकटवर्ती देशो के लोग इसकी बडी प्रतिष्ठा करते हैं। मनुष्यो का स्वरूप सुन्दर परन्तु मन कपटी है। ये लोग विद्याव्यसनी और सुशिक्षित हैं। बौद्ध और भिन्न-धर्मावलम्बी दोनो प्रकार के लोग बसते है। लगभग १०० सघाराम और ५००० संन्यासी हैं। तथा चार स्तूप राजा अशोक के बनवाये हुए हैं। प्रत्येक स्तूप मे तथागत भगवान् का शरीरावशेष विराजमान है। देश के इतिहास से पता चलता है कि किसी समय में यह प्रान्त नागो की झील था। प्राचीन समय मे, बुद्ध भगवान् जब उद्यान-प्रदेश के दुष्ट नाग को परास्त करके मध्य भारत को लौटे जा रहे थे, उस समय वायु-द्वारा गमन करते हुए इस प्रदेश के ऊपर भी पहुँचे। तब उन्होने आनन्द से इस प्रकार भविष्यद्वाणी की थी, "मेरे निर्वाण के पश्चात् मध्यान्तिक अरहट इस भूमि मे एक राज्य स्थापित करेगा और अपने ही प्रयत्न मे यहाँ के लोगो में सभ्यता का प्रचार करके बौद्ध-धर्म फैलावेगा।" निर्वाण के पाँचवें वर्ष आनन्द के शिष्य मध्यान्तिक अरहट ने छहो आध्यात्मिक शक्तियो (षडाभिजन) और अष्ट विमोक्षाओ को प्राप्त करके बुद्ध की भविष्यवाणी का पता पाया। जिससे उसका चित्त प्रसन्न हो गया और उसने इस देश का सुधार करना चाहा। एक दिन वह शान्ति के साथ एक पहाड़ के चट्टान

---

[1] कहा जाता है कि प्राचीनकाल मे कश्मीर का राज्य बहुत बड़ा था, और इसका नाम कश्यपपुर था।

पर बैठकर अपना आध्यात्मिक वल प्रकाशित करने लगा। नाग इसके प्रभाव को देखकर विस्मित हो गया और बड़ी भक्ति के साथ प्रार्थना करने लगा कि 'आपकी क्या कामना है।' अरहट ने उत्तर दिया कि मैं तुमसे भील के मध्य मे अपनी जाँघ वरावर जगह वैठने भर को चाहता हूँ। इस पर नागराज ने थोडा सा पानी हटा कर उसको जगह दे दी। अरहट ने अपने आध्यात्मिक वल से अपने शरीर को इतना अधिक वढाया कि नागराज को भील का सम्पूर्ण जल हटा देना पडा। जिसने कि भील सूख गई। तव नागराज ने अपने रहने के लिए स्थान की प्रार्थना की। अरहट ने उत्तर दिया, "यहाँ से पश्चिमोत्तर दिशा मे एक चश्मा लगभग १०० ली के घेरे मे है। इस छोटे से तालाव मे तुम और तुम्हारी सन्तति आनन्द से निवास कर सकते हैं।" नाग ने फिर प्रार्थना की कि "मेरी भूमि और भील दोनो समान-रूप से वदल गये हैं इस कारण मेरी प्रार्थना है कि आप मुझको अपना दास जान कर ऐसा प्रवन्ध कर दीजिए जिसमे मैं आपकी पूजा कर सकूँ।" मध्यान्तिक ने उत्तर दिया कि "थोडे ही दिनो मे मैं अनुपाधिशेष निर्वाण को प्राप्त करूँगा। यद्यपि मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हारी प्रार्थना को पूर्ण करू परन्तु ऐसा करने मे असमर्थ हूँ।" नाग ने फिर प्राथना की कि "यदि ऐसा है तो यह प्रवन्ध कीजिए कि ५०० अरहट, जव तक वौद्ध-धर्म संसार मे है तव तक, मेरी भेंट-पूजा को ग्रहण करते रहे। वौद्ध-धर्म के जाते रहने पर मुझको आज्ञा मिले कि मैं फिर इस देश मे लौट आ सकूँ और उसी तरह निवास करता रहूँ जिस तरह कि भील मे करता आया हूँ।" मध्यान्तिक ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

फिर अरहट ने इस भूमि पर, जिसको उसने अपने आध्यात्मिक वल से प्राप्त किया था, ५०० संघाराम स्थापित किये और अन्यान्य प्रदेशो से वहुत से दीन पुरुष क्रय करके यहाँ के सन्यासियो की सेवा के लिए नियत कर दिये। मध्यान्तिक के स्वर्गवास होने पर वही सेवक लोग इस भूमि के स्वामी हो गये, परन्तु अन्यान्य प्रदेशो के लोग इन दासो से घृणा करते थे इनकी समाज मे नही जाते थे और इनको क्रितीय[1] के नाम से सम्वोधन करते थे। इन दिनो यहाँ वहुत से सोते फूट निकले हैं। (जिससे धर्म का ह्रास होना विदित होता है।) तथागत भगवान् के निर्वाण के सौवें वर्ष मे मगधराज[2]

[1] विष्णु पुराण मे लिखा है कि वर्णसंकर और दूसरे प्रकार के शूद्र लोग सिंधुनद, डारविका देश, चन्द्रभागा और कश्मीर में राज्य करेंगे।

[2] ह्वेनसाग अशोक को वुद्धदेव से सौ वर्ष पीछे लिखता है, परन्तु स्वयं अशोक के लेख से पता चलता है कि उससे २२१ वर्ष पहले वुद्धदेव थे। अवदानशतक से भी यही वात पुष्ट होती है कि अशोक वुद्धदेव से दो सौ वर्ष पीछे हुआ था।

अशोक का प्रभाव सम्पूर्ण संसार मे फैल रहा था। दूर-दूर तक के लोग उसका सम्मान करते थे। यह राजा रत्नत्रयी का जिस प्रकार भक्त था उसी प्रकार प्राणि-मात्र से दया और प्रेम का व्यवहार रखता था। उस समय लगभग पाँच सौ अरहट और पाँच सौ अन्य साधु ऐसे महात्मा थे जिनकी प्रतिष्ठा समान-रूप से राजा को करनी पड़ती थी। इन दूसरे प्रकार के साधुओ में एक व्यक्ति महादेव नामक बहुत ही बड़ा विद्वान् और प्रतिभाशाली था। इसने अपनी वानप्रस्थावस्था मे ऐसे सिद्धान्तो की एक पुस्तक लिख कर जो बौद्ध-धर्म के बिल्कुल विपरीत थे, बड़ी प्रसिद्धि पाई थी। जो कोई उन सिद्धान्तो को सुनता था अवश्य उसका चेला हो जाता था। अशोक राजा केवल दुष्टो को दण्ड देना तो अच्छी तरह जानता था परन्तु महात्मा और सर्वसाधारण मे क्या भेद है इससे नितान्त अपरिचित था। इसलिए वह भी महादेव के बहकाये मे आ गया और उसने सब बौद्ध संन्यासियों को सभा के बहाने गंगा किनारे बुला कर डुबा देना चाहा। इस समय अरहट अपने प्राणो को संकट मे देख कर आध्यात्मिक बल से आकाशगामी होकर चले गये और देश मे आकर पहाडो और घाटियो मे छिप रहे। अशोक राजा को तब बहुत पछतावा हुआ और अपने अपराधों की क्षमा माँगता हुआ वह इस बात का प्रार्थी हुआ कि वे लोग अपने-अपने स्थानो को लौट चले। परन्तु अरहट अपने विचार के पक्के थे इससे नही लौटे। तब अशोक ने उन लोगों के लिए पाँच सौ संघाराम बनवा कर सारा प्रदेश साधुओं को दान कर दिया। तथागत भगवान् के निर्वाण के चार सौ वर्ष पश्चात् गंधार-नरेश महाराज कनिष्क राज्य का स्वामी हुआ। उसकी प्रभुता दूर-दूर तक फैल गई थी और बहुत दूर-दूर के देश उसके अधीन हो गये थे। अपने धार्मिक कामो मे वह पुनीत बौद्ध-पुस्तको का आश्रय लेता था तथा उसकी आज्ञा से नित्य एक बौद्ध-संन्यासी उसके महल मे जाकर धर्मोपदेश सुनाया करता था। परन्तु बौद्ध-धर्म के जो अनेक भेद हो गये थे और उनमे जो परस्पर अनैक्य था उसके कारण उसका विश्वास पूरे तौर पर जमता नही था और न इस भेद के दूर करने का कोई उपाय उसकी समझ मे आता था "उस समय महात्मा पार्श्व ने उसको समझाया कि "भगवान् तथागत को संसार परित्याग किए हुए बहुत से वर्ष और महीने व्यतीत हो गये, उस समय से लेकर अब तक कितने ही महात्मा विद्वान् उत्पन्न हो चुके हैं जिन्होने अपने-अपने ज्ञानानुसार अनेक पुस्तकें लिख कर अनेक सम्प्रदाय स्थापित कर दिये हैं; यही कारण है कि बौद्ध-धर्म टुकड़े-टुकड़े होकर बँट गया है।" राजा को इस बात से बहुत संताप हुआ। थोड़ी देर के बाद उसने पार्श्व से कहा कि "यद्यपि मैं अपनी बड़ाई नही करता हूँ, परन्तु मैं उस ज्ञान को जिसका मेरा साथ बौद्ध भगवान् के समय से लेकर आज तक प्रत्येक जन्म मे रहा है और जिसके बल से मैं इस

समय राजा हुआ हूँ, धन्यवाद देकर इस बात का साहस करता हूँ कि मैं अवश्य ऐसा प्रयत्न करूंगा कि जिससे शुद्ध धर्म का प्रचार संसार मे बना रहे। इस कारण मैं ऐसा प्रबन्ध करूगा जिससे प्रत्येक सम्प्रदाय मे तीनो पिट्कों की शिक्षा होती रहे।" महात्मा पार्श्व ने उत्तर दिया "आपने अपने पूर्व-पुण्य से महाराज का पद पाया है इस कारण मेरी भी सर्वोपरि यही इच्छा है कि आपका अटल विश्वास बौद्ध-धर्म मे बना रहे।"

इसके उपरान्त राजा ने दूर और पास के सब विद्वानो को बुला भेजा। चारो दिशाओं से हजारो मील चल कर बडे-बडे विद्वान् और महात्मा वहाँ पर आकर जमा हुए। सात दिन तक उन लोगो का सब तरह पर सत्कार करके राजा ने इस बात की इच्छा प्रकट की कि वास्तविक धर्म का निरूपण किया जावे। परन्तु इतनी बडी भीड मे शास्त्रार्थ होने से अवश्य गुलगपाड़ा अधिक मचेगा इस कारण उसने आज्ञा दी कि "जो लोग अरहट हैं वे ठहरें और जो अभी सासारिक क्लेश मे फँसे हुए हैं वे सब चले जावें" फिर भी भीड कम न हुई तब उसने दूसरी आज्ञा निकाली "जो लोग पूर्ण विद्वान् हो चुके है वही लोग ठहरें और जो अभी विद्याभ्यास मे लगे हुए हैं वे लोग चले जावें।" फिर भी अभी बहुत भीड थी। तब राजा ने यह आज्ञा दी कि 'जो लोग 'त्रिविद्या' और 'षडभिजन' को प्राप्त कर चुके हैं वही लोग ठहरें और शेष चले जावें।' अब भी जितने लोग रह गये थे उनकी संख्या अगणित थी। तब राजा ने यह नियम किया कि 'जो वित्रपिट्क और पञ्च महाविद्या[१] मे पूर्ण निपुण है उनको छोड कर शेष लोग लौट जावें।' इस तरह पर ४९९ आदमी रह गये। उस समय राजा की इच्छा सब लोगो को अपने देश मे ले चलने की हुई क्योंकि यहाँ की सर्दी गरमी से राजा बहुत क्लेशित था। उसकी यह भी इच्छा थी कि राजगृही की गुफा[२] को चलें जहाँ पर काश्यप ने धार्मिक समाज किया था। महात्मा पार्श्व तथा अन्य महात्माओं ने सलाह करके यह कहा कि 'हम वहाँ नही जा सकते क्योंकि वहाँ पर बहुत से भिन्नधर्मावलम्बी विद्वान् हैं, जो अनेक शास्त्रो का मनन किया करते हैं, उन लोगो से सामना हो जायगा, जिसमे व्यथ का झगडा होने के अतिरिक्त और कोई फल नही होगा। जब तक निश्चिन्ताई के साथ किसी विषय पर विचार न किया जाय, उपयोगी पुस्तक नही बन सकती। सब विद्वानो का चित्त इस प्रदेश मे रमा हुआ है। यह भूमि चारो ओर मे पहाडो से घिरी तथा यक्षा-द्वारा सुरक्षित है। सब वस्तु उत्तमता

---

[१] पंच महाविद्या ये हैं (अ) शब्दविद्या अर्थात् व्याकरण (इ) अध्यात्मविद्या (उ) चिकित्साविद्या (ऋ) हेतुविद्या (ऌ) शिल्पस्थानविद्या।

[२] कदाचित् सप्तपर्णं गुफा।

के साथ उत्पन्न होती है, जिससे खाने-पीने की भी कोई असुविधा नही है। यही स्थान है जहाँ पर विद्वान् और बुद्धिमान् लोग निवास करते हैं, तथा महात्मा, ऋषि विचरण करते और विश्राम करते हैं।' परन्तु अन्त में सब लोगों को राजा की इच्छा के अनुसार कार्य करना ही पड़ा। राजा सब अरहटों-समेत वहाँ से चल कर उस[1] स्थान पर गया जहाँ पर उसने एक मन्दिर इस निमित्त बनवाया था कि सब लोग एकत्रित होकर विभाषा-शास्त्र की रचना करें। महात्मा वसुमित्र द्वार के बाहर कपड़े पहिन रहा था। अरहटो ने उससे कहा कि 'तुम्हारे पातक अभी दूर नही हुए हैं इस कारण तुम्हारा शास्त्रार्थ मे योग देना अनुचित और व्यर्थ है, तुम यहाँ मत आओ, इस पर वसुमत्रि ने उत्तर दिया कि 'बुद्धिमान् लोग भगवान् बुद्ध के स्वरूप को जितना आदर देते हैं उतना आदर इनके धार्मिक सिद्धान्तो को भी देते हैं क्योकि उनके सिद्धान्त संसार भर को शिक्षा देने वाले हैं। इस कारण उन सत्य सिद्धान्तो को संग्रह करने का विचार आप लोगो का बहुत उत्तम है। अब रही मेरी बात, सो मैं यद्यपि पूर्णतया नही तो भी थोड़ा बहुत शास्त्रीय शब्दो के अर्थो को जानता हूं। मैंने त्रिपिट्क के गूढ से गूढ सूत्रों को और पंच महाविद्या के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो को बड़े परिश्रम से अध्ययन किया है। जो कुछ गुप्त भाव इन पुनीत पदार्थो मे भरा है वह सब मैने अपनी तीव्र बुद्धिमत्ता से प्राप्त कर लिया है।'

अरहटो ने उत्तर दिया, "यह असम्भव है; और यदि यह सत्य भी हो तो तुमको कुछ समय तक ठहर कर जो कुछ तुमने पढा है उसका फल प्राप्त करना चाहिए और तब इस समाज मे प्रवेश करना चाहिए। अभी तुम्हारा सम्मिलित होना असम्भव नही है।"

वसुमित्र ने उत्तर दिया कि 'मैं पूर्वपठित विद्या के फल को बहुत ही श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण समझता हूं। मेरा मन केवल बौद्ध-धर्म के फल की चाहना करता है, इन छोटी-छोटी वस्तुओं की ओर नहीं दौड़ता। मैं अपनी इस गेंद को आकाश में उछालता हूं जितनी देर मे यह लौटकर भूमि तक आवेगी उतनी दर में मुझको पूर्वपठित विद्या का सब फल प्राप्त हो जायगा।'

इस पर अरहटो ने चारो ओर से धुड़क-घुड़क कर कहना आरम्भ किया कि 'वसुमित्र! तू पहले सिरे का घमंडी है। पूर्वपठित विद्या का फल प्राप्त करना सब

[1] यहाँ पर मूल में कुछ गड़बड़ है। राजा कहाँ गया जहाँ पर उसने मन्दिर बनवाया था यह स्पष्ट नहीं है।

बौद्धो का माननीय सिद्धान्त है, परन्तु तुम उसको कुछ भी नही गिनते इस लिए तुमको अवश्य यह फल प्राप्त करके दिखा देना चाहिए जिसमे सब का सन्देह जाता रहे।'

तब वसुमित्र ने अपनी गेंद को ऊपर फेंका जिसको देवताओं ने ऊपर ही रोक कर उससे यह प्रश्न किया कि बौद्ध-धर्म का फल प्राप्त करने के कारण तुम स्वर्ग मे मैत्रेय भगवान् के स्थानापन्न होगे, तीनो लोको मे तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी और चारो प्रकार के प्राणी तुम्हारा भय मानेंगे; फिर तुम इस तुच्छ फल के प्राप्त करने की क्या इच्छा करते हो ?

यह हाल देख कर सब अरहटो ने अपने अपराधो की क्षमा मांग कर और भक्ति-पूर्वक प्रार्थना करके वसुमित्र को सभापति बनाया। इन लोगो के शास्त्रार्थ मे जो कुछ कठिनाइयाँ पडी उनका निर्णय वसुमित्र करते थे। इन पाँचो से विद्वान् महात्माओ ने पहले सूत्रपिट्टक को सुस्पष्ट करने के लिए उपदेश शास्त्र को दस हजार श्लोको मे बनाया। उसके उपरान्त विनयपिट्टक सुस्पष्ट करने के लिए दस हजार श्लोको मे विनय-विभाषा शास्त्र को लिखा, तदनन्तर 'अभिधर्मपिट्टक' को सुस्पष्ट करने के लिए दस हजार श्लोको मे अभिधर्मविभाषा शास्त्र का निर्माण किया। इस प्रकार छ. लाख साठ हजार शब्दो मे ३० हजार श्लोक तीनो पिट्टको के भाष्य-स्वरूप निर्माण किये गये। ऐसा उत्तम कार्य कभी भी इसके पहले नही हुआ था जो बडे स बडे और छोटे से छोटे प्रश्न को उत्तमता के साथ प्रकट कर सके। संसार भर मे इस कार्य की प्रशंसा हुई और विद्यार्थियो को इनके पढने और समझने मे सुगमता हो गई।

कनिष्क राजा ने इन सब श्लोको को ताम्रपत्रो पर लिखवा कर एक पत्थर की सन्दूक मे बन्द करके उस पर मुहर कर दी, और फिर एक स्तूप बनवा कर बीच मे उस सन्दूक को रखवा दिया। यक्ष लोगो को आज्ञा हुई कि वे लोग रक्षा करे जिसमे कोई विधर्मी इन शास्त्रो तक पहुंच कर चुरा न सके। और इस देश के रहने वाले ही इस परिश्रम के फल से लाभ उठाते रहे।

इस पुनीत कर्म को करके राजा सेना-सहित अपनी राजधानी को चला गया[1]। इस देश के पश्चिमी फाटक से निकल कर और पूर्व की ओर मुख करके खड़े होकर राजा ने दण्डवत् की और इस प्रदेश को फिर से संन्यासियो को दान कर दिया।

कनिष्क के मरने पर क्रीत्य जाति ने फिर अपना अधिकार जमा लिया और पुरोहितो को खदेड कर धर्म का तहस-नहस कर डाला।

---

[1] कनिष्क की राजधानी गन्धार प्रदेश मे थी।

तुषार-प्रदेश के हिमतल स्थान का राजा शाक्य-वंश[1] का था; बुद्ध निर्वाण के छः सौ वर्ष बाद यह अपने पूर्वजो के राज्य का स्वामी हुआ था। इसका चित्त बौद्ध-सिद्धान्तो के प्रेम से भलीभाँति रँगा हुआ था। जिस समय उसको यह वृत्तान्त मालूम हुआ कि क्रीत्य लोगो ने बौद्ध-धर्म को कश्मीर प्रदेश से दूर कर दिया है उस समय अपने तीन हजार बड़े-बड़े वीर सरदारो को इकट्ठा करके और सबका सौदागरो का सा भेष बनाकर यह इस देश की ओर प्रस्थानित हुआ।

ये लोग प्रकट-रूप से अगणित और बहुमूल्य सौदागरी की वस्तुएँ और गुप्त-रूप से लड़ाई के अस्त्र-शस्त्र लिए हुई कश्मीर-प्रदेश मे पहुँचे। देश के राजा ने बड़ी आवभगत के साथ इन लोगो को अपना अतिथि बनाया। हिमतल-राज ने अपने पाँच सौ नामी और वीर सिपाहियो को आज्ञा दी कि 'उत्तमोत्तम वस्तुओ के सहित हाथो मे तलवार लेकर राजा की भेट को चलो।' जिस समय ये लोग राजा के निकट पहुँचे हिमतलराज अपनी टोपी को फेंककर सिंहासन की ओर झपटा। क्रीत्यराज इस कैफियत को देख कर घबड़ा गया। उसकी समझ में न आया कि क्या करना चाहिए। थोड़ी देर मे उसका सिर काट डाला गया। फिर हिमतलराज ने दरबारियो से कहा कि 'मै तुषार प्रदेश के हिमतल स्थान का राजा हूँ। मुझको बहुत शोक था कि एक नीच जाति के राजा ने इतना बड़ा अपराध कर डाला। जिसको दंड देने के लिए मुझको आज यहाँ पर आना पडा। अपराधी अपने दंड को पहुच गया, परन्तु अन्य लोग किसी प्रकार का भय न करें, इसमे उनका कुछ भी अपराध नही है।' इस प्रकार सब लोगो को समझा कर और शान्त करके तथा मन्त्रियो को दूसरे प्रदेशो मे भेजकर उसने बौद्ध-संन्यासियो को बुलवा भेजा और एक संघाराम बनवा कर उन लोगो को फिर से उसी प्रकार बसाया जिस प्रकार वह पहले रहा करते थे। इसके उपरान्त वह पश्चिमी फाटक से निकल कर और पूर्वाभिमुख साष्टाङ्ग दण्डवत् करके अपने देश को चला आया। और प्रदेश पुरोहितो को दान मे मिला।

चूंकि क्रीत्य लोगो को कई बार पुरोहितो से दबना पड़ा और उनका सत्यानाश हुआ इस कारण उनके हृदय मे दिनो-दिन शत्रुता बढती ही गई यहाँ तक कि वे लोग बौद्ध-धर्म से घृणा करने लगे। कुछ वर्षों के उपरान्त वे लोग फिर प्रभावशाली होकर यहाँ के अधिपति हो गये, यही कारण है कि इस समय यहाँ बौद्ध-धर्म का विशेष

---

[1] यह राजा उन्ही शाक्य युवको मे से किसी का वंशज था जो विरुद्धक राजा की चढ़ाई का सामना करने पर देश से निकाल दिया गया था। इसका वर्णन छठे अध्याय मे आवेगा।

प्रचार नही है बल्कि अन्य धर्मावलम्बियो के मन्दिरो की बढ़ती है। नवीन नगर के पूर्व-दक्षिण १० ली की दूरी पर और प्राचीन नगर[1] के उत्तर में था पर्वत के दक्षिण ओर एक संघाराम है जिसमे तीन सौ संन्यासी निवास करते हैं। स्तूप के भीतर एक दाँत भगवान् बुद्ध का डेढ इच लम्बा रखा हुआ है। इसका रंग पीलापन लिये हुए सफेद है तथा धार्मिक दिनो मे इसमे से उज्ज्वल प्रकाश निकलने लगता है। प्राचीन समय मे क्रीत्य लोगो ने बौद्ध-धर्म को नाश करके जब उन लोगो को निकाल दिया था और सन्यासी लोग जहाँ-तहाँ भाग गये थे तब एक श्रमण इधर-उधर भारतवर्ष भर मे यात्रा करने लगा और अपने अटल विश्वास को प्रदर्शित करने के लिए सम्पूर्ण बौद्ध स्थानो मे जा जाकर बौद्धावशेष के दर्शन करता रहा। कुछ दिनो के उपरान्त उसको मालूम हुआ कि उसके देश मे अशान्ति हो गई है। अत. वह अपने घर की ओर प्रस्थानित हुआ। मार्ग मे उसको हाथियो का एक झुन्ड मिला जो चिग्घाड करते हुए जंगल के रास्ते मे दौड-धूप कर रहे थे। श्रमण उन हाथियो को देख कर एक वृक्ष पर चढ गया। परन्तु हाथियो का समूह एक तालाब पर पहुँच कर स्नान करने लगा। भली-भाँति अपने शरीर को शुद्ध करके हाथियो ने वृक्ष को चारो ओर मे घेर लिया और जडो को नोच कर श्रमण समेत वृक्ष को भूमि पर गिरा दिया। इसके उपरान्त श्रमण को अपनी पीठ पर चढा कर वे लोग जंगल के मध्य मे उस स्थान पर गये जहाँ पर एक हाथी घाव से पीडित होकर भूमि पर पडा हुआ था। उसने साधु का हाथ पकड कर वह स्थान दिखलाया जहाँ पर एक बाँस का टुकडा घुसा हुआ था। श्रमण ने उस खपाँच को खीचकर कुछ दवा लगाई और फिर अपने वस्त्र को फाड कर घाव बाँध दिया। दूसरे हाथी ने एक सोने का डिब्बा लाकर रोगी हाथी के सामने रख दिया और उसने उस डिब्बे को श्रमण की भेंट कर दिया। श्रमण को उसके भीतर बुद्ध भगवान् का एक दाँत मिला। इसके उपरान्त सब हाथी उसको घेर कर बैठ गये जिससे श्रमण को उस दिन उसी स्थान पर रहना पडा। दूसरे दिन, धार्मिक दिवस

---

[1] जनरल कनिंघम लिखते हैं कि 'अधीहान' अधिष्ठान कहलाता है। यह संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ मुख्य नगर होता है। इसी स्थान पर श्रीनगर बसा है जिसको राजा प्रवरसेन ने छठी शताब्दी मे बसाया था। इस कारण ह्वेनसांग के समय मे यही स्थान नवीन राजधानी था। प्राचीन राजधानी तख्त सुलेमान के दक्षिण-पूर्व लगभग दो मील की दूरी पर थी जिसको पाड्रेथान कहते हैं। यह शब्द 'पुरानाधिष्ठान' (प्राचीन राजधानी का) अपभ्रंश है। प्राचीन समय का हरी पर्वत ही आज-कल का तख्त सुलेमान है।

होने के कारण, प्रत्येक हाथी ने उसको उत्तमोत्तम फल लाकर भेंट किये। भोजन कर चुकने के उपरान्त वे लोग संन्यासी को अपनी पीठ पर चढा कर बहुत दूर तक जंगल के बाहर पहुंचा आये और प्रणाम करके अपने स्थान को लौट आये।

श्रमण अपने देश की पश्चिमी हद तक पहुंच कर एक बडी नदी को पार कर रहा था, उसी समय सहसा नाव डूबने लगी। सब लोगों ने सलाह करके यही निश्चय किया कि यह सब उत्पात श्रमण के कारण है। अवश्य इसके पास कुछ बौद्धावशेष है जिसके लिए नाग लोग लालायित हो गये है। नाव के स्वामी ने उसकी तलाशी लेने पर बुद्ध के दाँत को पाया। श्रमण ने उस समय दाँत को ऊपर उठाकर और सिर नवा कर नागो को बुलाया और यह कह कर वह दाँत उनको दे दिया कि 'मैं यह तुम्हारे सुपुर्द करता हू, इसको बहुत सावधानी से रखना। थोड़े दिनो मे आकर मै तुमसे लौटा लूँगा।' इस घटना से श्रमण को इतना रंज हुआ कि वह नदी के पार नही गया वल्कि इसी पार लौट आया और नदी की ओर देख कर गहरी साँसें लेता हुआ यह कहने लगा कि "मै क्या उपाय करूँ जिससे ये दुखदायक नाग परास्त हो?" इसके उपरान्त वह भारतवर्ष मे लौट कर नागो को अधीन करने वाली विद्या का अध्ययन करने लगा। तीन वर्ष के उपरान्त वह अपने देश को लौटा। नदी के किनारे पहुँच कर उसने एक वेदी बनाकर यज्ञ करना आरम्भ किया। नाग लोग विवश होकर बुद्ध-दन्त को डिब्बे सहित ले आये। श्रमण उसका लेकर इस संघाराम मे आया और पूजन करने लगा।

सघाराम के दक्षिण की ओर चौदह पन्द्रह ली की दूरी पर एक छोटा सघाराम और है जिसमे अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की एक खड़ी मूर्ति है। यदि कोई इस बात का सकल्प करे कि जब तक हम दर्शन न कर लेंगे अन्न-जल ग्रहण न करेंगे चाहे भूख-प्यास से हमारा प्राणान्त ही क्यो न हो जाय, तो उसको एक मनोहर स्वरूप मूर्ति मे से निकलता हुआ अवश्य दिखलाई पडता है।

इस छोटे संघाराम के दक्षिण-पूर्व लगभग ३० ली चल कर हम एक बडे पर्वत पर आये जहाँ एक पुराना संघाराम है। इसकी सूरत मनोहर और बनावट सुदृढ़ है। परन्तु आजकल यह उजाड हो रहा है केवल एक कोना शेष है जिसमे दो खड का एक बुर्ज बना है। लगभग ३० सन्यासी महायान-सम्प्रदायी इसमे निवास करते हैं। इस स्थान पर प्राचीन समय मे सङ्घभद्र शास्त्रकार ने 'न्यायानुसार शास्त्र' की रचना की थी। संघाराम के दोनो ओर स्तूप बने है जिनमे महात्मा अरहटों के शरीर समाधिस्थ है। जंगली पशु और पहाड़ी बन्दर इस स्थान पर आकर फूल इत्यादि

से धार्मिक पूजा किया करते हैं। इनकी पूजा बिना रुकावट परम्परागत के समान नित्य होती रहती है। इन पहाडो मे बहुत अद्‌भुत-अद्‌भुत व्यापार समय-समय पर प्रदर्शित हुआ करते है। कभी कभी पत्थर पर आर-पार दरारें पड जाती है (जैसे कोई सेना उस तरफ से गई हो,) कभी-कभी पहाड की चोटी पर घोडे का चित्र बना हुआ मिलता है। यह सब बातें अरहटो और श्रमणो की कर्तूत से दिखाई देती हैं जो भुन्ड के भुन्ड इस स्थान पर आते है और अपनी उँगलियो से इस तरह के चित्र बनाते है जैसे कि घोडे पर चढकर जाना अथवा इधर-उधर टहलना। परन्तु इन सब चिन्हो का वास्तविक भाव क्या है इसका समभना कठिन है।

बुद्धदाँत वाले संघाराम के पूर्व दश ली दूर पहाड के उत्तरी भाग के एक चट्टान पर एक छोटा सा सघाराम बना है। प्राचीन समय मे परम विद्वान् स्कंधिल सास्त्री ने इस स्थान पर 'चगस्सी फान पीष आशा' ग्रन्थ[1] को बनाया था। इस संघाराम मे एक छोटा स्तूप लगभग ५० फीट ऊँचा पत्थर का बना हुआ है जिसमे एक अरहट का शरीर है। प्राचीन समय मे एक अरहट था जिसका शरीर बहुत लम्बा चौडा और भोजन इत्यादि हाथी के समान था। लोग उसकी हँसी उडाया करते थे कि यह पेटू भोजन करना खूब जानता है परन्तु सत्यासत्य धर्म क्या है यह नही जानता। यह अरहट जब निर्वाण के निकट पहुंचा तब लोगो को निकट बुला कर कहने लगा कि बहुत शीघ्र मे अनुपाधिशेष अवस्था को प्राप्त करूँगा। मेरी इच्छा है कि मैं सब लोगो पर प्रकट कर दूँ कि किस प्रकार मैंने परमोत्तम धर्म ज्ञान को पाया है। लोग यह सुन कर दिल्लगी उडाने लगे और उसको लज्जित करन के लिए भीड की भीड उसके निकट एकत्रित हो गई। अरहट ने उस समय उन लोगो से यह कहा "मैं तुम लोगो की भलाई के लिए अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त और उसका कारण बतलाता हूँ। अपने पूर्व जन्म मे मैंने पापो के कारण हाथी का तन पाया था और पूर्वी भारत के एक राजा के फीलखाने मे रहा करता था। उन्ही दिनो एक श्रमण, बुद्ध भगवान् के पुनीत सिद्धान्तो (नाना प्रकार के सूत्र और शास्त्रो) की खोज मे भारतवर्ष मे घूमता फिरता था। राजा ने मुभको दान करके उम श्रमण को दे दिया। मैं बौद्ध धर्म की पुस्तको को पीठ पर लादे हुए इस स्थान पर आया और थोडे दिनो मे अकस्मात् मर गया। उन पुनीत पुस्तको को पीठ पर लादने के प्रभाव से मेरा जन्म मनुष्य-योनि में हुआ। थोडे दिनो पीछे मेरी पुनः मृत्यु होने पर अपने पूर्व पुण्य के प्रताप से मैं दूसरे जन्म मे सन्यासी हो गया और निराश्रय होकर सासारिक बंधनो से मुक्त होने का

[1] जुलियन इस शब्द से 'विभाषा प्रकरण पादशास्त्र' तात्पर्य निकालता है।

प्रयत्न करने लगा। मुझको छहो परमतम शक्तियो की प्राप्ति हो गई और मैंने तीनों लोकों के सुख-सम्बन्ध को पहित्याग कर दिया। परन्तु भोजन के समय मेरी पुरानी आदत बनी रही, तो भी मैं अपनी क्षुधा के घटाने का नित्य प्रति प्रयत्न करता ही रहा। इस समय मेरे शरीर के पोषण के निमित्त जितने भोजन की आवश्यकता है उसका तृतीयाश ही भोजन करता हूँ।" यद्यपि उसने यह सब वर्णन किया परन्तु लोग उसकी हँसी ही उड़ाते रहे। थोडी देर के उपरान्त वह समाधिस्थ होकर आकाशगामी हो गया और उसके शरीर से अग्नि और धुवाँ निकलने लगा। इस तरह पर वह निर्वाण को प्राप्त हो गया और उसकी हड्डियाँ भूमि पर गिर पडी जिनको बटोर कर लोगो ने स्तूप बना दिया।

राजधानी से पश्चिमोत्तर २०० ली चल कर हम मैलिन संघाराम मे आये। इस स्थान पर पूर्ण शास्त्री ने विभापाशास्त्र की टीका रची थी।

नगर के पश्चिम १४० या १५० ली की दूरी पर एक बडी नदी बहती है जिसके उत्तरी किनारे की ओर पहाड की दक्षिणी ढाल पर एक संघाराम 'महासंघिक' सम्प्रदाय वालो का बना हुआ है इसमें लगभग १०० संन्यासी निवास करते हैं। इस स्थान पर 'बोधिल' शास्त्री ने 'तत्त्वसञ्चय शास्त्र' की रचना की थी। यहा से दक्षिण-पश्चिम जा कर और कुछ पहाड तथा करारो को नाँघ कर लगभग ७०० ली की दूरी पर हम पुन्नुसो प्रान्त में पहुंचे।

पुन्नुसो (पुनच[1])

यह राज्य लगभग २,००० ली के घेरे मे है। पहाडो और नदियो की बहुतायत के कारण खेती के योग्य भूमि बहुत कम है। समयानुसार फसलें बोई जाती हैं और फल-फूल अच्छे होते है। ईख भी बहुत होती है परन्तु अंगूर नही होते। आँवला, उदुम्बर और मोच इत्यादि फल अच्छे और अधिक बोये जाते हैं। इनके जंगल के जंगल लगे हुए है। इनका स्वाद बहुत उत्तम होता है। प्रकृति गर्म और तरी लिए हुए है। मनुष्य बहादुर होते हैं। ये लोग प्राय. रुई के वस्त्र पहनते हैं। इनका व्यवहार सच्चा और धर्मशील होता है, तथा बौद्ध-धर्म का प्रचार है। पाच संघाराम बने हुए हैं जो प्राय. उजाड है। राज्य को कोई स्वतन्त्र स्वामी नही है, कश्मीर का अधिकार है।

---

[1] जनरल कनिंघम लिखते है कि 'पुनच' एक छोटा सा राज्य है जिसको कश्मीरी लोग पुनट कहते है। इसके पश्चिम मे झेलम नदी, उत्तर मे पीर पंचाल पहाड़, और पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व मे छोटा सा राज्य 'राजपुरी' है।

मुख्य नगर के उत्तर एक संघाराम है जिसमे थोड़े से सन्यासी निवास करते हैं। यहाँ पर एक स्तूप बना है जो अद्‌भुत चमत्कारो के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ से ४०० ली दक्षिण-पूर्व जाकर हम 'होलोशीपुलो' राज्य मे पहुंचे।

होलोशीपुलो (राजपुरी[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली है और राजधानी १० ली के घेरे मे है। प्रकृतित यह प्रान्त बहुत सुदृढ है। बहुत से पहाड पहाडियाँ और नदियो के कारण खेती के योग्य भूमि बहुत कम है, जिसके कारण कि पैदावार भी कमती होती है। प्रकृति तथा फल इत्यादि पुनच प्रान्त के समान हैं। मनुष्य फुरतीले और काम-काजी हैं। प्रान्त का कोई स्वाधीन राजा नही है, किन्तु यह कश्मीर के अधीन है। कोई १० सङ्घाराम हैं जिनमे थोडे मे साधु रहते हैं। बहुत से अन्य धर्मावलम्बी भी रहते हैं जिनके देवताओ का एक मन्दिर है। लमघान प्रदेश से लेकर यहाँ तक के पुरुषो का स्वरूप सुन्दर नही है तथा स्वभाव भयानक और क्रोधी है। इनकी भाषा भद्दी और असभ्य है। कठिनता से कदाचित् कोई आचरण इनका शुद्ध मिले, नही तो पूर्णतया असभ्यता ही का राज्य है। इन लोगो का भारत से ठीक सम्बन्ध नही है। ये लोग सीमान्त प्रदेश के निवासी और दुष्ट स्वभाव के पुरुष हैं। यहाँ से पूर्व-दक्षिण चल कर पहाडो और नदियो को नांघते हुए लगभग ७०० ली की दूरी पर हम 'टसिहकिया' राज्य मे पहुंचे।

---

[1] जनरल कनिंघम लिखते हैं कि आज-कल का 'रजौरी' स्थान ही राजपुरी है। यह कश्मीर के उत्तर और पुनच के दक्षिण-पूर्व एक छोटे से राज्य का मुख्य नगर है।

चौथा अध्याय

१५ प्रदेशों का वर्णन

टसिहकिया (टक्का[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग १०,० ० ली है। इसकी पूर्वी सीमा पर विपासा[2] नदी बहती है और पश्चिमी सीमा पर सिन्दु नदी है। राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। भूमि चावलो के लिए बहुत उपयुक्त है तथा देर की बोई हुई फसलें अच्छी होती है। इसके अतिरिक्त सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा और एक प्रकार का पत्थर 'टिओयू'[3] भी होता है। प्रकृति बहुत गर्म और आँधियो का जोर रहता है। मनुष्य चालाक और अन्यायी हैं तथा भाषा भद्दी और ऊटपटाग है। इनके वस्त्र एक चमत्कारार महीन रेशेवाली वस्तु के बनते है जिसको ये लोग कियावचेये (कौशेय, रेशम) कहते है। ये लोग चौहिया[4] तथा दूसरे प्रकार के वस्त्र भी धारण करते हैं। बुद्ध-धर्म के मानने वाले थोडे हैं, अधिकतर लोग स्वर्गीय देवताओ के लिए यज्ञ हवन आदि करते हैं। लगभग दस संघाराम और कई सौ मन्दिर है। प्राचीनकाल में यहाँ पर बहुत सी पुण्यशाला दरिद्रो और अभागो के रहने के लिए बनी थी जहाँ से भोजन, वस्त्र, औषधियाँ आदि आवश्यक वस्तुएँ लोगो को मिला करती थी। इस कारण यात्रियो को बहुत सुख मिलता था।

---

[1] राजतरंगिणी मे लिखा है कि वाहिक लोगो का टक्क देश गुर्जर राज्य का भाग है जिसको अलखान राजा ने विवश होकर कश्मीर राज को सन् ८८३ और ९०१ ई० के मध्य मे सौंप दिया था। टक्क लोग चिना नदी के किनारे रहते थे और किसी समय मैं बडे बलवान् थे, सारा पजाब इनके अधीन था; इन्ही टक्क लोगो का राज्य कदाचित् 'टसिहकिया' कहलाता होगा।

[2] व्यास नदी।

[3] यह नाम ह्वेनसाग ने बहुधा लिखा है। यह वस्तु समभाग ताँबा और जस्ता मिला कर बनती थी, अथवा इसको देशी ताबा भी कहते हैं।

[4] चौहिया यह लाल रंग की पोशाक होती थी।

राजधानी के दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग १४ या १५ ली चलकर हम प्राचीन नगर 'शाकल' मे पहुँचे। यद्यपि इसकी चहारदीवारी गिर गई है परन्तु उसकी नीव अब तक मजबूत बनी हुई है। इसका क्षेत्रफल २० ली है। इसके मध्य मे एक छोटा सा नगर ६-७ ली के घेरे मे बसा है। निवासी सुखी और धनी हैं। देश की प्राचीन राजधानी यही है। कई शताब्दी व्यतीत हुई जब 'मिहिरकुल' नामक एक राजा हो गया है जिसने इस नगर को राजधानी बनाकर समस्त भारत का शासन किया था। वह बहुत ही बुद्धिमान् और वीर पुरुष था। उसने निकटवर्ती सब प्रान्तो पर अधिकार कर लिया था। सब तरफ मे निश्चिन्त होकर उसने बौद्ध-धर्म की जाँच करने का विचार किया इस कारण उसने आज्ञा दी कि जो सबसे बडा विद्वान् सन्यासी हो वह मेरे निकट लाया जावे। परन्तु किसी भी सन्यासी ने उसके निकट जाना स्वीकार न किया क्योंकि जो लोग सन्तुष्ट थे और किसी बात की इच्छा न रखते थे उन्होने प्रतिष्ठा की परवाह न की, और जो बहुत योग्य विद्वान् तथा प्रसिद्ध पुरुष थे उनको राजकीय दान की आवश्यकता न थी। इस समय राजा के सेवको मे एक वृद्ध नौकर था जो बहुत दिनो तक धर्म की सेवा कर चुका था। यह पुरुष बहुत योग्य विद्वान् सुवक्ता और शास्त्रार्थ के उपयुक्त था। सन्यासियो ने उसी को राजा के समक्ष भेज दिया। राजा ने कहा कि 'मै बौद्ध-धर्म की बडी प्रतिष्ठा करता हूँ इस कारण मैंने दूर देशस्थ प्रसिद्ध विद्वान् से भेंट करने की इच्छा की थी, परन्तु उन लोगो ने इस सेवक को बातचीत के लिए छाँट कर भेजा है। मेरा सदा म यही विचार था कि बौद्ध लोगो मे बहुत से योग्य विद्वान् है परन्तु आज जो बात देखने मे आई है उससे भविष्य मे उन लोगो के प्रति मेरा पूज्य भाव कैसे रह सकता है?' इसके उपरान्त उसने आज्ञा दी कि सब बौद्ध भारत से निकाल दिये जावें, उनका धर्म नाश कर दिया जावे यहाँ तक कि चिह्न भी न रहने पावे।

मगधराज बालादित्य बौद्ध-धर्म की प्रतिष्ठा और प्रजा का पालन बहुत प्रेम से करता था। जिस समय उसने 'मिहिरकुल' राजा के इस अन्याय और दुष्टता का समाचार सुना वह बहुत सावधानी के साथ अपने राज्य की रक्षा मे तत्पर होकर उसकी अधीनता से विमुख हो गया। मिहिरकुल ने उसको परास्त करने के लिए चढाई की। बालादित्य राजा ने इस समाचार को पाकर अपने मन्त्री से कहा कि मैंने सुना है कि चोर लोग आते हैं मै उनमे युद्ध नही कर सकता, यदि तुम कहो तो मै किसी टापू के जगल मे भाग कर छिप रहूँ। यह कह कर उसने राजधानी परित्याग कर दी और पहाडो तथा जंगलो मे घूमने लगा। राजा के साथी लोग भी जो कई हजार थे और जो उससे बहुत प्रेम करते थे, भाग कर समुद्र के टापुओ मे चले गये। मिहिरकुल अपनी

सेना को अपने भाई के सुपुर्द करके बालादित्य को बध करने के निमित्त अकेला समुद्र के किनारे पहुँचा। राजा तो भाग कर एक दर्रे मे चला गया और उसकी थोडी सी सेना जो शत्रु से लडने के लिए तैयार थी सोने का नगाडा बजाती हुई सहसा चारो ओर से दौड पडी और मिहिरकुल को पकड कर राजा के सम्मुख ले गई।

मिहिरकुल ने अपनी हार से लज्जित होकर अपने मुख को वस्त्र से बन्द कर लिया। बालादित्य ने सिंहासन पर बैठ कर अपने मन्त्रियो को आज्ञा दी कि राजा से कहो कि अपना मुँह खोल दे जिसमे मैं उससे बातचीत कर सकूँ।

मिहिरकुल ने उत्तर दिया कि 'प्रजा और राजा मे अदल-बदल हो गया है इस कारण दोनो परस्पर शत्रु-भाव रखते हैं। शत्रु का मुख शत्रु को देखना उचित नही है इसके अतिरिक्त बातचीत करने के लिए मुख खोलने से लाभ ही क्या है ?'

बालादित्य ने तीन बार मुँह खोलने की आज्ञा दी परन्तु कुछ फल नही हुआ, तब उसने क्रुद्ध होकर राजा के अपराधो को प्रकाशित करते हुए यह आज्ञा दी कि 'धार्मिक ज्ञान का क्षेत्र, जिसका सम्बन्ध बौद्ध-धर्म है, सब संसार को सुखी करने के लिए है, परन्तु तुमने उसको जंगली पशु के समान तहस-नहस कर दिया। इससे तुम पापी हो गये। साथ ही इसके तुम्हारे भाग्य ने भी तुम्हारा साथ छोड दिया, अब तुम मेरे बन्दी हो। तुम्हारा अपराध ऐसा नही है जिसमे कुछ भी क्षमा को स्थान दिया जा सके, इस कारण मैं तुमको प्राणदंड की आज्ञा देता हूँ।'

बालादित्य की माता अपनी बुद्धिमत्ता-विशेषकर ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान के लिए बहुत प्रसिद्ध थी। उसने सुना कि 'मिहिरकुल' को प्राणदन्ड देने के लिए लोग लिये जाते हैं। तब उसने बालादित्य को बुला कर कहा कि 'मैंने सुना है कि 'मिहिरकुल' बडा ही स्वरूपवान् और ज्ञानवान् पुरुष है, मै एक बार उसको देखा चाहती हूँ' बालादित्य ने मिहिरकुल को बुलवा कर माता के पास महल मे भेज दिया। माता ने कहा "मिहिरकुल, लज्जित मत हो, सांसारिक वस्तुएँ स्थिर नही होती, हार जीत समयानुसार एक दूसरे के पीछे लगी ही रहती है; इस कारण इसका कुछ शोक न करना चाहिए। मैं तुमको अपना पुत्र और अपने को तुम्हारी माता समझती हूं, मेरे सामने तुम अपनी मुँह खोल कर मेरी बात का उत्तर दो।" मिहिरकुल ने उत्तर दिया, "थोडा समय हुआ जब मैं जिस प्रदेश का राजा था और इस समय बन्दी तथा प्राण-दंड से दंडित हूँ। मैंने अपने राज्य को खो दिया तथा अपने धार्मिककृत्य से भी मैं विमुख हो रहा हूँ। मैं अपने बडो और छोटो के सम्मुख

लज्जित हो रहा हु तथा सत्य बात तो यह है कि मैं किसी के सामने मुंह दिखाने योग्य नही रहा; चाहे स्वर्ग हो या पृथ्वी—मेरा कही भी कल्याण नही है। इस कारण मैने अपना मुंह अपने वस्त्र मे ढक लिया है" राज-माता ने उत्तर दिया, "दुख-सुख समयानुसार मिलते है; मनुष्य को कभी लाभ होता है तो कभी हानि। यदि तुम अवस्थानुसार दुख से दुखी और सुख से सुखी होगे तो अवश्य क्लेशित होगे, परन्तु यदि तुम दशा पर ध्यान न देकर उन्नति की ओर दत्तचित्त होगे तो अवश्य फलीभूत होगे। मेरा कहा मानो, कर्म्मों का फल समय के आश्रित है, मुंह खोलकर मुझसे बातें करो। कदाचित् तुम्हारे प्राणो को मैं बचा दूं।" मिहिरकुल ने उसको धन्यवाद देकर कहा कि मेरे सर्वथा अयोग्य होने पर भी मुझको पैत्रिक राज्य मिला था, परन्तु मैंने दंडित होकर उस राज्य-सत्ता को कलंकित कर दिया तथा राज्य को भी खो दिया। यद्यपि मेरे बेडियाँ पडी है परन्तु मेरी इच्छा अभी मरने की नही है, चाहे एक ही दिन जीवित रहूं। इस कारण तुम्हारे अभयदान के लिए मैं मुंह खोलकर धयवाद देता हूं। इसके उपरान्त उसने अपना वस्त्र हटाकर मुंह खोल दिया। राजमाता ने इन वचनो को कहकर कि 'मेरा पुत्र यद्यपि मुझको बहुत प्यारा है परन्तु उसका भी जब समय पूरा होगा तो अवश्य मृत्युगत होगा।' अपने पुत्र से कहा कि प्राचीन नियमानुसार यही उचित है कि इसके अपराधो को क्षमा कर दो और प्राण-रक्षा के प्रेम को मत भूलो। यद्यपि मिहिरकुल ने अपने कलुषित कार्यो से बडा भारी पातक-समूह बटोर लिया है तो भी उसका पुण्य बिलकुल निश्शेष नही हो गया है। यदि तुम इसको मार डालोगे तो बारह वर्ष तक इसका पीला-पीला मुख तुम्हारे सामने नित्य दिखाई पडेगा। मुझको इसके ढंग से मालूम होता है कि यह अवश्य किसी छोटे प्रदेश का राजा होगा इस कारण इसको उत्तर दिशा के किसी छोटे से स्थान मे राज्य करने की आज्ञा दे दो।

बालादित्य ने अपनी माता की आज्ञा मानकर मिहिरकुल के साथ बडी कृपा करते हुए उसके साथ अपनी छोटी लडकी को ब्याह दिया और सत्कारपूर्वक अपनी सेना की रक्षा मे उसको टापू से रवाना कर दिया। इधर मिहिरकुल का भाई स्वदेश को लौटकर स्वयं राजा बन बैठा। मिहिरकुल इस प्रकार अपने राज्य को खोकर जगलो और टापुओ में छिपता हुआ उत्तर दिशा मे कश्मीर पहुचा और शरण का प्रार्थी हुआ। कश्मीर-नरेश ने उसका बडा सत्कार करके तथा उसके दुःख से दुःखित होकर एक छोटा सा प्रदेश और एक नगर राज्य करने के लिए दे दिया। कुछ काल उपरान्त मिहिरकुल ने अपने नगर के लोगो को उत्तेजित करके कश्मीर पर चढाई कर दी तथा राजा को मार कर स्वयं सिंहासन पर बैठ गया। इस जीत से प्रसन्न और प्रसिद्ध होकर

वह पश्चिम-दिशा की ओर बढा और गंधार-राज्य को तहस-नहस करके अपनी सेना-द्वारा उसने राजा को पकडवा कर मार डाला। तथा राज-वंश और मन्त्रिमंडल को नाश करके सोलह सौ स्तूपो और संघारामों को धूल मे मिलवा दिया। इसके अतिरिक्त उसकी सेना ने जितने लोग मारे थे उनको छोड कर नौ लाख पुरुष ऐसे बाकी थे जिनके मारने की तैयारी हो रही थी, उस समय वहाँ के बडे-बड़े सरदारो ने निवेदन किया कि 'महाराज ! आपकी युद्ध-निपुणता ने बडी भारी विजय प्राप्त कर ली। हमारी सेना को विशेष लडना भी नही पड़ा। जब आप सब बडे-बडे लोगो को परास्त ही कर चुके तब इन छोटे-छोटे पुरुषो को मारने से क्या लाभ है ? य दे ऐसा ही है तो इनके स्थान पर हम दीन पुरुषो को मार डालिए।' राजा ने उत्तर दिया कि 'तुम लोग बौद्ध-धर्म को मानने वाले हो तथा इस धर्म के गुप्त ज्ञान को विशेष आदर देते हो। तुम्हारा मन्तव्य बोधिसत्व प्राप्त करना ही होता है और उस दशा मे तुम अपने जातको मे मरे कर्मों की अच्छी तरह पर विवेचना करोगे, जिनसे कि अगली सन्तति को लाभ पहुँचेगा। जाओ तुम लोग अपने राज्य को सँभालो और हमारे काम मे अधिक मत पडो।' उसके उपरान्त उसने तीन लाख उच्च श्रेणी के पुरुषो को सिन्धु नदी के तट पर मरवा डाला, फिर मध्यम श्रेणी के पुरुषो की इतनी ही संख्या को नदी मे डुबवा दिया और तृतीय श्रेणी के पुरुषो की उतनी ही संख्या को अपनी सेना मे सेवकाई के लिए बाट दिया। फिर उस देश की लूटी हुई सम्पत्ति को एकत्रित करके और फौज को समेट के अपने देश को लौट गया। परन्तु एक वर्ष भी नहीं बीतने पाया कि उसका प्राणान्त हो गया। उसकी मृत्यु के समय बादल गरजने लगे थे, पाले और कुहरे से संसार मे अन्धकार छा गया था और पृथ्वी निकम्पित हो उठी थी, तथा बडा भारी आंधी आई थी। उस समय महात्माओ ने कहा था कि "बहुत से जीवो का नाश करने और बौद्ध-धर्म को सत्यानाश करने के कारण इसको सबसे निकृष्ट नर्क प्राप्त हुआ है, जहाँ पर यह अनन्त काल तक निवास करेगा।"

शाकल के प्राचीन नगर मे एक संघाराम सौ संन्यासियो समेत है, जो हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। पूर्व काल मे वसुबंधु बोधिसत्व ने इस स्थान पर 'परमार्थ सत्य शास्त्र' को बनाया था।

संघाराम के पार्श्व मे एक स्तूप २०० फीट ऊंचा है। इस स्थान पर पूर्वकालिक चार बुद्धो ने धर्मोपदेश किया था, जिनके कि इधर-उधर फिरने के निशान यहाँ पर बने हुए हैं।

संघाराम के पश्चिमोत्तर ५ या ६ ली की दूरी पर एक स्तूप २०० फीट ऊंचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर भी पूर्वकालिक चार बुद्धो ने

धर्मोपदेश दिया था। नई राजधानी के पूर्वोत्तर लगभग १० ली चलकर हम एक २०० फीट ऊँचे पत्थर के स्तूप तक पहुँचे। यह स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यही स्थान है जहाँ पर तथागत भगवान् उत्तर दिशा मे धर्मोपदेश करने के लिए जाते हुए सडक के मध्य मे ठहरे थे। भारतीय इतिहास मे लिखा है कि इस स्तूप में बहुत से बौद्धावशेष रक्खे हैं जिनमे से पवित्र दिनो मे सुन्दर प्रकाश निकला करता है। यहाँ से लगभग ५०० ली पूर्व को चलकर हम 'चिनापोटी' प्रान्त मे पहुँचे।

चिनापोटी (चिनापटी[1])

यह देश २,००० ली के घेरे मे है। राजधानी का क्षेत्रफल १४ या १५ ली है। यहाँ पर फसले अच्छी होती है तथा फलदार वृक्ष भी बहुत हैं। मनुष्य सन्तोषी और शान्त है, देश की आय अच्छी है। प्रकृति गर्म-तर है और मनुष्य डरपोक और उत्साह-रहित है। अनेक प्रकार की पुस्तको और विद्याओ का पठन-पाठन होता है। कुछ लोग बौद्ध-धर्म को मानते है और कुछ दूसरे धर्मों को। दस संघाराम और आठ देव-मन्दिर बने हुए है।

प्राचीन समय मे, जब राजा कनिष्क राज्य करता था, उसकी कीर्ति निकटवर्ती सब प्रदेशो मे अच्छी तरह पर फैल गई थी और सबके हृदयो पर उसकी सेना का आतंक जमा हुआ था। इस कारण पीत नद से पश्चिम मे राज्य करने वाले राजाओ ने भी उसकी प्रभुता स्वीकार करने के लिए कुछ मनुष्य उसकी सेवा मे भेज दिये थे जिनको कनिष्क राजा ने बडे सत्कार के साथ ग्रहण किया था। इन आगन्तुक लोगो के रहने

---

[1] यह प्रदेश रावी नदी से सतलज नदी तक फैला हुआ था। कनिंघम साहब 'चिने' अथवा चिनिगरी को राजधानी निश्चय करते हैं जो अमृतसर से ११ मील उत्तर है। परन्तु दूरी तथा स्थानादि के विचार से कनिंघम साहब का यह निश्चय ठीक नहीं मालूम होता। उदाहरण स्वरूप सुल्तापुर (तामस वन) इस स्थान से १० मील (५० ली) के स्थान पर ६० मील (३०० ली) उत्तर-पश्चिम है। इसके अतिरिक्त जालधर शहर उत्तर-पूर्व के स्थान पर 'चिने' से दक्षिण-पूर्व मे है तथा दूरी भी २८ या ३० मील के स्थान पर ७० मील है। इसलिए बहुत प्राचीन और बडा कस्बा जिसको पट्टी कहते हैं, और जो ब्यास नदी से १० मील पश्चिम और 'कसूर' से २७ मील उत्तर-पूर्व है, दूरी और दिशा इत्यादि के अनुसार ठीक मालूम होता है। एक बात और बडी गडबड की है कि कनिंघम साहब के नक्शे मे जो दूरी विदित होती है उसका मिलान उनकी पुस्तक से नही होता।

नए तीनों ऋतु योग्य अलग-अलग स्थान नियत थे तथा विशेष सेना इनकी रक्षा
ी थी। यह प्रदेश उन लोगों के शीत ऋतु में निवास करने के लिए नियत था।
कारण से इस स्थान का नाम 'चीनापट्टी' कहा जाता है। इसके पहले यहाँ
ाती और आड़ू नहीं होता था यहाँ तक कि भारत भर में कोई भी इनके स्वाद
रिचित न था। इन्हीं आगन्तुक पुरुषों ने इन वृक्षों को इस देश में पैदा किया।
सबब से आड़ू को लोग 'चीनानी'[1] और नासपाती को 'चीन राजपुत्र' कहते हैं।
पूर्व देशनिवासियों का बड़ा सम्मान करते हैं। यहाँ तक कि जब लोगों ने मुझको
तो उँगली उठा-उठा कर एक दूसरे से कहने लगे कि यह व्यक्ति हमारे प्राचीन
के देश का निवासी है[1]।

राजधानी के दक्षिण-पूर्व ५०० ली[2] की दूरी पर हम 'तामसवन' नामक
राम में पहुँचे। इसमें लगभग [illegible]० संन्यासी निवास करते हैं जिनका सम्बन्ध
स्तिवाद संस्था से है। ये लोग अपने शील-स्वभाव और शुद्ध आचरण के लिए
प्रसिद्ध हैं तथा हीनयान-सम्प्रदाय के अनुसार धार्मिक कृत्य करते हैं। भद्रकल्प
ने वाले [illegible],००० बुद्ध इस स्थान पर देवताओं को पुनीत धर्म की शिक्षा देंगे।
भगवान् के निर्वाण के ३०० वर्ष पश्चात् कात्यायन शास्त्री ने इस स्थान पर
अभिधर्मज्ञानप्रस्थान' शास्त्र की रचना की थी[3]। तामस वन संघाराम में एक स्तूप
फीट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इसके निकट चारों बुद्धों के
और चलने-फिरने के चिह्न बने हुए हैं। यहाँ पर अगणित छोटे-छोटे स्तूप और
के बड़े-बड़े मकानों की पंक्तियाँ आमने-सामने दूर तक चली गई हैं। [illegible] की

---

[1] अर्थात् राजा कनिष्क और उसके साथी तुर्की स्थान के पहाड़ [illegible] में से
[illegible] चीन की सीमा से आये थे।

[2] ह्वेनसांग की जीवनी में चीनापट्टी से [illegible] वन की दूरी ५० ली लिखी है,
[illegible] ठीक है। ५०० ली नकल करने वाले ने भूल से लिख दिया होगा।
[illegible] साहब ने इस संघाराम को [illegible] में निश्चय किया है। [illegible]
[illegible] है।

[3] [illegible] चीनी भाषा में सन् ३८३ ई० के लगभग [illegible]
[illegible] ने किया था। दूसरा अनुवाद सन् ६५७ ई० में ह्वेनसांग ने किया। यदि [illegible]
[illegible] ४०० वर्ष पूर्व [illegible] तो कात्यायन का समय [illegible]
[illegible] माना जायगा।

आदि से लेकर अब तक जितने अरहट हुए हैं वह सब इसी स्थान पर निर्वाण प्राप्त करते रहे हैं। इन सब का नामोल्लेख करना कठिन है, हाँ दाँत और हड्डियाँ अब भी मौजूद हैं। यहाँ पर इतने अधिक सघाराम बने हैं जिनका विस्तार २० ली के घेरे मे है तथा बौद्धावशेष सयुक्त स्तूपो की सख्या तो सैकडो हजारो तक पहुँचेगी। ये सब इतने निकट-निकट बने हुए हैं कि एक की परछाई दूसरे पर पडती है। इस देश से पूर्वोत्तर १४० या १५० ली चलकर हम 'चेलनटालो' स्थान पर पहुँचे।

चेलनटालो (जालंधर)

यह राज्ज १,००० ली पूर्व से पश्चिम और ८०० ली उत्तर मे दक्षिण की ओर विस्तृत है। राजधानी का क्षेत्रफल १२-१३ ली है। भूमि अन्नादि की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है तथा चावल अधिक होता है। जगल घने और छायादार है, फल और फूल भी बहुत होते है। प्रकृति गरम-तर और मनुष्य वीर और बली हैं, परन्तु इनका स्वरूप साधारण देहातियो का सा है। सब लोग धनी और सुखी है। लगभग पचास सघाराम दो हजार संन्यासियो के सहित हैं जिनका सम्बन्ध 'हीनयान' और 'महायान' दोनो सम्प्रदायो से है। तीन मन्दिर देवताओ के और पाँच सौ अन्य धर्मावलम्वी साधु हैं जो पाशुपत कहलाते हैं। इस देश का कोई प्राचीन नरेश अन्य धर्मावलम्बियो का बडा पक्षपाती था, परन्तु जिस समय उसकी भेंट एक अरहट से हुई और उसने बौद्धधर्म को सुना तभी से उसका विश्वास इस ओर अच्छी तरह जम गया। फिर उस राजा ने उस अरहट को भारतवर्ष भर के धार्मिक कार्यों की जाँच का काम सुपुर्द कर दिया। पक्षपात, प्रेम तथा द्वेष को छोड़ कर वह बहुत ही योग्यता से सब धर्म के साधुओ की परीक्षा लेता रहा। जिनका आचरण शुद्ध और धार्मिक होता था उनकी प्रतिष्ठा करके उत्तम प्रतिफल देता था, और विपरीत आचरण वालो को दडित करता था। जहा-जहाँ पर पवित्र वस्तुओ का पता मिला वहाँ-वहाँ उसने स्तूप और संघाराम बनवाये तथा कोई भी स्थान भारतवर्ष भर मे नही बच रहा जहाँ की यात्रा उसने न की हो। यहाँ मे पूर्वोत्तर की ओर चल कर कई एक ऊंचे-ऊचे पहाडो के दर्रो और घाटियो को नाँघते हुए तथा भयानक रास्ते और नालो को पार करते हुए लगभग सात सौ ली की दूरी पर हम 'कियोलूटो' प्रदेश मे पहुंचे।

कियोलूटो (कुलूट[1])

यह प्रदेश तीन हजार ली के घेरे मे है और चारो ओर पहाडो से सुसम्बद्ध

---

[1] व्यास नदी के ऊपरी भाग का कुलू का जिला। इसको कोलूक और कोलूट

है। मुख्य शहर का क्षेत्रफल १४ या १५ ली है। भूमि उपजाऊ है, फसलें सब समय पर बोई और काटी जाती है। फल-फूल बहुत होते हैं तथा वृक्षो और पौधो से अच्छी पैदावार होती है। हिमालय पहाड़ के निकट होने के कारण बहुत सी बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ पैदा होती हैं। सोना, चाँदी, ताँबा, बिल्लौर और देशी ताँवा भी होता है। प्रकृति प्रायः शीत-प्रधान है, वर्फ और पाला अधिक पडता है। मनुष्यो का स्वरूप विशेष सुन्दर नही है। फोड़ा-फुन्सी इत्यादि से बहुधा लोग पीड़ित रहते हैं। इनका स्वभाव भयानक और कठोर है। ये लोग न्याय और वीरत्व की बडी चाह करते हैं। लगभग २ संघाराम और एक हजार संन्यासी हैं; जो अधिकतर महायान-सम्प्रदायी है। अन्य निकाय (सम्प्रदाय) के मानने वाले कम है। १५ देवमन्दिर हैं जिनके मानने वालो की अनेक संस्थायें हैं।

पहाडो की कगारो और चट्टानो मे बहुत-सी गुफाएँ बनी हैं जिनमे अरहट और ऋषि लोग निवास करते है। देश के मध्य मे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। प्राचीन समय मे तथागत भगवान् अपने शिष्यो समेत लोगो को धर्मोपदेश देने के लिए यहाँ पधारे थे उसी के स्मारक मे यह स्तूप बना है।

यहाँ से उत्तर दिशा मे भयानक कगारो के रास्ते, पहाडो और घाटियो मे होते हुए लगभग १,८००-१,९०० ली की दूरी पर हम 'लोउलो' (लाहुल) प्रदेश में पहुँचे।

यहाँ से २,००० ली उत्तर की ओर भयानक कगारो के मार्ग से, जहाँ पर बर्फीली हवा चलती है, हम 'मोलोसो'[1] देश को पहुँचे।

भी कहते है। रामायण बृहत्संहिता इत्यादि मे भी इसका नाम आया है। कनिंघम साहब लिखते हैं कि इसका मुख्य स्थान वर्तमान काल मे सुल्तापुर है। प्राचीन काल मे नगर अथवा नगरकोट था।

[1] इस देश को सन-पो-हो भी कहते हैं और वर्तमान समय का नाम लदाख है। कनिंघम साहब की राय है कि मो-लो-सो के स्थान पर मार्यो (मो-लो-पो, मारटीन साहब ने माना है) होना चाहिए। यह ठीक है और मारटीन साहब के भी मत से मिलता है, क्योंकि 'मो-लो' और 'मार' में कुछ भेद नही है। लद्दाख प्रान्त का नाम मार्यो अथवा लाल स्थान उस देश की भूमि के रंग के अनुसार है। ह्वेनसांग ने जालधर से लद्दाख की दूरी ४,६०० ली लिखी है, जो बहुत अधिक है। परन्तु, क्योंकि वह स्वयं कुलूत से आगे नहीं गया था इसलिए यह दूरी उसने सुनसुना कर लिख दी है। इसके अतिरिक्त मार्ग इत्यादि की बीहड़ता भी उन दिनो विशेष थी।

'कुलूट' प्रदेश को छोडकर और दक्षिण दिशा में ७०० ली चल कर एक बड़ा भारी पहाड और एक बडी नदी पार करके हम 'शीटोटउलो' (शतद्रु) प्रदेश मे पहुँचे।

शीटोटउलो (शतद्रु[1])

यह राज्य २,००० ली पूर्व मे पश्चिम एक वडी नदी तक फैला है। राजधानी का क्षेत्रफल १७ या १८ ली है। फल और अन्नादि वहुत होते हैं, सोना-चाँदी और बहुमूल्य पत्थर भी अधिकता से पाये जाते है। रेशमी वस्त्रो का प्रचार अधिक है। यह यहाँ वहुत सुन्दर और कीमती होता है। प्रकृति गरमतर है। मनुष्यो का स्वभाव कोमल और सुशील है। ये लोग वहुत वुद्धिमान् और गुणवान् हैं। वडे और छोटे सब अपने-अपने कुलानुसार आचरण मे व्यस्त है तथा बौद्ध-धर्म से बडी भक्ति रखते हैं। राजधानी समेत राज्य भर मे १० संघाराम हैं, परन्तु अधिकतर गिरते जाते हैं। इनमे सन्यासी भी कम हैं। नगर के दक्षिण-पूर्व ३ या ४ ली की दूरी पर एक स्तूप २०० फीट ऊंचा है जो कि अशोक राजा का वनवाया हुआ है। इसके अतिरिक्त गत चारो बुद्धो के बैठने और चलने फिरने के भी चिह्न बने हुए हैं। यहाँ से दक्षिण-पश्चिम लगभग ८०० ली चल कर हम 'पोलीयेटोलो' राज्य मे आये।

पोलीयेटोलो (पार्यात्र[2])

इस राज्य का क्षेत्रफल ३,००० ली और राजधानी का १८-१५ ली है। गेहूँ तथा अन्य अन्नादि अच्छा होता है। यहाँ एक विचित्र-प्रकार का चावल होता है जो साठ दिन मे तैयार हो जाता है। बैल और भेड बहुत है परन्तु फल-फूल कम। प्रकृति गर्म और दुखद है। मनुष्यो का आचरण दृढ़ और कठोर है[3]। इनको विद्या से प्रेम

---

[1] शतद्रू नाम सतलज नदी का है। किसी समय मे यह नाम राज्य का भी था जिसकी राजधानी कदाचित् सरहिन्द थी।

[2] ह्वेनसांग ने पार्यात्र से मथुरा तक की दूरी पाँच सौ ली (एक सौ मील) और मथुरा से पार्यात्र को पश्चिम दिशा मे लिखा है, जिससे इसका विराट या वैराट होना ठीक पाया जाता है; परन्तु सरहिन्द से इस स्थान तक की दूरी आठ सौ ली का ठीक मिलान नही होता। सरहिन्द से विराट २२० मील दक्षिण दिशा मे है।

[3] विराट देश के लोग सदा से वीर होते आये हैं, इसीलिए मनु ने लिखा है कि मत्स्य अथवा विराट के लोग सेना मे भरती किये जायं।

नही है तथा धर्म भी बौद्ध नही है। यहाँ राजा वैश्य जाति का है जो वीर, बली और बडा लडाकू है। कुल ८ संघाराम उजडे पुजडे है जिनमे थोडे से, हीनयान-सम्प्रदायी संन्यासी निवास करते है। देवमन्दिर दस है जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के एक हजार उपासक हैं। यहाँ से पाँच सौ ली पूर्व दिशा में चल कर हम मोटउलो प्रदेश मे पहुंचे।

मोटउलो (मथुरा)

इस राज्य का क्षेत्रफल ५, ०' ली और राजधानी का २० ली है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है तथा अन्नादि अच्छा होता है। यहाँ के लोग 'आमलक' के पैदा करने मे बहुत ध्यान देते हैं जो झुन्ड का झुन्ड पैदा होता है। यह वृक्ष दो प्रकार का होता है। छोटी जाति वाले का फल कच्चेपन पर हरा और पकने पर पीला हो जाता है, तथा बडी जाति वाले का फल सदा हरा रहता है। इस देश मे बढिया जाति की कपास और पीत स्वर्ण भी उत्पन्न होता है। प्रकृति कुछ गर्म और मनुष्यो का व्यवहार कोमल तथा आदरणीय है। ये लोग धार्मिक ज्ञान को गुप्त रूप से उपार्जन करना अधिक पसन्द करते हैं। तथा परोपकार और विद्या की प्रतिष्ठा करते है। लगभग २० संघाराम और दो हजार संन्यासी हैं जो समानरूप से हीनयान और महायान-सम्प्रदाय के आश्रित हैं। पाँच देवमन्दिर भी हैं जिनमे सब प्रकार के साधु उपासना करते है। तीन स्तूप अशोक राजा के बनवाये हुए है। गत चारों बुद्धो के भी अनेक चिह्न वर्तमान है। तथागत भगवान् के पुनीत साथियों के शरीरावशेष पर भी स्मारक-स्वरूप कई स्तूप बने है। जैसे श्रीपुत्र, मुद्गलपुत्र, पूर्णमैत्रेयाणिपुत्र, उपाली, आनन्द, राहुल, मञ्जुश्री तथा अन्य बोधिसत्व इत्यादि। प्रत्येक वर्ष तीनो धार्मिक महीनो मे और प्रत्येक मास के षट् व्रतोत्सवो के अवसर पर संन्यासी लोग इन स्तूपो के दर्शनो को आते है और अभिवादन पूजन करके बहुमूल्य वस्तुओ को भेंट करते हैं। ये लोग अपने-अपने सम्प्रदायानुसार अलग-अलग पुनीत स्थानो का दर्शन-पूजन करते है। जो लोग 'अभिधर्म' का अभ्यास करते हैं वे श्रीपुत्र को, जो समाधि मे मग्न होने वाले हैं वे मुद्गलपुत्र को, जो सूत्रो का पाठ करते हैं वे पूर्णमैत्रेयाणिपुत्र को, जो विनय का अध्ययन करते हैं वे उपाली को, भिक्षु लोग आनन्द को, श्रमण राहुल को; और महायान-सम्प्रदायी बोधिसत्वो को सम्मान देकर अनेक प्रकार की भेंट-पूजा चढाते है। रत्नजटित झंडे और बहुमूल्य छत्र जाल की तरह सब ओर फैल जाते हैं। सुगन्धित द्रव्यो का धूम बादलो के समान छा जाता है और मेह के समान फूलो की वृष्टि सब तरफ होती है। सूर्य, चन्द्र उसी प्रकार छिप जाते हैं जिस प्रकार घाटियो मे बादलों के उठने से। देश

का राजा और बडे-बडे मंत्री लोग भी बडे उत्साह के साथ यहाँ पर आकर धार्मिक उत्सव मनाते हैं।

नगर के पूर्व लगभग ५ या ६ ली की दूरी पर हम 'एक ऊँचे संघाराम' में आये। इसके पार्श्व मे गुफाएँ बनी हैं। हम इसके भीतर फाटक के समान एक सुरंग मे होकर गये[1]। जिसको महामान्य उपगुप्त[2] ने बनवाया था। इसमे एक स्तूप है जहाँ

---

[1] इस स्थान पर कुछ गडबड है। पहली बात तो नगर के स्वरूप के विषय मे है। यमुना नदी नगर के पूर्व ओर बराबर बहती चली गई है। परन्तु ह्वेनसांग ने उसका कुछ वृत्तान्त नही दिया, दूसरी बात यह है कि ह्वेनसांग लिखता है कि नगर के पूर्व पाँच छ ली की दूरी पर 'थिहशनकिआलन' है। मथुरा के आस-पास एक मील तक कोई पहाड नही है। कनिंघम साहब की राय है कि यदि पूर्व के स्थान पर पश्चिम माना जाय तो भी चौबारा टीले मे जो लगभग डेढ मील है, कोई सुरङ्ग इस प्रकार की नही है जैसा ह्वेनसांग लिखता है। और यदि उत्तर माना जाय तो कटरा टीला नगर से एक मील पर नही है। पहाड के विषय मे सेमुयल बील साहब की राय है कि चीनी भाषा का शब्द शन छापे की अशुद्धि है। जनरल साहब का विचार है कि मह भवन इतना अधिक ऊचा होगा जिससे ह्वेनसांग ने उसकी उपमा पहाड से दी होगी। यदि यही बात है तब तो गडबड मिट सकती है; परन्तु यह अनुमान ही अनुमान है, वाक्य-विन्यास से ऐसी ध्वनि नही निकलती। परन्तु एक बात अवश्य है कि पूर्व-कालिक चीनी यात्रियो ने ऊंचे-ऊंचे टीलो को (जैसे सुल्तापुर के ऊंचे-ऊचे टीले) लिखा है इसलिए जनरल कनिंघम साहब का विचार समुचित है और इसीलिए हमने (पहाड) शब्द के स्थान पर ऊंचा संघाराम लिखा है, और (घाटी) के स्थान पर सुरंग शब्द लिखा है।

[2] उपगुप्त जाति का शूद्र था। यह महात्मा १७ वर्ष की अवस्था मे साधु हो गया था और तीन वर्ष के कठिन परिश्रम मे 'मार राजा' को परास्त करके अरहट अवस्था को प्राप्त हुआ था। यह चौथा महापुरुष था जिसने मथुरा मे धर्म का अभ्यास किया था। इसके मार-युद्ध का वर्णन अश्वघोष ने अपने पदो मे पूर्ण रीति से किया है। उपगुप्त समाधि मे मग्न था; मार राजा ने आकर फूलो की माला उसके सिर पर रख दी। समाधि टूटने पर और उस माला को देख कर उसको आश्चर्य हुआ और इसलिए पूरा भेद मालूम करने की इच्छा से वह पुन. समाधिमग्न हो गया। यह जान कर कि यह मार का काम है, उसने एक शव को मार राजा की गर्दन मे ऐसा जकड

तथागत भगवान् के कटे हुए नाखून रक्खे हुए है। संघाराम के उत्तर में एक गुफा में एक पत्थर की कोठरी बीस फीट ऊँची और तीस फीट विस्तृत है। इस कोठरी में छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़े चार इंच लम्बे भरे हुए हैं। महात्मा उपगुप्त अपने धर्मोपदेश से जब किसी स्त्री पुरुष को शिष्य करता था, जिससे कि वे भी अरहट पद का फल प्राप्त कर सकें, तब एक लकड़ी का टुकड़ा इस कोठरी में डाल देता था। जिन लोगों को वह शिष्य करता था उनका कोई हिसाब उसके पास नही रहता था कि वे किस वंश और किस जाति के लोग थे। इस स्थान से चौबीस पच्चीस ली दक्षिण पूर्व एक सूखी झील के किनारे एक स्तूप है। प्राचीन समय में तथागत भगवान् इस स्थान पर इधर-उधर विचर रहे थे कि एक बन्दर थोड़ा सा मधु उनके निकट ले आया। तथागत भगवान् ने उस बन्दर को आज्ञा दी कि इसमें जल मिलाकर सब संघ (लोगो) को बाँट दो। बन्दर को इस बात से इतनी प्रसन्नता हुई कि एक गहरे गढ़े में गिर कर मर गया। इस धार्मिक ज्ञान के बल से उसका जन्म मनुष्य-योनि में हुआ[1]। झील के उत्तर की ओर जंगल में थोडी दूर पर गत चारों बुद्धों के घूमने-फिरने के चिह्न मिलते है। निकट ही बहुत से स्तूप श्रीपुत्र, मुद्गलपुत्र इत्यादि १,२५० महात्मा अरहटों के स्मारक उस स्थान पर बने हैं जहाँ पर वे लोग योग, समाधि आदि का अभ्यास करते थे। तथागत भगवान् धर्मप्रचार के लिए बहुधा इस प्रदेश में आते रहे हैं। जिस-जिस स्थान

कर चिपका दिया कि जिसको पार्थिव अपार्थिव (स्वर्गीय) किसी प्रकार की भी शक्ति न छुडा सकी। मार राजा उसकी शरण हुआ और अपने अपराधो की क्षमा माँग कर इस बात का पार्थी हुआ कि यह शव उससे अलग कर दिया जाय। उपगुप्त ने उसकी प्रार्थना को इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह सब लक्षण-सम्पन्न भगवान बुद्धदेव के स्वरूप मे उसको दर्शन देवे। मार राजा ने वैसा ही किया। उपगुप्त ने उस बनावटी (बुद्ध) स्वरूप को बड़ी भक्ति से साष्टाग दण्डवत् किया। उपगुप्त 'लक्षण-रहित बुद्ध' (अलक्षण को बुद्ध) कहलाता है। दक्षिणी बौद्धो मे इस महात्मा की प्रसिद्धि नही है परन्तु उत्तरी बौद्ध लोगो ने इसको अशोक का सहयोगी लिखा है और इसका काल निर्वाण के सौ वर्ष पीछे माना है।

[1] ग्राउस साहब ने बन्दर वाले स्तूप का स्थान (दमदम) डीह निश्चय किया है जो सराय जमालपुर के निकट और कटरा से दक्षिण पूर्व थोडी दूर पर है। कटरा के डीह इत्यादि प्राचीन मथुरा बतलाये जाते हैं। कनिंघम साहब भी इसको पुष्ट करते हैं। बन्दर का इतिहास बहुधा बौद्ध प्रस्तरो मे प्रदर्शित किया गया है।

का राजा और बडे-बडे मंत्री लोग भी बडे उत्साह के साथ यहाँ पर आकर धार्मिक उत्सव मनाते है।

नगर के पूर्व लगभग ५ या ६ ली की दूरी पर हम 'एक ऊँचे संघाराम' मे आये। इसके पार्श्व मे गुफाएँ बनी हैं। हम इसके भीतर फाटक के समान एक सुरंग में होकर गये[1]। जिसको महाम न्थ उपगुप्त[2] ने बनवाया था। इसमे एक स्तूप है जहाँ

---

[1] इस स्थान पर कुछ गडबड है। पहली बात तो नगर के स्वरूप के विषय मे है। यमुना नदी नगर के पूर्व ओर बराबर बहती चली गई है। परन्तु ह्वेनसांग ने उसका कुछ वृत्तान्त नही दिया, दूसरी बात यह है कि ह्वेनसांग लिखता है कि नगर के पूर्व पाँच छ ली की दूरी पर 'थिहशनकिग्रालन' है। मथुरा के आस-पास एक मील तक कोई पहाड नही है। कनिंघम साहब की राय है कि यदि पूर्व के स्थान पर पश्चिम माना जाय तो भी चौबारा टीले मे जो लगभग डेढ मील है, कोई सुरङ्ग इस प्रकार की नही है जैसा ह्वेनसांग लिखता है। और यदि उत्तर माना जाय तो कटरा टीला नगर से एक मील पर नही है। पहाड के विषय में सेमुयल बील साहब की राय है कि चीनी भाषा का शब्द शन छापे की अशुद्धि है। जनरल साहब का विचार है कि मह भवन इतना अधिक ऊचा होगा जिससे ह्वेनसाँग ने उसकी उपमा पहाड से दी होगी। यदि यही बात है तब तो गडबड मिट सकती है; परन्तु यह अनुमान ही अनुमान है, वाक्य-विन्यास से ऐसी ध्वनि नही निकलती। परन्तु एक बात अवश्य है कि पूर्व-कालिक चीनी यात्रियो ने ऊचे-ऊंचे टीलो को (जैसे सुल्तापुर के ऊंचे-ऊचे टीले) लिखा है इसलिए जनरल कनिंघम साहब का विचार समुचित है और इसीलिए हमने (पहाड) शब्द के स्थान पर ऊंचा संघाराम लिखा है, और (घाटी) के स्थान पर सुरंग शब्द लिखा है।

[2] उपगुप्त जाति का शूद्र था। यह महात्मा १७ वर्ष की अवस्था मे साधु हो गया था और तीन वर्ष के कठिन परिश्रम मे 'मार राजा' को परास्त करके अरहट अवस्था को प्राप्त हुआ था। यह चौथा महापुरुष था जिसने मथुरा में धर्म का अभ्यास किया था। इसके मार-युद्ध का वर्णन अश्वघोष ने अपने पदो मे पूर्ण रीति से किया है। उपगुप्त समाधि मे मग्न था; मार राजा ने आकर फूलो की माला उसके सिर पर रख दी। समाधि टूटने पर और उस माला को देख कर उसको आश्चर्य हुआ और इसलिए पूरा भेद मालूम करने की इच्छा से वह पुनः समाधिमग्न हो गया। यह जान कर कि यह मार का काम है, उसने एक शव को मार राजा की गर्दन मे ऐसा जकड

तथागत भगवान् के कटे हुए नाखून रक्खे हुए हैं। संघाराम के उत्तर में एक गुफा में एक पत्थर की कोठरी बीस फीट ऊँची और तीस फीट विस्तृत है। इस कोठरी में छोटे-छोटे लकड़ी के टुकड़े चार इंच लम्बे भरे हुए हैं। महात्मा उपगुप्त अपने धर्मोपदेश से जब किसी स्त्री पुरुष को शिष्य करता था, जिससे कि वे भी अरहट पद का फल प्राप्त कर सकें, तब एक लकड़ी का टुकड़ा इस कोठरी में डाल देता था। जिन लोगो को वह शिष्य करता था उनका कोई हिसाब उसके पास नही रहता था कि वे किस वंश और किस जाति के लोग थे। इस स्थान से चौबीस पच्चीस ली दक्षिण पूर्व एक सूखी झील के किनारे एक स्तूप है। प्राचीन समय में तथागत भगवान् इस स्थान पर इधर-उधर विचर रहे थे कि एक बन्दर थोड़ा सा मधु उनके निकट ले आया। तथागत भगवान् ने उस बन्दर को आज्ञा दी कि इसमें जल मिलाकर सब संघ (लोगों) को बाँट दो। बन्दर को इस बात से इतनी प्रसन्नता हुई कि एक गहरे गढ़े में गिर कर मर गया। इस धार्मिक ज्ञान के बल से उसका जन्म मनुष्य-योनि में हुआ[1]। झील के उत्तर की ओर जंगल में थोड़ी दूर पर गत चारों बुद्धो के घूमने-फिरने के चिह्न मिलते है। निकट ही बहुत से स्तूप श्रीपुत्र, मुद्गलपुत्र इत्यादि १,२५० महात्मा अरहटो के स्मारक उस स्थान पर बने हैं जहाँ पर वे लोग योग, समाधि आदि का अभ्यास करते थे। तथागत भगवान् धर्मप्रचार के लिए बहुधा इस प्रदेश में आते रहे हैं। जिस-जिस स्थान

कर चिपका दिया कि जिसको पार्थिव अपार्थिव (स्वर्गीय) किसी प्रकार की भी शक्ति न छुडा सकी। मार राजा उसकी शरण हुआ और अपने अपराधो की क्षमा माँग कर इस बात का पार्थी हुआ कि यह शव उससे अलग कर दिया जाय। उपगुक्त ने उसकी प्रार्थना को इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह सब लक्षण-सम्पन्न भगवान बुद्धदेव के स्वरूप में उसको दर्शन देवे। मार राजा ने वैसा ही किया। उपगुप्त ने उस बनावटी (बुद्ध) स्वरूप को बड़ी भक्ति से साष्टाग दण्डवत् किया। उपगुप्त 'लक्षण-रहित बुद्ध' (अलक्षण को बुद्ध) कहलाता है। दक्षिणी बौद्धो मे इस महात्मा की प्रसिद्धि नही है परन्तु उत्तरी बौद्ध लोगो ने इसको अशोक का सहयोगी लिखा है और इसका काल निर्वाण के सौ वर्ष पीछे माना है।

[1] ग्राउस साहब ने बन्दर वाले स्तूप का स्थान (दमदम) डीह निश्चय किया है जो सराय जमालपुर के निकट और कटरा से दक्षिण पूर्व थोडी दूर पर है। कटरा के डीह इत्यादि प्राचीन मथुरा बतलाये जाते है। कनिंघम साहब भी इसको पुष्ट करते हैं। बन्दर का इतिहास बहुधा बौद्ध प्रस्तरो मे प्रदर्शित किया गया है।

पर वह ठहरे वहाँ-वहाँ पर स्मारक बना दिये गये हैं। यहाँ से पूर्वोत्तर ५०० ली चलकर हम 'साट आनी शीफालो' प्रदेश में पहुँचे।

('साट आनी शीफालो' स्थानेश्वर[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल ७,००० ली और राजधानी का २० ली है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है तथा सब प्रकार का अन्नादि होता है। प्रकृति यद्यपि गरम है परन्तु सुखदायक है। मनुष्यो का व्यवहार रूक्ष और सत्यता रहित है। धनाढ्य होने के कारण लोगो मे व्यभिचार का प्रचार अधिक है तथा गाने बजाने की भी अच्छी चर्चा है। जिस विषय की जैसी योग्यता जिसमें होती है वैसी ही उसकी प्रतिष्ठा भी होती है। सासारिक सुखो की ओर लोगो का ध्यान अधिक है, खेती बारी की ओर कम लोग दत्तचित्त होते हैं। सब देशो की बहुमूल्य और उत्तम व्यापारिक वस्तुएँ यहाँ पर मिल सकती हैं। तीन संघाराम ७०० संन्यासियो सहित हैं जो हीनयान-सम्प्रदाय का अभ्यास करते हैं। कई सौ देवमन्दिर बने हैं जिनमे नाना जाति के अगणित भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते हैं। राजधानी के चारो ओर २०० ली विस्तृत भूमि को यहाँ वाले 'धर्मक्षेत्र' के नाम से पुकारते हैं। इसकी बाबत इतिहासो मे लिखा है कि "प्राचीन काल मे दो नरेश थे जिनमे सम्पूर्ण भारत का राज्य बँटा हुआ था। दोनो एक दूसरे पर चढाई किया करते थे और सदा लड़ा करते थे। अन्त मे इन दोनो ने यह निश्चय किया कि प्रत्येक राजा अपनी-अपनी ओर से थोडे से सिपाही चुन कर नियत कर दे जो लडकर मामला निपटा दें जिसमे व्यर्थ अधिक लोगो को दु.ख न हो। परन्तु इसको लोगो ने स्वीकार न किया यहाँ तक कि एक भी व्यक्ति लड़ने के लिए न हुआ। तब (इस देश के) राजा ने यह विचार किया कि इस तरह पर लोग नही मानेंगे, कोई असाधारण (चमत्कारिक) शक्ति के बल से लोगो पर दबाव डाला जाय तो सम्भव है लोग लडने के लिए कटिबद्ध हो जायँ। इस समय मे एक ब्राह्मण बहुत विद्वान् और बुद्धिमान् था। राजा ने चुपचाप उसके पास कुछ रेशमी वस्त्र भेंट मे भेजे और उसको निमन्त्रित किया। उसके आने पर अपने मकान के एक गुप्त स्थान मे ले जाकर राजा ने प्रार्थना की कि आप इस स्थान पर रह कर बहुत छिपा के एक धार्मिक पुस्तक बना दीजिये। फिर उस पुस्तक को एक पहाड की गुफा मे ले जाकर रख

---

[1] कदाचित् मथुरा से यात्री पीछे की ओर लौट कर हाँसी तक गया होगा और वहाँ से लगभग एक सौ मील उत्तर-पश्चिम मे जाकर थानेश्वर अथवा स्थानेश्वर को पहुँचा होगा। पाँडव लोगों से सम्बन्धित होने के कारण यह स्थान बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध है।

दिया। कुछ दिनों बाद जब गुफा के द्वार पर बहुत से वृक्ष उग आये थे, राजा ने सिंहासन पर बैठ कर और मन्त्रियों को बुला कर यह कहा कि "इतने बड़े राज्य का स्वामी होकर भी मेरा प्रभाव थोड़ा था इस बात से दुःखित होकर देवराज (इन्द्र) ने दयावश मुझको स्वप्न में दर्शन देकर एक दैवी पुस्तक कृपा की है, जो अमुक पहाड़ की अमुक गुफा में गुप्त रूप से रक्खी है।"

इसके उपरान्त उस पुस्तक के खोज करने की आज्ञा दी गई। पुस्तक को पहाड़ की झाडियो में पाकर मन्त्रियो ने राजा को बहुत बधाई दी तथा प्रजा में बड़ी प्रसन्नता फैली। तब राजा ने उस पुस्तक के तात्पर्य को—कि उसमे क्या भाव भरा है—सब दूर तथा निकटवर्ती लोगों पर प्रकट किया। उस पुस्तक में यह लिखा था "जन्म और मृत्यु की कोई सीमा नही है, जीवन-चक्र असमाप्त रूप में सदा घूमा करता है। मानसिक पापो से बचना कठिन है, परन्तु मै एक सर्वोत्तम रीति इन दुःखों से बचने के लिए पा गया हूँ। इस राजधानी के चारो ओर २०० ली के घेरे की भूमि का नाम प्राचीन नरेशो के समय मे धर्मक्षेत्र था। सैकड़ो हजारों वर्ष व्यतीत हो गये जो कुछ इसके महत्त्व के चिह्न थे वे सब नष्ट हो गये। आध्यात्मिक उन्नति को ओर ध्यान न देने के कारण मनुष्य दुःख-सागर में डूब गये हैं जिससे निकलने की शक्ति उनमे नही है। ऐसी अवस्था मे क्या करना चाहिए? यही बात (दैवी आज्ञा से) प्रकट की जाती है। तुममें से जो लोग शत्रु-सेना पर धावा करके संग्राम-भूमि मे प्राण विसर्जन करेंगे वे फिर मनुष्य तन पावेंगे। और बहुत से लोगों को मारने वाले वीर पापो से मुक्त होकर स्वर्ग के सुखो को प्राप्त करेंगे। जो पितृ-भक्त पुत्र और पौत्र अपने पूज्य पिता, पितामह आदि को लडाई के मैदान में जाते समय सहायता देंगे उनको अपरिमित सुख होगा। अर्थात् थोड़े काम का बड़ा फल यही है। परन्तु जो लोग ऐसे अवसर को खो देंगे वे मरने पर अंधकार मे लिपटे हुए तीनो प्रकार के दारुण[1] दुःख पावेंगे। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को इस पुनीत कार्य के लिए सब तरह पर कटिबद्ध हो जाना चाहिए।"

पुस्तक के इस वृत्तान्त को सुन कर सब लोग लड़ाई के लिए उत्सुक हो गये और मृत्यु को मुक्ति का कारण समझने लगे। तब राजा ने अपने सब वीरों को बुला भेजा। दोनों देश के लोगो ने ऐसा भारी संग्राम किया जिसका कि विचार में आना भी कठिन है। मृत शव लकड़ियों की भाति तथा ऊपर ढेर कर दिए गए जिसके सबब

---

[1] नरकवास पाना, राक्षसों का आहार बनना और पशुयोनि में जन्म लेना यही तीन दारुण यातनायें हैं।

से अब तक इस मैदान मे हड्डियाँ फैली पडी हैं। जिस प्रकार यह वृत्तान्त बहुत प्राचीन समय का है उसी प्रकार इस स्थान की फैली हुई हड्डियाँ भी बहुत बड़ी-बड़ी हैं[1]। इसी युद्ध के कारण इस भूमि का नाम धर्मक्षेत्र पड़ा है।

नगर से पश्चिमोत्तर दिशा मे ४ या ५ ली की दूरी पर एक स्तूप ३०० फीट ऊंचा अशोक राजा का वनवाया हुआ है। ईंटें बहुत सुन्दर और चमकदार कुछ पीलापन लिए हुए लाल रंग की हैं। इस स्तूप मे बुद्ध भगवान् का शरीरावशेष रक्खा हुआ है। स्तूप से बराबर प्रकाश निकला करता है तथा अनेक अद्भुत चमत्कार परिलक्षित होते रहते हैं।

नगर के दक्षिण १०० ली की दूरी पर गोकंठ[2] नामक संघाराम मे हम पहुंचे। यहाँ पर बहुत से स्तूप अनेक खंड वाले बने हैं जिनके मध्य मे थोडी-थोड़ी जगह टहलने भर को छोड दी गई हैं। साधु लोग सुशील, सदाचारी और प्रतिष्ठित हैं। यहां से पूर्वोत्तर ४०० ली चल कर हम 'सुलोकिनना' प्रदेश मे पहुंचे।

सुलोकिनना (स्रुघ्न)[3]

यह राज्य ६,००० ली विस्तृत है। पूर्व दिशा मे गंगा नदी और उत्तर मे हिमालय पहाड है। यमुना नदी इसके सीमान्त प्रदेश मे होकर बहती है। राजधानी

---

[1] वेदो मे इतिहास है कि इन्द्र ने उन्नीस बार इस स्थान पर वृत्रासुर को मारा था। नगर के पश्चिम ओर मैदान मे अस्थिपुर नाम का ग्राम अब भी है।

[2] इसको गोविन्द भी पढ सकते हैं।

[3] ह्वेनसांग की लिखी दूरी के अनुसार स्थानेश्वर से पूर्वोत्तर दिशा मे कालसी स्थान है, जो सिरमूर के पूर्व और जोनसार जिले मे है। कनिंघम साहब गोकंठ संघाराम से ५० मील पूर्वोत्तर दिशा मे संघ नामक स्थान को स्रुघ्न निश्चय करते हैं। हुइली पूर्वोत्तर के स्थान मे पूर्व दिशा लिखता है और पाणिनि तथा बराहमिहिर स्रुघ को हस्तिनापुर से उत्तर लिखते हैं। फीरोजशाह के स्तम्भ से (जो सलोर जिले के यमुना नदी के किनारे वाले तोपुर अथवा तोपेर नामक स्थान मे मिला था। यह स्थान खिजराबाद के निकट दिल्ली से ९० कोस पर पहाड के पदतल मे है। कनिंघम साहब ने इस स्थान को मौना नामक स्थान बतलाया है जो कालसी से बहुत दूर नही है।) विदित होता है कि यह प्रान्त पूर्वकाल मे बौद्धो के कारण बहुत प्रसिद्ध था। इन सब बातो से यही निश्चय होता है कि स्रुघ्न या तो कालसी ही अथवा उसके निकट कोई स्थान था।

का क्षेत्रफल २० ली है। इसके पूर्व ओर यमुना नदी बहती है। यह नगर उजाड़ हो रहा हैं। भूमि की पैदावार जल-वायु इत्यादि में यह देश स्थानेश्वर के समान है। मनुष्य सुशील और सत्यपरायण हैं। ये लोग अन्य धर्म्मावलम्बियो के उपदेशों की बहुत प्रतिष्ठा और भक्ति करते हैं। विद्या—विशेषकर धार्मिक ज्ञान—की प्राप्ति में इनका परिश्रम सराहनीय है। पाँच संघाराम १,००० संन्यासियों समेत हैं जिनमें से अधिकतर हीनयाम-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। कुछ थोडे से लोग अन्य सम्प्रदायवाले हैं। वे बहुत साधु भाषा में बात-चीत और धर्मचर्चा इत्यादि करते हैं। इनके सुस्पष्ट उपदेश आद्योपान्त सत्यता से भरे रहते हैं। अनेक धर्मों के सुयोग्य विद्वान् भी अपने सन्देहो को दूर करने के लिए इन लोगो से प्रश्नोत्तर किया करते हैं। कोई सौ देवमन्दिर हैं जिनमें अगणित अन्यधर्मावलम्वी उपासना करते हैं।

राजधानी के दक्षिण-पश्चिम और यमुना नदी के पश्चिम मे एक संघाराम है, जिसके पूर्वी द्वार पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। तथागत भगवान् ने इस स्थान पर लोगो को शिष्य करने के लिए धर्मोपदेश दिया था। इसके निकट ही एक दूसरा स्तूप है जिसमे तथागत भगवान् के बाल और नख रक्खे हुए हैं। इसके आस-पास दाहने और बांयें दस स्तूप और बने हैं जिनमे श्रीपुत्र, मुद्गलयान तथा अन्य अरहटों के नख और बाल सुरक्षित है। तथागत भगवान् के निर्वाण प्राप्त करने के बाद यह प्रदेश अन्य धर्मावलम्बी उपदेशको का केन्द्रस्थल बन गया था। बड़े-बड़े कट्टर धार्मिक अपने कट्टरपने को छोड़ कर असत्य सिद्धान्तो के जाल के फँस गये थे। उस समय अनेक देशो के बड़े-बड़े विद्वान् बौद्धो ने यहाँ आकर, विधर्मियो और ब्राह्मणो को शास्त्राथ मे परास्त किया था। जहाँ-जहाँ पर शास्त्रार्थ हुआ था वहाँ-वहाँ पर संघाराम बना दिये गये हैं। इनकी संख्या पाँच है।

यमुना नदी के पूर्व ८०० ली चल कर हम गंगा नदी के तट पहुँचे। नदी की धार ३ या ४ ली चौड़ी है। यह नदी दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हुई समुद्र मे जाकर मिल गई है जहाँ पर इसका पाट १० ली से भी अधिक हो गया है। जल का रंग समुद्र-जल के समान नीला है और लहरें भी समुद्र के समान तुङ्ग वेग से उठती हैं। दुष्ट राक्षस तो बहुत हैं परन्तु मनुष्यों को कोई हानि नही पहुँचाते। जल का स्वाद मीठा और उत्तम है तथा इसके किनारे की रेत बहुत स्वच्छ है। देश के साधारण इतिहास मे इस नदी का नाम फोश्वुई। (महाभद्र) है जो अगणित पातको को नाश कर देने वाली हैं। जो लोग सासारिक दुःखों मे दुःखी होकर इस नदी में अपना प्राण विसर्जन करते हैं वे स्वर्ग में जन्म ले कर सुखों को प्राप्त करते हैं। यदि मनुष्य मर जाय और उसकी हड्डियां इस नदी में डाल दी जायें तो भी उसको नरकवास नही हो

सकता। चाहे कोई अनजान में भी इस नदी में पड कर वह जाय तो भी उसकी आत्मा सुखपूर्वं स्वर्ग मे पहुँच जायगी। किसी समय मे सिंहलद्वीप निवासी देव नामक एक बोधिसत्व हो गया है, जो सत्य धर्म के सिद्धान्तो से पूर्णतया अभिज्ञ था। वह लोगो की मूर्खता से क्षुभित होकर सत्य मार्ग का उपदेश देने के लिए इस प्रदेश मे आया। जिस समय छोटे और बडे स्त्री-पुरुष, नदी के किनारे, जो बडे वेग से बह रही थी, एकत्रित थे, उस देव बोधिसत्व ने अपने असाधारण स्वरूप से (उसका स्वरूप दूसरे लोगो के स्वरूपो से भिन्न था) सिर झुका कर थोडा सा जल इधर-उधर फेंकना प्रारम्भ किया। उस समय एक विधर्मी ने उससे पूछा कि 'आप ऐसा क्यो करते हैं?' बोधिसत्व ने उत्तर दिया कि 'मेरे माता-पिता और सम्बन्धी लंका मे रहते हैं, मुझको भय है कि वे लोग भूख प्यास से दु खित होते होगे; इस कारण मैं उनको इसी स्थान से सन्तुष्ट किया चाहता हूँ।'

विधर्मी ने कहा—"तुम भूलते हो। तुमको अपनी वेवकूफी का ध्यान नही होता कि तुम्हारा देश यहाँ से बहुत दूर है, बडे-बड़े पहाड और नदिया बीच मे पडती हैं। इतनी दूर के आदमी की प्यास बुझाने के लिए जल लेकर उछालना वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति सामने पडी हुई वस्तु को पीछे फिर कर ढूँढे। क्या खूब उपाय है जो कभी सुना तक नही गया।"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया कि "वे लोग जो अपने पापो के कारण नरक मे पडे हुए है यदि इस जल से लाभ उठा सकते हैं तब उन लोगो तक, जिनके मध्य मे केवल पहाड और नदियाँ हैं, जल क्यो नही पहुचेगा?"

विधर्मी को उत्तर न बन आया। अपनी भूल को स्वीकार करके और अज्ञान को परित्याग करके उसने सत्य धर्म को ग्रहण किया, तथा दूसरे लोग भी उसके शिष्य होकर सुधर गये[1]।

---

[1] देव का इतिहास अनिश्चित है। तो भी जो कुछ पता चलता है वह यही है कि यह नागार्जुन का शिष्य और उसका उत्तराधिकारी चौदहवाँ महापुरुष था। वैसिलीफ के अनुसार इसका नाम कनदेव भी था, क्योकि इसने अपनी एक आँख महेश्वर की भेंट कर दी थी। इसको आर्यदेव भी कहते हैं। कुछ लोग इसी को चन्द्रकीर्ति कहते हैं, परन्तु यह चन्द्रकीर्ति नही हो सकता क्योकि वह बुद्धपालित का अनुयायी था, और बुद्धपालित ने आर्यदेव के ग्रन्थो का भाष्य बनाया था। यह भी अनुमान होता है कि कदाचित् देव सिंहल-देशनिवासी था। इसने बहुत से ग्रन्थ बनाये थे। इसका काल ईसा की प्रथम शताब्दी का मध्य अथवा अन्तिम भाग निश्चय किया जाता है।

नदी को पार करके और उसके पूर्वी किनारे पर जाकर हम 'माटी पोलो' प्रदेश को पहुँचे।

माटी पोलो (मतिपुर[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल ६,००० ली और राजधानी का २० ली है। अन्नादि की उत्पत्ति के लिए यह देश बहुत उपयुक्त है, कितने ही प्रकार के फल और फूल भी होते हैं। प्रकृति की छटा मनोहर और उत्तम है। मनुष्य धर्मिष्ठ और सत्यपरायण हैं। ये लोग विद्या का बडा आदर करते हैं और तन्त्र-मन्त्र की ओर बहुत विश्वास रखते हैं। सत्य और असत्यधर्म के मानने वाले संख्या में प्रायः बराबर है। राजा शूद्र जाति का है। वह बौद्धधर्म को नही मानता, बल्कि स्वर्गीय देवताओ की प्रतिष्ठा और पूजा करता है। बीस संघाराम और ८०० संन्यासी देश भर में है, जो कि अधिकतर सर्वास्तिवाद-संस्था के हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। कोई ५० देवमन्दिर हैं जिनमें अनेक धर्म के लोग मिल-जुल कर रहते हैं।

राजधानी के दक्षिण ४ या ५ ली चल कर हम एक छोटे संघाराम मे पहुंचे जिसमें लगभग ५० संन्यासी निवास करते हैं। प्राचीनकाल में 'गुणप्रभ' नामक शास्त्रवेत्ता ने इस संघाराम में रह कर तत्त्वविभंग शास्त्र तथा अन्य सैकड़ो पुस्तको की रचना की थी। बहुत छोटी अवस्था ही मे इस विद्वान् की प्रतिमा का प्रकाश हो चला था, और युवा होने पर इसने स्वावलम्बन ही के बल से विद्योपर्जन किया था। यह व्यक्ति तीव्रबुद्धिमत्ता, पूर्णविद्वत्ता और मानव-समाज-सम्बन्धी ज्ञान के लिए बहुत प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध था। पहले यह महायान-सम्प्रदाय का अभ्यासी था परन्तु इसके गूढ़ तत्त्वो में पूरी जानकारी प्राप्त करने के पहले इसको विभाषा-शास्त्र के अध्ययन का अवसर मिला, जिससे यह अपने पहले कर्म को त्याग करके हीनयान-सम्प्रदाय का अनुयायी हो गया। इसने बीसो पुस्तकें महायान-सम्प्रदाय के विपक्ष मे लिखी थी जिससे विदित होता है कि हीनयान-सम्प्रदाय का यह कट्टर पक्षपाती हो गया था। इसके अतिरिक्त इसने बीसो पुस्तकें ऐसी भी बनाई है जिनमे प्राचीन काल से प्रसिद्ध विद्वानो की रचना की प्रतिकूल तथा तीव्र समालोचना की गई है। इसने बौद्ध-धर्म की अगणित पुस्तकों का अध्ययन किया था, और यद्यपि यह बहुत समय तक पठन-पाठन और मनन मे लगा रहा तो भी कुछ प्रश्न इसके सामने ऐसे उपस्थित रहे जिनका समाधान इस सम्प्रदाय

---

[1] मतिपुर का निश्चय मडावर अथवा मनडोर नामक स्थान में किया जाता है जो विजनौर के निकट रुहेलखण्ड के पश्चिमी भाग में है।

मे नही हो सका। उन दिनो देवसेन नामक एक अरहट बडा महात्मा था। वह कई बार सदेह स्वर्ग को जाकर लौट आया था। उससे गुणप्रभ ने प्रार्थना की कि मेरी शंकाओं का समाधान मैत्रेय भगवान् से मिल कर करा दीजिए। देवसेना ने अपने आध्यात्मिक बल से उसको स्वर्ग मे पहुंचा दिया। मैत्रेय भगवान् के सामने जाकर गुणप्रभ ने दण्डवत् तो की परन्तु पूजा नही की। इस पर देवसेन ने कहा कि 'मैत्रेय बोधिसत्व को बुद्ध अवस्था प्राप्त करने मे केवल एक दरजा बाकी रह गया है। ऐ घमंडी! यदि तेरी इच्छा उनसे लाभ उठाने की थी तो तूने उनकी उच्च कोटि की पूजा क्यो नही की? क्यो न तू भूमि मे गिरा दिया जाय?' गुणप्रभ ने उत्तर दिया कि 'महाशय! आपकी सलाह उत्तम है और मैं इसके अनुसार करने के लिए तैयार भी हूं; परन्तु मैं भिक्षु हूं और शिष्य बन कर मैंने संसार को छोडा है। मैत्रेय बोधिसत्व स्वर्गीय सुखो का आनन्द ले रहे हैं और तपस्वियो से मेल-मिलाप नही रखते हैं; इस कारण इच्छा रहते हुए, अनौचित्य का विचार करके, मैंने पूजा नही की।' मैत्रेय उसके मद को देख कर समझ गये कि यह शिक्षा का उपयुक्त पात्र नही है। इस कारण यद्यपि वह तीन बार उनके पास गया परन्तु अपनी शंकाओ का समाधान हुए बिना ही ज्यो का त्यो लौट आया। अन्त मे उसने देवसेन से प्रार्थना की कि मुझको फिर ले चलो, मैं पूजा करूंगा। परन्तु देवसेन उसके महामद से खिन्न होकर ऐसा करने पर सहमत नही हुए।

गुणप्रभ हतमनोरथ होकर क्रोधित हो गया और निर्जन स्थान मे जाकर समाधि द्वारा अपनी शंकाओ का समाधान करने लगा, परन्तु उसका वह मद दूर नही हुआ था इस कारण उसको कुछ लाभ नही हुआ।

गुणप्रभ संघाराम के उत्तर मे ३ या ४ ली की दूरी पर एक संघाराम २०० संन्यासियो सहित हीनयान-सम्प्रदाय का है। इसी स्थान में संघभद्र शास्त्री का देहान्त हुआ था। यह व्यक्ति कश्मीर का रहने वाला और वड़ा विद्वान् तथा बुद्धिमान् था। यह छोटी ही अवस्था मे विद्वान् होकर विभाषा-शास्त्र का पूर्ण पंडित हो गया था। इन्ही दिनो वसु-बन्धु बोधिसत्व भी हो गया है। वह ऐसी बात की खोज का प्रयत्न कर रहा था जिसका प्रकट करना शाब्दिक शक्ति से परे था, अर्थात् शब्दो द्वारा वह बताया नही जा सकता था। उसकी प्राप्ति का उपाय केवल समाधि-द्वारा ही सम्भव था। इस बोधिसत्व ने वड़े परिश्रम से विभाषिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तो को उलट-पुलट कर देने के लिए अभिधर्मकोश शास्त्र को बनाया। यद्यपि उसकी पुस्तक की भाषा स्पष्ट और मनोहर है परन्तु उसकी तर्कना बहुत सूक्ष्म और उच्च कोटि की है।

संघभद्र[1] इस पुस्तक को पढ़कर बड़े सोच विचार में पड गया। बारह वर्ष तक इसी उधेडबुन और खोज मे रहकर एक पुस्तक 'कोशकारक शास्त्र' नामक उसने २५,००० श्लोको में बनाई जिसमें ८०,० ,००० शब्द थे। हम कह सकते है कि इस पुस्तक के बनाने वाले ने सूक्ष्म से सूक्ष्म सिद्धान्तो को भी बहुत ही गहरी खोज करके लिखा था। इसके उपरान्त उसने अपने शिष्यो से कहा, "हे मेरे श्रेष्ठ शिष्यो, तुम इस पुस्तक को लेकर वसुबन्धु के पास जाओ और उसके सूक्ष्म तर्को को नीचा दिखा दो, जिसमें केवल उसी का नाम बढ़े-चढे पुरुषों मे न रहे।" तब उसके तीन-चार सर्वोत्तम शिष्य उसकी पुस्तक को लेकर वसुबन्धु की तलाश मे निकले। वसुबन्धु इन दिनो चेक-प्रदेश के शकलाल नगर में था। उसकी कीर्ति उस देश मे बहुत दूर तक फैली हुई थी, परन्तु यह सुन कर कि अब संघभद्र वहाँ पर आ रहा है, उसने अपने शिष्यो को आज्ञा दी कि यहाँ से हट चलो। शिष्यो को उसकी बात पर बड़ी शंका हुई इसलिए उसके सर्वोत्तम शिष्य ने इस प्रकार निवेदन किया कि "आपकी योग्यता सब प्राचीन काल के सुयोग्य पुरुषो से बढ़ी-चढ़ी है, सब लोग आपकी विद्वत्ता का लोहा मानते हैं, आपका नाम भी बहुत प्रसिद्ध हो गया है; फिर क्यो आप संघभद्र का नाम सुनते ही इतने भयभीत हो गये? हम सब आपके शिष्य इस बात से बहुत दुःखित हो रहे हैं।"

वसुबन्धु ने उत्तर दिया कि 'मैं इस कारण से नही भागा जाता हूं कि मैं उससे मिलने मे डरता हूं, बल्कि इसका कारण यह है कि इस देश मे कोई भी व्यक्ति ऐसा बुद्धिमान् नही है जो संघभद्र की हीन योग्यता की परख कर सके। वह केवल मुझको कलंक लगायेगा मानो मेरी वृद्धावस्था किसी उत्तम कर्म मे व्यतीत न हुई हो। शास्त्र की रीति से न तो उसके प्रश्नों का उत्तर हो सकेगा और न मैं उसके अपवादो को निर्मूल ही कर सकूंगा। इसलिए उसको मध्यभारत मे ले चलना चाहिए। वहाँ पर सुयोग्य और विद्वान् पुरुषो के सामने हम दोनो की परीक्षा होकर निश्चय होना चाहिए कि क्या सत्य है और क्या झूठ; अथवा कौन हारा और कौन जीता। इसलिए पोथी-पत्रा समेत कर चल ही दो। संघभद्र इस संघाराम मे आने के दूसरे ही दिन अकस्मात् रोगग्रस्त हो गया, अर्थात् उसका शारीरिक बल जवाब देने लगा। तब उसने वसुबन्धु को एक पत्र इस आशय का लिखा—"तथागत भगवान् के निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय वालो ने भिन्न-भिन्न पद्धतियो को प्रचलित कर दिया है। और प्रत्येक के अलग-अलग शिष्य बे-रोक-टोक मौजूद हैं। सबको अपनी ही

---

[1] संघभद्र, वसुबन्धु का गुरु नही हो सकता जैसा कि मैक्समूलर साहब विचार करते हैं। 'संघदेश' नामक व्यक्ति कदाचित् यही है जिसका नाम वैसिलीफ ने लिखा है।

अपनी बात पक्की और प्रिय तथा दूसरों की निकम्मी जंचती है। मुझ अल्पज्ञ को भी, यही रोग अपने पूर्वगामियो के प्रसाद से लग गया है। तथा आपके अभिधर्मकोश में लिखे हुये सिद्धान्तो को, जो विभाषिक-संस्था को परास्त कर देने वाले हैं, पढ कर मेरे चित्त मे भी वही भाव उत्पन्न हो गया और बिना अपनी सामर्थ्य का विचार किये, मैं भी इस काम मे लग गया। मैंने बहुत वर्षों के परिश्रम के उपरान्त उस संस्था को सम्भालने के लिए इस पुस्तक को लिखा है। मेरी बुद्धि थोडी होने पर भी मेरा इरादा बहुत बडा था, परन्तु मेरा अन्त समय अब निकट आ गया है। यदि आप अपने सिद्धान्तो को फैलाते हुए और पुष्ट करते हुए कृपा करके मेरे परिश्रम को नष्ट नही करेंगे, और उसको ज्यो का त्यो भविष्य सन्तति के लिए बना रहने देंगे, तो मुझको अपनी मृत्यु का कुछ भी शोक न होगा।''

इसके उपरान्त अपने शिष्यो मे से योग्यतम शिष्य से उसने कहा कि 'यद्यपि मेरी योग्यता थोडी थी परन्तु मैंने एक बहुत बडे विद्वान् के दबाने का प्रयत्न किया है; इस कारण मेरी मृत्यु के उपरान्त तुम इस पत्र को और मेरे ग्रन्थ को लेकर बोधिसत्व वसुबन्धु के पास जाना और उससे मेरे अपराधो की क्षमा मांगना और इस कार्य से मुझको जो कुछ पश्चात्ताप हुआ है उसका पूर्णतया विश्वास करा देना।' इन शब्दों को कहते ही कहते वह सहसा चुप हो गया और उसका प्राण-वायु निकल गया।

शिष्य उस पत्र को लेकर वसुबन्धु के पास गया और उससे प्रार्थी हुआ कि "मेरे गुरु संघभद्र का देहान्त हो गया उसके जो कुछ अन्तिम वाक्य हैं वह इस पत्र मे लिखे हैं। इस पत्र मे वह अपने अपराध को स्वीकार करता है और आपसे प्रार्थना करता है कि आप उसके अपराधो को क्षमा करके ऐसी कृपा कीजिए जिसमे उसकी कीर्ति का नाश न हो।'

वसुबधु ने पत्र और पुस्तक को पढा। पुस्तक के पढ चुकने के उपरान्त बहुत देर तक विचारो मे विमग्न रहकर उसने शिष्य को निकट बुलाकर कहा कि "इसमे शक नही कि सघभद्र शास्त्रप्रणेता, बहुत योग्य विद्वान् और बुद्धिमान था। यद्यपि उसकी तर्कना-शक्ति विशेष प्रभावशाली नही है परन्तु भाषा जो उसने पुस्तक मे लिखी है वडी मनोहर है। यदि मैं चाहूँ तो उसके शास्त्र पर उतनी ही सरलता मे हरताल लगा सकता हूँ जितनी सरलता मे मैं अपनी उँगली से उँगली को छू सकता हूँ परन्तु उसने मृत्यु के समय जो प्रार्थना की है उसकी प्रतिष्ठा करने को मैं विवश हो गया हूं। इसके अतिरिक्त एक और भी बडा भारी कारण है जिसकी वजह मे

मैं उसकी अन्तिम प्रार्थना को प्रसन्नता से स्वीकार किये लेता हूँ। अर्थात् इस पुस्तक के द्वारा मेरे सिद्धान्तों को बहुत प्रकाश पहुँचेगा। इस कारण मैं केवल इसका नाम बदल कर 'न्यायानुसार शास्त्र'[1] नाम किये देता हूँ।"

शिष्य ने उत्तर दिया कि 'संघभद्र की मृत्यु के पूर्व तो आप भागकर इतनी दूर चले आये, और जब आपको पुस्तक मिल गई तब आप उसका नाम बदलना चाहते हैं; हम लोग इस अपमान को किस तरह पर सहन कर सकेंगे ?"

वसुबन्धु ने उसके सन्देह को दूर करने के लिए एक श्लोक कहा जिसका भाव यह है कि 'यद्यपि सिंह शूकर के सामने से हट कर दूर चला जाता है परन्तु बुद्धिमान लोग अच्छी तरह पर जानते हैं कि दोनो मे कौन विशेष बली है।'

संघभद्र के मरने पर लोगो ने उसके शरीर को जलाकर और उसकी अस्थि को संचय करके एक स्तूप बनवा दिया है जो संघाराम से पश्चिमोत्तर दिशा में २०० कदम की दूरी पर आम्रकानन में अब भी बना हुआ है।

आम्रकानन के पार्श्व भाग में एक और स्तूप बना है जिसमें 'विमलमित्र' शास्त्री का शरीरावशेष सुरक्षित है। यह विद्वान् कश्मीर का रहनेवाला और सर्वास्तिवाद-संस्था का अनुयायी था। इसने बहुत से सूत्रों का अध्यायन और मनन किया था तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष भर में यात्रा करके यह तीनो पिटको के गूढ आशय मे अभिज्ञ हो गया था। जब यह अपनी कीर्ति को फैलाता हुआ अपने मनोरथ में सफल होकर स्वदेश को लौटा जा रहा था तो संघभद्र के स्तूप के निकट पहुँचा। स्तूप के ऊपर हाथ फेर कर और बड़े दुख से गहरी साँसें लेते हुए उसने कहा कि 'वास्तव मे यह विद्वान् बहुत ही प्रतिभाशाली था। इसके विचार अत्यन्त शुद्ध और सुन्दर थे। इसने अपने सिद्धान्तो को प्रकट करके दूसरी संस्थाओ को अपनी असाधारण योग्यता से परास्त करना चाहा था; यही कारण है कि इसका नाम अमर हो गया है। जिस प्रकार मुझ ऐसे मूर्ख को समय समय पर इसके अनन्य सिद्धान्तों मे ज्ञान लाभ होता रहा है, उसी प्रकार ऐसे कितने ही परिवार हैं जिनमे वंशपरम्परा से इसके लब्धप्रतिष्ठ गुणो का प्रतिपालन होता आया है। वसुबन्धु यद्यपि मर गया है परन्तु उसका नाम अभी तक साम्प्रदायिक इतिहास मे सजीव है, इसलिए मै भी अपने ज्ञानानुसार ऐसा शास्त्र रचूँगा कि जिससे जम्बूद्वीप के विद्वान् महायान सम्प्रदाय को भूल जायेंगे और वसुबन्धु का नाम निश्शेष हो जायगा। इसके साथ ही, बहुत दिनो

---

[1] इसका अनुवाद स्वयं ह्वेनसाग ने चीनी भाषा में किया था।

की ध्यान-धारणा का प्रतिफल स्वरूप मेरा यह काम मेरे अमरत्व का कारण भी होगा।"

इन शब्दो को समाप्त करते करते उसका चित्त विकल हो गया, उसकी दशा पागलो की सी हो गई और उसकी शेखी मारनेवाली जीभ मुँह के बाहर निकर पडी, तथा उसके शरीर मे गरम गरम खून दौडने लगा। अपनी मृत्यु निकट जान कर उसने बडे पश्चात्ताप के साथ इस प्रकार पत्र लिखा—"महायान-सम्प्रदाय के सिद्धान्त बहुत पुष्ट है। चाहे किसी समय मे इसकी कीर्ति मे बट्टा लग जाय परन्तु इसके सिद्धान्तो की गूढता का पता लगाना कठिन है। मैने मूर्खतावश इसके सुयोग्य विद्वानो पर आक्रमण करना चाहा था, जिसके लिए सब लोग दुखित है, तथा यही कारण है कि मैं अपने प्राणो को त्याग किये देता हूँ। सब बुद्धिमानो से मेरी प्राथना है कि मेरे उदाहरण पर ध्यान करके अपने अपने विचारो की रखवाली करते रहें और भूलकर भी इस सम्प्रदाय के विषय मे सन्देहो को स्थान न दें।" जिस समय इसका प्राणान्त हुआ था भूमि हिल उठी थी, और जिस स्थान पर इसकी मृत्यु हुई उतनी भूमि फट कर उसमे दरार पड गई थी। उसके शिष्यो ने उसके शरीर को भस्मसात् करके और हड्डियो को जमा करके स्तूप बना दिया है।

इसकी मृत्यु के समय एक अरहट भी उपस्थित था, जिसने इसे मृत देख कर ठढी साँसें लेते हुए कहा था कि 'हा शोक! हा हत! आज यह शास्त्री अपने चित्त को घमड से भर कर और महायान-सम्प्रदाय के प्रति अनुचित शब्द कह कर नरकगामी हो गया।'

इस देश की पश्चिमोत्तर सीमा पर और गङ्गा नदी के पूर्वी किनारे पर मायापुर[1] नामक नगर है। इसका क्षेत्रफल २० ली और निवासियो की संख्या अधिक है। विशुद्ध गङ्गा जल इसको घेर कर चारो ओर प्रवाहित होता है। यहाँ ताँबा और उत्तम बिल्लौर उत्पन्न होता है तथा बर्तन अच्छे बनते है। नगर के निकट ही गङ्गा किनारे एक बडा देवमन्दिर है जहाँ पर नाना प्रकार के अद्‌भुत चमत्कार दिखलाई दिया करते हैं। इसके मध्य मे एक तडाग है जिसके किनारे, पत्थरो को जोड कर, बडी बुद्धिमानी से बनाये गये हैं। गङ्गाजी का जल इस तडाग मे एक बनावटी नहर[2] के द्वारा पहुँचाया गया है। इसको लोग गङ्गाद्वार के नाम मे पुकारते हैं। यही स्थान है जहाँ पर लोग अपने पातको को दूर करके पुण्य सचय करते हैं। यहाँ पर नित्य अगणित

[1] अर्थात् हरिद्वार। आज-कल यह गङ्गा के पश्चिमी तट पर है।

[2] यह नहर अब भी वर्त्तमान है।

पुरुष भारत के प्रत्येक प्रान्त से आकर स्नान करते हैं। उदार राजाओं ने अनेक पुण्य-शालायें बनवा रक्खी हैं जहाँ पर विधवा और पुरुषों को तथा आश्रय-रहित और दरिद्र लोगों को ओषधियाँ और इच्छा-भोजन मिलने का प्रबन्ध है। यहाँ से २०० ली के लगभग उत्तर दिशा मे चलकर हम 'पओ लोहिह मो पुलो' प्रदेश में आये।

पओ लोहिह मो पुलो (ब्रह्मपुर[1])

यह राज्य लगभग ४,००० ली के घेरे में है तथा इसके चारो ओर पहाड़ हैं। राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है जो बहुत घनी बसी है। यहाँ के निवासी धनाढ्य हैं। भूमि उपजाऊ है तथा सब फसलें समयानुसार बोई और काटी जाती हैं। देशी ताँबा और बिल्लौर भी उत्पन्न होता है। प्रकृति कुछ ठंढी है और मनुष्य असभ्य तथा कठोर हैं। साहित्य की ओर लोगो का विशेष ध्यान नही है। वाणिज्य की उन्नति अच्छी है। मनुष्यो का आचरण जङ्गलियो का सा है। विधर्मी और बौद्ध सम्मिलित रूप से रहते हैं। पाँच संघाराम हैं जिनमे थोड़े से संन्यासी निवास करते हैं। दश देवमन्दिर है जिनमें अनेक मत के विधर्मी मिल जुल कर उपासना करते है। इस प्रदेश की उत्तरी सीमा मे हिमालय पहाड़ है जिसके मध्य की भूमि को सुवर्णगोत्र कहते हैं। इस स्थान से बहुत उत्तम प्रकार का सोना आता है इसी से इसका यह नाम है। यह पूर्व मे पश्चिम की ओर फैला हुआ है। पूर्वी स्त्रियो के प्रदेश के समान यह देश भी स्त्रियो का है। वर्षों से यहाँ की स्वामिनी एक स्त्री रही है इससे इस देश को स्त्रियों का राज्य कहते हैं। यद्यपि इस स्त्री का पति राजा कहलाता है परन्तु राजकीय कार्यो से उसका कुछ सम्बन्ध नही है। पुरुषो का काम केवल लडना और भूमि का जोतना-बोना है, शेष काम स्त्रियाँ ही करती हैं। राज्य भर का यही दस्तूर है। यहाँ पर गेहूँ, बैल, भेड़ और घोड़े अच्छे उत्पन्न होते हैं। प्रकृति ठंढी (हिमप्रधान) और मनुष्य क्रोधी तथा जल्दबाज है। इस देश के पूर्व में तिब्बत, पश्चिम मे सम्पह और उत्तर मे खोटान राज्य है। मतिपुर से ४०० ली पूर्वोत्तर चलकर हम किउपीश्वाङ्गना प्रान्त मे आये।

किउपीश्वाङ्गना (गोविशन[2])

इस राज्य का क्षेत्रफल २,००० ली है और राजधानी का क्षेत्रफल १४ या १५

---

[1] कनिंघम साहब 'ब्रिटिश गढ़वाल और कमायूँ को ब्रह्मपुर' होना निश्चय करते हैं।

[2] कनिंघम साहब को विश्वास है कि उजेन नामक ग्राम के निकट जो प्राचीन

ली। चट्टानो और कगारों से घिरे होने के कारण यह प्रान्त प्रकृतितः सुरक्षित है। जन-संख्या अच्छी है। सब तरफ फूल, बगीचे और सुन्दर सुन्दर झीलें सुशोभित हैं। पैदावार और जलवायु मतिपुर के समान है। मनुष्य शुद्ध आचरणवाले और धर्मिष्ठ हैं। उत्तम उत्तम विद्याओ और कामो ही मे इनका समय व्यतीत होता है। बहुत से असत्य सिद्धान्तो पर भी चलनेवाले हैं जिनका उद्देश्य केवल ऐहिक सुखो का प्राप्त करना है। दो संघाराम और कोई १०० साधु हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, तथा भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियो के ३० मन्दिर हैं, जिनमे दर्शन-पूजन करने के लिए भेद-भाव नही पाया जाता। नगर के अतिरिक्त एक और संघाराम है जिसमे अशोक राजा का बनवाया हुआ एक स्तूप है। यह लगभग २०० फीट ऊँचा है। यहाँ पर बुद्ध भगवान् ने धर्म के बहुत आवश्यक विषय पर एक मास तक उपदेश दिया था। इसके निकट ही गत चारो बुद्धो के घूमने फिरने के चिह्न बने हुए हैं। इसकी बगल मे दो और स्तूप दस दस फीट ऊँचे हैं जिनमे तथागत भगवान् के बाल और कटे हुए नख रक्खे हैं। यहाँ से पूर्व दक्षिण ४०० ली चलकर हम ओही चीटालो प्रदेश मे पहुँचे।

ओही चीटालो (अहिक्षेत्र[1])

यह प्रदेश ३,००० ली के घेरे मे है और राजधानी का क्षेत्रफल १७ या १८ ली है। पहाड़ी चट्टान के किनारे होने के कारण यह प्रान्त प्रकृतितः सुरक्षित है। यहाँ पर गेहूँ उत्पन्न होता है तथा जङ्गल और नदियाँ बहुत है। जलवायु उत्तम तथा मनुष्य सत्यनिष्ठ हैं। धर्म और विद्याभ्यास से लोगो को बहुत प्रेम है। सब लोग चतुर तथा विज्ञ हैं। कोई दस संघाराम और १,००० साधु सम्मतीय-संस्था के हीनयान सम्प्रदायी हैं। ९ देवमन्दिर हैं जिनमे पाशुपत-सम्प्रदाय। ३०० साधु रहते हैं। ये लोग ईश्वर के निमित्त बलिप्रदान किया करते हैं। नगर के बाहर एक नाग झील है जिसके किनारे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यहाँ पर तथागत भगवान् ने नागराजा को सात दिन तक धर्मोपदेश दिया था। इसके निकट ही चार स्तूप और हैं जहाँ पर गत चारो बुद्ध बैठते थे और घूमा फिरा करते थे जिसके चिह्न अभी तक वर्तमान हैं। यहाँ

किला है वही गोविशन नगर है। यह ग्राम काशीपुर से ठीक एक मील पूर्व दिशा मे है। हुइली साहब गोविशन का नाम नही लिखते हैं परन्तु यह लिखते है कि मतिपुर से ४०० ली दक्षिण पूर्व अहिक्षेत्र है। यह दूरी और दिशा इत्यादि ठीक है।

[1] अहिक्षेत्र का नाम, महाभारत, हरिवंश इत्यादि मे भी आया है। यह स्थान उत्तरी पञ्चाल अर्थात् रुहेलखण्ड की राजधानी था।

से दक्षिण की ओर २६० या २७० ली चल कर और गंगा नदी पार करने के उपरान्त पश्चिमोत्तर दिशा में गमन करते हुये हम 'पिलोशनन' प्रदेश में पहुँचे।

पिलोशनन (वीरासन[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल २,००० ली और राजधानी का दस ली है। प्रकृति और पैदावार अहिक्षेत्र के समान है। मनुष्यो का स्वभाव हठी और क्रोधी है। ये लोग शिल्प और विद्याध्ययन में लगे रहते हैं। अधिकतर लोग भिन्नधर्मावलम्बी हैं, कुछ थोड़े से बौद्ध हैं। दो संघाराम और तीन सौ साधु हैं जो महायान-सम्प्रदाय के हैं। पाँच देवमन्दिर हैं जिनमें भिन्न भिन्न पंथ के लोग उपासना करते है। राजधानी के मध्य में एक प्राचीन संघाराम है जिसके मध्य में एक स्तूप है। यद्यपि यह स्तूप गिर गया है तो भी दो सौ फीट ऊँचा है। यह अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यहाँ पर तथागत भगवान् ने सात दिन तक 'स्कंधधातु उपस्थानसूत्र' का उपदेश दिया था। इसके निकट ही चारों गत बुद्धों के चलने फिरने और बैठने के चिह्न बने हुए है। यहाँ से दो सौ ली दक्षिण चलकर हम 'कई पीथ' प्रदेश में पहुँचे।

कईपीथ (कपिथ[2])

राज्य का क्षेत्रफल दो हजार ली और राजधानी का बीस ली है। प्रकृति और पैदावार वीरासन प्रदेश के समान है। मनुष्यो का स्वभाव कोमल और उत्तम है तथा लोग विद्योपार्जन मे लगे रहते हैं। दस संघाराम एक हजार साधुओं-सहित हैं जो सम्मतीय-संस्था के हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। कुल दस देवमन्दिर हैं, जिनमे अनेक पंथ के लोग उपासना करते हैं। ये सब महेश्वर के उपासक और बलिप्रदान आदि के करने वाले हैं। नगर के पूर्व बीस ली की दूरी पर एक बड़ा संघाराम बहुत सुन्दर बना है। शिल्पी ने इसके बनाने में बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया है तथा बुद्ध भगवान् की पुनीत

---

[1] जनरल कनिंघम इस स्थान का निश्चय अतरंजीखेरा नामक डीह मे करते है। यह स्थान करसान से दक्षिण मे चार मील पर है।

[2] यह स्थान वर्तमान कालिक 'संकिस' है। जनरल कनिंघम साहब ने इस स्थान की खोज सन् १८४२ ई० मे की थी। यह अतरञ्जी से पूर्व दक्षिण की ओर ठीक चालीस मील पर है। कपिथ शब्द केवल कनिंघम साहब की पुस्तक मे लिखा मिलता है। डाक्टर कर्न का विचार है कि प्रसिद्ध गणितज्ञ वराहमिहिर की शिक्षा कपिथ मे हुई थी।

मूर्ति भी बड़ी विचित्रता से स्थापित की है। लगभग एक सौ साधु सम्मतीय-सम्प्रदायी इसमें निवास करते हैं। इसके चारो ओर धार्मिक पुरुषो का निवास है। संघाराम की बड़ी चहारदीवारी के भीतर तीन बहुमूल्य सीढियाँ पास पास उत्तर से दक्षिण को बनी हैं, जिनका उतार पूर्वमुख को है। तथागत भगवान् स्वर्ग से लौटते समय इसी स्थान पर आकर उतरे थे। प्राचीन समय मे तथागत भगवान् 'जेतवन' से स्वर्ग मे जाकर सद्धर्म भवन मे ठहरे थे और अपनी माता को धर्मोपदेश दिया था[1]। तीन महीने तक वहाँ रहकर जब भगवान् की इच्छा लौट कर पृथ्वी पर आने की हुई तब देवराज इन्द्र ने अपने योगबल से तीन बहुमूल्य सीढियो को तैयार किया था। बीच की सोने की, बाईं ओर की बिल्लौर और दाहिने ओर की चाँदी की थी। तथागत भगवान् सद्धर्म भवन[2] से चल कर देवमण्डली के साथ बीच वाली सीढ़ी पर से उतरे थे। दाहिनी ओर माह ब्रह्मराज (ब्रह्मा ?) चादी की सीढ़ी से चामर लेकर और बाईं ओर इन्द्र बहुमूल्य छत्र लेकर बिल्लौर वाली सीढी से उतरे थे। भूमि पर इन सबके पहुँचने तक देवता लोग स्तुति करते हुए फूलो की वर्षा करते रहे थे। कई शताब्दियो के व्यतीत होने तक ये सीढ़िया प्रत्यक्ष दिखलाई पडती थी परन्तु अब भूमि में समाकर लोप हो गई हैं। निकटवर्ती राजाओ ने उनके अदृश्य होने के दुख से दुखित होकर जिस प्रकार की वे सीढिया थीं वैसी ही और उसी स्थान पर ईंटो से बनवा कर रत्न जटित पत्थरो से उनको विभूषित कर दिया है। ये लगभग ७० फीट ऊँची हैं। इनके ऊपरी भाग मे एक विहार बना है जिसमे बुद्ध भगवान् की मूर्ति और अगल-बगल सीढियो पर ब्रह्मा और इन्द्र की पत्थर की मूर्तियाँ उसी प्रकार की बनी हुई हैं जिस प्रकार वे लोग उतरते हुए दिखाई पड़ते थे।

विहार के बाहरी ओर उसी से मिला हुआ एक पत्थर का स्थान ७० फीट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इसका रङ्ग बैंगनी चमकदार है तथा सब मसाला सुदृढ़ और उत्तम लगा है। इसके ऊपर भाग मे एक सिंह जिसका मुख सीढियो की तरफ है अपने पुट्ठो के बल बैठा है। इसके स्तम्भ के चारो ओर सुन्दर सुन्दर चित्र बड़ी विचित्रता से बने हुए हैं इनकी विचित्रता यह है कि सज्जन पुरुष को तो दिखाई पडते

---

[1] बौद्धो मे बुद्धदेव के स्वर्ग से आने की कथा बहुत प्रसिद्ध है। फाहियान ने भी इसका वर्णन किया है और साँची के भी चित्रो मे इसका दृश्य पाया गया है।

[2] यह वह भवन है जहाँ पर शुक्र राजा और तैंतीसो स्वर्ग के देवता धार्मिक कृत्य के लिए एकत्रित होते हैं।

हैं परन्तु दुर्जन की दृष्टि में नही आते। सीढ़ियो के पश्चिम में थोडी ही दूर पर गत चारों बुद्धो के बैठने-उठने के चिन्ह बने हुए हैं। इसके निकट ही दूसरा स्तूप है जहाँ पर तथागत भगवान् ने स्नान किया था। इसके निकट ही एक विहार बना है जहा पर तथागत भगवान् ने समाधि लगाई थी। इस विहार के निकट एक दीवार ५० पग लम्बी और ७ फीट ऊँची बनी है। इस स्थान पर बुद्ध भगवान् टहले थे। जहाँ-जहाँ पर वह टहले थे वहाँ-वहाँ उनके पैर पडने से कमलपुष्प के चित्र बन गये है[1]। इस दीवार के दाहिने बायें दो छोटे-छोटे स्तूप ब्रह्मा और इन्द्र के बनवाये हुए है। ब्रह्मा और इन्द्र के स्तूपों के सामने वह स्थान है जहाँ पर उत्पल-वरण भिक्षुनी ने बुद्ध भगवान् के दर्शन, जब वे स्वर्ग से लौटे आ रहे थे, सबसे पहले करना चाहा था, और इस पुण्य के फल मे वह चक्रवर्तिन हो गई थी। इसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि सुभूति नामक बौद्ध अपनी गुफा मे बैठा था। उसको ध्यान हुआ कि बुद्ध भगवान् अब फिर मानव-समाज मे लौटे आते है। देवता उनकी सेवा के लिए साथ है। फिर मुझको उस स्थान पर क्यो जाना चाहिए। मुझको उनके पार्थिव शरीर के दर्शन से क्या पुण्य हो सकता है? मैने अपने ज्ञान-बल से उनके धर्मकाय का दर्शन कर लिया है, इसके अतिरिक्त बुद्ध भगवान् का वाक्य है कि प्रत्येक सजीव वस्तु (जगत्) मिथ्या है। इस कारण उनके निकट जाने की आवश्यकता नही। इसी समय उत्पलवरण। भिक्षुनी, सबसे पहले दर्शन की अभिलाषिणी होने के कारण चक्रवर्तिन अधीश्वरी हो गई। उसका शरीर सप्त रत्नो से आभूषित और चतुरंगिणी सेना से सुरक्षित हो गया। निकट पहुँचने पर उसने फिर भिक्षुनी के से वस्त्र धारण कर लिए। बुद्ध भगवान् ने उससे कहा कि सबसे पहले तुमने मेरे दर्शन नही किये है। बल्कि सुभूति ने सब वस्तुओ को असार समझ कर मेरे सूक्ष्म शरीर का दर्शन किया है इस कारण वही प्रथम दर्शक है।

इन पुनीत स्थानो की सीमा के भीतर बहुधा चमत्कारिक दृश्य दिखलाई दिया करते है। बडे स्तूप के दक्षिण-पूर्व नागझील है। यह नाग इन पुनीत स्थलो की रक्षा किया करता है जिस कारण कोई भी इस स्थान को कुदृष्टि से नही देख सकता। बली काल चाहे वर्षो में इनको नाश कर पावे परन्तु मनुष्य मे इनके ध्वस्त करने की सामर्थ्य नही। यहाँ से २०० ली से कुछ कम, पश्चिमोत्तर दिशा मे चल कर हम 'कइयो किओशी' राज्य मे गये।

---

[1] ऐसा ही एक पत्थरी मार्ग नालन्द मे भी था, जिस पर कमलपुष्प अंकित थे।

पाँचवाँ अध्याय

कान्यकुब्ज[1]

इस राज्य का क्षेत्रफल चार, हजार ली है, राजधानी के पश्चिम गंगा नदी है। इसकी लम्बाई बीस ली और चौड़ाई ४ या ५ ली है। नगर के चारो ओर एक सूखी खाई है जिसके किनारे पर मजबूत और ऊँचे २ बुर्ज एक दूसरे मे मिले चले गये हैं। मनोहर फल-फूलो से भरे हुए वन, उपवन और काच के समान स्वच्छ जल के तडाग और झीलें सर्वत्र वर्तमान हैं। बहुमूल्ल वाणिज्य-सम्बन्धी वस्तुओ की यहाँ बहुतायत रहती है। मनुष्य सुखी और संतुष्ट तथा निवासभवन समृद्धिशाली और सुन्दर हैं। प्रत्येक स्थान पर फल-फूल की अधिकता है। भूमि समयानुसार बोई और काटी जाती है। प्रकृति कोमल और सुखद तथा मनुष्यो का आचरण धर्मिष्ठ और सत्यतापरिपूर्ण है। इन लोगो की सूरत ही से भलमनसाहत और बडप्पन प्रकट होता है। इन लोगो के वस्त्र बहुमूल्य और मनोहर होते हैं। ये लोग विद्याव्यसनी तथा धार्मिक चर्चा में विशेष व्युत्पन्न हैं तथा इनकी भाषा की शुद्धता का डका चारों ओर बज रहा है। संख्या मे बौद्ध और हिन्दू प्राय. बराबर है। कई सौ संघाराम १०,००० साधुओ के सहित है जिनमे हीनयान और महायान दोनो सम्प्रदाय के साधु निवास करते हैं; तथा दो सौ देवमन्दिर हैं जिनमे कई हजार हिन्दू उपासना करते हैं। प्राचीन राजधानी कान्यकुब्ज, जिसमे बहुत दिनो से लोग निवास करते रहे हैं, 'कुसुमपुर' कहलाती थी और राजा का नाम ब्रह्मदत्त था। पूर्व जन्म के संस्कार और पुण्य के फल से इस राजा मे विद्वत्ता और युद्ध-निपुणता का प्रकाश स्वभावत: हो गया था जिससे लोग इसका भय मानते और बहुत सम्मान करते थे। सम्पूर्ण जम्बूद्वीप मे तथा

---

[1] कान्यकुब्ज वर्तमान समय का कन्नौज। कपिथ अथवा सकिस से यहाँ तक की दूरी कुछ कम दो सौ ली, और उत्तर-पश्चिम दिशा जो ह्वेनसांग ने लिखी है ठीक नही है। दिशा दक्षिण-पूर्व और दूरी कुछ कम तीन सौ ली होनी चाहिए। कन्नौज बहुत दिनो तक उत्तरी भारत के हिन्दू राज्य की राजधानी रहा है, परन्तु उसके चिन्ह अब बहुत कम बच रहे है।

निकटवर्ती प्रान्तों में इस राजा की बड़ी प्रसिद्धि थी। इसके बड़े बुद्धिमान् और वीर, एक हजार पुत्र और एक से एक रूपवती १०० कन्यायें थी।

इन्हीं दिनों एक ऋषि गंगा के किनारे रहता था। यह इतना बड़ा तपस्वी था कि तपस्या करते-करते हजारों वर्ष व्यतीत हो गये थे; यहाँ तक कि उसका शरीर भी सूख कर लकड़ी हो गया था। एक समय कुछ पक्षियों का झुन्ड उडता हुआ उस स्थान पर पहुँचा। उस झुन्ड में से एक के मुख से न्यग्रोध (अंजीर) वृक्ष का फल तपस्वी के कंधे पर गिर पड़ा। कुछ दिनो के उपरान्त उस फल से वृक्ष उत्पन्न हो गया और वह बढ़कर इतना बड़ा हुआ कि जाड़ा और गरमी मे उसके कारण ऋषि के ऊपर छाया बनी रहती थी। बहुत समय के उपरान्त जब ऋषि की आँख खुली तब उसने चाहा कि वृक्ष को अपने शरीर से अलग कर दे परन्तु वृक्ष मे के पक्षियो के खोते नाश होने के भय से वह ऐसा न कर सका और वृक्ष ज्यो का त्यो बना रहा। उसकी इस महान् तपस्या और अनिर्वचनीय दया के काम से उसका नाम महावृक्ष ऋषि पड़ गया था। एक समय महावृक्ष ऋषि को सघन कानन मे विचरण करते हुए गंगा के किनारे से कुछ दूरी पर अनेक राजकन्याये दिखाई पड़ी जो परस्पर आमोद-प्रमोद और वन-विहार कर रही थी। उन राजकन्याओ को देखते ही महर्षि के चित मे, सम्पूर्ण ससार के चित्त को विह्वल करने वाला, कामदेव उत्पन्न हो गया। इस वेदना से विकल होकर वह महर्षि राजा से भेंट करने और उससे उसकी कन्या की याचना करने के लिए कुसुमपुर की ओर प्रस्थानित हुआ। जिस समय राजा को महर्षि के आगमन का समाचार विदित हुआ वह प्रेम से उसकी अभ्यर्थना करने के लिए कुछ दूर पैदल गया तथा दंडवत् प्रणाम करके इस प्रकार निवेदन करने लगा, "हे महर्षि, आप तो पूर्ण शान्ति के साथ तपस्या में निमग्न थे; आप पर कौन सा ऐसा कष्ट पड़ा जिससे आपको मेरे स्थान तक पधारना पड़ा?" महर्षि ने उत्तर दिया, "पृथ्वीपति! बहुत समय तक मै आनन्द और शान्ति के साथ तपस्या करता रहा, समाधि के टूटने पर एक दिन मैं वन में इधर-उधर विचरण कर रहा था कि कुछ राजकन्याये मुझको दिखाई पडी। उन सुन्दरियो को देखते ही मेरा मन हाथ से जाता रहा और मै कामदेव के अचूक बाणो से विद्ध होकर विकल हो गया। यही कारण है कि मैं बहुत दूर चल कर आपके पास यह याचना करने आया हूँ कि आप अपनी किसी कन्या के साथ मेरा विवाह कर दीजिए।"

राजा ने महर्षि के वचनों को सुनकर और उसकी आज्ञा के उलंघन में अपने को असमर्थ पाकर उत्तर दिया कि "हे तपस्वी! आप अपने स्थान पर जाकर विश्राम

कीजिए और मुझको किसी शुभ मुहूर्त के आने का अवकाश दीजिए, मैं आपकी आज्ञा का अवश्य पालन करूंगा।" महर्षि राजा के वचनो को स्वीकार करके फिर वन को लौट गया। फिर राजा ने बारी-बारी से अपनी प्रत्येक कन्या को बुला कर महर्षि के साथ विवाह करने के लिए पूछा, परन्तु उनमे से कोई भी विवाह करने के लिए राजी न हुई।

राजा महर्षि के प्रभाव को विचार कर बहुत भयभीत और शोकाकुल हो गया, परन्तु कोई युक्ति नही दिखाई पडती थी जिससे उसको आश्वासन मिल सके। एक दिन जब राजा चुपचाप बैठा हुआ विचारसागर मे गोते खा रहा था, उसकी सबसे छोटी कन्या उसके निकट आई और समयानुसार बहुत उपयुक्त रीति से कहने लगी कि 'हे पिता! हजार पुत्र और दस हजार राज्य आपके अधीन हैं, सब लोग सेवक के समान आपकी आज्ञा के वशीभूत हैं, फिर क्या कारण है कि आप इस प्रकार खिन्न और मलीन हो रहे हैं मानो कोई बडा भारी भय आपके सामने उपस्थित हो।'

राजा ने उत्तर दिया कि 'महावृक्ष ऋषि तुम लोगो पर मोहित हुआ है और तुममे से किसी एक के साथ विवाह करना चाहता है, परन्तु तुम सबकी सब उसको नापसन्द करती हो और उसकी याचना को स्वीकार नही करती हो। यही मेरे शोक का कारण है। वह महर्षि तपस्या के बल से बडा प्रभावशाली है, सुख को दुख और दुख का सुख में परिवर्तन कर देना उसके लिए सामान्य कार्य है। यदि उसकी आज्ञा मैं न पालन कर सकूंगा तो अवश्य वह क्रोधित हो जायगा और उसका क्रोध मेरे राज्य को नाश कर देगा, मेरा धर्म जाता रहेगा तथा मेरे बाप-दादो की और मेरी कीर्ति मिट्टी मे मिल जावेगी। जिस समय मैं भविष्य की इस विपद् का विचार करता हूँ उस समय मेरा चित्त ठिकाने नही रहता।

उस छोटी कन्या ने उत्तर दिया कि 'हे पिता' आप शोक को दूर कीजिए यह हमारा अपराध है इसका क्षमा कीजिए, और मुझको आज्ञा दीजिए कि मैं देश की सुख समृद्धि की वृद्ध और रक्षा करने मे समर्थ हो सकूं।' राजा उसके वचनो को सुन कर प्रफुल्लित हो गया और अपने रथ को मगवा कर तथा विवाह के योग्य सामग्री सहित उस कन्या को लेकर 'महर्षि के आश्रम को गया, तथा बडी भक्ति से चरण-वन्दना करके निवेदन करने लगा कि 'हे तपोधन! यदि आपका चित्त लौकिक वस्तुओ पर आसक्त हुआ है, और आप सासारिक आनन्द मे लिप्त हुआ चाहते हैं तो मैं अपनी छोटी कन्या आपकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए समर्पण करता हूं।', महर्षि उस कन्या को देख कर क्रोधित हो गया और राजा से कहने लगा कि 'मालूम

होता है तुम मेरी वृद्धावस्था का अनादर कर यह अनुपयोगी छोटी सी कन्या दिया चाहते हो।'

राजा ने उत्तर दिया, "मैंने अपनी सब कन्यायो से अलग अलग पूछा, परन्तु उनमे से कोई भी आपके साथ विवाह करने को राजी नही हुई, केवल यही छोटी कन्या आपकी सेवकाई के लिए मुस्तैद है।'

इस बात पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर महर्षि ने शाप दिया कि 'वह निन्नानवे कन्यायें (जिन्होंने मुझको अस्वीकार किया है)। इसी क्षण कुबडी हो जावे और संसार का कोई भी मनुष्य उनके इस कुब्रपपन के कारण उनके साथ विवाह न करें। राजा ने शीघ्र ही सदेशा भेजकर इसका पता लगाया तो मालूम हुआ कि वे सबकी सब कुबड़ी हो गयी हैं। इस समय से इस नगर का दूसरा नाम कान्यकुब्ज अर्थात् 'कुबड़ी स्त्रियो का नगर' हुआ[1]।

इस समय का राजा वैश्य[2] जाति का है जिसका नाम हर्षवर्द्धन[3] है। कर्मचारियो की समिति राज्य का प्रबन्ध करती है। दो पीढी के अन्तर मे तीन राजा राज्य के स्वामी हुए। राजा के पिता का नाम प्रभाकरवर्द्धन और बडे भाई का नाम राज्यवर्द्धन था।

राज्यवर्द्धन बडा बेटा होने के कारण पिता के सिंहासन का अधिकारी हुआ था। यह राजा बहुत योग्यता के साथ शासन करता था। जिसमे पूर्वी भारत के कर्ण सुवर्ण[4] नामक राज्य का स्वामी, राजा शशांक[5] बहुधा अपने मन्त्रियो से कहा करता

---

[1] पुराणो मे लिखा है कि 'वय' ऋषि ने राजा कुशनाम की सौ कन्याओ को शाप देकर कुबड़ो कर दिया था।

[2] कदाचित वैश्य से तात्पय वाणिज्य करनेवाले बनियो से नही है बल्कि बैंस कहलानेवाले क्षत्रियो से है जिनके नाम से लखनऊ से लेकर कडामानिकपुर तक और अवध का समस्त दक्षिणी भाग बैंसवारा कहलाता हे।

[3] यही व्यक्ति शिलादित्य हर्षवर्द्धन के नाम से प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध योरपीय विद्वान् मैक्समूलर इसके राज्य का आरम्भ ६१० ई० मे और अन्त सन् ६५० ई० में निश्चित करते हैं, तथा कुछ दूसरे विद्वान् इसके राज्य का आरम्भ सन् ६०६-६०७ ई० से मनाते हैं।

[4] बङ्गाल मे मुर्शिदाबाद के उत्तर १२ मील पर रङ्गामति नाम का नगर एक प्राचीन नगर के डीह पर वसा हुआ है, जो 'कुरूसोन का गढ कहलाता था। कदाचित् यह शब्द 'कर्ण सुवर्ण' का बंगला अपभ्रंश हो।

[5] गौड़ या बङ्गाल का राजा शशाङ्क नरेन्द्र गुप्त यही है।

था कि 'यदि हमारे सीमान्त प्रदेश का राजा इतना योग्य शासक है, तो यह बात हमारे राज्य के लिए अवश्य अनिष्टकारक है।' मंत्रियो ने राजा की बात का विचार करके और उसकी सम्मति लेकर राजा राज्यवर्द्धन को गुप्त रूप से मार डाला।

प्रजा को बिना राजा के विकल और देश को सत्यानाश होते देख कर प्रधान मन्त्री पोनी (भन्डी)[1] ने, जो बहुत प्रतिष्ठित और विशेष प्रभावशाली था, मन्त्रियो की सभा करके यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि 'होनहार के कारण हमको आज का दिन देखना पडा। हमारे विदेह राजा का पुत्र भी स्वर्गवासी हो गया, परन्तु गत राजा का भाई हम लोगो के भाग्य मे बहुत दयालु और लोकप्रिय है। ईश्वर की कृपा से वह बहुत उत्तम स्वभाव का और कर्त्तव्यशील है। राज-परिवार से उसका सम्बन्ध भी बहुत निकट का है जिससे लोग उस पर विश्वास भी करेंगे। इस कारण मेरी प्रार्थना है कि उसी को राज्यभार समर्पण करना चाहिए। मुझको आशा है कि आप लोग इस विषय मे अपनी उचित सम्मति से अनुगृहीत करेंगे।' सब लोगो ने राजकुमार के गुणो का गान करते हुए उसका राजा होना स्वीकार किया।

तब प्रधान मन्त्री सब सरदारो ने राजकुमार से राज्यभार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते हुए यह निवेदन किया कि 'हम लोग राजकुमार का अभिवादन करते हुए प्रार्थी हैं। विगत राजा का पुण्य और प्रभाव ऐसा प्रबल था कि जिसके कारण सम्पूर्ण राज्य का शासन, उनके गुणो की बदौलत, बहुत उत्तमतापूर्वक होता था। उसके उपरान्त गत नरेश स्वनामधन्य महाराज राज्यवर्द्धन जब राज्यासीन हुए उस समय हम लोगो को आशा हुई थी कि वह अपने जीवन को सुख से व्यतीत करते हुए बहुत काल तक राज्य करेंगे, परन्तु वह भी शत्रु के हाथ मे पड गये, जिससे कि आपके राज्य को बहुत बडा धक्का पहुँचा है। परन्तु यह आपके मन्त्रियो का अपराध है। राज्य के निवासी, जैसे वे अपने गीतो मे गान करते हैं, आपके वास्तविक गुणो पर मोहित होकर आपके सच्चे दास हैं। इस कारण प्रार्थना है कि आप

---

[1] हर्षचरित का रचयिता प्रसिद्ध कवि बाण ही का नाम भण्डिन था। वायड साहब ने इसका उल्लेख नागानन्द नाटक की भूमिका मे किया है। जीमूतवाहन ही नागानन्द नाटक का मुख्य पात्र है। इसलिए श्रीहर्षदेव ही, जो नागानन्द और रत्नावली दोनो का रचयिता कहा जाता है, कन्नौज का शिलादित्य था और उसी ने, जैसा कि I tsing सूचित करता है, नागानन्द के अभिनय करते समय जीमूतवाहन का स्वरूप धारण किया था। परन्तु कोवेल साहब का मत है कि नागानन्द का रचयिता धावक और रत्नावली का रचयिता बाण था। जातकमाला को बनानेवाले भी श्रीहर्ष के दरबारी कवि ही थे।

यश के साथ राज्यासन को सुशोभित कीजिए, तथा अपने परिवार के शत्रुओं को पराजित करके, आपके राज्य और पिता के कर्मो पर जो कलंक की कालिमा लग रही है उसको, दूर कीजिए[1]। इससे आपको पुण्य होगा। हम प्रार्थना करते है कि आप हमारे निवेदन को अस्वीकार न करें।

राजकुमार ने उत्तर दिया, "राज्य-प्रबन्ध बड़ी जिम्मेदारी का काम है, इसमे प्रत्येक समय कठिनाई का सामना रहता है। राजा का क्या कर्तव्य है इसका पहले से ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। यद्यपि मेरी योग्यता बहुत थोड़ी है परन्तु, मेरे पिता और भ्राता अब संसार मे नही है, ऐसे समय मे राज्याधिकार को अस्वीकार करने से लोगो की बडी हानि होगी। इस कारण मैं अपनी अयोग्यता का विचार न करके आप लोगो की सम्मति पर अवश्य ध्यान दूँगा। अब गंगा के तट पर अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की मूर्ति के निकट, जिसके अद्भुत चमत्कारो का परिचय समय समय पर मिला करता है, चलना चाहिए, और भगवान् की भी आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। बोधिसत्व-प्रतिमा के निकट पहुँच कर राजकुमार निराहार व्रत करता हुआ प्रार्थना मे लीन हो गया। उसके सत्य विश्वास पर प्रसन्न होकर बोधिसत्व ने मनुष्य के स्वरूप में उसके सामने आकर पूछा, "किसलिए तू इतनी भक्ति से प्रार्थना करता है, तेरी क्या कामना है?" राज-कुमार ने उत्तर दिया, "मै बडे भारी दुख के भार से दबा हुआ हूँ। सबको दयादृष्टि से देखने वाले मेरे पूज्य पिता का देहान्त हो गया और मेरे बड़े भाई, जिनकी कोमल और शुद्ध प्रकृति सब पर विदित है, बडी नीचता और निर्दयता से मार डाले गये। इन सब दुखो मे पडे होने पर भी, और मेरी न्यूनातिन्यून योग्यता का कुछ भी विचार न करके, लोग मुझको राज्य-पद पर प्रतिष्ठित किया चाहते हैं। मेरी अयोग्यता और मूर्खता की ओर ध्यान न करके मुझको उस उच्च स्थान पर बैठाया चाहते हैं जिसको मेरा सुप्रसिद्ध पिता सुशोभित करता था। ऐसे दुख के समय मे भगवान् की पूज्य आज्ञा प्राप्त करने के लिए मैं प्रार्थी हुआ हूँ।"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे राजकुमार, पूर्व जन्म में तू इसी जङ्गल में योगियो के समान निवास करता था। अपनी कठिन तपस्या और अविचल योगाभ्यास के बल मे तू सिद्धावस्था को प्राप्त हो गया था। यह उसी का फल है कि तू राजपुत्र हुआ। कर्ण सुवर्ण प्रदेश के राजा ने बौद्ध-धर्म को परित्याग कर दिया है। अब तुम राज्य को सँभालो और इस धर्म से प्रेम करके उसी प्रकार इसको सर्वव्यापी बनाओ जिस प्रकार उसने इसके विपरीत आचरण किया है। यदि तुम दुखी पुरुषो की अवस्था

---

[1] समझ मे नही आता कि राज्य और पिता पर क्या कलङ्क था।

पर दयार्दचित्त रहोगे और उनका पालन-पोषण करते रहोगे तो तुम बहुत शीघ्र समस्त भारत के अधिपति हो जाओगे । यदि तुम मेरी शिक्षा के अनुसार राज-काज सम्पादन करते रहोगे, और मेरे अत्यन्त गुप्त प्रभाव से विवेक-सम्पन्न होगे, तो कोई भी तुम्हारा पडोसी तुम पर कभी विजय नही प्राप्त कर सकेगा[१] । सिंहासन पर मत बैठो और अपने को महाराजा न कहलाओ ।"

इन शिक्षाओ को ग्रहण करके राजकुमार लौट आया और राज-प्रबन्ध को देखने लगा । वह अपने को राजकुमार ही कहता था तथा अपना उपनाम शिलादित्य रक्खा था । कुछ दिनो बाद उसने अपने मंत्रियो मे कहा कि "मेरे भाई के शत्रु अब तक दंडित नही किये गये हैं, और न निकटवर्ती प्रदेश मेरे अधीन हुए हैं; जब तक यह कार्य न हो जायगा मैं अपने दाहिने हाथ से भोजन नही करूँगा । इस कारण तुम सब प्रजा और दरबारी लोग एक दिल होकर इस कार्य के लिए कटिबद्ध हो जाओ और अपने बल को प्रकट करो ।" इस आज्ञा को पाकर उन लोगो ने सब सिपाहियो और राज्य के सम्पूर्ण युद्धनिपुण वीरो को एकत्रित किया । इस प्रकार ५,००० हाथी, २०,००० घुडसवार और पचास हजार पैदल सेना को साथ लेकर राजकुमार ने पूर्व के सिरे से पश्चिम के सिरे तक सब विद्रोहियो को परास्त करके अपने अधीन किया । एक दिन के लिए भी न हाथियो की गद्दियाँ उतारी गई और न सिपाहियो ने अपनी कमरें खोलकर विश्राम लिया । कोई छ वर्ष के कठिन परिश्रम मे उसने समस्त भारत को विजय किया । जिस प्रकार उसका राज्य विस्तृत हुआ उसी प्रकार सेना की भी संख्या बढ कर साठ हजार हाथी और एक लाख घुडसवार हो गये । तीस वर्ष के उपरान्त उसने हथियार बाँधना छोड दिया और शान्ति के साथ सब ओर शासन करने लगा । सदाचार के नियमो को दृढता से पालन करते हुए धर्म के पौधे को परिवर्धित करने के लिए राजकुमार इतना अधिक व्यग्र हुआ कि उसका खाना और सोना तक छूट गया । उसने आज्ञा दे दी कि समस्त भारत मे कही पर भी जीवहिंसा न की जावे, और न कोई व्यक्ति मांस भक्षण करे, अन्यथा प्राण-दंड दिया जावेगा । इन कार्यों के करनेवाले का अपराध कदापि नही क्षमा किया जावेगा । उसने गंगा के किनारो पर कई हजार स्तूप सौ सौ फीट ऊँचे बनवाये । भारतवर्ष के प्रत्येक बडे नगर और ग्राम मे उसने पुण्यशालायें बनवाई जिनमे खाने और पीने की सब प्रकार की सामग्री प्रस्तुत रहती थी, तथा वैद्य

---

[१] वास्तव मे शिलादित्य ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को विजय कर लिया था । केवल दक्षिण देशवासी पुलकेशी पर उसका वश नही चला था । इसलिए पुलकेशी का नाम परमेश्वर पड़ गया था ।

लोग औषधियों के सहित सदा तैयार रहते थे जिससे यात्रियो और निकटवर्ती दुखी दरिद्र पुरुषो को बिना किसी प्रकार की रुकावट के अपरिमित लाभ पहुँचता था। सब स्थानो मे जहाँ जहाँ पर बुद्ध भगवान् का कुछ भी चिह्न था उसने संघाराम स्थापित किये।

प्रत्येक पाँचवे वर्ष वह मोक्ष नाम का एक बहुत बड़ा मेला करता था, जिसमे वह अपना सम्पूर्ण खजाना दान कर देता था, केवल सेना के हथियार शेष रहते थे जिनका दान करना न तो उचित ही था और न दान कर देने पर साधुओ के ही किसी काम के थे। प्रत्येक वर्ष सब प्रान्तो के श्रमणो को एकट्ठा करता था और तीसरे तथा सातवे दिन सबको चारो प्रकार की वस्तुएं (अन्न, जल, औषधि और वस्त्र) दान करता था। उसने कितने ही धर्म-सिहासनो को सोने से मढवा दिया तथा अनेक उपदेशासनो को रत्नो से जडवा दिया था। उसने साधुओ को वादानुवाद करने के लिए आज्ञा द रक्खी थी, तथा उनके अनेक सिद्धान्तो पर स्वय विचार करता था कि कौन सा सिद्धान्त सबल और कौन सा निर्बल है। साधुओ को दान, दुष्टो को दण्ड, नीचो का अनादर और ज्ञानियो का आदर करने के लिए वह सब प्रकार से तैयार रहता था। यदि कोई साधु सदाचार के नियमानुसार आचरण रखते हुए धर्म के मामले मे विशेष प्रसिद्ध हो जाता था तो राजकुमार उस साधु को बडी प्रतिष्ठा के साथ सिहासन पर वैठा कर उसके धार्मिक उपदेशो को श्रवण करता था। यदि कोई साधु, सदाचारी तो पूर्ण रीति से होता था परन्तु विद्वान् नही होता था तो उसकी प्रतिष्ठा तो होती थी परन्तु बहुत विशेष नही। यदि कोई व्यक्ति धर्म का तिरस्कार करता था और उसका वह तिरस्कार सर्वसाधारण पर प्रकट हो जाता था तो उस व्यक्ति को कठोर दंड देश-निकाले का दिया जाता था, जिसमे उसकी बात किसी के कानो तक न पहुँच सके और न उसके किसी देशभाई को उसका मुख ही देखने को मिले। यदि निकटवर्ती नरेश और उनके मन्त्री धार्मिक कार्यो मे विशेष तत्परता दिखाकर धर्म को उन्नत और सुरक्षित रखने मे सहायक होते थे तो उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती थी। राजकुमार बड़े आदर से उनका हाथ पकड़ कर अपने बराबर आसन पर बैठा लेता था और 'सच्चा मित्र' के नाम स सम्बोधन करता था। परन्तु जो लोग इसके विपरीत आचरणवाले होते थे उनकी अप्रतिष्ठा होती थी। यो तो राज्य का सम्पूर्ण कार्य, हरकारो के द्वारा; जो इधर-उधर आया-जाया करते थे, होता था परन्तु यदि मुख्य नगर के लोगो मे कुछ गड़बड़ होता था तो उस समय राजकुमार स्वयं उनके मध्य मे जाकर सब बात ठीक कर देता था राज्य-प्रबन्ध की देख-भाल के लिए जहाँ कही राजकुमार जाता था वहाँ पर नवीन मकान पहले ही से बना दिये जाते थे। केवल बरसात के तीन महीनो में, जिन दिनों

अधिक वर्षा होती थी, ऐसा नही हो सकता था। इन मकानो मे सब प्रकार की भोज्य वस्तुएँ सब धर्मों के मनुष्यो के लिए सगृहीत रहती थी जिनसे प्राय. एक हजार बौद्ध संन्यासी और ५०० ब्राह्मणो का निर्वाह होता था[1]।

राजकुमार ने अपने समय के तीन विभाग कर रक्खे थे। प्रथम भाग में राज्य-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण, और द्वितीय भाग मे धार्मिक पूजा-पाठ। पूजा-पाठ के समय कोई भी व्यक्ति उसको नही छेड सकता था, और न उसकी तृप्ति ही इस कार्य से होती थी।

जिस समय मुझको प्रथम निमन्त्रण कुमार राजा[2] की ओर मे मिला था उस समय मेरा विचार हुआ था कि मैं मगध होता हुआ कामरूप जाता। राजकुमार शिलादित्य इन दिनो अपने राज्य के विविध प्रान्तो मे यात्रा और राज्य-प्रबन्ध का निरीक्षण करता हुआ 'कीमी[3] औकीलो' स्थान मे था। उसने कुमार राजा को पत्र भेजा कि "मेरी इच्छा है कि आप तुरन्त मेरी सभा मे उपस्थित होवें और अपने साथ उस नवागत श्रमण को भी लेते आवें जिसका आपने नालन्दा के संघाराम मे निमन्त्रित करके आतिथ्य-सत्कार किया है।" इस आज्ञा के अनुसार हम कुमार राजा के साथ सभा मे पहुँचे। हम लोगो का मागजनित श्रम दूर हो जाने पर हमसे और शिलादित्य से निम्नलिखित बात-चीत हुई।

शिलादित्य—आप किस देश से आते हैं और इस यात्रा से आपका क्या अभि-प्राय है ?

ह्वेनसांग—मैं टङ्ग देश से आता हूँ और बौद्धधर्म के सिद्धान्तो को खोजने के लिए आज्ञा चाहता हूँ।

---

[1] इससे विदित होता है कि यद्यपि शिलादित्य का अधिक झुकाव बौद्धधर्म की ओर था परन्तु वह अन्य धर्मों की भी रक्षा करता था।

[2] कुमार राजा जिसने ह्वेनसांग को निमन्त्रित किया था कामरूप का राजा था जो आसाम का पश्चिमी भाग है। शिलादित्य भी कुमार कहलाता है परन्तु इस निमन्त्रण का सुस्पष्ट वृत्तान्त ह्वेनसांग की जीवनी के चौथे खन्ड के अन्तिम भाग मे लिखा हुआ है।

[3] यहां 'मी' अशुद्ध है, कदाचित् 'चू' होगा जिसका तात्पर्य 'कजूघिर' अथवा 'काजिनघर' होता है। यह छोटा सा राज्य गंगा के किनारे 'चम्पा' से लगभग ९२ मील दूर था।

शिलादित्य—टंग देश कहाँ पर है ? किस मार्ग से भ्रमण करते हुए आप आये है ? वह देश यहाँ से दूर है अथवा निकट ?

ह्वेनसाग—यहाँ से कई हजार ली दूर पूर्वोत्तर दिशा मे मेरा देश है। यह वह राज्य है जो भारतवर्ष मे महाचीन के नाम से प्रसिद्ध है।

शिलादित्य—मैंने सुना है कि महाचीन देश के राजा देवपुत्र टासिन है[1]। इनकी आध्यात्मिक योग्यता युवावस्था ही से प्रकट हो चली थी, और ज्यो-ज्यो अवस्था बढ़ती गई त्यो-त्यो उत्तरोत्तर बढती ही गई; यहाँ तक कि लोग उनको दैवी शक्ति-सम्पन्न योद्धा[2], कहने लगे। पहले समय मे राज्य की व्यवस्था गड़बड और असम्बद्ध थी। छोटे-छोटे विभाग होने के कारण सर्वत्र अनैक्य का निवास था। रात-दिन संग्राम मचे रहने के कारण प्रजा दुःख और दरिद्रता से जर्जरित हो गई थी। उस समय सबमे पहले देवपुत्र टसिन राजा को उपयोगी और महत्त्व के कार्यो का ध्यान हुआ। उसने दया और प्रेम के बल से मनुष्यो को समझा-बुझा कर कर्तव्य का ज्ञान कराया जिससे सब ओर शान्ति विराजने लगी तथा उसके उपदेश और कानून का सर्वत्र प्रचार हुआ। दूसरे देश के लोग भी उसके प्रभाव और गुणो पर मोहित होकर उसकी वशवर्तिता स्वीकार करने को सहर्ष प्रस्तुत हो गये। प्रजा का उदारता के साथ पालन करने से लोगो ने अपने-अपने भजनो मे टसिन राज के प्रभाव का अच्छा बखान किया है। बहुत दिन हुए जब उसके गुणगान की कविता को हमने भी पढ़ा था। क्या उसके चरित्र से सम्बन्ध रखनेवाली सम्पूर्ण कविता भली भाँति शुद्ध है ? क्या यही टंगराज है जिसका आपने वर्णन किया है ?

ह्वेनसाँग—चीन हमारे पहले राजाओ का देश है और टंग हमारे वर्तमान नरेश का देश है। प्राचीन काल मे हमारा राजा, वंशपरम्परागत राज्य का स्वामी होने के पहले (साम्राज्य की स्थापना होने के पूर्व) टसिन-महाराज कहलाता था,

---

[1] प्रसङ्ग और ह्वेनसांग के उत्तर मे विदित होता है कि यह वार्तालाप टसिन-वंश के प्रथम राजा की बाबत है जिसने जागीरदारो को तहस-नहस करके साम्राज्य को स्थापित किया था। उसने शत्रुओ से सुरक्षित रहने के लिए एक बड़ी भारी दीवार बनवाई, देश को बसाया और टसिन-राज्य को कायम किया। इस राजा की प्रशंसा मे जो भजन गाये जाते हैं उनसे शिलादित्य के भी चरित्र का पता लगता है, जो स्वयं भी कवि था।

[2] चीनी भाषा का शब्द ह्वांगटी अथवा वह मनुष्य जो युद्धनिपुणता में ईश्वर के तुल्य हो।

परन्तु अब देवराज (सम्राट्) कहलाता है। प्राचीन राज्ज के समाप्त होने पर जब देश का कोई स्वामी न रहा और सर्वत्र अराजकता और लड़ाई झगड़े के कारण प्रजा का विनाश होने लगा उस समय टसिन-राज ने अपने दैवी बल से सब लोगो को दया और प्रेम का पात्र बनाकर सुखी किया। उसके प्रभाव से सब ओर के सारे दुष्टो का नाश हो गया और अष्टलोक[1] मे शान्ति छा गई तथा दस सहस्र राज्य उसके वशवर्ती हुए। उसने सब प्रकार के प्राणियो को रत्नत्रयी[2] का भक्त बनाया जिससे लोगो पर से पातक का भार उतरने के साथ ही दंड-व्यवस्था मे भी कमी हो गई। यह इसी राजा का प्रभाव था जिससे देशनिवासी निश्चिन्ताई के साथ सुख-समृद्धि के भोग करने मे समर्थ हुए। जो कुछ महत्त्व के कार्य इस राजा ने किये थे उन सबका बखान करना कठिन है।

शिलादित्य—बिलकुल सच है। प्रजा ऐसे ही पुनीत राजा के पाने से सुखी होती है।

शिलादित्य राजा जब अपने नगर कान्यकुब्ज को जाने लगा तब अपने सम्पूर्ण धर्मनेताओ को एकत्रित करके तथा कई लाख अन्य पुरुषो को साथ लेकर गगा के दक्षिणी किनारे-किनारे चला, और कुमार राजा अपने कई सहस्र मनुष्यो के सहित उत्तरी किनारे-किनारे गया। इस तरह पर उन दोनो के मध्य मे नदी की धार थी तथा कुछ लोग पानी पर और कुछ भूमि के मार्ग पर रवाना हुए। दोनो राजाओ की सेना नावो और हाथियो पर सवार होकर नगाड़ा, नरसिंहा, बाँसुरी और वीणा बजाती हुई आगे-आगे चलती थी। नब्बे दिन की यात्रा के उपरान्त सब लोग कान्यकुब्ज नगर में पहुँचकर गगा के पश्चिमी किनारे के पुष्पकानन मे जाकर ठहरे।

इसी समय बीस अन्य देशो के राजा भी शिलादित्य की आज्ञानुसार अपने-अपने देश के सुप्रसिद्ध और योग्य विद्वान् श्रमण और ब्राह्मण तथा शूरवीर सेनापति और सरदारो के सहित आकर इकट्ठे हुए। राजा ने पहले ही से गंगा के पश्चिमी किनारे पर एक बड़ा संघाराम और पूर्वी तट पर १०० फुट ऊंचा एक स्तूप बनवा दिया था, जिसके मध्य मे भगवान् बुद्ध की उतनी ही ऊँची सोने की मूर्ति, जितना ऊँचा राजा खुद था, रक्खी हुई थी। बुद्ध भगवान् की मूर्ति के स्नान के निमित्त बुर्ज के दक्षिण मे एक बहुमूल्य सुन्दर वेदी बनाई गई थी, तथा इसमे १४ या १५ ली

---

[1] अर्थात् राज्य के आठो देश, अथवा संसार के अष्टलोक।

[2] चीनवालो का इस बात पर पूर्ण विश्वास है कि बौद्ध-उपदेशक सबसे पहले टसिन-राज्य के समय मे चीन को गये थे।

पूर्वोत्तर दिशा मे दूसरा विश्रामगृह बनाया गया था। आज-कल वसन्त-ऋतु का दूसरा महीना व्यतीत हो रहा था। इस महीने की प्रथम तिथि से श्रमणों और ब्राह्मणो को उत्तमोत्तम भोजन दिया जाने लगा और बराबर २१ वी तिथि तक दिया गया। संघाराम के निकटवर्ती सम्पूर्ण अस्थायी स्थानो के सिंहद्वार बहुत सुन्दरता से सजाये गये थे जिनके ऊपर बैठकर गाने बजाने वाले अपने विविध प्रकार के वाद्ययन्त्रो से आनन्द को परिवर्द्धित कर रहे थे।

राजा ने अपने विश्रामगृह से वाहर आकर हुक्म दिया कि वुद्ध भगवान् की स्वर्णमूर्ति, जो तीन फीट ऊँची थी, एक सर्वोत्तम और सवप्रकार से सुसज्जित हाथी पर चढ़ा कर लाई जाय। उसके बाईं ओर राजा शिलादित्य उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण धारण करके और बहुमूल्य छत्र हाथ मे लिये हुए चले, और कुमार राजा ब्रह्मा का स्वरूप बना कर एक श्वेत चमर हाथ मे लिये हुए दाहिनी ओर चले। दोनो के आगे-आगे ५०० लडाकू हाथी सुन्दर झूलें डाले हुए रक्षक के समान चले जाते थे, और बुद्ध भगवान् की मूर्ति के पीछे १०० बडे-बडे हाथी वाद्य-यात्रा मे लदे हुए चले, जिनके नगाडो और वाजो का तुमुल निनाद गगनव्यापी हो रहा था।

राजा शिलादित्य उपासना के तीनो फल प्राप्त करने के लिए मोती तथा बहुमूल्य रत्न और सोने-चाँदी के फूल मार्ग मे लुटाता जाता था। वेदी पर पहुँच कर मूर्ति को सुगन्धित जल से स्नान कराया गया। फिर राजा उसको अपने कन्धे पर उठाकर पश्चिमी बुर्ज को ले गया जहाँ पर सैकडो हजारो रेशमी वस्त्र और बहुमूल्य रत्न-आभूषणो से वह मूर्ति सुभूषित और सुसज्जित की गई। इस सवारी के ठाठ मे केवल २० श्रमण साथ थे, तथा अनेक प्रदेशो के राजा रक्षको का काम करते थे। यह कार्य समाप्त हो जाने पर भोजन का समारोह किया गया, और तदनन्तर अनेक विद्वान बुलाये गये जिन्होने धर्म के गूढ़ विषयो पर सुललित भाषा मे व्याख्यान दिया। सन्ध्या होने पर राजा अपने यात्रा[1]-भवन को लौट गया।

इस तरह प्रत्येक दिन स्वर्णमूर्ति का इसी भाँति समारोह और ठाठ-बाट होता रहा। अन्तिम दिन बुर्ज और संघाराम के फाटक के ऊपरी भाग सिंहपौर पर एकाएक बड़ी भारी आग लग गई। इस दुर्घटना को देख कर राजा बडे आर्तस्वर मे कहने लगा "मैंने प्राचीन नरेशों के समान देश का अगणित धन दान करके यह संघाराम बनवाया था। मेरी इच्छा थी कि इस शुभ कार्य से संसार मे मेरी कीर्ति हो, परन्तु

---

[1] पहले लिखा गया है कि राजा जहाँ जहाँ जाता था वहाँ नवीन मकान बनाया जाता था, यात्रा-भवन, विश्राम-गृह इत्यादि से तात्पर्य उन्ही मकानो से है।

मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ; उसका कुछ फल न निकला। ऐसे भीषण दुःख के समय भी मेरी मृत्यु न हुई और मैं इस दुःखद दृश्य को अपने नेत्रो से देखता रहा, तो मेरे बराबर अधम और कौन होगा ? मुझको अब अधिक जीवन की क्या आवश्यकता है।"

इन शब्दो के कहते कहते राजा का हृदय भर आया तथा सम्पूर्ण शरीर मे क्रोध की ज्वाला उठने लगी। उसने वडे जोश मे आकर यह प्रार्थना की कि 'मैंने पूर्व जन्म के फल से सम्पूर्ण भारत का राज्य हस्तगत किया है; मेरे उस पुण्य में यदि सामर्थ्य हो तो यह अग्नि इसी क्षण शान्त हो जावे, अन्यथा मेरा प्राण निकल जावे।' यह कह कर राजा सीधा फाटक की ओर दौडा; देहली तक पहुँचते ही आग सहसा बुझ गई, जैसे किसी ने फूक मार कर दीपक बुझा दिया हो, और धुवां नदारद हो गया।

उपस्थित राजा लोग इस अद्भुत कार्य को देखकर शिलादित्य के दूने भक्त हो गये, परन्तु शिलादित्य के मुख पर किसी प्रकार के विकार के चिह्न दिखाई न पड़े। उसने साधारण रीति से राजा लोगो से कहा कि 'अग्नि ने मेरे परमोत्तम धार्मिक कार्य को नष्ट कर दिया है, आप लोगो का इसकी बाबत क्या विचार है ?'

राजा लोगो ने सजल नेत्रो से उसके चरणो पर गिर कर उत्तर दिया कि 'वह काम, जो आपके पूर्ण पुण्य का प्रकाश करने वाला था, और जिसके लिए हमको आशा थी कि भविष्य मे भी बना रहेगा, पल-मात्र मे राख हो गया, इस दुख को हम कैसे सहन कर लेंगे इसका विचार करना कठिन है; वल्कि हमारा दुख और भी अधिक होता जाता है जब हम अपने विरोधियो को इस घटना से प्रसन्नता मनाते और परस्पर बधाई देते देखते हैं।'

राजा ने उत्तर दिया—"अन्त मे हमको भगवान् बुद्धदेव ही के बचनो मे सत्यता दिखाई पडती है। विरोधी तथा अन्य लोग इस बात पर जोर देते हैं कि वस्तु नित्य है, परन्तु हमारे महोपदेशक का सिद्धान्त है कि वस्तुएं अनित्य हैं। मुझी को देखो, मैंने अपनी कामनानुसार असंख्य द्रव्य दान करके यह महत्व का कार्य किया था जो इस सत्यानाशी घटना के फेर मे पड गया। इससे तथागत भगवान के सिद्धान्तो मे मेरी भक्ति और भी अधिक पुष्ट हो गयी है। मेरे लिए यह समय बड़ी प्रसन्नता का है न कि किसी प्रकार के शोक का।"

इसके उपरान्त राजाओ को साथ लिए हुए शिलादित्य पूर्व दिशा मे जाकर स्तूप पर चढ गया और चोटी पर पहुँच कर घटना-स्थल को सब ओर से अच्छी तरह देक कर ज्यो ही नीचे उतर रहा था कि सहसा एक विरोधी हाथ में छुरी लिए हुए उस पर झपटा। राजा इस नई विपत्ति से भयभीत होकर कूछ सीढी पीछे चढ गया

और फिर वहाँ से झुककर उसने उस आदमी को पकड़ लिया। जितने सरदार और कर्मचारी लोग उस समय उस स्थान पर मौजूद थे वे सब राजा के प्राणों के लिए भयभीत होकर इतना अधिक व्याकुल हो गये कि किसी की समझ ही में न आया कि किस उपाय से राजा को सहायता देकर बचाना चाहिए।

सब उपस्थित नरेशों की राय हुई कि इस अपराधी को इसी क्षण मार डालना चाहिए, परन्तु शिलादित्य राजा ने, जिसके मुख पर न तो कोई विकार और न किसी प्रकार का भय प्रदर्शित होता था, लोगों को उसके मारने से रोक दिया और इस तरह पर उससे प्रश्नोत्तर करने लगा।

शिलादित्य—मैंने तुम्हारी क्या हानि की थी, जिससे तुमने ऐसा नीचे प्रयत्न करना चाहा था।

अपराधी—महाराज! आपके गुण-कर्म मे कुछ भी पक्षपात नही है, जिसके सबब से देश और विदेश सब जगह सुख वर्तमान है। परन्तु मैं मूर्ख और पागल हूँ, कर्तव्याकर्तव्य का विवेक मुझको नही है इसी से मैं विरोधियो के बहकाने मे पड़कर भ्रष्टमार्ग हो गया, और अपने राजा के विरुद्ध नीचे कर्म करने हो तैयार हो गया।

राजा ने फिर पूछा—'विरोधियो में इस अधम कार्य के करने का विचार क्यों उत्पन्न हुआ?'

उसने उत्तर दिया—हे राजराजेश्वर। आपने अनेक देशो के लोगो को बुलाकर एकत्र किया और अपना सम्पूर्ण खजाना श्रमणो को दान देने और बुद्ध भगवान् की मूर्ति के बनवाने मे खर्च कर डाला, परन्तु विरोधी जो बहुत दूर दूर से आये हैं उनकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया गया। इस कारण वे लोग कुपित हो गये और मुझ नीच को ऐसा अनुचित कार्य के लिए उन्होने नियुक्त किया।'

तब राजा ने विरोधियो और उनके अनुयायियों को बुलाया। कोई ५०० ब्राह्मण, जो सबके सब ऐसी ही अद्भुत बुद्धिवाले थे, सामने लाये गये। उन्ही लोगों ने श्रमणो से, जिनकी राजा प्रतिष्ठा करता था और जो इस समय भी सम्मानित हुए थे, द्वेष करके बुर्ज में अग्निबाण फेंका था। इन लोगो को विश्वास था कि आग लगने से घबरा कर जब सब लोग इधर-उधर दौडने लगेंगे और राजा के निकट से भीड़ हट जायगी उस समय राजा के प्राणघात करने का अच्छा मौका होगा। परन्तु जब यह कारंवाई ठीक नही उतरी तब इन लोगो ने राजा का प्राण लेने के लिए इस मनुष्य को इस प्रकार भेजा।

मंत्रियो और दूसरे राजाओ ने निवेदन किया कि सब विरोधी एकबारगी नाश कर दिये जायँ। परन्तु राजा ने मुखिया लोगो को दंड देकर शेष को छोड दिया और वे ५०० ब्राह्मण भारत की सीमा से निकाल दिये गये। इसके उपरान्त राजा अपनी राजधानी को लौट आया।

राजधानी से पश्चिमोत्तर दिशा मे एक स्तूप राजा अशोक का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने, जब वे संसार मे थे, सात दिन तक सर्वोत्तम सिद्धान्तो का उपदेश दिया था। इस स्तूप के निकट चारो गत बुद्धो के बैठने उठने चलने-फिरने इत्यादि के चिन्ह बने हुए है। इसके अलावा एक और छोटा स्तूप है जिसमे बुद्ध भगवान के शरीरावशेष, नख और बाल रक्खे हुए हैं, तथा एक और स्तूप ठीक उसी स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर बुद्ध भगवान ने उपदेश दिया था।

दक्षिण ओर गगा के किनारे तीन संघाराम एक ही दीवार से घेर कर बनाये गये है, केवल फाटक तीनो के अलग अलग हैं इनमे बुद्ध भगवान् की सर्वाङ्ग-सुसज्जित मूर्तियाँ स्थापित हैं। इनके निवासी साधु, तपस्वी और प्रतिष्ठित हैं तथा कई हजार उपासक इनसे आश्रित हैं। विहार के भीतर एक सुन्दर डिब्बे मे भगवान् बुद्ध का एक दाँत करीब डेढ इञ्च लम्बा और बहुत चमकीला रक्खा है। इसका रङ्ग दिन मे और तथा रात मे और होता है। निकट और दूर सब देशों के दर्शनाभिलाषी यहाँ बहुतायत से आते हैं। बडे बडे आदमी अगणित मनुष्यो के साथ समान रूप से उपासना करते हैं, किसी प्रकार का भेद भाव नही होता। प्रत्येक दिन सैकडो और हजारो उपासको का आवागमन बना रहता है। यहाँ के रक्षको ने अधिक भीड होने मे जो गडबडी होती है उससे त्राण पाने के लिए दर्शको पर बडा भारी कर बाँध रक्खा है, तथा दूर दूर तक इस बात की सूचना हो गयी है कि बुद्ध भगवान् के दाँत के दर्शनो की इच्छा से जो लोग यहाँ आवेंगे उनको एक स्वर्णमुद्रा अवश्य देना पडेगी, तो भी दर्शक लोगो की सख्या अपरिमित ही रहती है। लोग प्रसन्नता से स्वर्णमुद्रा दे देते हैं। प्रत्येक व्रतोत्सव के दिन वह दाँत बाहर निकाला जाता है और एक ऊँचे सिंहासन पर रक्खा जाता है। सैकडो हजारो दर्शक उत्तमोत्तम सुगंधित वस्तुएँ जलाते हैं, और पुष्पो की वृष्टि करते हैं। यद्यपि फूलो के ढेर लग जाते हैं परन्तु डिब्बा फूलो से कभी नही ढकता।

संघाराम के आगे दाहिनी और बाईं दोनो ओर दो विहार सौ सौ फीट ऊँचे बने हैं। इनकी बुनियाद तो पत्थर की है परन्तु दीवारें ईंट की बनी हैं। बीच मे

रत्नो से सुसज्जित बुद्धदेव की मूर्तियाँ स्थापित हैं। इन मूर्तियों में मे एक सोने और चाँदी की है, तथा दूसरी ताँबे की है। प्रत्येक विहार के सामने एक एक छोटा संघाराम है।

संघाराम से दक्षिण-पूर्व दिशा में थोडी दूर पर एक बडा विहार है जिसकी नीव पत्थर से बनाकर ऊपर २०० फीट ऊँचो ईंटो की इमारत बनाई गई है। इसके भीतर ३० फीट ऊँची बुद्धदेव की मूर्ति है। यह मूर्ति ताँबे से बनाई गयी है तथा बहुमूल्य रत्नों से आभूषित है। इस विहार की सब ओर की दीवारो पर सुन्दर सुन्दर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं जिनसे तथागत भगवान् के उस समय के बहुत से चरित्रो का पता लगाता है जब वह एक बोधिसत्व के शिष्य होकर तपस्या मे प्रवृत्त थे।

इस विहार से थोड़ी दूर पर दक्षिण दिशा में सूर्यदेव का एक मन्दिर है और इस मन्दिर से दक्षिण की ओर थोड़ी दूर पर दूसरा मन्दिर महेश्वरदेव का है। दोनो मन्दिर बहु-मूल्य नीले पत्थर से बनाये गये तथा अनेक प्रकार की सुन्दर सुन्दर मूर्तियो से सुशोभित किये गये हैं। इनकी लम्बाई-चौडाई बुद्ध-विहारो के बराबर ही है, तथा हर एक मन्दिर मे एक हजार मनुष्य सब प्रकार की सेवा-पूजा के लिए नियत हैं। नगाडों और गाने-बजाने का शब्द रात-दिन मे किसी समय भी बन्द नही होता।

नगर के दक्षिण-पूर्व ६-७ ली दूर गङ्गा के दक्षिणी तट पर अशोक राजा का २०० फीट ऊँचा एक बडा स्तूप बनवाया हुआ है। तथागत भगवान् ने इस स्थान पर छः महीने तक अनात्मा, दुख, अनित्यता और अशुद्धता पर व्याख्यान दिया था।

इसके एक ओर वह स्थान है जहाँ पर गत चारो बुद्ध उठते-बैठते रहे थे। इसके अतिरिक्त एक और छोटा स्तूप बना है। जिसमे तथागत भगवान् के नख और बाल रक्खे हैं। जो कोई रोगी पुरुष अपने सत्य विश्वास से इस पुनीत धाम की परिक्रमा करता है वह शीघ्र आरोग्य हो जाता है, तथा अपने धार्मिक फल को प्राप्त करता है।

राजधानी से दक्षिण-पूर्व ०० ली जाने पर हम 'नवदेव कुल' कसबे मे पहुँचे। यह नगर लगभग २० ली के घेरे मे गंगा के पूर्वी किनारे पर बसा हुआ है। यहाँ पर पुष्प-वाटिका तथा सुन्दर जल की अनेक झीलें हैं।

इस नगर के उत्तर-पश्चिम में गङ्गा के पूर्वी किनारे पर एक देवमन्दिर है। इसके बुर्ज और ऊपरवाले कँगूरे की चित्रकारी बड़ी ही बुद्धिमानी से की गई है। नगर के पूर्व ५ ली की दूरी पर तीन संघाराम बने हुए हैं जिनके घेरे की दीवार एक ही है, परन्तु फाटक अलग अलग हैं। लगभग ५०० सन्यासी निवास करते हैं, जो सर्वास्ति-वाद-संस्था के हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

संघाराम के सामने दो सौ कदम की दूरी पर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यद्यपि इसका निचला भाग भूमि मे धस गया है तो भी अभी कोई सौ फीट ऊँचा है। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने सात दिन तक धर्मोपदेश दिया था। इसके भीतर बुद्ध भगवान् का जो शरीर बन्द है उसमे से सदा स्वच्छ प्रकाश निकला करता है। इसके अतिरिक्त इस स्थान पर गत चारो बुद्धो के भी चलने-फिरने और बैठने के चिह्न पाये जाते हैं।

संघाराम के उत्तर ३-४ ली पर, गंगा के किनारे, २०० फीट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ एक स्तूप है। यहाँ पर बुद्धदेव ने सात दिन तक धर्मोपदेश दिया था। इन दिनो कोई ५०० राक्षस बुद्ध भगवान् के पास धर्मोपदेश सुनने के लिए आये थे, तथा धर्म के स्वरूप को प्राप्त करते ही उन्होने अपने राक्षसी स्वरूप को परित्याग करके स्वर्ग मे जन्म लिया था[1]। उपदेश-स्तूप के निकट गत चारो बुद्धो के चलने-फिरने के चिह्न बने हैं तथा इसके निकट ही एक और स्तूप है जिसमे तथागत का बाल और नख रक्खा है।

यहाँ से दक्षिण-पूर्व ६०० ली चलकर, गङ्गानदी के पार, दक्षिण दिशा मे जाकर हम 'ओयूटो' देश मे पहुँचे।

ओयूटो (अयोध्या[2])

इस राज्य का क्षेत्रफल ५,००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है।

---

[1] "स्वर्ग मे उत्पन्न होना" यह वाक्य बौद्ध-पुस्तको मे बहुधा मिलता है। बुद्ध गया मे एक चीनी यात्री का लेख है जिसमें २०,००० मनुष्यो की इस प्रतिज्ञा का वृत्तान्त है कि वे लोग शुभ कर्मों-द्वारा स्वर्ग मे उत्पन्न होगे। धम्मपद मे भी यह वाक्य बहुधा आया है।

[2] कन्नौज से या नवदेवकुल से घाघरा नदी के किनारे अयोध्या का फासला पूर्व-दक्षिण पूर्व की ओर १३० मील है' परन्तु अयोध्या ही ओयूटो है यह ठीक समझ में नही आता। यदि मान भी लिया जाय कि घाघरा ही ह्वेनसांग की गङ्गा नदी है तो भी यह समझ मे नही आता कि उसने क्यो यह नदी पार की और दक्षिण दिशा मे गया। यदि यह माना जाय कि यात्री ६०० ली गङ्गा के किनारे किनारे गया और फिर नदी को पार किया, तो हम उसको प्रयाग के निकट पाते हैं जो सम्भव नही। जनरल कनिंघम की राय है कि दूरी ६० ली मानी जाय और 'ओयूटो' एक पुराना कसबा काकूपुर नामक समझा जाय जो कानपुर मे उत्तर पश्चिम २० मील है।

यहा पर अन्न बहुत उत्पन्न होता है तथा सब प्रकार के फल-फूलों की अधिकता है। प्रकृति कोमल तथा सह्य और मनुष्यो का आचरण शुद्ध और सुशील है। यहाँ के लोग धार्मिक कृत्य से बड़ा प्रेम रखते हैं, तथा विद्याभ्यास मे विशेष परिश्रम करते हैं। संपूर्ण देश भर में कोई १०० संघाराम और ३,००० साधु हैं, जो हीनयान और महायान दोनों संप्रदायों की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं। कोई दस देवमन्दिर हैं जिनमे अनेक पंथो के अनुयायी (बौद्धधर्म के विरोधी) निवास करते हैं, परन्तु उनकी संख्या थोडी है।

राजधानी मे एक प्राचीन संघाराम है। यह वह स्थान है जहाँ पर वसुबंधु[1] बोधिसत्व ने कई वर्ष के कठिन परिश्रम से अनेक शास्त्र, हीनयान और महायान, दोनों सम्प्रदाय-विषयक निर्माण किये थे। इसके पास ही कुछ उजड़ी-पुजड़ी दीवारें अब तक वर्तमान हैं। ये दीवारें उस मकान की हैं जिसमे वसुबन्धु बोधिसत्व ने धर्म के सिद्धान्तों को प्रकट किया था, तथा अनेक देश के राजाओ, बडे आदमियो, श्रमणो और ब्राह्मणो के उपकार के निमित्त धर्मोपदेश किया था।

नगर के उत्तर ४० ली दूर गङ्गा के किनारे एक बड़ा संघाराम है जिसके भीतर अशोक राजा का बनवाया हुआ एक स्तूप २०० फीट ऊँचा है। यह वह स्थान है जहाँ पर तथागत भगवान् ने देव-समाज के उपकार के लिए तीन मास तक धर्म के उत्तमोत्तम सिद्धातो का विवेचन किया था।

स्मारक स्वरूप स्तूप के निकट बहुत से चिह्न गत चारो बुद्धो के उठने-बैठने आदि के पाये जाते हैं।

संघाराम के पश्चिम ४-५ ली दूर एक स्तूप है जिसमे तथागत भगवान् के नख और बाल रक्खे हैं। इस स्तूप के उत्तर एक संघाराम उजड़ा हुआ पडा है। इस स्थान पर श्रीलब्ध शास्त्री ने सौत्रान्तिक सम्प्रदाय-सम्बन्धी विभाषा शास्त्र का निर्माण किया था।

नगर के दक्षिण पश्चिम ५-६ ली की दूरी पर एक बड़ी आम्रवाटिका मे एक पुराना संघाराम है। यह वह स्थान है जहाँ असङ्ग[2] बोधिसत्व ने विद्याध्ययन किया था। फिर भी जब उसका अध्ययन परिपूर्णता को नही पहुँचा तब वह रात्रि मे मैत्रेय बोधिसत्व के स्थान को, जो स्वर्ग में था, गया और वहाँ पर योगचार्यशास्त्र, महायन

---

[1] वसुबंधु का अध्यापन परिश्रम आदि अयोध्या ही में हुआ था।

[2] असङ्गबोधिसत्व का छोटा भाई वसुबंधु बोधिसत्व था।

सूत्रालङ्कार टीका, मध्यान्त विभङ्गशास्त्र आदि को उसने प्राप्त किया, और अपने गूढ सिद्धान्तो को, जो इस अध्ययन से प्राप्त हुए थे, समाज मे प्रकट किया।

आम्रवाटिका से पश्चिमोत्तर दिशा मे लगभग १०० कदम की दूरी पर एक स्तूप है जिसमे तथागत भगवान् के नख और बाल रक्खे हुए हैं। इसके निकट ही कुछ पुरानी दीवारो की बुनियाद है। यह वह स्थान है जहाँ पर वसुबन्धु बोधिसत्व तुषित[1] स्वर्ग से उतर कर असङ्ग बोधिसत्व को मिला था। असङ्ग बोधिसत्व गन्धार प्रदेश[2] का निवासी था। बुद्ध भगवान् के शरीरावासान के पांच सौ वर्ष पीछे इसका जन्म हुआ था, तथा अपनी अनुपम प्रतिभा के बल से यह बहुत शीघ्र बौद्ध-सिद्धान्तो मे ज्ञानवान् हो गया था। प्रथम यह महीशासक-सम्प्रदाय का सुप्रसिद्ध अनुयायी था, परन्तु पीछे मे इसका विचार बदल गया और वह महायान-सम्प्रदाय का अनुगामी हो गया। इसका भाई वसुबन्धु सर्वास्तिवाद-सम्प्रदाय का था। सूक्ष्म बुद्धिमत्ता, दृढ विचार और अक्षम प्रतिभा के लिए उसकी बहुत ख्याति थी। असङ्ग का शिष्य बुद्धसिंह जिस प्रकार बड़ा बुद्धिमान् और सुप्रसिद्ध हुआ उसी प्रकार उसके गुप्त और उत्तम चरित्रो की थाह भी किसी को नही मिली।

ये दोनो या तीनो महात्मा प्रायः आपस मे कहा करते थे कि हम सब लोग अपने चरित्रो को इस प्रकार सुधार रहे हैं कि जिसमे मृत्यु के बाद मैत्रेय भगवान् के सामने बैठ सकें। हममे से जो कोई प्रथम मृत्यु को प्राप्त होकर इस अवस्था को पहुँचे (अर्थात् मैत्रेय के स्वर्ग मे जन्म पावे) वह एक बार वहाँ से लौट आकर अवश्य सूचना देवे ताकि हम उसका वहाँ पहुँचना मालूम कर सकें।

सबसे पहले बुद्धसिंह का देहान्त हुआ। तीन वर्ष तक उसका कुछ समाचार किसी को मालूम नही हुआ। इतने ही मे वसुबन्धु बोधिसत्व भी स्वर्गगामी हो गया। छः मास इसको भी व्यतीत हो गये परन्तु इसका भी कोई समाचार किसी को विदित न हुआ। जिन लोगो का विश्वास नही था वह अनेक प्रकार की बातें बनाकर हँसी उडाने लगे कि वसुबन्धु और बुधसिंह का जन्म नीच योनि मे हो गया होगा इसी मे कुछ दैवी चमत्कार नही दिखाई पडता।

एक समय असङ्ग बोधिसत्व रात्रि के प्रथम भाग मे अपने शिष्यो को बता

---

[1] प्राचीन काल के बौद्धो की यह महत्-कांक्षा रहती थी कि वे लोग मृत्यु के पश्चात् तुषित स्वर्ग मे मैत्रेय के निकट निवास करें।

[2] वसुबंधु की जीवनी के अनुसार, जिसका अनुवाद चिनटी ने किया है, इस महात्मा का जन्म पुरुषपुर (पेशावर) मे हुआ था।

रहा था कि समाधि का प्रभाव अन्य-पुरुषों पर किस प्रकार होता है, उसी समय अकस्मात् दीपक की ज्योति ठंडी हो गई और उसके स्थान में बडा भारी प्रकाश फैल गया। फिर ऋषिदेव आकाश से नीचे उतरा और मकान की सीढ़ियों पर चढकर असङ्ग के निकट आया और प्रणाम करने लगा। असङ्ग बोधिसत्व ने बड़े प्रेम से उससे पूछा कि 'तुम्हारे आने मे क्यो देर हुई? तुम्हारा अब नाम क्या है?' उत्तर मे उसने कहा, "मरते ही मैं तुषित स्वर्ग मे मैत्रेय भगवान् के भीतर समाज मे पहुँचा और वहाँ एक कमल के फूल मे उत्पन्न हुआ। शीघ्र ही कमलपुष्प के खोले जाने पर मैत्रेय ने बड़े शब्द से मुझसे कहा, 'ए महाविद्वान! स्वागत! हे महाविद्वान! स्वागत'। इसके उपरान्त मैने प्रदक्षिणा करके बडी भक्ति से उनको प्रणाम किया और फिर अपना वृत्तान्त कहने के लिए सीधा यहाँ चला आया। असङ्ग ने पूछा, "और बुद्धसिंह कहाँ है?" उसने उत्तर दिया, "जब मैं मैत्रेय भगवान् की प्रदक्षिणा कर रहा था उस समय मैंने उसको बाहरी भीड मे देखा था, वह सुख और आनन्द मे लिप्त था। उसने मेरी ओर देखा तक नही, फिर क्या उम्मेद की जा सकती है कि वह यहाँ तक अपना हाल कहने आवेगा?" असङ्ग ने कहा, "यह तो तय हो गया परन्तु अब यह बताओ कि मैत्रेय भगवान् का स्वरूप कैसा है और कौन से धर्म की शिक्षा वह देते हैं।" उसने उत्तर दिया कि 'जिह्वा और शब्दो मे इतनी सामर्थ्य नही है जो उनकी सुन्दरता का बखान किया जा सके। मैत्रेय भगवान क्या धर्म सिखाते है उसके विषय में इतना ही यथेष्ट है कि उनके सिद्धान्त हम लोगो मे भिन्न नही हैं। बोधिसत्व की सुस्पष्ट वचनावली ऐसा शुद्ध, कोमल और मधुर है जिसके सुनने मे कभी थकावट नही होती और न सुननेवाले की कभी तृप्ति ही होती है"।

असङ्ग बोधिसत्व के भग्नस्थान से लगभग ४० ली उत्तर-पश्चिम चलकर हम एक प्राचीन संघाराम मे पहुँचे जिसके उत्तर तरफ गंगा नदी बहती है। इसके भीतरी भाग मे ईंटो का बना हुआ एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा खड़ा है। यही स्थान है जहाँ पर वसुबन्धु बोधिसत्व को सर्वप्रथम महायान सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के अध्ययन करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई थी[1]। उत्तरी भारत से चलकर जिस समय वसुबन्धु इस स्थान पर पहुँचा उस समय असङ्ग बोधिसत्व ने अपने अनुयायियो को उससे मिलने के लिए भेजा, और वे लोग इस स्थान पर आकर उससे मिले। असङ्ग का शिष्य जो बोधिसत्व के द्वार के बाहर लेटा था, वह रात्रि के पिछले पहर-

---

[1] इसके पहले वसुबंधु बोधिसत्व हीनयान-सम्प्रदाय का अनुयायी था। महायान-सम्प्रदाय के अनुगामी होने के वृत्तान्त के लिए देखो।

मे दशभूमिसूत्र का पाठ करने लगा। वसुबन्धु उसको सुनकर और उसके अर्थ को समझ कर बहुत विस्मित हो गया। उसने बड़े शोक से कहा कि यह उत्तम और शुद्ध सिद्धान्त यदि पहले से मेरे कान मे पड़ा होता तो मैं महायान-सम्प्रदाय की निन्दा करके अपनी जिह्वा को क्यो कलङ्कित कर पाप का भागी बनता? इस प्रकार शोक करते हुए उसने कहा कि अब मैं अपनी जिह्वा को काट डालूँगा। जिस समय छुरी लेकर वह जिह्वा काटने के लिए उद्यत था उसी समय उसने देखा कि असङ्ग बोधिसत्व उसके सन्मुख खड़ा है और कहता है कि 'वास्तव मे महायान-सम्प्रदाय के सिद्धान्त बहुत शुद्ध और परिपूर्ण हैं; सब बुद्ध देवो ने जिस प्रकार इसकी प्रशंसा की है उसी प्रकार सब महात्माओ ने इसको परिवर्द्धन किया है। मैं तुमको इसके सिद्धान्त सिखाऊँगा। परन्तु तुम खुद इसके तत्व को अब समझ गये हो, और जब इसको समझ गये और इसके महत्व को मान गये तब क्या कारण है कि बुद्ध भगवान् की पुनीत शिक्षा के प्राप्त होने पर भी तुम अपनी जिह्वा को काटना चाहते हो। इसमे कुछ लाभ नही है, ऐसा मत करो यदि तुमको पछतावा है कि तुमने महायान-सम्प्रदाय की निन्दा क्यो की तो तुम अब उसी जबान से उसकी प्रशंसा भी कर सकते हो। अपने व्यवहार को बदल दो और नवीन ढंग से काम करो, यही एक बात तुम्हारे करने योग्य है। अपने मुख को बन्द कर लेने से, अथवा शाब्दिक शक्ति को रोक देने मे कुछ लाभ नहीं होगा।" यह कह कर वह अन्तर्ध्यान हो गया।

वसुबंधु ने उसके बचनो की प्रतिष्ठा करके अपनी जिह्वा काटने का विचार परित्याग कर दिया और दूसरे ही दिन से असङ्ग बोधिसत्व के पास जाकर महायान सम्प्रदाय के उपदेशो को अध्ययन करने लगा। इसके सिद्धान्तो को भली भाँति मनन करके उसने एक सौ मे अधिक सूत्र महायान सम्प्रदाय की पुष्टि के लिए लिखे जो कि बहुत प्रसिद्ध और सर्वत्र प्रचलित हैं।

यहाँ से पूर्व दिशा मे ३०० ली चल कर गगा के उतरी किनारे पर हम 'ओयीमोखी' को पहुँचे।

ओयीमोखी (हयमुख)

इस राज्य का क्षेत्रफल चोबीस या पच्चीस सौ ली है, और मुख्य नगर का

[1] इस प्रदेश का अच्छी तरह पता नही चलता है, कनिंघम साहब इसकी राजधानी इलाहाबाद के उत्तर पश्चिम १०४ मील पर डौंडिया खेरा अनुमान करते हैं।

क्षेत्रफल, जो गंगा के किनारे बसा है, लगभग २० ली है। इसकी उपज और जल-वायु इत्यादि अयोध्या के समान हैं। मनुष्य सीधे और ईमानदार हैं, तथा विद्याध्ययन और धर्म-कर्म में अच्छा श्रम करते हैं। कुल पाँच संघाराम हैं जिनमे लगभग एक हजार सन्यासी हीनयान सम्प्रदाय के सम्मतीय संस्थानुयायी निवास करते हैं। देवमन्दिर दस हैं जिनमें अनेक वर्णाश्रम के लोग उपासना करते हैं।

नगर के निकट ही दक्षिण-पूर्व दिशा मे गंगा के किनारे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यह दो सौ फीट ऊंचा है। इस स्थान पर बुद्धदेव ने तीन मास तक धर्मोपदेश दिया था। इसके अतिरिक्त चारो गत बुद्धो के आवागमन के चिन्ह हैं। एक दूसरा स्तूप भी है जिसमे बुद्ध भगवान् के नख और बाल है। इस स्तूप के निकट ही एक संघाराम बना है जिसमे २०० शिष्य निवास करते है। इसके भीतर बुद्ध भगवान की एक मूर्त्ति बहुमूल्य वस्तुओ मे सुसज्जित है। यह मूर्ति सजीव के समान शान्त और गम्भीर दिखाई पडती है। बुर्ज और बरामदे बडी विलक्षणता से खोद कर बनाये गये है, और एक के ऊपर एक बनते चले गये है। प्राचीन काल में बुद्धदास नामक महाविद्वान शास्त्री ने इस स्थान पर सर्वास्तिवाद साम्प्रदायिक महाविभाषा-शास्त्र का निर्माण किया था।

यहाँ से दक्षिण-पूर्व ७०० ली चलकर और गंगा के दक्षिण तरफ होकर हम 'पोलोयीकिया' राज्य में पहुँचे।

पोलोयीकिया (प्रयाग)

यह राज्य ५,००० ली के घेरे मे है और राजधानी जो दो नदियो के बीच मे बसी हुई है लगभग २० ली के घेरे मे है। अन्न की पैदावार जिस प्रकार अधिक होती है उसी प्रकार फलो की भी बहुतायत है। प्रकृति गरम और सह्य है, तथा मनुष्यो का आचरण सभ्य और सुशील है। लोग विद्या से प्रेम तो बहुत करते हैं परन्तु धार्मिक सिद्धान्तो पर दृढ़ नही हैं।

दो संघाराम हैं जिनमें थोड़े से सन्यासी हीनयान-सम्प्रदायी निवास करते है।

कई देव मंदिर हैं जिनमे बहुसंख्यक विरुद्ध धर्मावलम्बी रहते हैं।

राजधानी के दक्षिण पश्चिम चंपक बाग मे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यद्यपि इसकी नीव भूमि मे धंस गई है तो भी १०० फीट से अधिक ऊंचा है। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने विरोधियों को परास्त किया था। इसी के

निकट ही बुद्धदेव ने नख और बालो सहित एक स्तूप, तथा वह स्थान, जहाँ पर गत चारो बुद्ध बैठते और चलते थे, बना हुआ है।

इस अन्तिम स्तूप के निकट ही एक प्राचीन संघाराम है। इस स्थान पर देव बोधिसत्व ने शतशास्त्रवैपुल्यम् नामक ग्रंथ मे हीनयान-संप्रदाय के सिद्धान्तों को खण्डन करके विरोधियो का मुख बंद किया था। देव बोधिसत्व दक्षिण-भारत का निवासी था और वही से इस संघाराम मे आया था उन दिनो एक ब्राह्मण भी इस नगर मे निवास करता था। यह ब्राह्मण विवाद करने मे और तर्क शास्त्र मे बडा निपुण और प्रसिद्ध था। उसका यह ढङ्ग था कि विरोधी के शब्दो के अर्थ पर लक्ष्य करके उसी शब्द को कितनी ही बार फेर बदल कर इस तरह पर प्रश्नोत्तर करता कि विरोधी बेचारा चुप हो जाता। देव की सूक्ष्म बुद्धिमता का जब उसने हाल सुना तब उसकी इच्छा हुई कि इसको भी अपने शब्द-जाल मे फाँस कर परास्त करे। इसलिए इसके निकट आकर उसने पूछा.—

'कृपा करके बताइए आपका नाम क्या है ?' देव ने उत्तर दिया, "लोग मुझको देव कहते हैं।' ब्राह्मण ने पूछा, "देव कौन है ?" उसने उत्तर दिया, 'मैं हूँ'। ब्राह्मण ने पूछा, "मैं, यह क्या है ?" देव ने उत्तर दिया, "कुत्ता।" ब्राह्मण ने फिर पूछा, "कुत्ता कौन है ?" देव ने उत्तर दिया, "तुम।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "और 'तुम' यह क्या है ?" देव ने कहा, "देव।" ब्राह्मण ने पूछा, "देव कौन है ?" उसने कहा, "मैं।" ब्राह्मण ने पूछा, "मै कौन है ?" उसने उत्तर दिया "कुत्ता।" उसने फिर पूछा, "कुत्ता कौन है ?" देव ने कहा, "तुम।" ब्राह्मण ने पूछा, 'तुम कौन है।" देव ने उत्तर दिया, "देव।" इसी प्रकार बात-चीत होते हुए जब कोई अन्त न मिला तब ब्राह्मण समझ गया कि यह भी असाधारण बुद्धि का मनुष्य है, तथा उस दिन से उसकी बडी प्रतिष्ठा करने लगा।

नगर के भीतर एक देवमन्दिर बहुत ही सुसज्जित और सुन्दर है तथा इसके अद्भुत चमत्कारो की बडी प्रसिद्धि है। लोगो का कहना है कि इस स्थान पर सब प्रकार के प्राणियो को धर्म का फल प्राप्त होता है। यदि इस मंदिर मे कोई एक पैसा दान करे तो उसका पुण्य दूसरे स्थानो पर हजार अशर्फी दान करने से भी अधिक होता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई मनुष्य अपने जीवन को तुच्छ समझ कर इस मन्दिर मे प्राण त्याग करे, तो स्थायी सुख प्राप्त करने के लिए, उसका जन्म स्वर्ग में होता है।

मन्दिर के सभा-मण्डप के सामने एक बडा भारी वृक्ष है जिसकी डालियाँ और

टहनियाँ दूर तक फैली चली गई हैं जिससे खूब सघन छाया रहती है। किसी समय यहाँ एक मांसभक्षी राक्षस रहता था जो मनुष्यो के शरीरो को (आत्मघात करनेवालो के तन को) खाया करता था। इस कारण वृक्ष के दाहिने और बाएँ हड्डियों के ढेर लगे हुए है। जो मनुष्य इस मन्दिर मे आता है उसको इन हड्डियो के ढेर को देख कर शरीर का अन्तिम परिणाम विदित हो जाता है और वह अपने जीवन को धिक्कार कर प्राण विसर्जन कर देता है। जो लोग यहाँ आत्मघात करना चाहते हैं उनको जिस प्रकार उनके सहधर्मियों से सहायता मिलती है उसी प्रकार जो लोग पहले से आत्मघात करके प्रेत हो चुके हैं वह भी खूब भुलावा देते है, और यही कारण है कि यह हत्यारिणी प्रथा प्रारम्भिक काल से लेकर अब तक बराबर चली आती है।

थोडे दिन हुए यहाँ एक ब्राह्मण रहता था जिसके वंश का नाम 'पुत्र' था। यह व्यक्ति दूरदर्शी, महाविद्वान्, ज्ञानी और उच्च कोटि का बुद्धिमान् था। उसने इस मन्दिर मे आकर और सब लोगो को सम्बोधन करके कहा, "हे सज्जनो! आप लोग भटके हुए मार्ग पर हैं; आपके चित्त मे जो हठ समाया है वह किसी प्रकार निकाले नही निकलता, किस प्रकार आपको समझाया जाय ?" यह कह कर वह भी उन लोगो के आत्मघात मे इस मतलब से सहायक हो गया कि अन्त मे इन लोगो का मिथ्या विश्वास दूर कर दूँगा। थोड़ी देर के बाद वह भी उस वृक्ष पर चढ गया और नीचे खड़े हुए अपने मित्रो से कहने लगा, "मैं भी मरना चाहता हूँ; पहले मैंने कहा था कि लोगों का विश्वास गलत और घृणित है परन्तु अब मैं कहता हूँ कि यह उत्तम और शुद्ध है। स्वर्गीय ऋषि वायुमण्डल में बाजे बजाते हुए मुझको बुला रहे हैं, मैं ऐसे पुनीत स्थान से गिर कर अवश्य प्राण त्याग करूँगा।" जब वह गिरने को हुआ और उसके मित्र भी समझा-बुझा कर हार गये और उसकी मति को न पलटा सके तब उन लोगो ने, जहाँ से वह गिरना चाहता था उस स्थान के ठीक नीचे अपना कपड़ा फैला दिया, और ज्योंही वह नीचे आया उसको कपडे पर रोक कर बचा लिया। होश मे आने पर वह कहने लगा, "मुझको ख्याल हुआ था कि मैं देवताओ को वायुमण्डल मे देख रहा हूँ और वे मुझको बुला रहे हैं, परन्तु अब विदित हुआ कि यह सब इस वृक्ष के प्रेतो का छल था कि जिससे मैं भविष्य मे स्वर्गीय आनन्द पाने से बिलकुल वंचित हुआ जाता था।"

राजधानी के पूर्व, दोनो नदियो के सङ्गम के मध्य में लगभग १० ली के घेरे की भूमि बहुत सुहावनी और ऊँची है। इस सम्पूर्ण भूमि में बालू ही बालू है। प्राचीन समय मे राजा लोग तथा बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनाढ्य पुरुष, जब उनको दान करने

की उत्कंठा होती है, सदा इस स्थान पर आते हैं और अपनी सम्पत्ति को दान कर देते हैं। इस सबब से इस स्थान का नाम 'महादानभूमि' हो गया है। आज-कल के दिनो मे शिलादित्य राजा ने, अपने भूतपूर्व पुरुषो के समान, इस स्थान पर आकर अपनी पाँच वर्ष की इकट्ठी की हुई सम्पत्ति को एक दिन मे दान कर दिया। इस महादानभूमि मे असंख्य द्रव्य और रत्नो के ढेर लगाकर पहले दिन राजा भगवान् बुद्धदेव की मूर्ति को बहुत उत्तम रीति मे सुसज्जित करता है और बहुमूल्य रत्नो को भेंट करता है। तब स्थानीय संन्यासियो को, दान देता है। इसके उपरान्त, अनेक दूरदेशीय साधुओ को, जो उपस्थित होते हैं उनको, और फिर बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुषो को, दान से सम्मानित करता है। इसके उपरान्त स्थानीय अन्य धर्मावलम्बियो की बारी आती है, और सबके अन्त मे विधवा और दुखी, अनाथ बालक और रोगी, तथा दरिद्री और महन्त लोगो को दान दिया जाता है।

इस प्रकार अपने सम्पूर्ण खजाने को खाली करके और भोजन इत्यादि दान करके अपने मुकुट और रत्नो की माला को दान कर देता है। प्रारम्भ से अन्त तक यह सर्वस्व दान करते हुये उसको कुछ भी रञ्ज नही होता है। सब कुछ दान हो जाने पर बडी प्रसन्नता से वह कहता है, "खूब हुआ, मेरे पास जो कुछ था वह अब ऐन खजाने मे जाकर दाखिल हुआ जहाँ न इसका नाश हो सकता है और न अपवित्र कामो मे इसका व्यय हो सकता है।"

इसके उपरान्त भिन्न भिन्न देशो के नरेश अपने अपने वस्त्र और रत्न राजा को भेंट करते हैं जिससे उसका द्रव्यालय फिर से परिपूर्ण होता है।

महादानभूमि के पूर्व और दोनो नदियो के सङ्गम मे प्रत्येक दिन सैकडो मनुष्य स्नान और प्राणत्याग करते हैं। इस देश के लोगो का विश्वास है कि जो कोई स्वर्ग मे जन्म लेना चाहे वह केवल एक दाना चावल का खाकर उपवास करे और फिर सगम मे डूब मरे तो अवश्य देवकोटि मे जन्म पावे। उन लोगो का कहना है कि इस जल मे स्नान करने मे महापातक धुल जाते हैं। इस कारण अनेक प्रान्तो के और बहुत दूर दूर के देशो के लोग झुंड के झुंड यहाँ आते है। सात दिन तक निराहार रहकर उपवास करते हैं और फिर अपने जीवन को समाप्त कर देते हैं। यहाँ तक कि बन्दर और पहाडी मृग भी नदी के निकट आकर इकट्ठा होते हैं, उनमे से कितने ही स्नान करके चले जाते है, और कितने उपवास कर प्राणत्याग करते हैं!

एक समय जब शिलादित्य राजा ने यहाँ दान किया था उन दिनो एक बन्दर नदी से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे रहता था। उसने चुपचाप भोजन परित्याग कर दिया था और कुछ दिनो मे उपवास के कारण वह मर गया।

योगाभ्यास करने वाले अन्य धर्मावलम्बी पुरुषो ने नदी के मध्य में एक ऊंचा खम्भा बना रखा है। जब सूर्यास्त होने को होता है तब ये योगी लोग उस खम्भे पर चढ़ जाते हैं तथा एक पैर और एक हाथ से उस खम्भे मे चिपट कर विलक्षण रीति से अपना दूसरा हाथ और पैर बाहर फैला देते है। सूर्य की ओर नेत्र तथा मुख करके सूर्यास्त हो जाने तक इसी प्रकार अधर मे लटके रहते हैं तथा अधकार हो जाने पर नीचे उतर आते हैं। कई दर्जन योगी यहाँ इस प्रकार अभ्यास करने वाले है बहुत मे तो वर्षों से यही साधना कर रहे है। इनको विश्वास है कि ऐसा करने से जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जावेंगे।

इस देश से दक्षिण-पश्चिम रवाना होकर हम एक बडे जङ्गल मे पहुँचे जो भयानक पशुओ और बनैले हाथियो मे भरा हुआ था। ये हिंसक पशु झुंड के झुंड आकर घेर लेते हैं और यात्रियो को वेढब परेशान करते हैं। इसलिए जब तक बहुत से लोगो का झुंड न हो जावे इस मार्ग मे जाना जान पर खेलना है।

लगभग ५००[1] ली चल कर हम 'क्यावशङ्कमी' प्रदेश मे पहुंचे।

क्यावशङ्कमी (कौशाम्बी)

इस राज्य का क्षेत्रफल ६,००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल ३ ली है। यहाँ की भूमि उत्तम पैदावार के लिए बहुत प्रसिद्ध है, चावल और ईख बहुत होता है। प्रकृति बहुत गरम है; लोग कठोर और क्रोधी हैं। ये लोग विद्योपार्जन करते हैं और धार्मिक जीवन और धार्मिक बल प्राप्त करने मे बहुत दत्तचित्त रहते हैं। दस संघाराम है जो उजडे और सुनसान पडे हैं। हीनयान-सम्प्रदायी सन्यासी केवल ३०० के लगभग हैं। कुल पाँच देवमन्दिर हैं जिनके उपासको की संख्या बहुत है।

नगर के भीतर एक प्राचीन स्थान मे एक विशाल विहार ६ फीट ऊँचा है। इसके भीतर बुद्धदेव की मूर्ति, जो चन्दन की लकडी पर खोदकर बनाई गई है, पत्थर

---

[1] हुइली के अनुसार वास्तविक दूरी ५० ली होनी चाहिए परन्तु राजधानी की दूरी अवश्य १५० ली है।

[2] जनरल कनिंघम साहब लिखते हैं, प्रयाग से लगभग ३० मील यमुना के किनारे कौशाम्बी नगर नामक प्राचीन गाँव ही कौशाम्बी है। कौशाम्बी का वर्णन रामायण में भी आया है और श्रीहर्ष अथवा शिलादित्य के दरबारी कवि बाण-रचित रत्नावली नाटक का घटनास्थल भी यही है।

के सुन्दर छत्र के नीचे स्थापित है, और उदयन-नरेश की कीर्त्ति की द्योतक है। इस मूर्ति का बडा भारी चमत्कार यह है कि समय समय पर इसमे से प्रकाश निकला करता है। अनेक देशो के राजाओ ने इस मूर्ति को उठाकर ले जाने का बहुत प्रयत्न किया और, यद्यपि कितनो ने अपना बल भी लगाया परन्तु सबके सब विफलमनोरथ ही हुए। इस कारण उन लोगो ने इसकी नकल[1] बनवा कर अपने यहाँ स्थापित की है तथा वे लोग उस नकली मूर्ति को ही असली कह कर लोगो को धोखा देते हैं, परन्तु वास्तव मे असली मूर्ति यही है।

जिस समय भगवान् तथागत पूर्ण ज्ञानी होकर अपनी माता को धर्मोपदेश देने स्वर्ग पधारे और तीन मास तक वहीं रहे थे उस समय उदयन राजा को भक्ति के आवेश मे यह इच्छा हुई कि भगवान की कोई मूर्ति ऐसी होती जिसका दर्शन मैं उनकी अनुपस्थिति मे कर सकता। तब उसने मुद्गल्यायन-पुत्र मे प्रार्थना की कि आप अपने योगबल से किसी शिल्पी को स्वर्ग भेज दीजिए और वह बुद्ध भगवान् के सम्पूर्ण अङ्गो का भलीभाँति निरीक्षण करके एक उत्तम मूर्ति चन्दन पर खोद कर बनावे।

जब तथागत भगवान् स्वर्ग से लौट कर आये तब वह चन्दन पर खोदी हुई मूर्ति अपने स्थान से उठी और भगवान् के चरणो पर गिर कर दंडवत् करने लगी। बुद्धदेव ने बडी प्रसन्नता से आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'हे मूर्ति तुझसे आशा है कि तू विरोधियो को सुधारने मे श्रम करेगी और बहुत दिनो तक धर्म का वास्तविक मार्ग लोगो को बताती रहेगी।'

विहार से पूर्व कोई १०० कदम की दूरी पर गत चारो बुद्धो के चलने-फिरने और बैठने इत्यादि के चिह्न पाये जाते है, तथा उसके निकट ही एक कुवाँ और स्नान-गृह है जो बुद्धदेव के काम मे आता था। कूप मे तो अब भी जल है परन्तु स्नानगृह का विनाश हो गया।

नगर के अन्तगत दक्षिण-पूर्व के कोने मे एक प्राचीन स्थान था जिसका भग्नावशेष अब तक वर्तमान है। यहाँ पर महात्मा घोशिर रहता था। मध्य मे बुद्धदेव का एक विहार और एक स्तूप तथागत भगवान् के नख और बालो सहित है, तथा उनके स्नानगृह का खंडहर भी वर्त्तमान है।

---

[1] इस चन्दन की मूर्ति की एक नकल पेकिन के निकट एक मन्दिर मे पाई गई है जिसका वर्णन बील साहब ने अपनी यात्रा मे किया है। तथा उसका चित्र भी अपनी पुस्तक पर छाप दिया है। कौशाम्बी-नरेश उदयन का वर्णन कालिदास ने भी अपने मेघदूत ग्रन्थ मे किया है।

संघाराम के दक्षिण-पूर्ववाले दो खंड के बुर्ज के ऊपरी भाग में ईंटों की एक गुफा है जिसमे वसुबंधु बोधिसत्व रहा करता था। इस गुफा मे बैठ कर उसने विद्यामात्र सिद्धि-शास्त्र को, हीनयान-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को खंडन करने और विरोधियो का मुखमर्दन करने के लिए बनाया था।

संघाराम के पूर्व ओर एक आम्रवाटिका मे उस मकान की टूटी-फूटी दीवार और बुनियाद का दर्शन अब भी होता है जिसमे रहकर असङ्ग बोधिसत्व ने 'हिनयङ्ग-शिङ्ग क्याव' नामक शास्त्र को लिखा था।

नगर के दक्षिण-पश्चिम आठ नौ ली की दूरी पर एक विषैले नाग का निवास-भवन पत्थर का बना हुआ है। इस नाग को परास्त करके बुद्धदेव ने अपनी परछाई को यहाँ पर छोड दिया था। यद्यपि इस स्थान की यह कथा बहुत प्रसिद्ध है परन्तु अब उस परछांई के दर्शन नही होते।

इसके निकट ही एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ २०२ फीट ऊँचा है जिसके पास ही दूसरा स्तूप बुद्धदेव के नख तथा बालो सहित है, और तथागत भगवान् के इधर-उधर चलने-फिरने के बहुत से चिह्न भी बर्तमान है। रोग से पीड़ित शिष्य लोग इस स्थान पर आकर रोगमुक्ति के लिए प्रार्थना करते हैं जिनमे से अनेक अच्छे भी हो जाते हैं।

शाक्य-धर्म का नाश होने पर यही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ पर धर्म की जाग्रति बनी रहेगी, इसलिए छोटे से लेकर बड़े तक जितने मनुष्य इन देश की सीमा मे पैर धरते हैं वे लौटतें समय गद्‌गद हो कर अवश्य आँसुओ की धारा बहाते हैं।

नागस्थान के पूर्वोत्तर मे एक बड़ा भारी वन है। इस वन मे होते हुए ७०० ली चल कर हमने दंगा नदी पार की और फिर उत्तर की ओर गमन करते हुए 'कियाशी पोलो'[1] नामक नगर मे हम पहुँचे। नगर का क्षेत्रफल १० ली के लगभग है तथा निवासी धनी और सुखी है।

नगर के पास ही एक प्राचीन संघाराम है जिसकी दीवारो की केवल नीव ही इस समय शेष है। यही स्थान है जहाँ पर धर्मपाल बोधिसत्व ने विरोधियो को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। प्राचीन काल में यहाँ का एक नरेश विरोधियो का बड़ा पक्षपाती था तथा बौद्ध-धर्म का नाश करने की इच्छा से विरोधियों की प्रतिष्ठा करके उत्तेजना

---

[1] गोमती नदी के किनारे प्राचीन सुल्तानपुर नगर ही यह स्थान है। सुल्तानपुर का हिन्दू नाम कुशभवनपुर या केवल कुशपुर था।

देता रहता था। एक दिन उसने विरोधियो मे से एक बड़े शास्त्री को बुला भेजा। यह व्यक्ति बडा विद्वान्, बुद्धिमान् और धर्म के गूढ से गूढ सिद्धान्तो को समझने मे अत्यन्त कुशल था। इसने एक पुस्तक भी, जिसमे १,-०० श्लोक अर्थात् ३२,००० शब्द थे, बनाई थी। इस पुस्तक मे उसने बौद्धधर्म पर मिथ्या दोषारोपण करके बडे कट्टरपने से अपने सिद्धान्तो का निरूपण किया था। इस पुस्तक को लेकर राजा ने बहुत से बोद्धो को बुला भेजा और आज्ञा दी कि इसमे के लिखे हुए प्रश्नो पर शास्त्रार्थ करो। उसने यह भी कहा कि यदि विरोधी विजयी होगे तो मैं बौद्ध-धर्म को बरबाद कर दूँगा, और यदि बौद्ध लोग न परास्त होगे तो इस पुस्तक के बनाने वाले को अपराधी मान कर उसकी जीभ काट लूँगा। इस बात को सुनते ही बौद्ध-समाज भयभीत हो गया कि अब हार होने मे कसर नही है। सब लोग परस्पर सलाह करने लगे कि 'ज्ञान का सूर्य अस्त होना चाहता है और धर्म का पुल गिरने के निकट है, क्योकि राजा विरोधियो के पक्ष मे है। ऐसी अवस्था मे हमको क्या आशा हो सकती है कि हम उनके मुकाबिले मे विजयी होगे? क्या इस दशा मे कोई उपाय बचाव का है?" सम्पूर्ण बौद्ध-मंडली चुप हो गई, कि ी की समझ मे कोई तदवीर न आई कि क्या करना चाहिए।

धर्मपाल बोधिसत्व की अवस्था यद्यपि इस समय थोडी थी परन्तु इसकी सूक्ष्म बुद्धिमत्ता और चतुरता के लिए बडी ख्याति थी, तथा शुद्धचरित्रता के लिए भी वह व्यक्ति अत्यन्त आदरणीय और प्रसिद्ध था। उस समय मंडली मे यह विद्वान् भी उपस्थित था। इसने खडे होकर बडे ही जोशीले शब्दो मे इस प्रकार उत्तर दिया, "यद्यपि मैं मूर्ख हूँ, परन्तु मैं कुछ निवेदन करने की आज्ञा चाहता हूँ। वास्तव मे मै महाराज की आज्ञानुसार उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हूँ; यदि मै शास्त्रार्थ मे जीत जाऊँ तो इसको दैवी सहायता समझूँगा, परन्तु यदि मैं पराजित हो जाऊँगा और सूक्ष्म विषयो का उद्घाटन सम्यक् रीति से न कर सकूँगा तो इसका सम्बन्ध मेरी युवावस्था से होगा। दोनो हालतो मे बचाव है, धर्म और बौद्धो की कोई हानि न होगी।" उन लोगो ने उत्तर दिया, "हमको तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार है", तथा राजा की आज्ञानुसार उत्तर देने के लिए उसको नियत किया और वह पुरोहितासन पर आकर बैठ गया।

विरोधी विद्वान् ने अपने दोषमय सिद्धान्तो को उलटे सीधे प्रकार से अपनी बात की रक्षा के लिए प्रकट किया, और अन्त में भली भाति अपना वक्तव्य समाप्त करके वह उत्तर का आकाक्षी हुआ।

धर्मपाल बोधिसत्व ने उसके शब्दो को लेकर मुसकराते हुए उत्तर दिया, "मैं जीत गया, मैं दिखला दूँगा कि किस प्रकार इसने विरुद्ध सिद्धान्तो को सिद्ध करने के लिए मिथ्या विवाद से काम लिया है, तथा इसके झूठे मत को सिद्ध करनेवाले इसके वाक्य किस प्रकार गडबड हैं।"

विरोधी ने कुछ जोश के साथ कहा, "महाशय ! आसमान पर न चढ़िए, यदि आप जैसा कहते हैं वैसा ही कर देगे तो अवश्य आप विजयी होगे। परन्तु सत्यता के साथ प्रथम मेरे मूल के अर्थो को प्रकट कीजिए।" धर्मपाल ने उसके मूल सिद्धान्तो को लेकर उसके प्रत्येक शब्द और वाक्य को, बिना किसी प्रकार की भूल किये और भाव को बदले, अच्छी तरह प्रदर्शित कर दिया।

विरोधी आदि से अन्त तक उसके उत्तर को सुन कर सन्न रह गया तथा अपनी जिह्वा काटने के लिए उद्यत ही था कि धर्मपाल ने समझाया, 'यदि तुमको पश्चात्ताप है, तो उसके लिए यह आवश्यक नही कि तुम अपनी जिह्वा ही को काट डालो। अपने सिद्धान्तो को बदल डालो, बस यही सच्चा पश्चात्ताप है।" फिर उसने उसको धर्म का वास्तविक रूप समझाया जिसको उसके अन्तःकरण ने स्वीकार कर लिया, और वह सत्य का अनुगामी हो गया। राजा ने भी अपने विरोध को परित्याग कर दिया और पूरे तौर से बौद्ध-धर्म का भक्त बन गया।

इस स्थान के पास एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यद्यपि इसकी दीवारें टूट फूट गई हैं तो भी यह २०० फीट ऊँचा है। यहाँ पर बुद्धदेव ने छः मास तक धर्मोपदेश किया था। इसी के निकट बुद्धदेव के चलने फिरने के चिह्न भी हैं तथा एक स्तूप, उनके नख और बालो सहित, बना हुआ है।

यहाँ से १७०-१८० ली उत्तर दिशा मे चल कर हम 'पीसोकिया' राज्य मे पहुँचे।

पीसोकिया (विशाखा[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल ४,००० ली और राजधानी का १६ ली है। अन्नादि इस देश में जिस प्रकार अधिक होते है उसी प्रकार फल फूल की भी बहुतायत है। प्रकृति कोमल और उत्तम है तथा मनुष्य शुद्ध और धर्मिष्ठ हैं। ये लोग विद्याभ्यास करने मे परिश्रमी और धार्मिक कामो के सम्पादन करने मे बिना विलम्ब योग

---

[1] कनिंघम साहब निश्चय करते हैं कि यह प्रदेश साकेत, या फाहियान का सांची, है जो ठीक अयोध्या या अवध के सदृश है।

देनेवाले हैं। कोई २० संघाराम ३,००० संन्यासियो के सहित हैं जो हीनयान-सम्प्रदाय की सम्मतीय संस्था का प्रतिपालन करते हैं। कोई पचास देवमन्दिर और अगणित विरोधी उनके उपासक हैं।

नगर के दक्षिण मे सडक के बाँई ओर एक बडा सघाराम है। इस स्थान मे देवाश्रम अरहट ने, शीह शिनलन' नामक शास्त्र लिखकर इस बात का प्रतिवाद किया है कि व्यक्ति रूप मे अहम् कुछ नही है। गोप अरहट ने भी इस स्थान पर 'शिङ्ग क्योइउ-शीहलन' नामक ग्रंथ को बना कर इस बात का प्रतिवाद किया है कि व्यक्ति विशेष रूप मे अहम ही सब कुछ है। इन सिद्धान्तो ने अनेक विवादग्रस्त विषयो को खडा कर दिया है। धर्मपाल बोधिसत्व ने भी यहाँ पर सात दिन मे हीनयान-सम्प्रदाय के एक सौ विद्वानो को परास्त किया था।

सघाराम के निकट एक स्तूप २०० फीट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। प्राचीन काल मे बुद्धदेव ने छ. वर्ष तक यहाँ निवास और धर्मोपदेश करके अनेक मनुष्यो को अपना अनुयायी बनाया था। स्तूप के निकट ही एक अद्भुत वृक्ष ६-७ फीट ऊँचा लगा हुआ है। कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु यह ज्यो का त्यो बना हुआ है, न घटता है और न बढता है। किसी समय मे बुद्धदेव ने अपने दाँतो को स्वच्छ करके दातुन को फेक दिया था। वह दातुन जम गई और उसमे बहुत से पत्ते निकल आये, वही यह वृक्ष है[1]। ब्राह्मणो और विरोधियो ने अनेक बार धावा करके इस वृक्ष को काट डाला परन्तु यह फिर पहिले के समान पल्लवित हो गया।

इस स्थान के निकट ही चारो बुद्धो के आने जाने के चिह्न पाये जाते हैं, तथा नख और बालो सहित एक स्तूप भी है। पुनीत स्थान यहाँ पर एक के बाद एक बहुत फैले चले गये हैं, तथा जङ्गल और झीलें भी बहुतायत से हैं।

यहाँ से पूर्वोत्तर ५०० ली चलकर हम 'शीसाहलोफुसिहताई' राज्य मे पहुँचे।

---

[1] इस वृक्ष का वृत्तान्त फाहियान ने साँची के वर्णन मे दिया है, और यही कारण है जिससे कनिंघम साहब विशाख को साकेत या अयोध्या निश्चय करते हैं।

छठा अध्याय

चार प्रदेशो का वर्णन—(१) शीलोफुशीटी (२) कइपीलोफुस्सीटो (३) लानमो (४) कुशीनाकइलो

शीलोफुशीटी (श्रावस्ती[1])

श्रावस्ती राज्य का क्षेत्रफल ६,००० ली है। मुख्य नगर उजाड और जनशून्य हो रहा है। इसका क्षेत्रफल कितना था यह निश्चय नही हो सकता, परन्तु राज्यभवन की दीवारे जो उसकी सीमा को घेरे हुए थी और अब टूट-फूट गई हैं उनसे निश्चय होता है कि राज्यभवन का क्षेत्रफल २० ली के लगभग था। यद्यपि नगर एक प्रकार से उजाड और जनशून्य है तो भी थोडे से निवासी अब भी है। अन्नादि की उपज अच्छी होती है। प्रकृति उत्तम और स्वभावानुकूल है तथा मनुष्य शुद्ध आचरणवाले और धर्मिष्ठ हैं। यहाँ के लोग विद्याभ्यास और धर्म-कर्म मे दत्तचित्त हैं। कई सौ सघाराम है जो अधिकतर उजाड हैं, तथा बहुत थोडे लोग अनुयायी होकर सम्मतीय सस्था का अध्ययन करते हैं। देवमन्दिर १०० है जिनमे असख्य विरुद्ध धर्मावलम्बी उपासना करते हैं। भगवान तथागत के समय मे प्रसेनजित[2] राजा इस प्रदेश का स्वामी था।

---

(1) श्रावस्ती नगर धर्मपट्टन भी कहलाता है। जनरल कनिंघम साहब निश्चय करते हैं कि उत्तर कोशल में अयोध्या से ५८ मील उत्तर दिशा मे राप्ती नदी के दक्षिणी किनारे पर सहेट-महेट नाम का गाँव ही श्रावस्ती है। सन् १९१०-११ ई० मे इस गाँव के टीलो की खुदाई होने से भी जनरल साहब का विचार सत्य प्रमाणित हो गया कि बहराइच जिले का सहेट-महेट ही श्रावस्ती है। ह्वेनसांग पूर्वोत्तर दिशा मे ५०० ली की दूरी बतलाता है इससे विदित होता है कि वह सीधे रास्ते से नहीं गया। विपरीत इसके, फाहियान उत्तर दिशा और आठ योजन की दूरी कहता है जो दोनो ठीक हैं। इस स्थान का वृत्तान्त हरिवशपुराण, विष्णुपुराण, महाभारत, भागवत पुराण इत्यादि मे भी आता है कि युवनाश्व के पौत्र और श्रावस्त ने इस नगर को बसाया था।

(2) अशोक अवदान मे प्रसेनजित को वशावली इस प्रकार है:—बिम्बिसार (ई०प्र० ५४०-५१२), उसका पुत्र अजातशत्रु (५१२ ई० प्र०), उसका पुत्र उदयभद्र (४८० ई० प्र०), उसका पुत्र मुंडा (४६० ई० प्र०), उसका पुत्र काकवर्णिन (४५६ ई० प्र०), उसका पुत्र सहालिन, उसका पुत्र तुलकुची, उसका पुत्र-महामडल (३७५ ई० प्र०) उसका पुत्र प्रसेनजित, उसका पुत्र नन्द, उसका पुत्र बिन्दुसार (२९५ ई० प्र०), उसका पुत्र सुसीम।

प्राचीन राजधानी के अन्तर्गत प्रसेनजित राजा के निवासभवन इत्यादि की थोडो बहुत नीव अब तक है, तथा इसके निकट ही एक भग्न स्थान के ऊपर एक छोटा सा स्तूप बना हुआ है। पहले इस भग्न स्थान पर प्रसेनजित राजा ने भगवान् बुद्धदेव के लिए सद्धर्म महाशाला नामक विशाल भवन बनवाया था। कालान्तर मे उस भवन के धराशायी हो जाने पर यह स्तूप स्मारक स्वरूप बना दिया गया है।

इस स्थान के निकट ही एक और भग्नावशेष पर छाटा सा स्तूप बना हुआ है। यह वह स्थान है जहाँ पर प्रसेनजित राजा ने बुद्धदेव की चाचो 'प्रजापती भिक्षुनी' के रहने के लिए विहार बनवाया था। इसके पूर्व मे भी एक और स्तूप उस स्थान पर बना है जहाँ पर सुदत्त[1] का निवासभवन था।

सुदत्त के मकान के निकट ही एक और स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर अङ्गुलिमाल्य ने अपन विरुद्ध धर्म को परित्याग करके बौद्ध धर्म को अङ्गीकार किया था। अङ्गुलिमाल्य श्रावस्ती का एक अधम जाति का नाम है। सब प्रकार के प्राणियो की हिंसा करना इनका काम है, यहाँ तक कि जब अधिक पागलपन सवार होता है तब ये लोग नगर और ग्राम के मनुष्यो को भी मारने लगते हैं और उनकी अगुलियो से माला बनाकर सिर मे धारण करते हैं। ऊपर जिस अङ्गुलिमाल्य का उल्लेख किया गया है वह अधम एक समय अपनी माता को मारने और उसकी अँगुलियो से माला बनाने के लिए उद्यत हो गया था। भगवान् बुद्धदेव करुणा से प्रेरित होकर उसको शिक्षा देने के लिए उसके पास गये। अङ्गुलिमाल्य बुद्धदेव को दूरसे आते देखकर बडी प्रसन्नता से कहने लगा, "अब मेरा जन्म स्वर्ग मे अवश्य होगा क्योंकि हमारे प्राचीन धर्माचार्यो का वाक्य है कि जो बौद्ध को मारेगा अथवा अपनी माता का वध करेगा उसका जन्म ब्रह्मलोक मे होगा।"

इसके उपरान्त उसने अपनी माँ से कहा कि "हे बुड्ढी! जब तक मैं इस श्रमण का वध करूँगा केवल तब तक के लिए मैं तुझको छोडे देता हूँ।" यो कह कर और एक छुरो लेकर वह बुद्धदेव पर झपटा। बुद्धदेव इस अवस्था मे भी शान्ति के साथ पदसञ्चालन करते हुए चले जाते थे, परन्तु वह बडी तेजी से झपटता हुआ इन पर आ पहुँचा। बुद्ध भगवान् ने उससे कहा, "क्यो तुम अपनी स्वाभाविक उत्तम प्रकृति को परित्याग करके निकृष्ट वासना को स्थिर रखते हुए उसी के पालन करने मे तत्पर हो?" नही मालूम इन शब्दो मे क्या शक्ति थो जिनको सुनते ही वह अपनी नीचता को समझ गया और बुद्ध देव की भक्ति करके वास्तविक धर्म के लिए प्रार्थना करने

(1) सुदत्त का नाम अनाथपिण्डाद भी लिखा है, अर्थात् अनाथ और दीन पुरुषो का मित्र।

लगा। सत्य धर्म पर आरूढ़ होकर परिश्रम करने के प्रसाद से उसको बहुत शीघ्र अरहट अवस्था प्राप्त हो गई।

नगर के दक्षिण ५ या ६ ली पर जेतवन है। यह वह स्थान है जहाँ पर प्रसेनजित राजा के प्रधान मंत्री अनाथपिण्डाद अथवा सुदत्त ने बुद्ध देव के लिए एक विहार बनवाया था। प्राचीन काल मे वहाँ एक संघाराम भी था, परन्तु आज-कल यह सब उजाड़ हैं। पूर्वी फाटक के दाहिने और बाएँ ७० फीट ऊँचे स्तम्भ बनाये गये है। बाँई ओर के खम्भे पर एक चक्र का चित्र खोद कर बनाया गया है, और दाहिनी ओर के स्तम्भ की चोटी पर बैल का चित्र है। यह दोनो स्तम्भ अशोक राजा के बनवाये हुए है। पुरोहितो के रहने के जितने स्थान थे सब गिर गये, केवल उनकी नीवे बाकी हैं, तथा एक कोठरी ईंटो की बनी हुई मध्य खडहर मे अवशेष है, जिसमे बुद्धदेव का चित्र बना है।

प्राचीन काल मे जब तथागत भगवान् त्रायस्त्रिंशस स्वर्ग मे अपनी माता को उपदेश देने के लिए पधारे थे उस समय प्रसेनजित राजा ने यह सुन कर कि उदान नृपति ने बुद्धदेव की एक मूर्ति चन्दन की बनवाई है, यह चित्र इस स्थान पर बनवाया था।

महात्मा सुदत्त बडा दयालु और बुद्धिमान् पुरुष था। जिस प्रकार उसने असख्य द्रव्य एकत्रित किया था उसी प्रकार वह दानी भी था। मुहताज और दुखी पुरुषो की मदद करने, और अनाथ तथा अपाहिज लोगो पर दया दिखाने ही के कारण लोग उसको, जब वह जीवित था तभी से, 'अनाथपिण्डाद' कहने लगे थे। बुद्धदेव के धार्मिक ज्ञान को सुन कर उसके हृदय मे बडी भक्ति उत्पन्न हो गई और उसी भक्ति के आवेश मे आकर उसने बुद्धदेव के निमित्त एक विहार बनवाने का सकल्प किया, और बुद्धदेव से प्रार्थी हुआ कि इसके ग्रहण करने के लिए कृपा करके पधारे। बुद्धदेव ने शारिपुत्र को आज्ञा दी कि वह जाकर समुचित सम्मति इत्यादि से उसकी सहायता करे। इन दोनो का विचार हुआ कि जेतवाटिका की भूमि ऊँची और उत्तम होने के कारण विहार बनाने के लिए बहुत उपयुक्त है, इस कारण राजकुमार से चलकर और अपना विचार निवेदन करके आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। राजकुमार ने इनके निवेदन पर हँसी से कहा, "यदि तुम भूमि को सोने से ढक दो तो मैं अवश्य इस भूमि को बेच दूँगा।"

सुदत्त इस आज्ञा को सुनकर प्रसन्न हो गया। तुरन्त अपने खजाने को खोल कर भूमि को द्रव्य से ढकने लगा तो भी थोडी सी भूमि ढकने से बाकी रह गई। राजकुमार ने उससे कहा कि इसको छोड दो, परन्तु उसने कहा कि "बुद्ध-धर्म का क्षेत्र सच्चा है, उसमे भलाई का बीज मैं अवश्य वपन करूँगा"। इसके उपरान्त उसने उस भूमि में, जहाँ पर वृक्ष आदि न थे, एक विहार बनवाया।

बुद्ध भगवान् ने 'आनन्द' को बुला कर कहा कि 'भूमि सुदत्त की है जो उसने खरीदी है, और वृक्षावली जेत ने दी है, इस कारण दोनो के मन का भाव समान है और वे दोनो पुण्य के अधिकारी हैं। अब भविष्य मे इस स्थान का नाम जेतवाग और अनाथपिण्डाद-वाटिका होगा।"

अनाथपिण्डाद-वाटिका के उत्तर-पूर्व एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर तथागत भगवान ने, एक रोगी भिक्षु को जल से स्नान कराया था। प्राचीन काल मे, जब तथागत भगवान् ससार मे थे, एक रोगी भिक्षु था जो अपने दुख से दुखी होकर एक शून्य स्थान मे अकेला पडा रहता था। बुद्ध भगवान् ने उसको दुखी देख कर पूछा, "तुम किस दुख से पीडित होकर इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हो ?" उसने उत्तर दिया, 'मैं स्वभावतः बडा ही बेपरवाह और आलसी था, कभी भी मैंने किसी रोगी पुरुष पर ध्यान नही दिया (अर्थात् सेवा नही की) और अब जब मैं रोगी हो गया हूँ तो मेरी ओर भी कोई दृष्टि उठा कर नही देखता (अर्थात् सेवा नही करता।") तथागत भगवान् ने उस पर दया करके उत्तर दिया, "हे मेरे पुत्र ! मैं तुझ पर निगाह करूँगा।" इसके उपरान्त बुद्धदेव ने उसकी ओर झुक कर उसके शरीर को अपने हाथ से छू दिया जिससे तुरन्त उसका रोग दूर हो गया। फिर उसको द्वार के बाहर लाकर और एक चटाई पर विठा कर उसके शरीर को अपने हाथ से धोया और उसके कपडो को वदल दिया।

इसके उपरान्त बुद्ध भगवान् ने उस भिक्षु को आज्ञा दी कि 'आज की मिती से तू मेहनती हो जा और सब कामो के लिए स्वय प्रयत्न किया कर।" इस आज्ञा को सुनकर उसको अपने आलसीपन पर बडा पश्चात्ताप हुआ तथा भगवान् की आज्ञा का उसने कृतज्ञता और प्रसन्नतापूर्वक पालन किया।

अनाथपिंडाद वाटिका के उत्तर-पश्चिम एक छोटा सा स्तूप है। जहाँ पर मुद्गल पुत्र की आध्यात्मिक शक्ति शारिपुत्र के कमरबन्द को उठाने मे असमर्थ और व्यर्थ हो गई थी। प्राचीन काल मे एक बार भगवान् बुद्धदेव, देवता और मनुष्यो की समाज मे अनवतप्त झील के किनारे बैठे हुँए थे। उस समय केवल शारिपुत्र ही उपस्थित नही था। बुद्धदेव ने मुद्गलपुत्र को बुलाकर आज्ञा दी कि शारिपुत्र से कहो शीघ्र आवे। इस आज्ञा को पाकर मुद्गलपुत्र वहाँ गया।

शारिपुत्र उस समय अपने धार्मिक वस्त्र को सुधार रहा था। मुद्गलपुत्र ने उससे कहा कि बुद्धदेव भगवान् आज-कल अनवतप्त झील के किनारे ठहरे हुए हैं और मुझको तुम्हारे बुलाने के लिए भेजा है।

शारिपुत्र ने उत्तर दिया, "एक मिनट ठहर जाओ, मैं अपना वस्त्र सुधार कर अभी आपके साथ चलता हूँ।" मुद्गलपुत्र ने उत्तर दिया, "यदि तुम देर करोगे तो मैं अपनी आध्यात्मिक शक्ति से तुमको तुम्हारे मकान सहित वहाँ सभा मे उठा ले जाऊँगा।"

शारिपुत्र ने अपने कमरबन्द को लेकर भूमि पर फेंक दिया और कहा, "अब मेरा शरीर इस स्थान से तभी हिलेगा जब तुम अपनी शक्ति से इस कमरबन्द को उठा लोगे।" मुद्गलपुत्र ने उस कमरबन्द को उठाने मे अपना सम्पूर्ण आध्यात्मिक बल लगा दिया परन्तु उसको हिला भी न सका, यहाँ तक कि भूमि हिल गई। इसके उपरान्त अपने आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा वह उस स्थान पर आया जहाँ बुद्धदेव बैठे थे। वहाँ पहुच कर क्या देखता है कि शारिपुत्र पहले से वहाँ उपस्थित है और समाज मे बैठा है। मुद्गलपुत्र ने एक लम्बी साँस लेकर कहा कि "अब मुझको मालूम हुआ कि जादूगर की शक्ति ज्ञानी की शक्ति के बराबर नही होती[1]।"

स्तूप के निकट ही एक कूप है जिसमें से तथागत भगवान् अपनी आवश्यकता के लिए जल लिया करते थे। इसी के निकट एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है जिसमे तथागत भगवान् का शरीरावशेष बन्द है। यहाँ पर और भी बहुत से स्थान हैं जहाँ पर बुद्धदेव के इधर-उधर चलने-फिरने और धर्मोपदेश करने के चिह्न बने है। इस स्थान की इन्ही सब बातो की स्मृति के लिए यहाँ पर एक स्तम्भ और एक स्तूप बना हुआ है। इस स्थान पर बडे-बडे अद्भुत चमत्कार प्रदर्शित होते रहते है, जिनके कि भय से इस स्थान की सीमा सुरक्षित है। किसी समय दैवी गान की मधुर ध्वनि कर्णकुहर मे प्रवेश करती है और किसी समय दैवी सुगन्धि की सुवास चारो ओर भर जाती है। ऐसे कई प्रकार के चमत्कार दिखाई देते है। वहाँ के सम्पूर्ण चिह्नो (के चिह्न जो धार्मिक सत्ता प्रकट करते है का पूरे तौर पर वर्णन करना कठिन है।

अनाथपिंडाद के संघाराम के पीछे समीप ही एक स्थान है जहाँ पर ब्रह्मचारियो ने एक वेश्या को मार कर उसका दोष बुद्ध भगवान् पर मढ़ना चाहा था। इन दिनो भगवान् तथागत की शक्ति दसगुनी थी,[2] वे निर्भय और पूर्ण ज्ञानी थे, मनुष्यो और देवताओ मे आदरणीय तथा विद्वानो और महात्माओ मे पूजनीय थे। भगवान् की इस अलौकिक प्रभुता से जलकर विरोधियो ने परस्पर सलाह करके यह निश्चय किया कि

---

(1) दूसरे शिष्यो की अपेक्षा मुद्गलपुत्र मे आश्चर्य के काम (जादूगरी) करने की अधिक शक्ति थी, और शारिपुत्र बहुत बड़ा ज्ञानवान् था।

(2) दस प्रकार की शक्तियों के प्राप्त करने के कारण बुद्धदेव का नाम 'दशबल' भी था।

"हम लोग उनके साथ कोई ऐसी घृणित कार्यवाही करे जिससे समाज मे वे निन्दित हो सकें।" इस प्रकार निश्चय करके उन्होंने एक वेश्या को प्रलोभन और द्रव्य देकर इस बात पर ठीक किया कि वह बुद्धदेव का धर्मोपदेश सुनने के लिए आया करे। उसके आने का हाल जब सब लोगो पर अच्छी तरह विदित हो गया तब एक दिन उन लोगो ने चुपचाप उस वेश्या को मार डाला और उसके शरीर को एक वृक्ष के नीचे गाड दिया। फिर क्रोधित व्यक्ति के समान बहाना बनाकर सब वृत्तान्त राजा से जाके कह सुनाया। राजा ने जाँच की आज्ञा दे दा। उस वेश्या का शव जेतवन से ढूंढ कर निकाला गया। अब तो विरोधी चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे, "देखा, यह गौतम श्रमण[1] सदा सन्तोप और सदाचार पर व्याख्यान दिया करता है, परन्तु अब भेद खुल गया। इसने उस वेश्या के साथ का अपना गुप्त सम्बन्ध छिपाने के लिए ही उसको मार डाला, जिसमे वह किसी पर प्रकट न कर सके। परन्तु अब इस व्यभिचार और रक्तपात के सामने उसके सदाचार और सन्तोष को कहाँ स्थान मिलेगा ?" उस समय देवताओ ने आकाश मे उपस्थित होकर यह आकाशवाणी की, "यह विरोधियो की घृणित कर्तूत है।"

सघाराम पूर्व को ओर १०० कदम की दूरी पर एक बडी और गहरी खाईं है। यह वह स्थान है जहाँ पर देवदत्त ने[2] बुद्धदेव को विषैली औषधि देकर मारना चाहा था और इस घृणित चेष्टा के फल से वह नरकगामी हुआ था। देवदत्त द्रोनोदन राजा का पुत्र था। इसने बारह वर्ष तक परिश्रम करके ८०,००० धर्म के मुख्य श्लोको को कण्ठाग्र कर लिया था। इसके उपरान्त वह लालच मे फँसकर देवी शक्ति प्राप्त करने का अभिलाषी हुआ और बहुत से दुष्टो को अपना साथी बनाकर इस प्रकार कहने लगा, "मुझमे बुद्धदेव के समान ३० गुण हैं। बहुत से अनुयायी मेरे सहायक हैं जिनकी सख्या बुद्धदेव के अनुयायियो से कुछ ही कम होगी। फिर और कौन सी बात है जिसमे मेरी और बुद्धदेव की असमानता है ?" इस प्रकार विचार करके वह सच्चे शिष्यो को धोखा देने लगा परन्तु शारिपुत्र और मुद्गलपुत्र जो बुद्धदेव की आज्ञा के पूर्ण भक्त

(1) यह बुद्ध के गोत्र का नाम है, और कदाचित् शाक्यवश के पुरोहित के गोत्रानुसार उत्तरी भारत की पुस्तको मे बुद्धदेव की अप्रतिष्ठा के भाव मे लिखा गया है।

(2) देवदत्त बुद्धदेव का भाई और उनके पितृव्य द्रोनोदन का पुत्र था। यह भी कहा जाता है कि वह बुद्धदेव का साला अर्थात् बुद्धदेव की स्त्री यशोधरा का भाई था। पहले उसकी इच्छा बौद्ध-समाज में अग्रगण्य बनने की हुई थी परन्तु इस मनोरथ के विफल होने पर वह बुद्धदेव के प्राणो का गाहक हो गया था।

थे और जिनमे स्वयं बुद्ध भगवान् ने धार्मिक बल भरा था, धर्म का उपदेश देकर शिष्यो को भटकने मे बचाते रहे । एक दिन देवदत्त अपनी मलीनता से बुद्धदेव को मारने के लिए नखो मे विष लगा कर अतिथि के समान आया । अपनी इस घृणित इच्छा को पूर्ण करने के लिए वह बहुत दूर से इस स्थान तक आया था, परन्तु ज्योही वह यहाँ पहुँचा भूमि फट गई और वह सदेह नरक मे चला गया ।

इसके दक्षिण मे एक ओर बडी खाईं है जहाँ पर कुकाली[1] भिक्षुनी ने तथागत को व्यर्थ कलकित करके नरक का रास्ता लिया था ।

कुकाली खाईं से ८०० पग दक्षिण की ओर एक और बडी तथा गहरी खाईं है । इस स्थान पर एक ब्राह्मण की कन्या चंश्चा तथागत को व्यर्थ कलक लगाकर सजीव नरक मे धँस गई थी । बुद्ध भगवान् मनुष्यो और देवाताओ की भलाई के लिए धर्म के परमोत्तम सिद्धान्तो का उपदेश करते थे । इस बात को विरोधिया की एक स्त्री न सहन कर सकी । उसने देखा कि बुद्ध भगवान् एक बडे भारी समाज मे बैठे हैं और लोग उनको बड़ी भक्ति और पूजा करते हैं; इस वात पर उसने विचार किया, "मै आज ही इस गौतम की सब कीर्ति को मिट्टी मे मिला दूँगी जिससे मेरे आचार्यों की प्रतिष्ठा बनी रहे ।" वह एक लकडी के टुकडे को अपने पेट मे बाँधकर उस सभा मे गई जहाँ बुद्धदेव बैठे थे, और पुकार कर कहने लगी, "यह तुम्हारा उपदेशक मुझसे गुप्त सम्बन्ध रखता है जिसमे मेरे गर्भ मे शाक्य-वश का बालक है ।" विरोधियो ने तो इस पर विश्वास कर लिया परन्तु बुद्धिमान् समझ गये कि यह झूठा कलङ्क है । उस समय देवाधिपति शक्र लोगो के सन्देह का निराकरण करने के लिए एक सफेद चूहे के स्वरूप मे उसके वस्त्र मे घुस गये और उस बधन को जिससे वह लकडी का टुकडा बँधा हुआ था काट दिया । वह टुकडा जमीन पर इस जोर से गिरा कि उसके शब्द से लोग घवडा गये । वास्तविक बात प्रकट हो गई और सब लोग प्रसन्न हो गये । समाज मे से एक आदमी ने दौड कर लकडो के उस गोले को हाथ मे उठा लिया और ऊँचा करके उस स्त्री को दिखा कर पूछा, "दुष्टा ! क्या यही तेरा बच्चा है" ? उसी समय भूमि फट गई और वह स्त्री सबसे निकृष्ट अवीची नरक मे जाकर अपनी उचित करनी को पहुँची ।

ये तीनो खाइयां[2] बहुत गहरी हैं, परन्तु जब वृष्टि के कारण ग्रीष्म और शरद

---

(1) कुकाली को कोकाली और गोपाली भी कहते हैं, यह देवदत्त क अनुयायिनी थी ।

(2) ये खाइयां कनिंघम साहब की खोज मे आगई हैं ।

"हम लोग उनके साथ कोई ऐसी घृणित कार्यवाही करे जिससे समाज मे वे निन्दित हो सकें।" इस प्रकार निश्चय करके उन्होंने एक वेश्या को प्रलोभन और द्रव्य देकर इस बात पर ठीक किया कि वह बुद्धदेव का धर्मोपदेश सुनने के लिए आया करे। उसके आने का हाल जब सब लोगो पर अच्छी तरह विदित हो गया तब एक दिन उन लोगो ने चुपचाप उस वेश्या को मार डाला और उसके शरीर को एक वृक्ष के नीचे गाड दिया। फिर क्रोधित व्यक्ति के समान बहाना बनाकर सब वृत्तान्त राजा से जाके कह सुनाया। राजा ने जाँच की आज्ञा दे दी। उस वेश्या का शव जेतवन से ढूँढ कर निकाला गया। अब तो विरोधी चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे, "देखा, यह गौतम श्रमण[1] सदा सन्तोष और सदाचार पर व्याख्यान दिया करता है, परन्तु अब भेद खुल गया। इसने उस वेश्या के साथ का अपना गुप्त सम्बन्ध छिपाने के लिए ही उसको मार डाला, जिसमे वह किसी पर प्रकट न कर सके। परन्तु अब इस व्यभिचार और रक्तपात के सामने उसके सदाचार और सन्तोष को कहाँ स्थान मिलेगा?" उस समय देवताओ ने आकाश मे उपस्थित होकर यह आकाशवाणी की, "यह विरोधियो की घृणित कर्तूत है।"

संघाराम पूर्व की ओर १०० कदम की दूरी पर एक बडी और गहरी खाईं है। यह वह स्थान है जहाँ पर देवदत्त ने[2] बुद्धदेव को विषैली औषधि देकर मारना चाहा था और इस घृणित चेष्टा के फल से वह नरकगामी हुआ था। देवदत्त द्रोनोदन राजा का पुत्र था। इसने बारह वर्ष तक परिश्रम करके ८०,००० धर्म के मुख्य श्लोको को कण्ठाग्र कर लिया था। इसके उपरान्त वह लालच मे फँसकर दैवी शक्ति प्राप्त करने का अभिलाषी हुआ और बहुत से दुष्टो को अपना साथी बनाकर इस प्रकार कहने लगा, "मुझमे बुद्धदेव के समान ३० गुण हैं। बहुत से अनुयायी मेरे सहायक हैं जिनकी संख्या बुद्धदेव के अनुयायियो से कुछ ही कम होगी। फिर और कौन सी बात है जिसमे मेरी और बुद्धदेव की असमानता है?" इस प्रकार विचार करके वह सच्चे शिष्यो को धोखा देने लगा परन्तु शारिपुत्र और मुद्गलपुत्र जो बुद्धदेव की आज्ञा के पूर्ण भक्त

---

(1) यह बुद्ध के गोत्र का नाम है, और कदाचित् शाक्यवंश के पुरोहित के गोत्रानुसार उत्तरी भारत की पुस्तको मे बुद्धदेव की अप्रतिष्ठा के भाव मे लिखा गया है।

(2) देवदत्त बुद्धदेव का भाई और उनके पितृव्य द्रोनोदन का पुत्र था। यह भी कहा जाता है कि वह बुद्धदेव का साला अर्थात् बुद्धदेव की स्त्री यशोधरा का भाई था। पहले उसकी इच्छा बौद्ध-समाज मे अग्रगण्य बनने की हुई थी परन्तु इस मनोरथ के विफल होने पर वह बुद्धदेव के प्राणो का गाहक हो गया था।

थे और जिनमे स्वयं बुद्ध भगवान् ने धार्मिक बल भरा था, धर्म का उपदेश देकर शिष्यो को भटकने मे बचाते रहे । एक दिन देवदत्त अपनी मलीनता से बुद्धदेव को मारने के लिए नखों में विष लगा कर अतिथि के समान आया । अपनी इस घृणित इच्छा को पूर्ण करने के लिए वह बहुत दूर से इस स्थान तक आया था, परन्तु ज्योंही वह यहाँ पहुँचा भूमि फट गई और वह सदेह नरक मे चला गया ।

इसके दक्षिण मे एक और बडी खाईं है जहाँ पर कुकाली[1] भिक्षुनी ने तथागत को व्यर्थ कलकित करके नरक का रास्ता लिया था ।

कुकाली खाईं से ८०० पग दक्षिण की ओर एक और बडी तथा गहरी खाईं है । इस स्थान पर एक ब्राह्मण की कन्या चंश्चा तथागत को व्यर्थ कलंक लगाकर सजीव नरक मे धँस गई थी । बुद्ध भगवान् मनुष्यो और देवाताओ की भलाई के लिए धर्म के परमोत्तम सिद्धान्तो का उपदेश करते थे । इस बात को विरोधियो की एक स्त्री न सहन कर सकी । उसने देखा कि बुद्ध भगवान् एक बडे भारी समाज मे बैठे हैं और लोग उनकी बडी भक्ति और पूजा करते हैं; इस बात पर उसने विचार किया, "मैं आज ही इस गौतम की सब कीर्ति को मिट्टी मे मिला दूँगी जिससे मेरे आचार्यों की प्रतिष्ठा बनी रहे ।" वह एक लकडी के टुकडे को अपने पेट मे बाँधकर उस सभा में गई जहाँ बुद्धदेव बैठे थे, और पुकार कर कहने लगी, "यह तुम्हारा उपदेशक मुझसे गुप्त सम्बन्ध रखता है जिससे मेरे गर्भ मे शाक्य-वंश का बालक है ।" विरोधियो ने तो इस पर विश्वास कर लिया परन्तु बुद्धिमान् समझ गये कि यह झूठा कलङ्क है । उस समय देवाधिपति शक्र लोगो के सन्देह का निराकरण करने के लिए एक सफेद चूहे के स्वरूप मे उसके वस्त्र में घुस गये और उस बंधन को जिससे वह लकडी का टुकडा बँधा हुआ था काट दिया । यह टुकडा जमीन पर इस जोर से गिरा कि उसके शब्द से लोग घबडा गये । वास्तविक बात प्रकट हो गई और सब लोग प्रसन्न हो गये । समाज मे से एक आदमी ने दौड कर लकड़ी के उस गोले को हाथ मे उठा लिया और ऊँचा करके उस स्त्री को दिखा कर पूछा, "दुष्टा ! क्या यही तेरा बच्चा है" ? उसी समय भूमि फट गई और यह स्त्री सबसे निकृष्ट अवीची नरक मे जाकर अपनी उचित करनी को पहुँची ।

ये दोनों खाइयाँ[2] बहुत गहरी हैं, परन्तु जब वृष्टि के कारण ग्रीष्म और शरद

---

(1) कुकाली को कोकाली और गोपाली भी कहते हैं, यह देवदत्त की अनुगामिनी थी ।

(2) ये खाइयाँ कनिंघम साहब की खोज में आगई हैं ।

ऋतु में सब झीलो और तडागो मे लबालब जल भरा होता है, इनमे तब भी एक बूंद भी जल नही दिखाई पडता ।

संघाराम के पूर्व ६०-७० पग की दूरी पर एक बिहार ६० फीट ऊँचा बना हुआ है, जिसमे पूर्वाभिमुख बैठी हुई बुद्ध भगवान् की एक मूर्ति है । बुद्ध भगवान् ने यहाँ पर विरोवियो से शास्त्रार्थ किया था । इससे पूर्व की ओर एक देवमन्दिर विहार के समान लम्बाई और ऊँचाई का बना हुआ है । सूर्योदय के समय इस देवमन्दिर की छाया विहार तक नही पहुँचती, परन्तु सूर्यास्त के समय विहार की परछाईं मन्दिर को ढक लेती है ।

इस विहार से तीन चार ली दूर पूर्वदिशा मे एक स्तूप बना दुआ है । यह वह स्थान है जहाँ पर शारिपुत्र ने विरोधियो से शास्त्रार्थ किया था । जिन दिनो सुदत्त ने राजकुमार जेत से बुद्ध-भगवान् का विहार बनाने के लिए वाटिका खरीदी थी और शारि-पुत्र उस धर्मिष्ट को अपनी सम्मति से सहायता दे रहा था, उसी अवसर पर विरोधियो के छः विद्वानो ने आकर उसको घेरा और उसके सिद्धान्तो ा खडन करना चाहा । शारि-पुत्र ने समयानुसार उचित उत्तर देकर उन लोगो को परास्त किया था । इसके पास एक विहार और उसके सामने एक स्तूप बना हुआ है । इस स्थान पर तथा-गत ने विरोधियो को परास्त करके विशाखा[1] की प्रार्थना को स्वीकार किया था ।

विशाखा की प्रार्थना स्वीकृत होने के स्थान पर जो स्तूप बना है उसके दक्षिण मे वह स्थान है जहाँ पर से विरुद्धक राजा शाक्यवश का नाश करने के लिए सेना लाकर भी बुद्धदेव को देख कर—हटा ले गया था । सिंहासन पर बैठते ही विरुद्धक राजा को अपनी पुरानी अप्रतिष्ठा[2] का स्मरण हुआ और इसलिए शाक्यवश को नाश करने के निमित्त वह बडी भारी सेना लेकर चढाई करने का प्रबंध करने लगा । जब सब सामान ठीक हो गया और ग्रीष्मऋतु की गरमी भी कुछ कम हुई तब उसने अपनी सेना को आगे बढाया । एक भिक्षु ने जाकर बुद्ध को यह सब वृत्तान्त सुनाया । वे इस सामाचार को पाते ही एक सुखे वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये । विरूद्धक राजा बुद्धदेव को बैठे हुए देखकर मार्ग ही मे कुछ दूर पर रथ से उतर पडा और निकट आकर बडी भक्ति मे प्रणाम करके सामने खडा हो गया । फिर उसने विस्मित होकर पूछा,

---

1) विशाखा नामक स्त्री ने बुद्ध भगवान् से विहार बनाने की प्रार्थना की थी ।

(2) विरुद्धक राजा प्रसेनजित के वीर्य और शाक्य लोगो की एक लौंडी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । उसने शाक्य लोगो से अपने विवाह के लिए उनके वश की एक स्त्री की याचना की तथा उन लोगो ने उसके साथ छल किया था ।

"भगवन् ! यहाँ पर बहुत से हरे भरे और बडे बडे सघन छायादार वृक्षो के होते हुए भी आप क्यो इस सूखे वृक्ष के नीचे बैठे है, जिसमें एक भी पत्ता सूखने से नही रह गया है ?" भगवान् ने उत्तर दिया, "मेरा वंश वृक्ष की पत्तियों और डालियो के समान है, जब उसका ही विनाश होना चाहता है तब उस वंश मे उत्पन्न एक व्यक्ति विशेष पर कैसे छाया हो सकती है।" राजा ने कहा, "मालूम होता है भगवान् बुद्धदेव अपने वन्श से प्रेम करके यह चाहते हैं कि मेरा रथ लौट जावे।" यह कहकर उसने जोश के साथ बुद्धदेव की ओर देखा और सेना को लौटाकर अपने देश को चला गया।

इस स्थान के निकट एक और स्तूप है; यह वह स्थान है जहाँ पर शक्य-वश की कन्याये वध की गई थी। विरुद्धक राजा ने शाक्य-वश सत्यानाश करके ५०० शाक्य-स्त्रियो को पकड कर अपने रनिवास मे ले लिया, अर्थात् उसकी विजय का यही महत्व था। वह बालिकाये क्रोध और घृणा मे भरकर राजा और उसके घर को गालियाँ देती हुई उसकी आज्ञा मानने से साफ इनकार करने लगी। राजा ने उनके वचनो पर क्रुद्ध होकर आज्ञा दी कि सबकी सब मार डाली जायँ। राजा के सेवको ने उनके हाथ और पैर काट कर सबको एक खदक मे डाल दिया। तब शाक्य-कन्याओ ने दुख से पीड़ित होकर बुद्ध भगवान् को बुला भेजा। बुद्धदेव ने उनके कष्ट और दुख को अभ्यन्तर चक्षु से विचार कर एक भिक्षु को आज्ञा दी कि "मेरा वस्त्र लेकर शाक्य-बालिकाओ के पास जा, और उनको सत्य-धर्म का उपदेश दे। अर्थात् पच वासनाओ का बन्धन, पाप कर्मो से पुनर्जन्म का दुख, किसी प्रिय के वियोग होने का कष्ट, और जन्म-मरण के परिणाम इत्यादि का तात्पर्य उन लोगो को अच्छी तरह पर समझा दे"। शाक्य-बालिकाये बुद्ध भगवान् की शिक्षा श्रवण करके अपने अज्ञान से छूट गई और दुखों से मुक्त होकर तथा धर्म के नेत्र पाकर पवित्र हो गई, और सुख से अपना शरीर छोड कर स्वर्ग को चली गई। देवराज शक्र ने ब्राह्मण का स्वरूप धर कर उनके शरीरों का अन्तिम संस्कार किया तथा लोगो ने उनके चरित्रो को अपनी पुस्तको मे सादर स्थान देकर अपनी लेखनी को पवित्र किया।

इस हत्याकांड के स्मारक स्वरूप स्तूप के निकट ही एक बडी भारी झील सूखी पड़ी है। यह वह स्थान है जहाँ पर विरुद्धक राजा सशरीर नरक को गया था। लोगो ने देखा कि वही शाक्य-बालिकाये जेत वन मे आकर भिक्षुओं से कहने लगी कि "विरुद्धक राजा का अब अन्तकाल आ पहुँचा, सात दिन के अतर में आपसे आप अग्नि निकलेगी और राजा को भस्म कर देगी"। राजा इस भविष्यद्वाणी को सुनकर

अत्यन्त भयभीत हो गया। सातवे दिन, किसी हानि के न होने से उसको प्रसन्नता हुई और खुशी मे भर कर उसने अपने रनिवास को झील के किनारे चलने का हुक्म दिया। और स्वयं भी वहाँ जाकर मदिरा पीते और गाते बजाते हुए उनके साथ क्रीडा करने लगा। परन्तु उसका भय नही गया, वह डरता ही रहा कि कदाचित् आग न निकल पडे। इस कारण वह जल के भीतर चला गया, उसी समय अकस्मात् लहरे फटने लगी और अग्नि की ज्वाला पानी के भीतर से निकल कर राजा की छोटी नाव मे, जिस पर वह सवार था, लपट गई। राजा अपना दण्ड भुगतने के लिए शरीर और अकेला नरक को चला गया।

सत्राराम के उत्तर पश्चिम ३ या ४ ली की दूरी पर हम आप्तनेत्रवन नामक जङ्गल मे पहुँचे। इस स्थान पर तथागत भगवान् तपस्या करने के लिए आये थे जिसके अनेक चिह्न वर्तमान हैं। और भी कितने महात्माओ के यहाँ पर तपस्या करने के स्थान हैं। इन सब स्थानो पर लोगो ने ब्योरेवार शिलालेख लिखकर लगा रक्खे हैं तथा कही कही पर स्तूप भी बनाये गये हैं।

प्राचीन समय मे ५०० डाकुओ का झुण्ड इस देश मे रहता था जो इधर उधर गाँओ और नगरो मे तथा देश की सीमा पर लूट मार किया करते थे। प्रसेनजित राजा ने उन सब को पकडकर उनकी आँखे निकलवा ली और उनको एक सघन वन मे छुडवा दिया। डाकू लोग व्यथा से पीडित होकर बुद्धभगवान् का स्मरण करने लगे और दया के भिखारी हुए। तथागत उन दिनो जेतवन मे थे, उन्होने उनकी करुणा-जनक प्रार्थना को अपने आध्यात्मिक बल से सुन लिया, तथा दयालु होकर हिमालय पहाड की मन्द और औषधियो से भरी हुई वायु को उस स्थान मे ऐसे प्रकार से चला दिया कि वह वायु उन अन्धो के नेत्रों मे भर गई। उन लोगो न जैसे ही नेत्र खोल कर देखा तो बुद्ध भगवान् को सामने खडा पाया। इस घटना से उन लोगो के हृदय मे भक्ति तथा ज्ञान का सचारहुआ। प्रसन्नतापूर्वक बुद्धदेव की पूजा करके वे सब लोग अपने अपने घर गये। जाते समय अपनी अपनी लाठियो को वे लोग भूमि मे गाडते गये थे। उन्ही लाठियो ने जड पकड कर जो वृक्ष उत्पन्न किये उन वृक्षो के वन का नाम आप्तनेत्रवन हुआ।

राजधानो के उत्तर-पश्चिम १६ ली की दूरी पर एक प्राचीन नगर है। भद्रकल्प मे जब मनुष्यो की आयु २०,००० वर्ष की होती थी उस समय इसी नगर मे काश्यप बुद्ध का जन्म हुआ था। नगर के दक्षिण मे एक स्तूप है, यह उस स्थान पर है जहाँ काश्यप बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त करके अपने पिता से भेंट की थी।

नगर के उत्तर में एक स्तूप है जिसमें काश्यप बुद्ध का सम्पूर्ण शरीर बन्द है। ये दोनों स्तूप अशोक राजा के बनवाये हुए है। इस स्थान से दक्षिण-पूर्व लगभग ५०० ली चलकर हम कइपीलो फास्सीटी प्रदेश मे पहुँचे।

कइपीलो फास्सीटी (कपिलवस्तु[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली है। इस राज्य मे कोई दस नगर हैं जो सबके सब उजाड और बरबाद है, तथा राजधानी भी बुरी अवस्था मे है। राजधानी का ठीक ठीक क्षेत्रफल निश्चय नही किया जा सकता, परन्तु राज-भवन की सीमा नापने से उसका क्षेत्रफल १५ या १६ ली होता है। राज-भवन की चहार-दीवारी ईंटो की बनी हुई थी, जिसकी नीवे अब भी मजबूत और कुछ ऊंची हैं। इसको उजडे बहुत दिन हो गये। दो एक मुहल्ले कुछ आबाद हैं। कोई बडा राजा नही है, प्रत्येक नगर का अलग अलग शासक है। भूमि उत्तम और उपजाऊ होने से समयानुसार जाती बोई जाती है। प्रकृति उत्तम और मनुष्य आचरण के लिहाज से कोमल और सुशील हैं। एक हजार से अधिक उजडे हुए सघाराम हैं। केवल राज्य-स्थान के निकटवाले सङ्घाराम मे ३००० बौद्ध हीनयान-सम्प्रदाय के सम्मतीय संस्थानुयायी हैं।

दो देवमन्दिर हैं जिनमे अनेक वर्णाश्रम के लोग उपासना करते हैं। राज-भवन के भीतर टूटी फूटी दीवारो की बहुत सी नीवे पाई जाती हैं। ये सब राजा शुद्धोदन के निवास-भवन[2] की है, तथा इनके ऊपर अब एक विहार बनाया गया है जिसके

---

(1) बुद्धदेव का जन्म-स्थान यही देश है। कपिलवस्तु प्रदेश घाघरा और गंडक नदियो के मध्य की भूमि का नाम है जो फैजाबाद से लेकर इन दोनो नदियो के सङ्गम तक फैला चला गया है। इसका ठीक ठीक क्षेत्रफल ५५० मील है। रास्तो के भेद से ६०० मील से अधिक होगा परन्तु ह्वेनसांग ४,००० ली के लगभग लिखता है। मि० कारलायल ने पता लगाकर निश्चय किया है कि फैजाबाद से २५ मील पूर्वोत्तर बस्ती जिले मे भुइला नामक ग्राम ही प्राचीन काल मे राजधानी था। यदि यह सत्य है तो ह्वेनसाग ने श्रावस्ती से कपिलवस्तु तक की जो दूरी लिखी है वह बहुत अधिक है।

(2) इस स्थान पर जो चीनी भाषा का चिङ्ग' शब्द लिखा है उसका अर्थ निज का भवन, खास भवन, भी हो सकता है। मि० कारलाइल साहब लिखते हैं कि इस भवन की बाबत मेरा विचार है कि यह चहारदीवारी के दक्षिणी भाग मे था। जब भवन बिलकुल नष्ट हो गया तब उसकी स्मृति मे विहार बनाया गया है, जिसमे ह्वेनसांग के समय मे राजा की मूर्ति थी।

भीतर राजा की मूर्ति है। इसी के निकट एक और खँडहर महामाया रानी[1] के शयनगृह का है, जिसके ऊपर एक विहार बनाया गया है और रानी की मूर्ति बनी है।

इसके पास एक विहार उस स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर बोधिसत्व भगवान् आध्यात्मिक रूप से अपनी माता के गर्भ मे पधारे थे। इस विहार में इसी दृश्य का चित्र बनाया गया है। महास्थवीर संस्था वाले कहते हैं कि बोधिसत्व आषाढ महीने की ३० वी रात्रि मे गर्भवासी हुए, जो कि हमारे पाँचवे महीने की १५ वी तिथि है। तथा दूसरे लोग उसी मास की २३ वी तिथि का होना निश्चय करते हैं जो हमारे पाँचवे मास की ८ वी तिथि होती है।

गर्भवासवाले भवन के उत्तर-पूर्व मे एक स्तूप उस स्थान पर बना है जहाँ पर असित ऋषि ने राजकुमार का भावी फल[2] बताया था (अर्थात् जन्म-पत्र बनाया था)। बोधिसत्व के अवतीर्ण होने के दिन अनेक शुभसूचक घटनाये हुई थी। शुद्धोदन राजा ने सब ज्योतिषियो को बुलाकर पूछा कि 'इस बालक के भाग्य मे कैसा सुख दुख है। सत्य सत्य बात स्पष्ट रीति से बताइए।" उन लोगो ने उत्तर दिया, "प्राचीन महात्माओं के सिद्धान्तानुसार इस बालक के भाग्यवान् होने के सम्पूर्ण लक्षण हैं। यदि यह गृहस्थ-जीवन मे रहेगा तो चक्रवती महाराज होगा, और यदि घर छोड देगा तो बुद्ध[3] होगा।"

---

(1) मि० कारलाइल ने एक टीले को खुदवाया था जिसकी बाबत उनको शयन-गृह होने का शक हुआ था। यदि हम इमारत की लम्बाई इत्यादि (७१ वर्ग फीट) पर ध्यान दे तो मालूम होता है कि इसमे राजा-रानी दोनो रहते थे। इसकी बडी बड़ी पुरानी ईंटो से निश्चय होता है कि यही स्थान था जिसका वर्णन ह्वेनसांग ने किया है।

(2) बौद्ध-पुस्तको मे असित ऋषि का जन्मपत्र बनाना बहुत प्रसिद्ध घटना है। इसका वृत्तान्त मि० स्पीर ने Ancient India नामक पुस्तक मे बहुत सुन्दर रीति से लिखा है। असित-ऋषि की बाबत मि० कारलाइल का विचार है कि यह ईंटो का बना हुआ था। महामाया के शयन-गृह से ४०० फीट को दूरी पर उत्तर दिशा मे था। सम्भव है यही हो, परन्तु वास्तव मे जन्मपत्र राजभवन के भीतर बनाया गया था।

(3) अर्थात् पूर्ण ज्ञानी होगा। घर छोडने से तात्पर्य योगी सन्यासी होने से है। बुद्धचरित के ४५ वे श्लोक मे इनके शरीर के शुभ लक्षण और ४६ व श्लोक में भावी फल का उल्लेख है।

इसी समय असत ऋषि बहुत दूर से आकर द्वार[1] पर उपस्थित हुआ और राजा से भेट करने का संदेशा भेजा। राजा प्रसन्न होकर मिलने के लिए उठ दौडा और बडी भक्ति से भेट करके एक बहुमूल्य सिंहासन पर लाकर उसे बैठाला। इसके उपरान्त उसने बडी बिनय से निवेदन किया, आज महर्षि का मेरे ऊपर कृपा करके पदार्पण करना किसी असाधारण अभिप्राय से भरा हुआ है। महर्षि ने उत्तर दिया, मैं देवताओ के भवन मे शान्ति के साथ विश्राम कर रहा था कि अकस्मात् मैंने देव समाज को प्रसन्नता से नाचते देखा। मैंने पूछा कि आज इतना बडा आनन्द-व्यापार क्यों हो रहा है? इस पर उन लोगो ने उत्तर दिया, हे महर्षि! तुमको जानना चाहिए कि आज जम्बूद्वीप मे शाक्य-वंश के शुद्धोदन राजा की बडी रानी माया के गर्भ से एक राजकुमार का जन्म हुआ है जो सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके पूरा महात्मा होगा। इस बात को सुनकर मैं उस बालक का दर्शन करने आया हूँ, मुझको शोक है कि इस पुनीत फल[2] के समय तक मेरी आयु मेरा साथ न देगी।

नगर के दक्षिणी फाटक पर एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर राजकुमार ने शाक्यवशीय अन्य कुमारों से बदाबदी करके एक हाथी को उठाकर फेक दिया था[3]। एक दिन अखाडे मे राजकुमार सब लोगों को पछाड़ कर अकेले विजयी हुए थे (अर्थात-मल्ल विद्या के दांव पेच और शारीरिक पुष्टि मे कोई भी कुमार उनकी समानता नही कर पाया) महाराज शुद्धोदन भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। जिस समय महाराज सब लोगो से पुत्र के विजयी होने की बधाई पाकर नगर को लौटने वाले थे उसी समय हाथीवान हाथी को लिए हुए नगर के बाहर हो रहा था और दूसरी ओर से देवदत्त जो सदा से

---

(1) इससे स्पष्ट है कि जहाँ पर स्तूप बनाया गया है वह वास्तव मे राज-भवन का कोई भाग था।

(2) इसके दो अर्थ हो सकते हैं—अर्थात बालक का बुद्ध होकर पुनीत फल प्राप्त करने का समय अथवा उसके उपदेशो से स्वयं अरहट होकर पुनीत फल प्राप्त करना।

(3) यह स्थान नगर के दक्षिणी फाटक पर होना चाहिए न कि राजभवन की सीमा के भीतर। हाथी फेकने की कथा इस प्रकार है कि जब हाथी गिर पडा और फाटक का मार्ग अवरुद्ध हो गया तब नन्द ने उसे सडक से एक किनारे खीच कर डाल दिया परन्तु राजकुमार ने उठा कर खाई के पार फेका अतएव यह स्तूप खाई के भीतरी भाग मे होना चाहिए।

अपनी शक्ति का पशुओं के समान दुरुपयोग करने वाला था, फाटक मे घुस रहा था। उसने हाथीवान से पूछा कि "इस सजे सजाये हाथी पर कौन सवार होगा"? उन्होने उत्तर दिया राजकुमार इसी क्षण नगर को लौटने वाले हैं, इस कारण मैं उनके पास जा रहा हूँ। देवदूत्त ने पागलपन से उस हाथी को पकडकर घसीटा और उसके मस्तक मे चोट देकर पेट मे जोर से लात मारी कि हाथी मरकर गिर पडा जिससे कि रास्ता बन्द हो गया। कोई भी व्यक्ति उसको रास्ते से हटा नहीं सकता था इस कारण आने जाने वाले अपनी अपनी तरफ खडे थे। उसी समय नन्द ने आकर पूछा कि "हाथी को किसने मारा है? लोगो ने उत्तर दिया देवदत्त ने। तव नन्द ने उसको खीच कर मार्ग के एक ओर डाल दिया। थोडी देर बाद महाराज कुमार भी उस स्थान पर आये और उन्होने भी पूछा कि किसने मूर्खतावश हाथी को मारा है? लोगो ने उत्तर दिया देवदत्त ने इसको मार कर रास्ते मे ढेर कर दिया था और नन्द ने एक किनारे हटा कर रास्ता साफ कर दिया राजकुमार ने उस हाथी को ऊँचा उठाकर नगर की खाई के पार फेंक दिया। जिस स्थान पर हाथी गिरा वहाँ पर एक वडा गड्ढा हो गया जिसको लोग हस्तीगर्त[1] कहते हैं।

इसी के पास एक विहार वना हुआ है जहा पर राजकुमार का चित्र बनाया गया है। इसी के निकट एक और विहार है जहाँ पर राजकुमारी और राजकुमारी का शयनगृह था। इसके भोतर यशोधरा और राहुल (पुत्र) के चित्र बने हुये हैं। इसी के पास एक और बिहार बना है जिसमे वालको के पाठ सीखने के चित्र बने हैं। इससे प्रकट होता है कि राजकुमार की पाठशाला इसी स्थान पर थी।

नगर के दक्षिण-पूर्व के कोने पर एक बिहार बना है जिसमे राजकुमार का घोडे की सवारी का चित्र है। यही स्थान है जहाँ से उन्होने नगर परित्याग किया था। चारो फाटको के वाहर एक एक विहार बना हुआ हैं जिनमे वृद्ध पुरुष, रोगी पुरुष मृत पुरुष और श्रमण के चित्र बने है[2]। इन्ही स्थानो पर राजकुमार ने

---

(1) भुइला की खाई के दक्षिण मे लगभग ३४० फीट का एक तालाव है जो अब भी हाथी कुन्ड के नाम से प्रसिद्ध है। जनरल कनिंघम का विश्वास है कि यही हस्तीगर्त है।

(२) इन्ही चार प्रकार के पुरुषो को देखकर बुद्ध के चित्त मे वैराग्य उत्पन्न हुआ था। मि० कारलायल नगर के बाहरी भाग मे चार टीलो को जो चारो ओर हैं इन विहारो की भूमि निश्चय करते हैं।

जब वह सैर के लिए बाहर जा रहे थे। उन लोगों को देख कर—जिनके ये चित्र हैं—वैराग्य धारण किया था और संसार और उसके सुखों से घृणा करके सारथी को घर लौटने का हुक्म दिया था।

नगर के दक्षिण ओर ५० ली की दूरी पर एक प्राचीन नगर है जिनमें एक स्तूप बना हुआ है। यही स्थान है जहाँ पर क्रकुच्छन्द बुद्ध का जन्म भद्रकला मे हुआ था जब कि मनुष्यो की आयु ६०,००० वर्ष की होती थी[1]।

इस नगर के दक्षिण दिशा मे एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर बुद्धदेव सिद्धावस्था प्राप्त करके अपने पिता से मिले थे तथा नगर के दक्षिण पूर्व मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर तथागत का शरीरावेश रक्खा है। इसके सामने पत्थर का एक खम्भा ३० फीट ऊँचा बना हुआ है जिसके सिरे पर सिंह की मूर्ति बनी है[2] यह स्तम्भ अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इसके चारो ओर बुद्ध भगवान के निर्माण का वृतान्त अंकित है।

क्रकुच्छन्द बुद्ध के नगर के पूर्वोत्तर मे लगभग ३० ली चलकर हम एक प्राचोन राजधानी मे पहुँचे। यहाँ पर एक स्तूप मुनि बुद्ध के स्मारक मे बना है। यह वह स्थान है जहाँ पर भद्रकल्प मे जब मनुष्यो की आयु ४०००० वर्ष की होती थी इस बुद्ध का जन्म हुआ था[3]।

---

(1) भद्रकल्प के पाँचो बुद्धो मे क्रकुच्छन्द प्रथम बुद्ध था। इस बुद्ध की जन्मभूमि कपिलवस्तु के दक्षिण-पश्चिम एक योजन (आठ मील) पर होनी चाहिए—मि० कारलायल का उस स्थान से ७० मील उत्तर-पश्चिम नग्र नामक स्थान निश्चय करना ठीक नही है फहियान, श्रावस्ती से इस स्थान पर आया था और यही से ८ मील उत्तर चलकर और फिर आठ मील पूर्व दिशा मे चल कर वह कपिलवस्तु को पहुँचा था।

(2) मि० कारलायल को जब वह नग्र मे थे एक स्तम्भ का केवल तलभाग पाया था। उनका अनुमान हुआ कि इसी स्थान पर यह स्तम्भ होगा परन्तु स्तम्भ उनको न मिला अत: लोगो को इसका इतिहास कुछ भी नही मालुम था। वास्तव मे उन लोगो की अनजानकारी ठीक है क्योंकि जिस स्थान का उल्लेख ह्वेनसांग ने किया है वहाँ से इस स्थान का फासला १६ या १८ मील है।

(3) भद्रकल्प के पाँचो बुद्धो मे यह दूसरा है। इसका जन्म स्थान कपिल-वस्तु से एक योजन पश्चिम कनकपुर नामक ग्राम मे मि० कारलायल ने निश्चय है। इस स्थान की दूरी इत्यादि फाहियान ह्वेनसांग के वर्णन से ठीक मिलती है।

नगर के निकट पूर्वोत्तर दिशा मे एक स्तूप उस स्थान पर बना है जहाँ पर यह बुद्धदेव सिद्धावस्था प्राप्त करके अपने पिता से मिले थे । इससे कुछ दूर उत्तर दिशा में एक और स्तूप है जिसके भीतर बुद्धदेव का शरीर है तथा इसके सामने के भाग मे एक पत्थर का स्तम्भ २० फीट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इसके शिरोभाग पर सिंह की मूर्ति है। इस स्थान पर बुद्धदेव के निर्वाण समस्त वृतान्त अंकित है।

नगर के उत्तर-पूर्व मे लगभग ४० ली दूर एक स्तूप बना है । यह वह जहाँ पर एक समय राजकुमार वृक्ष की छाया मे बैठकर खेतो की जोताई का निरीक्षण कर रहे थे और बैठे ही बैठे ध्यान करते हुए समाधि को प्राप्त हो गये थे। राजा ने देखा कि राजकुमार वृक्ष की छाया मे बैठे ध्यान मे मग्न हैं, साथ ही इसके उन्होने यह भी देखा कि सूर्य की धूप उनके चारो ओर फैल गई है परन्तु वृक्ष की छाया उन पर से नही हटी है। राज कुमार के इस अद्भुद चरित्र को देखकर राजा के चित्त मे बडी भक्ति उत्पन्न हो गई थी।

राजधानी के उत्तर-पश्चिम की ओर सैकडो हजारो स्तूप बने है। इस स्थान पर शाक्य-वश के लोग वध किये गये थे । विरुद्धक राजा ने शाक्य लोगो को परास्त करके उनके वश के ९,९९० मनुष्यो को बन्दी बना करके वध करा दिया था[1]। उन लोगो के शरीर लकडी के समान एक स्थान पर ढेर कर दिये गये थे। इनका रुधिर बह कर एक झील मे भर गया था। उस समय देवताओ ने लोगो के चित्तो को प्रेरित करके उनका अन्तिम सस्कार कराया था।

जिस स्थान पर यह वध लीला हुई थी, उसके दक्षिण-पश्चिम मे चार छोटे स्तूप बने हैं। यह वह स्थान है जहाँ शाक्य वंश के चार मनुष्यो ने सेना का सामना किया था। पहले जब प्रसेनजित राजा हुआ उसने शाक्यवश से विवाह सम्बन्ध करके नाता जोडना चाहा परन्तु शाक्य लोगो ने उससे घृणा की, क्योकि वह उनका सजातीय न था । इसलिए उन लोगो ने धोखा देकर एक दासी कन्या उसको दे दी । प्रसेनजित राजा ने उसको अपनी पटरानी बनाया जिसके गर्भ से कुछ समय के उपरान्त एक बालक उत्पन्न हुआ जिसका नाम विरुद्धक राजा हुआ। विरुद्धक की इच्छा हुई थी वह अपने मामा के यहाँ जाकर उन लोगो के साथ नियमानुसार विद्याध्ययन करे। नगर के दक्षिणी भाग मे पहुँचकर और

---

(1) 'भटा' नामक स्थान ही जो भुइला से पश्चिमोत्तर ८ मील है, वधस्थल निश्चय किया जाता है।

एक नवीन बना हुआ उपदेश-भवन देख कर उसने अपने रथ को रोक लिया और जैसे ही वह उस स्थान मे जाने लगा शाक्य लोगों ने उसको यह कह कर नही जाने दिया कि हे नीचकुलोत्पन्न ! इस मकान मे तू जाने का साहस मत कर यह शाक्य वंशियो का बनाया हुआ भवन बुद्धदेव के रहने योग्य है।"

जव विरूढक सिहासन पर बैठा वह अपनी प्राचीन अप्रतिष्ठा का बदला लेने के लिए सेना-सहित चढ दौडा और इस स्थान पर आ पहुँचा। उस समय शाक्यवंश के चार व्यक्ति एक नाले को जोत रहे थे। उन लोगों ने सेना का सामना किया तथा इस वीरता से वे लोग लडे कि सेना को भागते ही बन पडा वे लोग हँसी खुशी नगर को गये। सब हाल जानकर उन लोगो के सजातीय पुरूषो ने उनके विषय मे कहा कि 'इनका वंस ऐसा प्रतिष्ठित है कि जिनमे संसार पर शासन करने वाले बहुत दिनो तक होते रहे है परन्तु उन्ही विशुद्ध महाराजाओ के माननीय वंशजो मे (अर्थात इनमे) क्रोध और निर्दयता का प्रवेश हुआ जिससे उन्होने निरंकुश होकर सेना का संहार किया। इन लोगो के ऐसा करने से हमारे वंश पर कलङ्क लग गया। यह कह कर उन वीरो को घर से निकाल दिया[1]।

---

(1) समझ मे नही आता कि यह वात क्या है। उन वीरो की वीरता तो ससार भर मे सराहनीय हुई, फिर क्या कारण जो शाक्य--वंशवालो ने उनका अनादर करके देश से निकाल दिया ? मालूम होता है यहाँ कुछ भ्रम है जिसको न तो फ्रेंच लोग अनुवाद करते समय ठीक समझ सके और न अंग्रेज लोग। शाक्यवंशजो का यह विचार कि उनका जन्म पवित्र राजकुल मे हुआ हैं। इस कारण उनको किसी को, यहाँ तक कि जो चढाई करके उनका सिर भी काट लेवे उसको भी न मारना चाहिए—उचित नही है। सम्भव हैं इतनी वडी विजय प्राप्त करके ये चारो घमन्ड मे आ गये हो और अपने परिवार वालो को तुच्छ ढंग से देखने लगे हो और इसी पर इनको देश निकाला दे दिया गया तो जिसका कि फल यह हुआ कि विरूढक राजा ने चढाई करके और शाक्यवंश को परास्त करके जो कुछ कार्य किया उसका उल्लेख पिछले पृष्ठ मे किया गया है। हमारा विचार है कि इन चारो ने जो इतनी वडी विजय प्राप्त की वह बुद्धदेव के उस आध्यात्मिक वल और शील का फल था जिसका परिचय उन्होने पिछले पृ० मे विरूढक राजा को एक वृक्ष के नीचे बैठकर दिया था' जिससे 'कि वह अपनी सेना हटा ले गया था। बुद्धदेव का स्नेह इन चारो पर तथा इनके वंशजो पर सदा वना रहा जिसका वृत्तान्त प्रथम भाग के तीसरे अध्याय मे उत्तरसेन राजा के वृत्तान्त मे आ चुका है।

ये चारो वीर इस प्रकार निकाले जाकर उत्तर दिशा मे हिमालय पहाड को चले गये । उनमें से एक बमपान, एक उद्यान, एक हिमतल और एक शाम्बी (कौशाम्बी ?) का अलग अलग राजा हुआ । इन लोगो का राज्य पीढी दर पीढी बहुत समय तक स्थिर रहा[1] ।

नगर के दक्षिण मे तीन चार ली दूर न्यग्रोघ वृक्षो का एक बाग है जिसमे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यही स्थान है जहाँ पर शाक्य तथागत सिद्धावस्था प्राप्त करके अपने देश मे लौटने पर पिता से मिले थे और उनको उन्होने धर्मोपदेश दिया था। शुद्धोदन राजा को जब यह समाचर विदित हुआ कि तथागत कामदेव को जीत कर देशाटन करते हुए लोगो को सत्यधर्म का उपदेश दे रहे हैं और उन्हे अपना शिष्य बना रहे हैं तब उनके हृदय में भी बुद्धदेव के दर्शन और उनका समुचित सतकार करने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई तथा उन्होने भगवान् को बुलाने के लिए निम्नलिखित सदेश भेजा । तुमने प्रथम ही इस बात का वचन दे रखा था कि जब तुम सिद्धावस्था प्राप्त करके बुद्ध हो जाओगे तब अवश्य अपने घर आओगे, परन्तु तुम्हारी वह प्रतिज्ञा अब तक पूरी नही हुई, इसलिए अब समय आ गया है कि तुम कृपा करके मुझसे भेंट करो । दूत ने जाकर राजा की इच्छा को बुद्धदेव से निवेदन किया जिस पर उन्होने उत्तर दिया सात दिन के पश्चात मैं अपनी जन्मभूमि का दर्शन करूँगा' दूत ने लौट कर जब यह समाचार राजा को सुनाया तब राजा ने प्रसन्न होकर अपनी प्रजा को आज्ञा दी कि सब रास्ते झाड बुहार कर पानी से छिडके जावे और सुगधित वस्तुओ तथा फूल मालाओ से सुसज्जित किये जावे । फिर राजा अपने सरदारो के सहित रथ पर सवार होकर नगर के बाहर ४० ली तक गया और वही पर उनके शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगा । जिस समय तथागत भगवान उस स्थान पर आये उस समय उनके साथ बडी भारी भीड़ थी। आठ वज्रपाणि उनकी रक्षा के लिए चारों ओर से घेरे हुए थे और उनके चार स्वर्गीय नरेश आगे आगे चलते थे। कामलोक के देवतो के सहित देवराज शक्र बाई ओर तथा रूपलोक के देव समाज को लिए हुए ब्रह्मा दाहिनी ओर थे । बहुत से भिक्षु सन्यासी पक्ति बाधे हुए बुद्धदेव के पीछे थे । इस प्रकार श्री बुद्ध भगवान नक्षत्रावली के मध्य मे चन्द्रमा के समान स्थित होकर अपनी प्रबल

(१) इन चारो के देश-निकाले का हाल मैक्समूलर साहब ने 'संस्कृत साहित्य के प्राचीन इतिहास' नामक अपनी पुस्तक मे लिखा है। उद्यान-नरेश और नाग कन्या का वृतान्त भाग १ अध्याय ३ मे आया है।

आध्यात्मिक बल से तीनो लोको को विकम्पित करते और अपने मुख के प्रकाश से सप्त प्रकाशों को मलीन करते तथा वायु को चीरते हुए अपनी जन्मभूमि मे आ पहुँचे[1]। राजा और उनके मन्त्री इत्यादि बुद्धदेव से भेट मिलाप करके राजधानी को लौट गए परन्तु बुद्ध भगवान न्यग्रोध बाटिका मे ठहर गये।

संघाराम के पास थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर बना है जहा तथागत भगवान ने एक बडे वृक्ष के नीचे पूर्वाभिमुख वैठ कर अपनी मौसी से काषाय वस्त्र[2] ग्रहण किया था।

नगर के पूर्वी द्वार के निकट सडक के वाम भाग मे एक स्तूप उस स्थान पर बना है जहाँ पर राजकुमार सिध्दार्थ (यह बुद्ध मातृ-पितृ दत्त नाम है) कला कौशल अभ्यास करते थे।

फाटक के बाहरी भाग मे एक मन्दिर ईश्वर देव का है। मन्दिर के भीतर पत्थर की कुबडी मूर्ति उन्नत शिर बैठी हुई है। राजकुमार बचपन मे इस मन्दिर के भीतर गये थे। एक दिन राजा शुद्धोदन राजकुमार को देख कर लुम्बिनी बाटिका[3] से लौटे हुए आ रहा थे। इस मन्दिर के निकट पहुँच कर उनको विचार हुआ कि यह मन्दिर अपने अनेकानेका अद्भुत चमत्कारो के लिए बहुत प्रसिद्ध है। शाक्य-बच्चे इस देवता की शरण मे आकर जो कुछ याचना करते है अवश्य पाते है। इस कारण हमको भी अपने राजकुमार को लाकर यहाँ पूजन करना चाहिए। उसी समय एक दाई बालक को गोद मे लिए हुई आ पहुँची और जैसे ही मन्दिर मे गई कि मूर्ति स्वयं उठ कर राजकुमार का अभिवादन करने लगी तथा राजकुमार के चले आने पर फिर अपने स्थान पर बैठ गई।

---

(1) सप्तप्रकाशो से तात्पर्य सूर्य चन्द्र और बड़े बडे पञ्च ग्रहो से है, तथा वायु चीरने से तात्पर्य आकाशगामी होने से है। देश को जाते समय का जो कुछ समारोह ह्वेनसांग ने लिखा है वह सब बौद्ध इतिहास मे देखकर लिखा है।

(2) इस वस्त्र की बाबत अनुमान है कि यह वही है जिसको महाकाश्यप बुद्ध ने मैत्रेय भगवान के लिए कुक्कुटपाद पर्वत मे रख दिया था। बुद्धदेव की मौसी महा प्रजापती सब शिष्य स्त्रियो मे प्रधान थी।

(3) इसी वाटिका में बुद्धदेव का जन्म हुआ था। सुप्रबुद्ध की स्त्री के नामानुसार जिसकी कन्या बुद्ध की माता मायारानी थी, इस वाटिका का नाम-करण हुआ था।

नगर के दक्षिणी फाटक के बाहर सडक के वाम भाग में एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर राजकुमार ने शाक्य बालको से बदाबदी करके कलाकोशल मे उसको जीत लिया था तथा अपने तीरो से लोहे की एक ढाल को छेद दिया था ।

यहा से ३० ली दक्षिण-पूर्व एक छोटा स्तूप है । इस स्थान पर एक झील है जिसका जल दर्पण के समान स्वच्छ है । राजकुमार ने जिस समय लोहे की ढाल का तीर से छेदन किया था उस समय उनका तीर ढाल को पार करता हुआ पार तक भूमि मे समा गया था और उससे स्वच्छ जल की धारा प्रकट हो गई थी इस कारण इसको 'शरकूप' कहते हैं । रोगी पुरुष इसका जल पी करके अधिकतर आरोग्य हो जाते हैं। इस कारण यहा पर बहुत दूर दूर से लोग आते है और जाते समय थोडी सी मिट्टी अपने साथ ले जाते हैं । रोगी के पीडास्थल पर इस मृतिका का लेप किया जाता है इस उपचार से अनेक लोग अच्छे हो जाते हैं।

सरकूप के उतर पश्चिम लगभग ८० या ६० ली चल कर हम लुम्बिनी वाटिका मे गये । यहा पर शाक्य लोगो के स्नान का तडाग है जिसका जल दर्पण के समान स्वच्छ और चमकीला है। इस जल के ऊपर अनेक फूल खिले हुए हैं।

इसके उतर २४-२५ पग एक अशोक वृक्ष है जो इन दिनो सूख गया है, इसी स्थान पर वैशाख मास शुक्ल पक्ष की अष्टमी को बोधिसत्व ने जन्म धारण किया था जो हिसाब से हमारे तीसरे मास की आठवी तिथि हुई। स्थावीर सस्थवाले कहते हैं कि जन्म वैसाख मास के शुक्ल पक्ष की पन्द्रहवी तिथि को हुआ था जो हमारे हिसाब मे तीसरे मास की १५ वी तिथि हुई । इसके पूर्व मे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ उस स्थान पर है जहा पर दो नागो ने राजकुमार के शरीर को स्नान कराया था । राजकुमार जन्म लेते ही चारो ओर बिना किसी प्रकार की सहायता के सात पग चले थे । उन्होंने यह भी कहा था कि मैं ही केवल स्वर्ग और भूमि का स्वामी हूँ। अब आगे मेरा जन्म कभो न होगा । इस पग-सचालन के समय जहाँ जहाँ उनका पैर पडा था वहाँ वहाँ बडे-बडे कमल फूल निकल आये थे। इसके अतिरिक्त दो नाग निकले और अधर मे ठहर कर एक ने ठढे जल ओर दूसरे ने गरम जल की धार अपने मुख से छोड कर राजकुमार को स्नान कराया ।

इस स्तूप के पूर्व मे दो सोते स्वच्छ जल के हैं जिनके दो स्तूप बने हुए है । यही स्थान है जहा पर दोनो नाग भूमि से बाहर निकले थे । जिस समय

बोधिसत्व का जन्म हुआ था उस समय नौकर तथा घर वाले नवजात बालक के स्नान के लिए जल लेने दौडे तथा उसी समय जल से भरे हुये दो सोते रानी के सामने प्रकट हो गये। एक में ठडा और एक मे गरम जल था जिससे बालक नहलाया गया था।

इसके दक्षिण मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर देवराज शक्र ने बोधिसत्व को गोद मे लिया था। जिस समय राजकुमार का जन्म हुआ था देव-राज इन्द्र ने आकर बालक को गोद मे उठा लिया और देवलोक के विशुद्ध वस्त्र को धारण कराया था।

इसी स्थान के निकट और भी चार स्तूप हैं जहां पर स्वर्ग लोक के अन्य चार राजाओ ने आकर बोधिसत्व को गोद मे लिया था। जिस समय माता के दक्षिण पार्श्व से बोधिसत्व का जन्म हुआ उस समय चारो राजाओ ने उनको सुनहरे रङ्ग के सूती वस्त्र से परिवेष्टित करके सोने की चौकी पर वैठाया और फिर माता को देकर यह कहा कि हे रानी! ऐसे भाग्यवान पुत्र को उत्पन्न करके वास्तव मे तू प्रसन्न होगी। यदि देवता उस अवसर पर प्रसन्न हुए तो मनुष्यो को क्यो न विशेष प्रसन्नहोना चाहिए।

इन स्तूपो के निकट ही एक ऊँचा पत्थर का स्तम्भ है जिनके ऊपर घोडे की मूर्ति बनो है। यह स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ हैं। कुछ समयोपरान्त एक दुष्ट नाग की दुष्टता के यह स्तम्भ बीच से टूट कर गिर गया था। इसके निकट ही एक छोटी सो नदी दक्षिण-पूर्व की ओर वहतो है। यहाँ के लोग इसको तैल--नदी कहते हैं। यही धारा है जिसको देवताओ ने बालक उत्पन्न होने के उपरान्त रानी के स्नान के स्वच्छ जल से भरा हुआ प्रकट किया था। अव यह नदी के स्वरूप मे हो गई है, तो भी जल मे चिकनाहट मौजूद है।

यहाँ से ३० ली पूर्व चलकर और एक भयानक तथा निर्जन वन को पार करके हम 'लनमो' राज्य मे पहुँचे।

लनमो (रामग्राम)

लनमो[1] राज्य अनेक वर्षों से उजाड है। इसके क्षेत्रफल का कुछ ठीक हिसाब नही है। नगर सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया केवल थोडे से निवासी रह गये हैं।

---

(1) लनमो शब्द केवल राम शब्द का सूचक है परन्तु यह देश का नाम है। रामग्राम प्राचीन राजधानो थी। महावशी ग्रंथ मे रामगामो के धातु स्तूप का वर्णन है। इसको पुष्टि ह्वेनसांग और फाहियान ने भी को है; इस कारण रामग्राम शब्द निश्चय किया गया। यह नगर कहाँ पर था इसका ठीक ठीक निश्चय नही हो सका।

प्राचीन राजधानी के दक्षिण-पूर्व मे एक स्तूप ईंटो का है इसकी ऊँचाई १०० फीट से कम है । प्राचीन समय मे तथागत के निर्वाण प्राप्त करने पर इस देश के प्राचीन नरेश ने उनके शरीर मे से कुछ भाग लाकर बडी प्रतिष्ठा से इस स्तूप को बनवाया था। प्रात अदभुत दृश्य यहाँ पर दिखाई देते है तथा दैवी प्रकाश समय समय पर चारो ओर निकलने लगता है।

स्तूप के पास एक झील है जिसमे से कभी कभी एक नाग निकलकर बाहर आता है और अपने बाहरी सर्प-स्वरूप को परित्याग करके स्तूप के चारो ओर प्रदक्षिणा करता है । जङ्गली हाथी झुंड के झुड आते हैं और बहुत से फूल लाकर इस स्थान पर चढाते है। किसी गुप्त शक्ति की प्रेरणा से अब तक इनकी सेवा बराबर जारी है । प्राचीनकाल मे अशोक राजा ने सात देशों के नरेशो के बनवाये हुये स्तूपो को खुलवा कर बुद्धदेव के शरीरावशेष को हस्तगत कर लिया था । इसी अभिप्राय से वह इस देश मे भी आया था। यहाँ आकर ज्योही उसने हाथ लगाया त्योही स्थान के भावी नाश का विचार करके तथा ब्राह्मण का स्वरूप बनाकर नाग अशोक राजा के पास गया और प्रणाम करके कहने लगा "महाराज ! आप बौद्ध-धर्म के बडे भक्त हैं तथा धर्म ज्ञान के क्षेत्र मे अपने असख्य पुण्य के बीजो का वपन किया है । मेरी प्रार्थना है कि आप थोडी देर के लिए रथ से उतर कर मेरे निवास स्थान तक पधारने की कृपा करे।" राजा ने पूछा "तुम्हारा स्थान कहाँ है ? क्या निकट है ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया मै इस झाल का नागराज हूँ, मैंने सुना है कि महाराज पुण्य के सबसे बडे क्षेत्र को प्राप्त करने के अभिलाषी हैं इस कारण मेरी प्रार्थना है कि मेरे भवन को पधार कर उसे पुनीत करे । राजा उसकी प्रार्थनानुसार उसके स्थान पर गया थोडी देर बैठने के बाद नाग ने आगे बढ कर राजा से निवेदन किया मैंने अपने पाप कर्म्मों से इस नाग तन को पाया है। बुद्धदेव के शरीर की धार्मिक सेवा करके मैं अपने पापो को छुडाना चाहता हूँ । यह कह कर उसने अपनी पूजा की सामाग्री राजा को दिखालाई[1]। अशोक देखकर घबडा गया । उसने कहा पूजा का यह ठाठ मनुष्यो मे दुर्लभ है । नाग ने उत्तर दिया, "यदि ऐसा है तो क्या महराज स्तूप के तोडने का प्रयत्न परित्यान कर देंगे ? राजा ने यह देखकर कि उसकी सामर्थ्य नागराज के बराबर नही है स्तूप के खोलने से हाथ उठाया । जहाँ पर वह नाग झील से बाहर निकला था उस समय के इसी अभिप्राय का एक लेख लगा हुआ है ।

---

(१) इस स्थान पर अंग्रेजो मूल पुस्तक मे भ्रम है, इस कारण फाहियान का भाव लेकर यह वाक्य लिखा गया ।

इस स्तूप के पड़ोस में थोड़ी दूर पर सघाराम थोडे से संन्यासियो सहित बना है। उनका आचरण आदरणीय तथा शुद्ध है । एक श्रमण सम्पूर्ण जमात का प्रबन्ध करता है । जब संन्यासी दूर देश से चलकर यहाँ आता तब ये लोग बड़े भाव भगत से उसका आदर सत्कार करते है तथा तीन दिन तक अपने यहाँ रखकर चारों प्रकार[1] की आवश्यक वस्तुये उसको भेंट देते है।

इस स्थान का प्राचीन इतिहास इस प्रकार है कि प्राचीन काल मे कुछ भिक्षु बहुत दूर से भ्रमण करते हुये इस स्थान पर स्तूप की पूजा करने के लिए आये । यहाँ पहुँचने पर उन लोगो ने देखा कि हाथियो के झुन्ड के झुन्ड इस स्थान पर आते और जाते हैं । कितने ही अपनी- सूँडो में वक्षो की पत्तियाँ और डालियाँ लाते हैं और कितनो की सूडो मे स्वच्छ जल भरा होता है तथा कितने ही अनेक प्रकार का फूल लाकर अपनी अपनी रुचि के अनुसार इस स्तूप की पूजा करते हैं । भिक्षु लोग यह तमाशा देखकर चकित हो गये, उनके हृदय भक्ति से भर गये । उनमे से एक ने अपने भिक्षु-धर्म का परित्याग करके इस स्थान पर रह कर स्तूप की सेवा करने का सकल्प किया और अपने इस विचार को दूसरो पर इस प्रकार प्रकट किया कि मैं इस स्थान के दृश्यो को देखकर विचार करता हूँ तो यही मालुम होता है कि वर्षों तक सन्यासियों के सत्सङ्ग मे रहने से जो लाभ मुझको हुआ है उससे भी अधिक यहाँ का प्रभाव है। स्तूप मे बुद्ध भगवान का शरीरावेप अपने गुप्त और पवित्र बल से हाथियो के झुंड को आकर्षित करता है जिससे वे लोग भगवान के शरीर की पूजा-अर्चना करते है । इसलिए मेरे लिए यह बहुत उतम होगा कि मैं इस स्थान पर रहकर अपने शेप जीवन को व्यतीत करूँ । उन लोगो ने उतर दिया यह बहुत श्रेष्ठ विचार है हम लोग अपने महान पातकों से कलुपित हैं, हमारा ज्ञान इस पुनीत कर्म की बराबरी नही कर सकता इसलिए सुगति के लिए यह बडा सुन्दर अवसर है । इस काम मे जो कुछ तुमने हो सके प्रयत्नपूर्वक करो ।

उसने अपने सकल्प पर दृढ होकर सब लोगों का साथ छोड दिया तथा प्रसन्नतापूर्वक अपने शेप जीवन को इस स्थान पर एकान्त वास करने के लिए अर्पण कर दिया । फूँस की एक पुण्यशाला बनाकर उसी मे वह रहने लगा और स्तूप की भूमि झाड़ बुहार कर और ,नदियो के जल से शुद्ध करके अनेक प्रकार के फूलो से पूजा करने लगा । इसी प्रकार अपने विचार पर अटल होकर सेवा-पूजा करते हुए उसने अनेक वर्ष व्यतीत किये।

---

(1) भक्ष्य, पेय, वस्त्र, औपधि ।

निकटवर्ती राजा लोग उसकी भक्ति को देखकर उसकी बडी प्रतिष्ठा करने लगे तथा धन द्रव्य से सत्यकार करके सब लोगो ने मिलकर एक संघाराम बनवा दिया तथा उस श्रमण से उस सघाराम का अधिष्ठाता बनने की प्रार्थना की। उस समय से लेकर अब तक यही प्रथा प्रचलित है अर्थात एक श्रमण इस सघाराम का अधिपति होता आया है।

इस सघाराम के पूर्व मे लगभग १०० ली की दूरी पर एक विकट वन में हम एक बडे स्तूप तक पहुँचे। यह स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है इसी स्थान पर राजकुमार ने नगर परित्याग करने के उपरान्त अपने बहुमूल्य वस्त्र और हार आभूषण परित्याग करके सारथी[1] को घर लौट जाने की आज्ञा दी थी। राजकुमार आधी रात के समय घर से निकल कर सवेरा होने से पहले ही इस स्थान पर पहुँचे थे तथा अपने भविष्य कर्तव्य की ओर तन मन समर्पण करते हुए उन्होने कहा था अब मैं कारागार मुक्त हुआ अब मेरी बेडियाँ टूटी। इसके उपरान्त अपने रथ से उतर कर और मुकुट में से रत्नमणि निकाल कर सारथी से इस प्रकार कहा, "यह रत्न लो और लौट कर मेरे पिता से मेरा गृह-सम्बन्ध परित्याग करने का समाचार कहो। मैं उनसे किसी प्रकार विरोधी बन कर नही जा रहा हूँ बल्कि कामदेव को जीतने, अनित्यता को नाश करने, तथा अपने जर्जरित जीवन के छिद्रों को बन्द करने के अभिप्राय से वैराग्य ले रहा हूँ।

चण्डक ने उतर दिया, मेरा चित विकल हो रहा है। मुझको सदेह है कि किस प्रकार घोडे को बिना उसके सवार के मैं ले जा सकूंगा? राजकुमार ने बहुत मधुर वाणी से उसको समझाया जिससे कि उसको ज्ञान हो गया और वह लौट गया।

स्तूप के पूर्व मे जहाँ चण्डक विदा हुआ था एक वृक्ष जम्बू का लगा हुआ है जिसकी पत्तिया और डाले गिर गई है परन्तु तना अब तक खडा है। इसके निकट ही एक स्तूप बना है। यह वह स्थान है जहाँ पर राजकुमार ने अपने बहुमूल्य वस्त्र को मृगचर्म से बने हुए वस्त्र से बदल लिया था। राजकुमार ने यद्यपि अपने अधोवस्त्र बदल कर और बाल काट कर तथा बहुमूल्य रत्नादि परित्याग करके वैराग्य ले लिया था तो भी एक वस्त्र का भार उनके शरीर पर वर्तमान था। इस वस्त्र की बाबत राजकुमार ने कहा अभी मेरी इच्छा प्रबल है इसको किस प्रकार बदल सकूंगा। इसी समय शुद्धावास

(1) सारथी का नाम चण्डक था।

देव मृगचर्म पहिरे हुए बधिक का स्वरूप धारण करके और धनुष तथा तरकस लेकर सामने आया। राजकुमार ने अपने वस्त्र हाथ मे लेकर उससे पुकार कर पूछा हे बधिक। मैं अपने वस्त्र को तुमसे परिवर्तन करना चाहता हूँ तुमको स्वीकार है ? बधिक ने उत्तर दिया 'अवश्य'। राजकुमार ने अपने वस्त्र को बधिक के हवाले किया। वह उसको लेकर तथा देवस्वरूप धारण करके आकाश मार्ग से अन्तरिक्षगामी हुआ।

इस घटना के स्मारक वाले स्तूप के निकट ही एक स्तूप अशोक राजा का वनबाया हुआ है। यह वह स्थान है जहाँ पर राजकुमार ने बाल बनवा दिए थे। राजकुमार ने चण्डक से छूरी लेकर अपने बालो को अपने हाथ से काट डाला था। देवराज शक्र उन बालो की पूजा करने के लिए स्वर्ग को ले गया। इसी समय शुद्धाबास देव छूरा लिए हुए नाई का स्वरूप धारण करके राजकुमार के सामने आया। राजकुमार ने उससे पूछा क्या आप बाल बना सकते हैं ? कृपा करके मेरे सिर को मूड दीजिए। देव ने उसके बालो को मूंड दिया।

जिस समय राजकुमार वैराग्य धारण करके वनवासी हुए उस समय का निश्चय ठीक ठीक नही है। कोई कहता है कि राजकुमार की अवस्था उस समय उन्नीस वर्ष की थी और कोई उन्तीस वर्ष की बतलाते हैं। परन्तु यह निश्चय है कि उस दिन तिथि वैशाख मास शुक्ल पक्ष की अष्टमी थी जो हमारे हिसाब से तृतीय मास की पन्द्रहवी[1] तिथि हुई।

मूडन क्रियावाले स्तूप के दक्षिण-पूर्व १८० या १६० ली चलकर हम न्योग्रोध वाटिका नामक स्थान मे जो जङ्गल के बीचो बीच मे है पहुँचे। इस स्थान पर एक स्तूप ३० फीट ऊँचा बना है। प्राचीन समय मे जब तथागत भगवान् का अन्त काल हुआ और उनका शरीरावेश बिभक्त कर लिया गया था, उस समय ब्राह्मण लोग जिनको कुछ नही मिला था स्मशान को गये और चिता की भस्म इत्यादि बटोर कर अपने देश को ले गये। उन लोगो ने उस भस्म इत्यादि पर अपने देश मे स्तूप बना कर पूजा की थी वही यह स्थान है उस समय से लेकर अब तक इस स्थान पर कभी कभी अदभुत चमत्कार प्रदर्शित हो जाया करते है। रोगी पुरुष इस स्थान पर आकर प्रार्थना और पूजा करने से अधिकतर आरोग्य हो जाते हैं।

---

1 कुछ भूल है, पन्द्रहवी नही आठवी होनी चाहिए।

इस भस्म स्तूप के पास एक संघाराम है जहाँ पर गत चारो बुद्धो के उठने बैठने के चिह्न हैं।

इस संघाराम के दाहिने और बाये कई सौ स्तूप बने हैं, जिनमे एक स्तूप सबसे ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यद्यपि यह अधिकतर टूट फूट कर बरबाद हो गया है तो भी इसकी ऊँचाई इस समय लगभग १०० फीट है।

इस स्थान के उत्तर-पूर्व की ओर हम एक विकट जङ्गल मे गये जिसके मार्ग बडे बीहड और भयानक थे तथा जङ्गली बैल हाथियो के झुन्ड और शिकारी तथा डाकुओ के कारण यात्रियो को अनेक प्रकार के कष्ट होते थे। इस जङ्गल को पार करके हम किउशी नाकयीलो राज्य मे पहुँचे।

किउशी नाकयीलो (कुशीनगर)

इस राज्य की राजधानी[1] बिलकुल ध्वस्त हो गई तथा इसके नगर और गांव प्राय: जनशून्य और उजाड हैं। प्राचीन ईंटो की दीवारे, जिनकी केवल बुनियादें बाकी रह गई हैं, राजधानी के चारो ओर लगभग १० ली के घेरे मे थी। नगर मे निवासी बहुत थोडे हैं तथा मुहल्ले उजाड और खडहर हो गये हैं। नगर के द्वार के पूर्वोत्तर वाले कोने मे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यहाँ पर पहले चुण्डा[2] का भवन था जिसके मध्य मे एक कुआं है। यह कुवाँ बुद्धदेव को पूजा करने के समय तुरन्त खोदा गया था। यद्यपि यह उमड उमड कर बहता रहा है तो भी इसका जल मोठा और शुद्ध है[3]।

---

(1) इस देश की राजधानी के नाम भिन्न भिन्न हैं अर्थात कुशीनगर, कुशी नगरी कुशनगर कुशो ग्रामक और कुशी नारा इत्यादि। गोरखपुर से पूर्व ३५ मील पर कसिया नामक ग्राम को जनरल कनिंघम और मि० विल्सन ने कुशी नगर निश्चय किया है तथा छोटी गडकी नदी ही प्राचीन काल की हिरण्यवती नदी होगी ऐसा भी अनुमान है।

(2) चुन्डा एक गृहस्थ था जिसने बुध्ददेव को अपने घर पर बुलाकर अन्तिम भेट समर्पण की थी।

(3) इतिहासो मे प्राय. दो शाल वृक्ष लिखे है और अजता की गुफा मे बुद्धनिर्वाण के दृश्य का जो चित्र बना है उसमे भी दो ही वृक्ष दिखलाये गये है।

नगर के उतर-पश्चिम मे ३ या ४ ली दूर अजित नदी के उस पार अर्थात
श्चिमी तट पर शालबाटिका मे हम पहुँचे । शालवृक्ष हमारे यहां के समान
छ हरापन लिए हुये सफेद छाल का बृक्ष होता है । इसकी पतियाँ चमकीली
ौर चिकनी होती हैं । इस बाग मे चार बृक्ष बहुत ऊँचे हैं जो बुद्धदेव के
त्युस्थान को सूचित करते है ।

यहाँ पर ईंटो से बना हुआ एक विहार है। इसके भीतर बुद्धदेव का
क चित्र निर्वाण दशा का बना हुआ है । साते पुरुष के समान उत्तर दिशा मे
सर करके बुद्ध भगवान लेटे है। विहार के पास एक स्तूप अशोक राजा का
नवाया हुआ है। यद्यपि यह खँडहर हो रहा है तो भी २०० फीट ऊँचा
। इसके आगे एक स्तम्भ खडा है जिस पर तथागत के निर्वाण का इतिहास
। वृतान्त तो पूरा लिख दिया गया है परन्तु तिथि, मास और संवत् आदि
ही है ।

लोगो के कथनानुसार निर्वाण के समय तथागत भगवान की ८० वर्ष
की अवस्था थी । वैशाख मास शुक्लपक्ष की पन्द्रहवी तिथि को उनका निर्वाण
हुआ था । यह तिथि हमारे हिसाब से तीसरे मास की पन्द्रहवी हुई । परन्तु
सर्वास्तिक कहते है कि उनका देहावसान कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की आठवी
तिथि को हुआ था । यह हमारे नवे महीने की आठवी तिथि को हुआ था।
भिन्न भिन्न सम्प्रदाय भिन्न भिन्न रीति से मृत्यु का काल निश्चित करते हैं।
कोई उनको मरे हुए १,२०० वर्ष से अधिक बताता है, कोई १,३०० वर्ष से
अधिक कुछ लोग और भी अधिक वढाकर १;५०० वर्ष से अधिक अनुमान
करते हैं और कुछ लोग कहते हैं कि ९०० वर्ष तो हो गये परन्तु १००० वर्ष से अधिक नहीं हुये ।

विहार की बगल मे थोड़ी दूर पर एक स्तूप उस जगह है जहाँ कि बुद्ध
भगवान ने अपने किसी पूर्व जन्म में, जब वह धर्म का अभ्यास कर रहे थे, तीतर
पक्षी का शरीर धारण किया था, और उस जाति के पक्षियो के राजा हुये थे, और
वन मे लगी हुई अग्नि को शान्त कर दिया था । प्राचीनकाल मे इस स्थान पर एक
बडा भारी सघन वन था जिसमे अनेक प्रकार के पशु और पक्षी अपने अपने घोसले
और मादे बनाकर रहा करते थे । एक दिन अकस्मात् बडी भारी आंधी इस जोर
से आई कि वन में आग लग गई और उसकी प्रचन्ड ज्वाला चारो ओर फैलने लगी ।
उस समय तीतर भी इस वन मे रहता था जो इस भयानक विपद् को देख दया
और करुणा से प्रेरित होकर एक झील मे उडकर गया और उसमें गोता लगाकर
पानी भर लाया तथा अपने परो को फटफटाकर उस अग्नि पर छिड़क दिया । उस

पक्षी की इस दशा को देखकर देवराज शक्र उस स्थान पर आये और पूछने लगे, "तुम क्यो ऐसे मूर्ख हो गये हो जो अपने परो को फटफटा फटफटाकर थकाये डालते हो ? एक बडी भारी आग लगी हुई है जो वन के घास पात और वृक्षों को भस्म कर रही है, ऐसी दशा मे तुम्हारे समान छोटा जीव क्योकर इस ज्वाला को शान्त कर सकेगा ?" पक्षी ने पूछा "आप कौन" हैं ? उन्होने उत्तर दिया, मैं देव राज इन्द्र हूँ। पक्षी ने उत्तर दिया, देवराज शक्र मे बडी सामर्थ्य है आप जो कुछ चाहे कर सकते हैं आपके सामने इस विपद का नाश होना कुछ कठिन नहीं, आप इसको उतना ही शीघ्र दूर कर सकते हैं जितनी देर मे मुट्ठी खोली और बन्द की जाती है । इसमे आपकी कोई बडाई नही है कि यह दुर्घटना इसी तरह बनी रहे, परन्तु इस समय आग चारो ओर वडे जोर से लग रही है इसी कारण अधिक बातचीत करने का अवसर नही है, । यह कहकर वह फिर उड गया और जल लाकर अपने परो से छिडकने लगा । तब देवराज ने अपने हाथ मे जल लेकर अग्नि पर छोड दिया जिससे कि अग्नि शान्त हो गई, धुवाँ जाता रहा और सब पशुओ की रक्षा हो गई। इस कारण इस स्तूप का नाम अब तक अग्नि नाशक स्तूप प्रसिद्ध है ।

इसकी बगल मे थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर बना है जहां पर बोधिसत्व ने, जब वे धर्माचरण का अभ्यास कर रहे थे, एक मृग का शरीर धारण करके कुछ जीवो को बचा लिया था । अत्यन्त प्राचीन समय का वृतान्त है कि इस स्थान पर एक विकट वन था, उस वनस्थली मे जो घास फूस उगा हुआ था उसमे एक दिन आग लग गई जिससे वनवासी पशु पक्षी विकल हो गये । क्योकि सामने की ओर बडे वेग से एक नदी बह रही थी और पीछे की ओर आग लगी हुई थी बचकर जाय तो किधर जाय । सिवा इस बात के कि नदी मे कूद पडे और कोई तदबीर न थी कुछ पशु नदी मे कूद पडे परन्तु वह शीघ्र ही डूब कर मरने लगे । उनकी इस दशा पर एक मृग को बडी दया आई । वह उनको बचाने की इच्छा से नदी मे कूद पडा और पशुओ को अपनी सहायता से पार पहुँचाने लगा । यद्यपि लहरो के वेग से थपेड खाते खाते उसका सारा शरीर हिल गया और हड्डियां तक टूट गई परन्तु वह अपनी सामर्थ्य भर जीवो को बचाता ही रहा । उसकी दया बहुत बुरी हो गई वह नदी मे अब अधिक ठहर नही सकता था कि एक पडित खरगोश किनारे पर आया यद्यपि मृग बहुत विकल हो रहा था तो भी उसने धैर्य धारण करके उस खरगोश को भी सुरक्षित उस पार पहुँचा दिया । इस कार्य मे अब उसका सम्पूर्ण बल जाता रहा और वह थक कर नदी मे डूब गया। देवताओ ने उसके शरीर को लेकर यह स्तूप बनाया ।

इस स्थान के पश्चिम मे थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर बना है जहां पर सुभद्र का शरीरपात हुआ था। सुभद्र वास्तव मे बडा विद्वान ब्राह्मण था उसकी अवस्था १२० वर्ष की हो गई थी। इस अधिक अवस्था के कारण उसका ज्ञान भी बहुत परिवर्द्धित हो गया था। इस बात को सुन कर कि बुद्धदेव अब निर्वाण प्राप्त करने वाले हैं वह दोनो शाल[1] वृक्षो के निकट जाकर आनन्द से कहने लगा, "भगवान अब निर्वाण प्राप्त करना चाहते है परन्तु मुझको कुछ ऐसा सन्देह घेरे हुये हैं जिससे मैं विकल हूं, कृपा करके मुझको कुछ प्रश्न उनसे कर लेने दीजिए।" आनन्द ने उत्तर दिया अब उनका समय निकट आ गया है कृपया इस अवस्था मे न छेडिए। उसने उत्तर दिया, "मैं सुनता हूँ बुद्ध का संसार से मिलना कठिन है उसी प्रकार सत्य धर्म भी संसार मे दुर्लभ है और मैं अपने सन्देहो से विकल हूँ, इस कारण मुझको जाने दीजिये, आप भय न कीजिये।" उसी समय वह बुलाया गया और सामने जाते ही उसने पूछा, बहुत से लोग है जो अपने को आचार्य कहते है, इन सबके सिद्धान्त भी अलग अलग है, तथा सभी जन साधारण को सन्मार्ग पर लाने का दावा करते है हे गौतम ! क्या आपको उनके सिद्धान्तो की थाह मिल गई है ? बुद्धदेव ने उत्तर दिया, मैं उनके सब सिद्धान्तो को जानता हूँ। इसके उपरान्त उन्होने सुभद्रको सत्य धर्म का उपदेश दिया।

सुभद्र शुद्ध चित्त और विश्वास से सत्यधर्म को सुनकर भक्त हो गया तथा उसने प्रार्थना की कि मैं भी आपके शिष्यो मे सम्मिलित किया जाऊँ। तथागत ने उत्तर दिया, "क्या तुम ऐसा करने मे समर्थ हो ? विरोधियो तथा अन्यमतावलम्बियों को जिन्होने पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कया है यह आवश्यक है कि चार वर्ष तक अपने आचरण को शुद्ध रखकर परीक्षा देते रहे। यदि उनका व्यवहार और वार्तालाप शुद्ध तथा निष्कपट मिलेगा तब वे मेरे धर्म मे सम्मिलित हो सकेंगे। परन्तु तुम मनुष्य समाज मे रहकर भी लोगो की शिक्षा पर विचार करते रहे हो इस कारण तुमको सन्यास लेने मे कोई कठिनता नही है।"

सुभद्र ने कहा, भगवान बडे दयालु और क्षमाशील हैं। आपमे पक्षपात का लेश भी नहीं है। क्या आप मुझको चार वर्षवाले तीनो प्रकार के प्रारम्भिक अभ्यास से क्षमा करते है ? बुद्ध ने उत्तर दिया, जैसा मैंने पहले कहा हैं कि यह तो उसी समय हो गया जब तुम मानव समाज मे थे।

---

(1) इस प्रसङ्ग मे दो ही शालवृक्षो का उल्लेख है : ह्वेनसांग के समय में जो चार वृक्ष वर्तमान थे वे बाद को लगाये गये थे यही मानना पडेगा, और कदाचित बुद्ध भगवान के सिर की ओर दो और पैर की ओर दो वृक्ष इस तरह से चार वृक्ष लगाये गये होंगे।

सुभद्र ने उसी समय संन्यास धारण करके घर से सम्बन्ध परित्याग कर दिया तथा बड़े परिश्रम के साथ शरीर और मन को शुद्ध करके तथा सब प्रकार के सन्देहों का निवारण करके बहुत थोडे समय के उपरान्त अर्थात मध्य रात्रि के व्यतीत होते होते पूर्ण अरहट की दशा को प्राप्त हो गया। इस प्रकार शुद्ध होकर वह बुद्ध भगवान के निर्वाण काल की प्रतीक्षा न कर सका बल्कि समाज के मध्य मे अग्नि धातु की समाधि लगा कर और अपनी आध्यात्मिक शक्ति को प्रदर्शित करते करते पहले ही निर्वाण को प्राप्त हो गया। इस तरह पर यह अन्तिम शिष्य और प्रथम निर्वाण प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ठीक उसी तरह पर हुआ, जिस प्रकार वह खरगोश सबसे अन्त मे बचाया गया था, जिसका वृतान्त ऊपर अभी लिखा गया है।

सुभद्र-निर्वाण के स्तूप की बगल मे एक स्तूप उस स्थान पर है, जहा पर वज्रपाणि बेहोश होकर गिर पडा था। दयावान जगदीश्वर लोगो की आवश्यकतानुसार कार्य करके और संसार को सत्यधर्म मे दीक्षित करके जिस समय निर्वाण के आनन्द को प्राप्त करने के लिए दोनो शाल वृक्षो के नीचे उत्तर को ओर सिर किये हुये लेटे उस समय मल्ल लोग, जिनके हाथ मे गदा थी और जो गुप्त रूप से उनके साथ रहते थे बुद्ध भगवान् के निर्वाण को देखकर बहुत दुखित हो गये और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे, "हा! भगवान् तथागत हमको परित्याग करके निर्वाण प्राप्त कर रहे है अब कौन आश्रय देकर हमारी रक्षा करेगा? यही विषबाण हमारे हृदय को छेद रहा है तथा शोक की ज्वाला भभक रही है। हा! इस दुख का कोई इलाज नही है।" यह कह कर वे लोग अपनी हीरक गदाओ को फेंक कर भूमि मे बेसुध गिर पडे और बडी देर तक पडे रहे। इसके उपरान्त वे लोग उठकर भक्ति और प्रेम से परस्पर कहने लगे, "जन्म-मरण के समुद्र से पार करने के लिए अब कौन हमको नौका प्रदान करेगा? इस अज्ञान-निशा के अन्धकार मे कौन हमको प्रकाश देकर सन्मार्ग पर ले जावेगा?"

इस स्तूप की बगल मे जहा पर मल्ल (वज्रपाणि) बेसुध होकर गिरे थे—एक और स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर बुध निर्वाण के पश्चात सात दिन तक वे लोग धार्मिक कृत्य करते रहे थे। जब तथागत भगवान का अन्त समय निकट आया तब एक बडा भारी प्रकाश चारो ओर फैल गया। मनुष्य और देवता उस स्थान पर एकत्रित होकर अपने शोक को प्रदर्शित करते हुये परस्पर कहने लगे, "जगत्पति बुद्ध भगवान अब निर्वाण प्राप्त कर रहे हैं, जिससे मनुष्यो का आनन्द नष्ट हो रहा है अब कौन संसार को आश्रय देगा?" उस समय बुद्ध भगवान ने सिंह-चर्म पर दाहिनी करवट होकर उस जन-समुदाय को इस प्रकार उपदेश दिया, "हे लोगो! मत शोक करो। यह कदापि न विचारो कि तथागत सदा के लिये

संसार से विदा हो रहा है उसका धर्म कार्य सदा सजीव रहेगा, उसमें कुछ फेरफार नही हो सकता, अपने आलस्य को परित्याग करो और सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए जितना शीघ्र हो सके प्रयत्न करो।"

उस समय रोते और शिसकारी भरते हुये भिक्षुओ से अनिरूद्ध[1] ने कहा, हे भिक्षु लोगो! शान्त हो जाओ इस प्रकार मत शोक करो कि देवता तुम पर हँसे। फिर मल्ल लोगो ने पूजन करके यह इच्छा प्रकट की कि भगवान केशव को सोने की रथी पर चढा कर श्मशान ले जाना चाहिये। उस समय अनिरुद्ध ने उन्हे यो कह कर ठहराया कि देवता लोग सात दिन तक भगवान के शिव को पूजा करने की इच्छा रखते है।

तब देवताओ ने सच्चे हृदय से भक्तिपूर्वक भगवान् का गुण गान करते हुये परमोत्तम सुगंधित स्वर्गीय पुष्प लेकर उनके शव का पूजन किया।

जिस स्थान पर रथी रोकी गई थी उसके पास एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहा पर महामायारानी ने बुद्ध के लिए शोक प्रकट किया था[2]।

जिस समय भगवान का प्राणान्त हो गया और उनका शरीर रथी पर रख दिया गया उस समय अनिरुद्ध स्वर्ग मे गया और मायारानी से उसने कहा कि संसार का पवित्र और अप्रतिम स्वामी विदा हो गया।

माया इसको सुनते ही शोक से सांसे लेने लगी और अपने स्वर्गीय शरीर से दोनों शालवृक्षो के निकट आई। वहाँ पर भगवान के संघाती वस्त्र और पात्र तथा दंड को पहिचान कर छाती से लगाने के उपरान्त बेसुध होकर गिर पडी। जब उसको होश आया तब चिल्ला चिल्ला कर कहने लगी कि "मनुष्यो और देवताओं का आनन्द समाप्त हो गया। ससार के नेत्र जाते रहे! सन्मार्ग पर ले जानेवाले के बिना सर्वस्व नष्ट होगया।"

उस समय तथागत के प्रभाव से सोने की रथी स्वयं खुल गई चारो ओर प्रकाश फैल गया, तथा भगवान ने उठकर दोनो हाथ जोड कर माता को प्रणाम

---

(1) अनिरुद्ध का ठीक ठीक निश्चय करना कठिन है—कि अनिरुद्ध बुद्धदेव का भाई अर्थात अमृतोदन का पुत्र था, अथवा मूल पुस्तक मे वर्णित अनिरुद्ध बुद्ध भगवान को मृत्यु के समय कोई सेवक था।

(2) एक चित्र से पता लगता है कि स्वर्ग से महामाया को अनिरुद्ध निर्वाण-स्थल पर लाया था।

किया और कहा, "हे माता ! आप बहुत दूर चल कर आई है, आपका स्वर्गीय जीवन परमपुनीत है आपको शोक न करना चाहिए ।

आनन्द ने अपने शोक को दबाकर पूछा कि भगवान ! यदि मुझसे लोग प्रश्न करेगे तो मैं क्या बताऊगा । "भगवान ने उत्तर दिया कि तुमको यह कहना चाहिए कि बुद्ध के शरीरावसान होने के उपरान्त उनकी प्यारी माता स्वर्ग से उतर कर दोनो शालवृक्षो के निकट आई थी, बुद्ध भगवान ने लोगो को मातृ-पितृ-भक्ति की शिक्षा देने के लिए रथी से उठ कर उनको, हाथ जोडकर, प्रणाम किया था और धर्मोपदेश दिया था ।"

नगर से उत्तर मे नदी के पार ३०० पग चलकर एक स्तूप मिलता है। यह वह स्थान है जहां पर तथागत भगवान के शरीर का अग्नि-संस्कार किया गया था । कोयला और भस्म के संयोग से इस स्थास की भूमि अब भी श्यामतायुक्त पीली है जो लोग सच्चे विश्वास मे यहां पर खोज करते हैं और प्रार्थना करते हैं वे तथागत भगवान का कुछ न कुछ अवशेष अवश्य प्राप्त करते हैं ।

तथागत भगवान के शरीरान्त होने पर देवता और मनुष्यो ने बडो भक्ति से बहुमूल्य सप्त धातुओ की एक रथो बनाई और एक सहस्त्र वस्त्रो मे उनके शरीर को लपेट कर सुगधित वस्तु और फूलो को ऊपर डाल दिया, तथा सबके ऊपर एक ओढना डाल कर बहुमूल्य छत्र से आभूषित कर दिया । फिर मल्ल लोग उस रथी को उठा कर ले चले और उत्तर दिशा मे हिरण्यवती नदी पार करके श्मशान मे पहुचे । इस स्थान पर सुगंधित चन्दनादि लकडियो से चिता बनाई गई और उस चिता पर बुद्ध भगवान का शव सुगधित तैल और घृत इत्यादि डाल कर भस्म किया गया । बिलकुल जल जाने पर भी दो वस्त्र ज्यो के त्यो अवशेष रहे—एक वह जो शरीर मे चिपटा हुआ था और दूसरा वह जो सबसे ऊपर ओढाया गया था । बाल और नख भी अग्नि से नही जले थे । इन सबको लोगो ने ससार की भलाई के लिए विभक्त कर लिया था । चिता-भूमि की बगल मे हो एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर बुद्ध भगवान ने काश्यप के निमित्त अपने पैरो को खोलकर दिखाया था । जिस समय चिता पर बुद्धदेव की रथी रखी गई और उस पर घृत तैल इत्यादि छोड कर अग्नि लगाई गई तब अग्नि बुझ गई उस समय जितने उपस्थित लोग थे सब सन्देह और भय से विकल होने लगे। तब अनिरुद्ध ने कहा, "हमको काश्यप के आगमन की प्रतीक्षा अवश्य करनी चाहिए ।

उसी समय काश्यप अपने ५०० शिष्यो के सहित वन से कुशीनगर को आये और आनन्द से पूछा, "क्या मैं भगवान तथागत का शरीरावलोकन कर सकता हूँ ?" आनन्द ने उत्तर दिया, हजार वस्त्रो मे परिवेष्टित करके और एक विशाल रथी मे बन्द करके ऊपर से चन्दनादि सुगन्धित लकड़ियां रखकर हम लोग अग्नि दे रहे हैं, अव यह बात कैसे सम्भव हैं ? उसी समय बुद्धदेव ने अपने पैरो को रथी के वाहर निकाला । उस चरण के चक्र पर अनेक प्रकार के चिन्हो को देखकर काश्यप ने आनंद से पूछा "ये चिह्न कैसे हैं ? आनन्द ने उत्तर दिया, "बुद्ध भगवान का शरीरान्त हुआ और देवता तथा मनुष्य विलाप करने लगे उस समय उन लोगो के अश्रुविन्दु चरण पर गिरे थे जिससे ये चिन्ह[1] बन गये है ।

काश्यप ने पूजन तथा चिता की प्रदक्षिणा करके बुद्ध भगवान को स्तुति की । उसी समय आपसे आप चिता मे आग लगे और उनका शरीर अग्निसात हो गया है ।

बुद्ध भगवान मृत्यु के वाद तीन बार रथी मे से प्रकट हुये थे, प्रथम बार उन्होंने अपना हाथ निकाल कर आनन्द से पूछा था, क्या सव ठीक हो गया ? दूसरी बार उन्होंने उठकर अपनी माता को ज्ञान दिया था और तीसरी बार अपना पैर निकाल कर महा काश्यप को दिखालाया था ।

जिस स्थान पर पैर निकाला गया था उसके पास एक और स्तूप अशोक राजा का वनवाया हुआ है । इसी स्थान पर आठ राजाओ ने शरीरावशेष को विभक्त किया था । सामने की ओर एक स्तम्भ लगा हुआ है जिस पर घटना का वृतान्त लिखा है ।

अन्तकाल होने पर जब बुद्ध का अन्तिम संस्कार समाप्त हो गया तव आठो देशो के राजाओं ने अपनी सेना सहित एक सात्विक ब्राह्मण (द्रोण) को भेजकर कुशीनगर के मल्लो से कहलाया कि मनुष्यो और देवताओ का नायक इस देश में मृत्यु को प्राप्त हुआ है हम उसके शरीरावशेष मे भाग लेने के लिये वहुत दूर से आये है । मल्लो ने उत्तर, दिया—"तथागत भगवान कृपा करके इस देश मे पधारे और यही पर—संसार के रक्षक, और सव जीवो को पिता समान प्यारे—उन बुद्ध भगवान का शरीरपात हुआ, इस कारण हमी लोग उनके शरीरावशेष की पूजा करने के अधिकारी हैं । आपका आना व्यर्थ है । आपको भाग नही मिलेगा ।" जब राजा लोगो को यह विदित हुआ कि मल्ल लोग नम्रता से भाग नही देंगे

---

(1) विनय मे लिखा है कि ये चिन्ह स्त्रियो के आंसुओं से बन गये थे, जो पैरो के निकट बैठकर रोती थी ।

तब उन्होने दूसरी बार दूत भेज कर यह कहलाया—"तुमने हमारी प्रार्थना को अस्वीकार किया है इस कारण अब हमारी सेना तुम्हारे निकट पहुँचना चाहती है।" ब्राह्मण ने जाकर उनको समझाया,—"हे मल्लो ! विचारो तो कि परम दयालु बुद्ध भगवान ने किस प्रकार सन्तोष के साथ धर्म का साधन किया है उनकी कीर्ति अनन्तकाल तक बनी रहेगी। तुम भी इसी प्रकार सन्तोष करके बुद्धावशेष को आठ भागो मे बाट दो जिसमे सब लोग पूजा सेवा करके सुगति लाभ कर सके। युद्ध करने का तुम्हारा विचार ठीक नही है शस्त्रसघर्षण करने से क्या लाभ होगा ?" मल्ल लोगो ने इन बचनो की प्रतिष्ठाकरके बुद्धावशेष का आठ भागो मे विभाजन कर दिया।

तब देवराज शक्र ने कहा कि "देवताओ को भी भाग मिलना चाहिए, हमारे स्वत्व के लिए रोक टोक उचित नही है।"

अनवतप्त, मुचिलिन्द और इलापत्र नागो का भी ऐसा ही विचार हुआ, उन लोगो ने कहा—"हमको भी शरीरावशेष मे से भाग मिलना चाहिए नही तो हम बल पूर्वक लेने का प्रयत्न करेंगे, नही तो तुम लोगो के लिए कदापि अच्छा न होगा।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"झगडा न करो।" फिर इसने बुद्धावशेष को तीन भागो में बांट दिया अर्थात एक देवताओ का भाग और जो एक शेष भाग बचा वह मनुष्यो के आठो राजाओ मे विभक्त हो गया। देवताओ और नागो के सम्मिलित हो जानें से नरेशो को भाग प्राप्त करने मे बडी कठिनाई पडी थी।

विभाग होने के स्थलवाले स्तूप से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग २०० ली चलकर हम एक बडे ग्राम मे पहुँचे। इस ग्राम मे किसी समय एक बडा प्रतिष्ठित और धनवान ब्राह्मण रहता था। वह पच विद्याओ के पडित होकर सम्पूर्ण मे सत्य साहित्य का ज्ञाता और त्रिपिट्टक का भी पन्डित हो गया था। अपने मकान के निकट ही उसने सन्यासियो के रहने के लिये एक भवन अलग बनवा दिया था तथा इसको सर्वाङ्ग सुसज्जित करने मे उसने अपना सम्पूर्ण धन लगा दिया था। यदि कोई सन्यासी भ्रमण करता हुआ उस रास्ते आ निकलता था तो वह उसको विनय पूर्वक अपने निवास भवन मे ठहराता और हर प्रकार से उसका सत्कार करता था। संन्यासी लोग उसके स्थान पर एक रात्रि से लेकर सात दिन पर्यन्त निवास किया करते थे।

उन्ही दिनो राजा शशाङ्क बुद्ध धर्म से द्रोह करके बौद्धो को पीडित करने लगा। उसके भय से सन्यासी लोग इधर-उधर भाग गये और वर्षों इसी दशा मे रहे। परन्तु वह ब्राम्हण अपने प्राणो की परवाह न करके बराबर उन लोगो को सेवा करता रहा। एक दिन मार्ग मे उसने देखा कि एक श्रमण जिसकी भौंहे तनी और सिर मुडा हुआ है एक दड हाथ मे लिए हुए चला आ रहा हैं। ब्राम्हण

उसके पास दौड गया और भेट करके पूछा कि "आपका आना किधर से हो रहा है ? क्या आप कृपा करके मुझ दीन की कुटी को अपने चरणो की रज से पवित्र करेंगे और मेरी की हुई तुच्छ सेवा स्वीकार करेंगे ?" श्रमण के इनकार न करने पर उसे अपने घर ले जाकर ब्राम्हण ने चावलो की खीर उसके अर्पण की, श्रमण ने उसमे से एक ग्रास मुँह मे रक्खा, परन्तु मुंह में रखते ही उसने लम्बी सांस लेकर उसको फिर अपने भिक्षा-पात्र मे उगल दिया । ब्राह्मण ने नम्रतापूर्वक पूछा कि "क्या श्रीमान् किसी कारण से मेरे यहाँ रात्रि-वास नही करना चाहते, अथवा भोजन रुचिकर नही है ?" श्रमण ने बडी दयालुता से उत्तर दिया—"मुझको संसार मे धर्म के क्षीण होने का शोक हैं, परन्तु मैं भोजन समाप्त कर लूँ तब इस विषय मे अधिक बातचीत करूंगा ।" भोजन समाप्त होने पर अपने वस्त्रो को ऐसे समेटने लगा मानो चलने पर उद्यत हो । ब्राह्मण ने पूछा, "आपने तो कहा था कि वार्तालाप करेंगे, परन्तु आप चुप क्यो हैं ?" श्रमण ने उत्तर दिया, "मैं भूल नही गया हूँ परन्तु तुमसे बातचीत करते मुझको कष्ट होता है, तथा उस दशा को सुनकर तुमको भी सन्देह होगा । इसलिए मैं थोडे शब्दो मे कहे देता हूँ। मैंने जो लम्बी सांस भरी थी वह तुम्हारे भोजन के लिए न थी, क्योंकि सैकडो वर्ष हो गये जब से मैंने ऐसा भोजन नही किया है। जब तथागत भगवान संसार मे वर्तमान थे और राजगृह के निकट वेनुबन विहार में निवास करते थे उस समय मैं उनकी सेवा करता था। मैं उनके पात्रो को नदी मे धोता था और और घडो मे जल भर लाता था तथा मुह हाथ धोने के लिए पानी दिया करता था। मुझको शोक है कि उस समय के जल के समान तुम्हारा दिया हुआ दूध मीठा नही है। इसका कारण यही है कि देवता और मनुष्यों का धार्मिक विश्वास अब घट गया है और इसीलिए मुझको शोक हुआ था ।" ब्राह्मण ने पूछा, "क्या यह सम्भव और सत्य है कि आपने बुद्ध भगवान का दर्शन किया है ?" श्रमण ने उत्तर दिया, "क्या तुमने बुद्ध भगवान के पुत्र राहुल का नाम नही सुना है ? मैं वही हूँ और सत्य धर्म की रक्षा के अभिप्राय से निर्वाण को प्राप्त होता हूँ ।"

यह कहकर श्रमण अन्तर्धान हो गया। ब्राह्मण ने उस कोठरी को झाड़-बुहार और लीप-पोत कर शुद्ध करके उसमे राहुल का चित्र बनवाया, जिसकी वह वैसे ही कि मानो राहुल प्रत्यक्ष उपस्थित हो ।

एक वन मे होकर ५०० ली जाने के उपरान्त हम पओलोनीस्सी राज्य मे पहुँचे ।

सातवां अध्याय

पांच प्रदेशो का वृत्तान्त (१) पओलोनीस्सी (२) चेनन्नू (३) फ़िशीलई (४) फोलीशी (५) निपोलो।

पओलोनीस्सी (वाराणसी या बनारस)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली है। राजधानी की पश्चिमी सीमा पर गङ्गा नदी बहती है। इसकी लम्बाई १८-१९ ली और चौडाई ५-६ ली है। इसके भीतरी द्वार कङ्घी के दातो के समान बने हैं [1]। आबादी घनी और मनुष्य धनवान हैं, तथा उनके घरो में बहुमूल्य वस्तुओ का सग्रह रहता है। लोगो का आचरण कोमल और सभ्य है, वे विद्याभ्यास मे दत्तचित्त रहते हैं। अधिकतर लोग विरुद्ध धर्मावलम्बी हैं, बौध्द-धर्म के अनुयायी बहुत थोडे हैं। प्रकृति कोमल, पैदावार अधिक, वृक्ष फलफूल सयुक्त, और घने-घने जङ्गल सर्वत्र पाये जाते हैं। लगभग ३० संघाराम और ३,००० सन्यासी हैं, और सबके सब सम्मतीय सस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। लगभग १०० मन्दिर और १०,००० विरुध्द-धर्मावलम्बी हैं जो सबके सब महेश्वर का आराधन करते हैं। कुछ अपने बालो को मुंडा डालते हैं और कुछ बालो को बाँधकर जटा बनाते हैं, तथा वस्त्र परित्याग करके दिगम्बर रहते हैं और शरीर मे भस्म का लेप करते हैं। ये बडे तपस्वी होते हैं तथा बडे कठिन-कठिन साधनो से जन्म-मृत्यु के बन्धन से छूटने का प्रयत्न करते हैं।

मुख्य राजधानी में २० देव-मन्दिर हैं जिनके मडप और कमरे इत्यादि पत्थर और लकडी से, सुन्दर प्रकार की चित्रकारी इत्यादि खोदकर, बनाये गये हैं। इन स्थानो मे वृक्षो की घनी छाया रहती है और पवित्र जल की नहर इनके चारो ओर बनी हुई है। महेश्वर देव की मूर्ति १०० फीट से कुछ कम ऊँची तांबे की बनी हुई है। उसका स्वरूप गम्भीर और प्रभावशाली है तथा यह सजीव सी विदित होती है।

राजधानी के पूर्वोत्तर बरना नदी के पश्चिमी तट पर अशोक राजा का बनवाया हुआ १०० फीट ऊँचा एक स्तूप है। इसके सामने पत्थर का एक स्तम्भ काँच के समान स्वच्छ और चमकीला है, इसका तल भाग बर्फ के समान चिकना और चमकदार है। इसमे प्रायः छाया के समान बुध्ददेव की परछाई दिखलाई पडती है।

---

(1) मालूम होता है कि लोहे की छडो से कङ्घी के समान द्वार बने होगे।

वरना नदी से पूर्वोत्तर की ओर लगभग १० ली चलकर हम एक संघाराम मे आये। इस संघाराम का नाम मृगदाव[1] है। चहारदीवारी तो इसकी एक ही है परन्तु भाग आठ कर दिये गये है। इस सघाराम के ऊपरी खण्ड के मंडप, छज्जे और वरामदे बहुत मनोहर हैं। कोई १५०० सन्यासी इसमें निवास करके सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का अध्ययन करते हैं। बड़ी चहारदीवारी के भीतर एक सघाराम २०० फीट ऊँचा है जिसकी छत पर सोने से मढ़ा हुआ एक आम्रफल का चित्र है। इस सघाराम की बुनियादें और सीढियां पत्थर की हैं, परन्तु मडप और आले आदि ईंटो के बने हैं। चारो ओर कोई सौ आले लगातार बने हुये हैं जिनमे से प्रत्येक मे बुद्धदेव की एक सोने की मूर्ति है, और विहार के मध्य मे बुद्ध भगवान की एक मूर्ति तावे की बनी हुई है। इस मूर्ति की ऊँचाई मनुष्य के बराबर है, और ऐसा मालूम होता है मानो खड़े होकर धर्म का चक्र सञ्चालित[2] कर रहे हैं।

विहार के दक्षिण-पश्चिम मे पत्थर का एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यद्यपि यह खण्डहर हो रहा है तो भी जो कुछ दीवारे बाकी हैं उनकी ऊँचाई १०० फीट, अथवा इससे कुछ अधिक है। इसके सामने पत्थर का एक स्तम्भ ७० फीट ऊँचा बना हुआ है। इसका पत्थर साफ, चिकना और चमकीला है। जो लोग यहां पर प्रेम और उत्साह से प्रार्थना करते हैं वे अपनी भावनानुरूप अच्छा या बुरा चित्र अवश्य देखते हैं। पूर्ण ज्ञानी होने के उपरान्त बुद्धदेव ने इसी स्थान पर से धर्म का चक्र सञ्चालित करना प्रारम्भ किया था।

इस स्थान की बगल मे थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहां पर अज्ञात कौडिन्य आदि अपनी तपस्या को छोड़कर बुद्ध के साथ हो लिये थे, और फिर उनका साथ छोडकर इस स्थान पर आकर तपस्या मे लीन हुए थे[3]।

---

(1) मृगदाव बहुधा मृगवाटिका भी कहलाता है। यह वह स्थान है जहां पर बुद्धदेव ने पहले-पहल पांच सन्यासियों को धर्मोपदेश दिया था।

(2) चक्र-धर्म या उपदेश का चिन्ह है। बनारस के निकट का वह स्थान जहां पर बुद्धदेव ने धर्मोपदेश दिया था सारनाथ कहलाता है। जनरल कनिंघम साहब का विचार है कि यह शब्द सारङ्गनाथ (मृगों का राजा) का अपभ्रंश है। बुद्धदेव खुद भी किसी समय में मृग के स्वरूप में थे और कदाचित् यह नाम उससे सम्बन्ध रखता हो।

(3) अज्ञात कौडिन्य इत्यादि पांचो योगी उरविल्व स्थान तक बुद्ध के साथ रहकर ६ वर्ष तक निराहार व्रत करते रहे थे। एक दिन उन्होंने देखा कि नन्दा ने बुद्धदेव को खीर लाकर दी है, इस बात से उन्होंने विचार किया कि बुद्धदेव धर्म-भ्रष्ट हो गये, और इसीलिये वे लोग उनका साथ छोड़कर मृगवाटिका में चले आये।

इसके पास एक स्तूप उस स्थान पर है जहां पर ५०० प्रत्येक बुद्ध एक ही समय मे निर्वाण को प्राप्त हुये थे। इसके अतिरिक्त तीन और स्तूप हैं जहां पर गत तीनो बुद्धो के उठने-वैठने के चिन्ह पाये जाते हैं।

इस अन्तिम स्थान के पास एक स्तूप उस स्थान पर वना है जहां पर मैत्रेय वोधिसत्व को अपने बुद्ध होने का विश्वास हुआ था। प्राचीन काल मे जिन दिनो तथागत भगवान राजगृह मे गृध्दकूट पहाड पर निवास करते थे उन्होंने भिक्षुओ से कहा था "भविष्य मे जव इस जम्बूद्वीप मे सव ओर शान्ति विराजमान होगी और मनुष्यो की आयु ८०,००० वर्ष की होगी उस समय एक ब्राह्मण मैत्रेय नामक उत्पन्न होगा, जिसका शरीर शुद्ध और सोने के समान रङ्गवाला तथा चमकीला होगा। वह ब्राह्मण घर छोडकर सन्यासी हो जायगा और पूर्ण बुद्ध की दशा प्राप्त करके मनुष्यो के उपकारार्थ धर्म के त्रिपिट्टक का उपदेश करेगा। उस उपदेश से उन्ही लोगो का कल्याण होगा जो अपने चित्त मे मेरे धर्म के वृक्ष को स्थान देकर उसका पालन-पोषण करते रहे होगे। जिस समय उनके चित्त मे त्रिपिट्टक की भक्ति उत्पन्न होगी—फिर चाहे वह मेरे पहले से शिष्य हो या न हो, चाहे मेरी आज्ञा को पालन करते हो या नही—उस उपदेश से वे सुशिक्षित होकर परममुक्ति और ज्ञान का फल प्राप्त करेंगे। जिन पर मेरे धर्म का प्रभाव पड चुका है वे जव त्रिपिट्टक के पूर्ण अनुयायी वन जायँगे तव उनके द्वारा दूसरे भी इस कार्य से शिष्य होंगे।"

उसी समय बुद्धदेव के इस भाषण को सुनकर मैत्रेय अपने आसन से उठे और भगवान से पूछा, "क्या मैं वास्तव मे मैत्रेय भगवान हो सकता हूँ?" तथागत ने उत्तर दिया, "ऐसा ही होगा, तुम इस फल को प्राप्त करोगे, और—जैसा मैंने अभी कहा है—तुम्हारे उपदेश का यही प्रभाव होगा।"

इस स्थान के पश्चिम मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहां पर शाक्य वोधिसत्व को बुद्ध होने का विश्वास हुआ था। भद्रकल्प के मध्य मे जब मनुष्यो की आयु २०,००० वर्ष की थी, कश्यप बुद्ध ससार मे प्रकट हुये थे और वडे वडे ज्ञानियो के अन्तःचक्षु खोलकर धर्म के चक्र का सञ्चालन करते हुये प्रभापाल वोधिसत्व से उन्होंने भविष्यद्वाणी की थी कि "भविष्य मे जव मनुष्यो की आयु घटकर १०० वर्ष रह जायगी तव यह वोधिसत्व बुद्ध दशा को प्राप्त करके शाक्य मुनि के नाम से प्रसिद्ध होगा।

इस स्थान के निकट दक्षिण दिशा मे गत चारो बुद्धो के उठने-वैठने आदि के चिन्ह हैं। यह स्थान नीले पत्थरो से वनाया गया है जिसकी लम्बाई ५० पग और ऊँचाई ७ फुट है। ऊपरी भाग मे टहलती हुई अवस्था मे तथागत भगवान की एक मूर्ति

है। यह मूर्ति मनोहर और दर्शनीय है। शिर के ऊपरी भाग मे चोटी के स्थान पर बालों की गूँथ बडे विलक्षण प्रकार से लटकाई गई है ! इस मूर्ति मे आध्यात्मिक शक्ति और दैवी प्रभाव विलक्षण रीति से सुस्पष्ट होते रहते हैं।

संघाराम की चहारदीवारी के भीतर कई सौ स्तूप और कुछ विहार आदि मिलाकर असख्य पुनीत चिन्ह हैं। हमने केवल दो तीन का विवरण दे दिया, सम्पूर्ण का विस्तृत वृत्तान्त देना बहुत कठिन है।

सघाराम के पश्चिम मे स्वच्छ जल की एक झील २०० कदम के घेरे मे है। इस झील मे तथागत भगवान समय-समय पर स्नान किया करते थे। इसके पश्चिम मे एक बडा तडाग लगभग १८० पग का है, इस स्थान पर तथागत भगवान भिक्षा की थाली धोया करते थे।

इसके उत्तर मे एक झील १५० पग के घेरे मे और है जहाँ पर तथागत ने अपने वस्त्र धोये थे। इस तीनो जलाशयो मे एक नाग निवास करता है। जिम प्रकार जल अथाह और मीठा है उसी प्रकार देखने मे स्वच्छ और चमकीला है। पापी मनुष्य यदि इनमे स्नान करते हैं तो घडियाल (कुम्भीर) आकर अनेको को मार खाते हैं परन्तु पुण्यात्मा मनुष्यो को स्नान करते समय कुछ भय नही होता।

जिस जलाशय मे तथागत भगवान ने अपना वस्त्र धोया था उसके निकट एक बडा भारी चौकोर पत्थर रक्खा हुआ है जिस पर काषाय वस्त्र के चिह्न अब तक वर्तमान हैं। पत्थर पर, वस्त्र की बुनावट के समान लकीरे ऐसी सुस्पष्ट बनी हुई हैं मानों खोद कर बनाई गई हो। धर्मिष्ट और विशुद्ध पुरुष बहुधा यहाँ आकर भेट पूजा किया करते है,परन्तु जिस समय विरोधी अथवा पापी मनुष्य इसको हीन दृष्टि से देखते हैं, अन्यथा अपमानित करना चाहते हैं, उसी समय जलाशय का निवासी नागराज आँधी-पानी उठाकर उनको पीडित कर देता हैं।

झील के पास थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ बोधिसत्व ने अपने अभ्यास काल मे छः दांतवाले गजराज का शरीर धारण किया था। इन दांतो के लालच मे एक शिकारी, तपस्वी योगी के समान रूप बनाकर और धनुष लेकर, शिकार की आशा मे बैठ गया। उस काषाय वस्त्र की प्रतिष्ठा के लिए गजराज ने अपने दाँतो को तोड़कर उस शिकारी के हवाले कर दिया।

इस स्थान के बगल मे थोडी दूर एक स्तूप उस स्थान पर हैं जहाँ बोधिसत्व ने अपने अभ्यास-काल मे इस बात पर बहुत दुखित होकर कि लोगो मे सभ्यता कम है एक पक्षी का रूप धरा और एक श्वेत हाथी व एक बन्दर के पास जाकर पूछा, "तुम दोनो मे से किसने इन न्यग्रोध वृक्ष को सबसे पहले देखा ?" जो कुछ वास्तविक बात

थी, इसके अनुसार उन दोनो ने उत्तर दिया । तब अवस्थानुसार उस पक्षी ने उनको क्रमवद्ध किया[1] । इस कार्य का शुभफल धीरे-धीरे चारो ओर इस तरह फैल गया कि लोगो मे ऊँच-नीच के पहचानने का ज्ञान हो गया तथा गृहस्थ और सन्यासी उनके आचरण का अनुसरण करने लगे ।

इसी स्थान से थोडी दूर पर एक जगल मे एक स्तूप है । प्राचीन-काल मे इस स्थान पर देवदत्त और वोधिसत्व नामक मृग-जाति के दो राजाओ ने एक मामला तय किया था । किसी समय मे यहाँ पर वडा भारी जङ्गल था, जिसमे मृगो के दो यूथ,—जिनमे से प्रत्येक मे ५०० मृग थे— रहा करते थे । उसी समय देश का राजा मैदान और जलाशयो मे शिकार खेलता हुआ इस स्थान पर पहुँचा मृग जाति बोधिसत्व ने उसके पास जाकर निवेदन किया, "महाराज ! एक तो आपने अपने शिकार-स्थान के चारो ओर आग लगवा दी है, ऊपर से अपने बाणो से मेरी जाति वालो को आप मारते हैं । इससे मुझको भय है कि सवेरा होते होते सब मृग बिना आहार के विकल होकर भूखे मर जायँगे । इसलिए प्रार्थना है कि आप अपने भोजन के लिए नित्य एक मृग ले लिया कीजिए । आपकी आज्ञा होने से मैं आपके पास उत्तम पुष्ट मृग पहुँचा दिया करूगा और हमारी जाति के लोग कुछ अधिक दिन तक जीवित रह सकेगे ।" राजा इस शर्त पर प्रसन्न हो गया और अपने रथ को लौटा कर घर चला गया । उस दिन से बारी बारी से दोनो यूथ एक एक मृग देने लगे ।

देवदत्त के झुड मे एक मृगी गर्भवती थी, अपनी बारी आने पर उसने अपने राजा (देवदत्त) से कहा, "मैं तो मरने के लिए उद्यत हूँ परन्तु मेरे बच्चे की बारी अभी नही आई है ।"

राजा (देवदत्त) ने क्रोधित होकर उत्तर दिया, "ऐसा कौन है जिसको जीवन प्यारा नही है ।"

मृगी ने वडी लम्बी साँस लेकर उत्तर दिया, "ऐ राजा ! जो अभी उत्पन्न नही हुआ है उसका मारना न्याय-सगत नही कहा जा सकता ।"

इसके उपरान्त मृगा ने अपनी दुख-कथा को बोधिसत्व से निवेदन किया। बोधिसत्व मृगराजा ने उत्तर दिया, "वास्तव मे वडे शोक की बात है । माता का चित्त क्यो न उसके लिए दुखित होवे जो अभी सजीव नही हुआ है (अर्थात् गर्भ मे है), अस्तु तेरे स्थान पर आज मैं जाऊंगा और प्राण दूँगा ।"

---

(1) समझ मे नही आता है इस वाक्य का क्या अभिप्राय है । मूल चीनी पुस्तक मे कुछ गडवड है ।

जो लोग उस रास्ते से होकर निकले थे और इस समाचार को जानते थे उन्होंने राजमहल मे जाकर सबसे कहा कि "मृगो का बडा राजा आज नगर मे आता है।" राजधानी के छोटे बडे सभी आदमी देखने के लिए दौडे।

राजा ने इस समाचार को असत्य समझा, परन्तु द्वारपाल ने जब उसको विश्वास दिलाया कि वह द्वार पर उपस्थित है तब उसको निश्चय हुआ, उसने मृगराज को बुला कर पूछा, "तुम यहाँ क्यो आये हो ?"

मृगराज ने उत्तर दिया, "झुड मे एक बड़ी मृगो गर्भवती है, उसकी आज बारी थी। परन्तु मेरा हृदय इस बात को सहन न कर सका कि बच्चा जो अभी उत्पन्न नही हुआ है उसके साथ मारा जावे, यही कारण हैं कि मैं उसके स्थान पर अपना प्राण देने आया हूँ।"

राजा ने इसको सुन कर बडे शोक से उत्तर दिया, "वास्तव मे मेरा शरीर मनुष्य का है, परन्तु मैं मृगतुल्य हूं; और तुम्हारा शरीर मृग का होने पर भी मनुष्य के समान है"। फिर उसने दया करके उस मृग को छोड दिया तथा उसी दिन मे वह नित्य की हत्या भी बन्द हो गई और वह बन भी मृगो के ही अर्पण कर दिया गया। इसी कारण से यह मृगो को दिया हुआ बन उस दिन से "मृग वन[1]" कहलाता है।

इस स्थान को छोड कर और संघाराम से दो तीन ली दक्षिण-पश्चिम चलकर एक स्तूप ३०० फीट ऊँचा मिलता है। इसके आस पास भी बहुत सा स्थान घेर कर एक ऊँची इमारत बनाई गई है, जिसमे बहुमूल्य वस्तुएँ जडी गई हैं और अनेक प्रकार की चित्रकारी खोद कर पत्थर लगाये गये हैं। इसमे आलो की कतारे नही बनाई गई हैं; और यद्यपि शिखर के ऊपर शलाका लगी हुई है परन्तु उसमे घटियाँ नही लटकती है। इसके निकट ही एक और छोटा स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर अज्ञात कौडिन्य इत्यादि पाँच मनुष्यो ने बुद्ध भगवान के अभिवादन से मुख मोड़ा था। आदि मे जब सर्वार्थसिद्ध[2] अपनपा भूलकर और धर्म के जिज्ञासु बनकर पहाडो मे बसने के लिए और घाटियो मे तपस्या करने के लिए नगर से निकल गये थे, उस समय शुद्धोदन राजा ने तीन स्वजातीय पुरुषो को और दो मातुलो को यह आज्ञा दी कि 'मेरा पुत्र

---

(1) इसी को आम तौर पर मृगदाव कहते है जिसका वर्णन पहले किया गया है' यही सारनाथ या सारङ्गनाथ है।

(2) यह बुद्धदेव का पैत्रिक नाम है।

सर्वार्थसिद्ध ज्ञान सम्पादन करने के लिए घर से निकल गया है; इस समय वह अकेला पहाडो और मैदानो मे घूम रहा होगा, अथवा वन मे एकान्तवास करता होगा इसलिए मेरी आज्ञानुसार तुम लोग जाकर पता लगाओ कि वह कहाँ रहता है और उसको सहायता दो। इस काम के करने मे तुम लोग अपनी मेहनत मे कुछ कसर न रखना, क्योकि तुम्हारा सम्बन्ध उससे बहुत पास का है।" पाँचो आदमी आज्ञानुसार साथ साथ जाकर देश-विदेश मे ढूँढने लगे।

वे पाचो आदमी जब ढूँढते ढूढते उस स्थान पर पहुचे जहाँ पर राजकुमार थे तब उयमे से दो पुरुष जो कठिन तपस्या के विरोधी थे राजकुमार को देखकर कहने लगे कि "इस प्रकार की तपस्या सन्मार्ग से विपरीप है, क्योकि ज्ञान की प्राप्ति सुखपूर्वक साधन करने से होती है, इस कारण हम उसके साथ नही रहेगे।" यह विचार कर वे दोनो चले गये और ज्ञान की प्राप्ति के लिये अलग रहने लगे। राजकुमार ने छः वर्ष तक[1] तपस्या करके भी जब ज्ञान को नही पाया तब अपने व्रत को छोड कर खीर (जो कन्या ने दी थी) खाने पर प्रस्तुत हो गया कि कदाचित ऐसा ही करने से परम ज्ञान हो जावे; तब उन तीन आदमियो ने इस बात पर शोक करते हुये कहा, "इसका ज्ञान अब परिपक्व होने ही को था, परन्तु सब नष्ट हो गया। छः वर्ष को कठिन तपस्या एक दिन मे मिट्टी हो गई।" वे तीनो आदमी वहाँ से उठकर उन आदमियो को ढूढने निकले, जो पहले से अलग थे कि उनसे भी इस विषय मे सम्मति ली जाय। उन लोगो को पाकर वे तीनो बडे दुख से कहने लगे कि राजकुमार सवार्थसिद्ध ने शून्य घाटियो मे निवास करने के लिए राजभवन परित्याग कर दिया था, यह पुरानी बात हम लोगो की जानी हुई है। यहाँ आकर देखा तो उनको सत्य धर्म और उसके फल को प्राप्त करने के लिए पूर्ण बल और बुद्धि के सहित कठिन तपस्या करते पाया। परन्तु अब उन्होने उस तपस्या को भी छोड दिया हैं और एक गडरिये की कन्या के हाथ से खीर को ग्रहण किया हैं। हमारा विचार है कि अब वह कुछ नही कर सकते।"

उन दोनों आदमियो ने उत्तर दिया, "वाह साहब! आपने अब जाना कि राजकुमार पागल सरीखा है! अजी, जब वह अपने मकान मे रहता था और आदर सत्कार के साथ सब प्रकार से आनन्द का उपभोग करता था उस समय पागलपन

(1) दक्षिणी पुस्तको से बुद्धदेव के तपस्या करने का काल ७ वर्ष निकलता है, अथवा सात वर्ष तक कामदेव बोधिसत्व पर हमला करता रहा परन्तु उसका कुछ वश न चला।

ही के कारण तो वह अपने चक्रवर्ती राज्य को छोड़कर नीच और निकृष्ट पुरुषो के जीवन व्यतीत करने के लिये निकल भागा। उसके विषय मे अधिक विचार करना अनावश्यक है, वरच उसका नाम-मात्र स्मरण होने से दुख पर दुख उमड आता है।''

इधर बुद्धदेव का यह वृतान्त हैं कि वह पूर्ण ज्ञान सम्पादन करके देवता तथा मनुष्यो के अधिपति हो गये और नैरञ्जना नदी मे स्नान करके बोधिवक्ष के नीचे आसीन होकर विचरने लगे कि किसको विशुद्ध धर्म का उपदेश देकर सत्मार्ग पर लाना चाहिये। उनका ध्यान राम के पुत्र उद्र की ओर गया कि यह व्यक्ति तपस्या करके नैवसज्ञा समाधि की अवस्था[1] तक पहुच चुका है, इसको यदि उपदेश दिया जाय तो अवश्य फलीभूत होगा और यह उसको ग्रहण भी शीघ्र कर लेगा।

उसी समम देवताओ ने आकाशवाणी करके सूचित किया कि सात दिन हुये राम के पुत्र का देहान्त हो गया। तथागत ने शोक करते हुये कहा कि ''वह विशुद्ध धर्म के श्रवण और ग्रहण करने के लिए उत्सुक था, और वह शीघ्र शिष्य भी हो जाता परन्तु शोक! हमसे भेट न हो सकी!''

ससारी मनुष्यो की ओर दत्तचित्त होकर तथागत भगवान फिर विचारने लगे कि अब कौन व्यक्ति है जिसको सबसे पहले धर्मोपदेश दिया जाय। उन्होने विचार किया कि 'आरादकालाम' योग सिद्ध होकर अकिंचब्यायतन[2] अवस्था को प्राप्त हो गया है वह अवश्य सर्वोत्तम सिद्धान्तो के सिखलाये जाने योग्य हैं। उसी समय देवताओ ने फिर सूचित किया कि इसको भी मरे पाँच दिन[3] हो गये।

तथागत भगवान को उसके अपूर्ण ज्ञान पर फिर शोक हुआ, तथा पुनः विचार करके उन्होने कहा कि मृगदाव मे पांच मनुष्य हैं, जो अवश्य सर्वप्रथम उपदेश को ग्रहण करेगे। यह विचार कर तथागत भगवान बाधिवक्ष के नीचे से उठे तथा अपने प्रकाश से दिशाओ को प्रकाशित करते हुये अनुपत छवि को धारण किये हुये मृगदाव में पहुँचे और उन पांचो आदमिओ को धर्मोपदेश देने लिए निकट गये। वे लोग[4] इनको दूर से देखकर कहने लगे, ''अरे वह देखो सर्वार्थसिद्ध आते हैं।

(1) जिस समाधि मे मनुष्य सज्ञाहीन हो जाता हैं।

(2) योगी की पूर्ण सिद्धावस्था को अकिंचन्चायतन अवस्था कहते हैं।

(3) ललित विस्तर में तीन दिन लिखे हुये हैं परन्तु बुद्ध-चरित्र मे कुछ भी समय नही लिखा है।

(4) बुद्धचरित्र मे इन पांचो आदमियों के नाम कौण्डिन्य, दशवाल, काश्यप वाष्प, अश्वजित और भद्रिक लिखे हुये हैं। परन्तु ललितविस्तर में 'दशवाल' के स्थान पर 'महानाम' लिखा है।

वर्षो तपस्या करने पर भी सत्वसिघि लाभ नही हुई तव धैर्यच्युत होकर हमारे पास आते हैं, परन्तु हमको इस समय चुप रहना चाहिए—यहाँ तक कि उनकी अभ्यर्थना के लिये अपनी जगह से हटना भी न चाहिए।"

तथागत भगवान अपने मनोहर स्वरूप से ससार को विमोहित करते हुये ऐसी रीति से धीरे धीरे उनके निकट गये कि वे लोग अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये तथा वडी भक्ति से उटकर दण्डवत करते हुये उनके चरणो मे गिर पडे। तथागत भगवान ने शनै शनैः उनको विशुद्ध धर्म का उपदेश देकर कृतार्थ किया। विश्राम के दो समय[1] समाप्त होने पर वे लोग पुनोत फल के अधिकारी हो गये।

मृगदाव के पूर्व दो या तीन ली चलकर हम एक स्तूप के पास पहुँचे जिसके निकट लगभग ८० कदम के घेरे मे एक शुष्क जलाशय है। इस जलाशय का एक नाम 'प्राणरक्षक' और दूसरा नाम 'प्रभावशाली वीर' है। इस स्थान का प्राचीन इतिहास इस प्रकार है-वहुत समय व्यतीत हुआ जव एक योगी ससार को परित्याग करके इस जलाशय के निकट एक झोपडी बनाकर निवास करता था। इस योगी की सिद्धाई बहुत प्रसिद्ध थी। अपनी आध्यात्मिक शक्ति से वह पत्थरो के टुकडो को रत्न बना देता था तथा आदमियो और पशुओ को जिस स्वरूप मे चाहे परिवर्तित कर सकता था। परन्तु आकाशगमन करने का सामर्थ्य उसमे नही हो सकी थी जैसी कि ऋषि लोगो मे होती है। इस कारण उसने बडे बडे ऋषियो की जीवनी और कर्तव्यो का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। अपने इस अध्ययन से उसको मालूम हुआ कि "बडे बडे ऋषि वही हैं जिनको मृत्यु के जीतने की सामर्थ्य है, और वे अपने इस प्रभाव से अगणित वर्ष जीवित रह सकते हैं, यदि किसी को इस विद्या के जानने की इच्छा है तो वह इस प्रकार काम प्रारम्भ करे, पहले दस फीट के घेरे की एक वेदी बना उसके एक वीर, धर्मिष्ठ, साहसी और परिश्रमी व्यक्ति को हाथ मे एक लम्बी तलवार देकर बैठा दे, और उसको आज्ञा दे कि वह शाम से सवेरे तक इस प्रकार चुपचाप बैठा रहे कि सांस तक का शब्द न निकलने पावे। फिर वह व्यक्ति जिसको ऋषि होने की कामना है के एक लम्बी छुरी हाथ मे लेकर वेदी के मध्य मे आसीन हो जावे और बहुत खबरदारो

---

(1) विश्राम का काल वर्षा ऋतु है, जिन दिनो शिष्य लोग अपना पर्यटन वन्द करके एक स्थान पर ठहरे रहते थे। परन्तु विचार करने से विदित होता है कि यह नियम उस समय तक वौद्धो मे प्रचलित नही था, क्योकि विनय-ग्रन्थ मे बौद्ध लोगो पर इस बात का दोपारोपण किया गया है कि वे लोग प्रावट्-काल (वर्षा ऋतु=आषाढ, श्रावण, मे भी पर्यटन किया है। हा वुद्ध भगवान से पहले अन्य धर्मावलम्वियो मे इस नियम का प्रचार अवश्य था।

के साथ मन्त्रो का पाठ करे। प्रात.काल होते ही उसको ऋषि अवस्था प्राप्त हो जावेगी तथा उसके हाथ की छुरी आपसे आप एक रत्नजटित तलवार बन जावेगी। उस समय वह आकाश मे गमन कर सकेगा और ऋषियो का भी अधिपति हो जावेगा। उसकी सब कामनाएँ उस तलवार के हिलाते ही पूरी हो जायँगी। फिर उसको न बुढापा होगा न कोई रोग, और न वह कभी मरेगा।" ऋषि होने की इस तरकीब को पाकर वह प्रसन्न होगया और इस काम को साधन करने के लिए एक वीर पुरुष को तलाश करने लगा। बहुत दिनो तक बडे परिश्रम से वह खोज करता रहा परन्तु जैसा चाहिए था वैसा आदमी न मिला। एक दिन अकस्मात् एक नगर मे उसने देखा कि एक आदमी बडे करुणाजनक शब्दो मे रोता हुआ चला जारहा है। योगी को उसकी सूरत देखते ही मालूम हो गया कि यह व्यक्ति अवश्य कामलायक है। बडी प्रसन्नता से उसके निकट जाकर उसने पूछा, "तुमको क्या दुख है जिसके लिए इस तरह रो रहे हो ?" उसने उत्तर दिया, "पहले मैं बडा ग़रीब और दुखी पुरुष था, मुझको अपने भरण-पोषण के लिए जितना कुछ कष्ट उठाना पडता था वह मैं ही जानता हूँ। एक आदमी ने मेरी यह दशा देखकर और मुझको ईमानदार समझकर पाँच साल के लिए नौकर रख लिया। उसने मेरे दुखों को दूर करने का वचन भी दिया था इसलिए मैं भी सब प्रकार का कष्ट और परिश्रम उठाकर उसकी सेवा करता रहा। जैसे ही पाँच वर्ष पूरे हुए उसने एक बहुत ही छोटी भूल के लिए मुझको कोडे लगाकर निकाल बाहर किया। मुझको मेरी मेहनत का एक पैसा भी नही मिला, यही कारण है कि मैं बहुत दुखी और विकल हूँ। अफ़सोस ! मेरी दशा पर दया करनेवाला संसार में कोई भी नही है।"

योगी ने उसको आश्वासन देकर और अपनी कुटी मे लाकर जलाशय मे स्नान कराया तथा सुन्दर स्वादिष्ट भोजन, उत्तम नवीन वस्त्र और ५०० अशर्फी देकर बिदा किया और यह कह दिया कि जब यह समाप्त हो जावे तब फिर निःसकोच होकर चले आना और जो कुछ आवश्यक हो ले जाना। इस प्रकार उस योगी ने अनेक बार उसकी सहायता करके उसको ऐसा सुखी किया कि जिससे उसका चित्त उसकी कृतज्ञता के पाश मे बँध गया ' यहाँ तक कि वह उन भलाइयो के बदले अपनी जान तक दे देने के लिए उद्यत हो गया। योगी को जब यह भली भाँति विश्वास हो गया कि यह व्यक्ति अब पूरे तौर से आधीन हो गया है और जो कुछ इससे कहा जायगा उसको अवश्य स्वीकार कर लेगा, तब उसने उससे कहा कि "मुझको एक साहसी व्यक्ति की आवश्यकता है, मैंने वर्षो तलाश करके और बडे भाग्य से तुमको पाया है, तुम्हारे समान चतुर और सुघड़ व्यक्ति दूसरा नही है, इसलिए मेरी प्रार्थना है कि तुम एक रात भर के लिए मेरा साथ दो और मुँह से एक शब्द भी न निकालो।"

उस वीर ने उत्तर दिया, "चुपचाप सांस रोककर वैठा रहना कौन वडो वात है ? मै आपके लिए जान तक दे देने मे नही हिचक सकता।" उसकी वात को सुनकर योगी ने तुरन्त एक वेदी वनाकर अपने अनुष्ठान का प्रारम्भ किया, जो वस्तुएँ आवश्यक थी सव दिन भर मे इकट्ठी कर ली गई तथा रात्रि होने पर दोनो मनुष्य अपने अपने काम मे नियमानुसार लग गये। योगी अपने स्थान पर वैठ कर मंत्रों का पाठ करने लगा और वीर भी तलवार लेकर अपने स्थान पर जा वैठा। तडका होने मे थाडी ही सी कसर वाकी थी कि वह वीर एकाएक चिल्लाने लगा। उसके चिल्लाते ही आकाश ले अग्नि वरसने लगी और चारो ओर चिनगारी मिला हुआ धुवाँ मेघ के समान छा गया।

वह योगी उसी क्षण उसको झील के भीतर दवोज ले गया। जब इस घटना से उसकी रक्षा हो गई और उसका चित्त कुछ ठिकाने हुआ तव योगी ने उससे पूंछा कि 'मैंने तो तुमको मना कर दिया था फिर भी तुम क्यो चिल्ला उठे ?"

वीर ने उत्तर दिया, "आपकी आज्ञानुसार आधी रात तक तो मैं चुपचाप पडा रहा, उस समय तक मुझको कोई अद्भुत वात नही दिखाई पडी। इसके उपरान्त मेरी दशा बदल गई। मुझको ऐसा मालूम हुआ कि मैं स्वप्न देख रहा हुं। जो कुछ मेरी जोवनी थी तथा जो कुछ काम मैंने किये थे वे सव एक करके मेरे सामने आने लगे। मैंने देखा कि आप आये हैं और मुझको ढाढस दे रहे हैं, परन्तु मैंने कृतज्ञतावश आपको कुछ भी उत्तर नही दिया। थोडी देर के उपरान्त मेरा पुराना स्वामो मेरे पास आया और क्रोध के आवेश मे उसने मुझको मार डाला। मैं मर कर प्रेत हो गया। यद्यपि मरते समय मुझको बहुत कष्ट हुआ था परन्तु, क्योकि मैं आपसे प्रतिज्ञा कर चुका था इस कारण सांस तक न ले सका। इसके उपरान्त मैंने देखा कि दक्षिण भारत मे एक ब्राह्मण के घर मेरा जन्म हुआ हैं और लोग मेरा पालन-पोषण कर रहे हैं। इन सब अवस्थाओ मे मुझको अनेक कष्ट होते रहे परन्तु मैं आपकी आज्ञानुसार चुपचाप सहन करता रहा, कभी एक शब्द भी मुख से न निकाला। कुछ दिनो के उपरान्त मेरा विद्यारम्भ कराया गया और युवा होने पर विवाह भी हो गया। मेरे एक पुत्र भी उत्पन्न हो गया और माता-पिता का देहान्त हो गया परन्तु इन सब अवसरो पर मेरा मुख बन्द ही रहा। मुझको सदा आपकी दयालुता का ध्यान बना रहता था और मैं शान्ति के साथ सुख और दुख को झेलता चला जाता था। मेरे इस अनोखे ढग से मेरे घर वाले और नातेदार बहुत दुखी रहते थे। एक दिन जब मेरी अवस्था ६५ वर्ष के ऊपर हो चुकी थी मेरी स्त्री ने मुझसे कहा कि तुमको बोलना पडेगा नही तो मै तुम्हारे लडके को मारे डालती हूँ उस समय मुझको विचार हुआ कि

मैं अब वृद्ध हो गया मुझमे अब इतनी शक्ति भी नही रही कि दूसरा पुत्र उत्पन्न कर सकूँ इस कारण मैं अपने लड़के को बचाने के लिये चिल्ला उठा ।''

योगी ने शोक करते हुये कहा कि यह सब भूतो की माया था। मुझसे बड़ी भूल हुई जो मैंने पहले से इसका प्रवन्ध नही कर लिया। उस वीर को अपने स्वामी का का काम विगड जाने का बडा दुख हुआ और उस दुख से दुखी होकर उसने अपने प्राण त्याग दिये ।

इसी झील मे ले जाकर उस योगी ने उस वीर की रक्षा अग्नि से की थी इसी कारण इसका नाम 'प्राणरक्षक' हुआ। तथा स्वामी की सेवा और भक्ति करते हुये उस वीर ने इस स्थान पर प्राण त्याग दिया था इस कारण इसका दूसरा नाम 'वीरवाली झाल' हुआ ।

इस झील के पश्चिम मे एक स्तूप तीन जानवरो का है। इस स्थान पर बोधिसत्व ने अभ्यास-काल के दिनो मे अपने शरीर को भस्म कर दिया था। कल्प के आरम्भ मे तीन पशु अर्थात एक लोमडी एक खरगोश और एक वन्दर इस जङ्गल मे निवास करते थे। यद्यपि इन तीनो की प्रकृति भिन्न भिन्न थी परन्तु वास्तव मे वे परस्पर परम मित्र थे और बोधिसत्व दशा का अभ्यास करते थे। एक दिन देवराज शक्र इन तीनो की परीक्षा के लिए एक बूढे मनुष्य का स्वरूप बना कर इस स्थान पर आये और उन तीनो को सम्बोधन करके पूछा कि तुम लोगो को कुछ कष्ट और भय तो नही है ? उन्होने उत्तर दिया, ''हम लोगो को कोई दुख नही है, हम लोग बडी प्रसन्नता से कालयापन करते हैं जहां हमारी इच्छा होती है विश्राम करते है, जहां इच्छा होती है सैर करते हैं। हम लोगो मे परस्पर मेल भी बहुत हैं।'' वृद्ध पुरुष ने उत्तर दिया हे मेरे बच्चे ! इसी बात को सुनकर कि तुम लोग बड़े प्रेम और मेलजोल से रहते हो मैं बहुत दूर से चलकर तुम्हारे पास आया हूँ। तुम लोगो के प्रेम के सामने मैंने अपनी वृद्धावस्था और पौरुष हीनता का भी कुछ विचार नही किया और तुमसे मिलने यहां तक चला आया परन्तु इस समय मैं क्षुधा से बहुत पीडित हूँ। अब बताओ तुम लोग कौन सी वस्तु मुझको खाने के लिए दे सकते हो ? उन्होने उत्तर दिया आप थोडी देर का अवकाश दीजिये अब हम लोग जाकर भोजन का प्रवन्ध किये लाते हैं। यह कहकर वे तीनो अभिन्नमतावलम्बी भोजन की तलाश मे निकले यद्यपि इन तीनो का अभिप्राय एक ही था परन्तु भोजन प्राप्त करने का ढङ्ग अलग अलग था । लोमडी एक नदी में घुस गई और उसमे से एक बडी मछली पकड़ लाई और बन्दर ने जङ्गल में जाकर अनेक प्रकार के फल और फूलों को इकट्ठा किया तथा दोनो अपनी-अपनी भेंट लेकर उस वृक्ष के निकट पहुँचे। यद्यपि खरगोश

ने इधर उधर बहुत दौड-धूप की परन्तु उसको कुछ भी नही मिला और वह खाली ही लौट आया। बुड्ढे आदमी ने कहा कि मुझको मालुम होता है तुम्हारा मेल इन दोनो—लोमडी और बन्दर—से नही है। मेरी इस बात की सत्यता इसी से प्रकट है कि वे दोनो तो मेरे लिए बडी प्रसन्नता से भोजन का प्रबन्ध कर लाये परन्तु तुम खाली ही लौट आये तुमने मुझको कुछ भी लाकर न दिया। खरगोश को यह बात सुनकर शोक हुआ। उसने बन्दर और लोमडी से कहा कि भाई यहा पर एक ढेर लकडियो को इकट्ठा कर दो तो मैं भी कुछ भेंट कर सकूंगा। उन दोनो ने उसकी अज्ञानुसार इधर उधर से लकड़ी और घास का ढेर लगा दिया और जब वह ढेर अच्छी तरह पर जलने लगा तब खरगोश ने कहा कि हे महाशय ! मैं एक छोटा और अशक्त जन्तु हूँ। यह बात मेरी सामर्थ्य से बाहर हैं कि मैं आपके लिए भोजन प्राप्त कर सकूँ, मेरा यह शरीर अवश्य आपकी क्षुधा को मिटा देगा। यह कह कर वह अग्नि मे कूद पडा और भस्म हो गया। तब वृद्ध पुरुष ने अपने असली स्वरूप को प्रकट करके और उसकी हड्डियो को बटोर कर बडे सन्तुप्त हृदय लोमडी और बन्दर को सम्बोधन करके कहा, मैं इसकी वीरता पर मुग्ध हो गया हूँ। इसने वह काम किया जो आजतक किसी धर्मिष्ठ से न हो सका था। इस कारण मैं इसको चन्द्रमा की मूर्ति मे स्थान देता हूँ जिसमे इसको कीर्ति का कभी नाश न हो।" इसी सबब से लोग अब भी कहा करते हैं कि चन्द्रमा मे चौगडे (खरगोश) का बास है। इसी घटना को लेकर लोगो ने इस स्थान पर एक स्तूप बनवाया है[1]।

इस देश को छोड कर और गगा पर ३०० ली चल कर हम 'चेनगू' देश को गये।

चेनगू (गाजीपुर[2])

इस राज्य का क्षेत्रफल २००० ली के लगभग है। इसकी राजधानी जो गगा के किनारे पर हैं लगभग १० ली के घेरे मे है। निवासी सुखी और सम्पत्ति-सम्पन्न हैं तथा नगर और ग्राम बहुत निकट निकट बसे हुये हैं। भूमि उत्तम और उपजाऊ है तथा नियमानुसार बोई जोती जाती हैं। प्रकृति कोमल और उत्तम है तथा

---

(1) इसी कथानक को लेकर एक जातक बना हैं जिसमे चौगडे का विस्तृत वृतान्त लिखा हुआ है।

(2) कनिंघम साहब इस स्थान का निश्चय बनारस से ठीक ५० मील पूर्व गगा नदी के किनारे गाजीपुर नामक कसबे के साफ करते हैं। इसका प्राचीन हिन्दू नाम गर्जपुर था।

मनुष्य आचरण के शुद्ध और ईमानदार होने पर भी स्वभाव के क्रोधी और अ नशील हैं। इनमे से कितने ही अन्य धर्मावलम्बी और कितने ही बौद्ध धर्मावलम्बी कोई दस संघाराम है जिनमें १००० से भी कम हीनयान-सम्प्रदायी साधु नि करते हैं। भिन्न धर्मावलम्बियो के कोई २० मन्दिर हैं जिनमे अनेक मतावल अपनी अपनी प्रथानुसार उपासना किया करते है।

राजधानी के पश्चिमोत्तर वाले संघाराम मे एक स्तूप अशोक राजा बनवाया हुआ है। भारतीय इतिहास से पता चलता है कि इस स्तूप मे बहुत बौद्धावशेष रक्खा है। प्राचीन काल मे बुद्ध भगवान ने इस स्थान पर निवास क सात दिन तक देव-समाज को धर्म का उपदेश किया था।

इसके अतिरिक्त गत तीनो बुद्धो के बैठने और चलने फिरने के भी चि वर्तमान हैं।

इसके निकट ही मैत्रेय बोधिसत्व की मूर्ति बनी हुई है। यद्यपि इसका आक छोटा है परन्तु प्रभाव बडा भारी है, जिसका कि परिचय समय समय पर ब विलक्षणता से प्रकट होता रहता है।

मुख्य नगर के पूर्व २०० ली चलकर हम एक संघाराम मे पहुचे जिसका ना 'अविद्धकर्ण' है[1]। यद्यपि इसकी लम्बाई चौड़ाई अधिक नही है परन्तु बनावट बहु सुन्दर है। इसके बनाने मे बहुत द्रव्य और कारीगरी से काम लिया गया है। सा गम्भीर और सुयोग्य हैं तथा अपने कर्तव्य का पालन बहुत समुचित रीति से करते हैं यहाँ का इतिहास इस प्रकार है कि प्राचीन काल मे दो या तीन श्रमण हिमालय पहा के उत्तरवाले तुषार-प्रदेश मे निवास करके, धर्म और विद्या का अध्ययन बडे परिश्र से करते थे। इन लोगों के सिद्धन्तो मे कुछ भेद न था तथा प्रत्येक दिन उपासना औ पाठ के समय ये लोग कहा करते थे कि धर्म के विशुद्ध सिद्धान्त बहुत गुप्त हैं, विन

---

(1) ह्वेनसांग ने जो दूरी लिखी है उससे मालूम होता है कि यह स्थान उस स्थान पर होगा जहाँ पर आज-कल बलिया नगर बसा हुआ है। बलिया के पूर्व मे एक मील पर बोकापुर नामक एक गाँव है। जनरल कनिंघम साहब की राय है कि यह शब्द अविद्धकर्णपुर का अपभ्रंश है। सम्भव है यह वही विहार हो जिसको फ़ाहियान ने जनशून्य लिखा है, परन्तु चीनी शब्द काङ्गरी (जिसका अर्थ जङ्गल है) से जनरल साहब वृहदारण्य का तात्पर्य निकालते हैं, और 'विद्धकर्ण' शब्द उसी से बिगड कर बना हुआ निश्चय करते हैं। जनरल साहब की राय कहाँ तक ठीक है इसका निश्चय करना कठिन है।

अच्छी तरह पर विचार किये—केवल मौखिक वार्तालाप से—उनकी थाह नही मिल सकती। बुद्ध भगवान के जो कुछ पुनीत चिह्न हैं वे स्वय विलक्षण प्रकाश से प्रकाशित है, इस कारण हम लोगो को चलकर उनके दर्शन करने चाहिए और इस यात्रा मे जो कुछ हमको अनुभव हो उमका वृत्तान्त अपने अन्य मित्रो पर भी प्रकट करना चाहिए।

यह विचार करके वे दोनो तीनो साधु अपना अपना धर्म-दण्ड लेकर यात्रा के लिए चल खडे हुए। परन्तु भारतवर्ष मे आकर जिस सङ्घाराम के द्वार पर वे लोग गये वही से अनादर सहित निकाले गये, क्योकि वे लोग सीमान्त प्रदेश के निवासी थे। कही पर भी उनको स्थान न मिला कि जहाँ ठहर कर आँधी पानी और भूख-प्यास के कष्टो से बचकर वे लोग आराम पाते। मारे क्लेशो के उनका शरीर मुर्झा कर अस्थि-मात्र रह गया और मुख पीला पडकर श्रीहीन हो गया। इस तरह से घूमते घूमते एक दिन उनकी भेट इस दश के राजा से हुई, जो अपने राज्य मे दौरा कर रहा था।

इन लोगो को देखकर राजा को बडा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "हे महात्माओ! आप लोग किस देश से आते हैं? आपके कान क्यो नही छिदे[1] हैं? और आपके वस्त्र मटीले रङ्ग के क्यो हैं?" श्रमणो ने उत्तर दिया, "हम लोग तुखार-प्रदेश के निवासी हैं। परमोत्तम सिद्धान्तो के भक्त होकर और सासारिक बन्धनो को लात मार कर हम लोग विशुद्ध धर्म का अनुसरण कर रहे है और पुनीत बुद्धावशेप के दर्शनो के लिए आये हैं, परन्तु शोक! कि हमारे पापो ने हमको इस लाभ से वञ्चित कर दिया है। भारताय श्रमण हमको आश्रय नही देते हैं, इस कारण विवश होकर हम लोग अपने देश को लौट जायंगे। परन्तु हमारी यात्रा अभी समाप्त नही हुई है इसलिए अनेक मानसिक और शारीरिक कष्टो को सहन करते हुए भी हम लोग अपने सङ्कल्प पर दृढ हैं।"

राजा इन शब्दो को सुनकर बहुत दुखित हुआ तथा दयार्द्र होकर उसने इस स्थान पर इस मनोहर सङ्घाराम को बनवाया और एक लेख इस अभिप्राय का लिखकर लगा दिया कि "मैं अकेला ससार का स्वामी हूँ, मेरा यह प्रभाव त्रिपिटक (बुद्ध, धर्म और सङ्घ) की कृपा का फल है। इसी से लोग मेरा आदर करते हैं। मनुष्यो का अधिपति होने के कारण बुद्ध भगवान् की आज्ञानुसार मेरा यह आवश्यक धर्म है कि मैं उन लोगो की रक्षा और सेवा करूँ जो धार्मिक वस्त्र से आच्छादित हैं। मैंने इस सङ्घाराम को केवल विदेशियो की सेवा के लिए निर्माण किया है। मेरे इस

(1) अविद्धकर्ण नाम पडने का यही कारण है।

सङ्घाराम मे कोई भी ऐसा साधु, जिसके कान छिदे हुए होगे, न निवास कर सकेगा।" इसी कारण से इस स्थान का नाम अविद्धकर्ण पड गया है।

अविद्धकर्ण सङ्घाराम के दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग १०० ली चलकर और गङ्गा के दक्षिण मे जाकर हम 'महाशार' नगर[1] मे पहुचे। इस नगर के सब निवासी ब्राह्मण हैं जो बौद्ध धर्म से प्रेम नही करते। परन्तु यदि किसी श्रमण से उनकी भेट हो जाती है तो वे लोग पहले उसकी विद्या की परीक्षा करते हैं, यदि वह वास्तव में पूर्ण विद्वान् होता है तो उसका आदर करते है।

गङ्गा के उत्तरी तट पर[2] नारायण देव का एक मन्दिर है। इसका सभा-मण्डप और शिखर बडी कारीगरी और लागत से बनाया गया है। देवता की मूर्ति बडी कारीगरी के साथ पत्थर की बनाई गई है। यह आदमी के कद के बराबर है! इस मूर्ति मे जो जो अद्भूत चमत्कार प्रदर्शित होते रहते हैं उनका वर्णन करना कठिन है।

इस मन्दिर के पूर्व मे लगभग ३० ली चलकर एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ मिलता है जिसका आधे से अधिक भाग भूमि मे धँसा हुआ हैं। इसके अगले भाग मे एक शिला-स्तम्भ लगभग २० फीट ऊँचा लगा हुआ है जिसके ऊपरी भाग मे सिंह की मूर्ति बनी हुई है। इस स्तम्भ पर राक्षसो के परास्त करने का वृत्तान्त खुदा हुआ है। प्राचीन काल मे इस स्थान पर बहुत से राक्षस निवास किया करते थे। वे अपने बल और सामर्थ्य से मनुष्यो को मारकर उनका मांस और रक्त भक्षण कर लिया करते थे। इनके इन अत्याचारो से इस प्रान्त के सब मनुष्य अत्यन्त भयभीत और विकल हो गये थे। तब प्राणीमात्र पर दया करने वाले तथागत भगवान् ने इस स्थान के मनुष्यो की दुर्दशा पर तरस खाकर अपने प्रभाव से उन राक्षसों को अपना शिष्य बनाया था। उन राक्षसो ने भी भगवान् की शरण लेकर (क्वाईई[3]) हिंसा का परित्याग कर दिया था।

---

(1) 'महाशार' नगर मारटीन साहब की राय मे, आरा के पश्चिम मे ६ मील पर 'मशार' नामक गाँव है।

(2) कनिंघम साहब का विचार है कि यात्री ने रेवलगञ्ज के निकट गंगा को पार किया होगा, जो मशार के उत्तर ठीक १६ मील के फ़ासले पर है, और जो गंगा और घाघरा संगम के कारण पवित्र माना जाता है।

(3) चीनी शब्द 'क्वाईई' और संस्कृत के 'शरण' शब्द में कुछ अन्तर नही है, और इसी शब्द को लेकर जनरल कनिंघम साहब का विचार है कि इस ज़िले का नाम 'सारन' हो गया है।

राक्षसो ने उनसे शिक्षा ग्रहण करके बडी भक्ति के साथ भगवान् की प्रदक्षिणा की, फिर एक पत्थर लाकर बुद्ध भगवान् से प्रार्थी हुए कि कृपा करके इस पर बैठ जाइए और विशुद्ध धर्म का उपदेश इस प्रकार दीजिए कि हम लोग अपने मन और विचारो को अधीन कर सके। राक्षसो का रक्खा हुआ पत्थर अब तक मौजूद है। विरोधियो ने उसके हटाने का बहुत प्रयत्न किया, यहाँ तक कि १०,००० मनुष्यो ने एक साथ उसको हटाना चाहा परन्तु वह तिल-मात्र भी न सरका। स्तूप के दहिने और बाएँ दोनो ओर सघन वृक्ष और स्वच्छ तडाग सुशोभित हैं, इनका ऐसा प्रभाव है कि निकट आते ही सब दुख भाग जाता है।

उस स्थान के पास ही, जहाँ राक्षस चेले हुए थे, बहुत से सङ्घाराम बने हुए हैं जो अधिकतर अब खँडहर हो गये हैं, तो भी कुछ साधु उनमे निवास करते हैं। ये महायान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

यहाँ से दक्षिण-पूर्व मे लगभग १०० ली चलकर हम एक टूटे-फूटे स्तूप के निकट पहुँचे जिसका दस बीस फीट ऊँचा भाग अब तक वर्तमान है। प्राचीन काल मे तथागत के निर्वाण प्राप्त करने पर उनके शरीरावशेष को आठ नरेशो ने बाँट लिया था। विभाग करने वाले ब्राह्मण न अपने शहद लगे हुये घडे मे भर भर कर सबका भाग बाँटा था, और आप अन्त मे घडा लेकर चला गया था। अपने देश मे पहुँच कर उसने उस पात्र के भीतर का चिपटा हुआ अवशेष खुरचकर एक स्तूप बनवाया, तथा उस पात्र को भी प्रतिष्ठा देने के लिये स्तूप के भीतर रख दिया था। इसीलिये इस स्तूप का नाम 'द्रोणस्तूप[1]' है। इसके कुछ दिनो बाद अशोक राजा ने स्तूप को तोड कर बुद्धावशेष और उस घडे को निकाल लिया और प्राचीन स्तूप के स्थान पर एक नवीन और बडा स्तूप बनवा दिया। अब तक उत्सव के दिन इसमे से बडा प्रकाश निकला करता है।

यहाँ से पूर्वोत्तर की ओर चलकर और गङ्गा नदी पार करके लगभग १४० या १५० ली की दूरी पर हम 'फयीशीलो, प्रदेश मे पहुँचे।

---

(1) द्रोण-स्तूप (जिसको टर्नर साहब 'कुम्भन-स्तूप' कहते हैं) अजातशत्रु राजा का बनवाया हुआ है (देखो अशोकावदान), और कदाचित् 'देगवार' ग्राम के निकट कही पर था। इसका नाम स्वर्णघट स्तूप भी है। ब्राह्मण का नाम द्रोण, द्रोह या दौन भी लिखा मिलता है। 'द्रोण शब्द चीनी भाषा के 'पइग' शब्द के समान है, जिसका अर्थ घडा या पात्र होता है। जुलियन साहब 'द्रोण' शब्द का अर्थ पैमाना करते हैं और इसीलिये 'पइग' शब्द को तर्क समझते हैं, परन्तु इसका अर्थ घडा या पात्र भी है, बल्कि इस अवस्थाविशेष मे ब्राह्मण का घडा।

फयीशीली (वैशाली[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग पाँच हजार ली है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है फल और फूल बहुत अधिक होते है, विशेष कर आम्र और मोच (केला) के फल, तथा लोग इनकी कदर भी बहुत करते हैं। प्रकृति स्वाभाविक और सह्य है तथा मनुष्यो का आचरण शुद्ध और सच्चा है। ये लोग धर्म से प्रेम और विद्या की बडी प्रतिष्ठा करते है। विरोधी और बौद्ध दोनो मिल-जुलकर रहते हैं। कई सौ सङ्घाराम यहाँ पर थे परन्तु सबके सब खँडहर हो गये है, जो दो चार बाकी भी हैं उनमे या तो साधु नही हैं, और यदि है तो बहुत कम। दस बीस मन्दिर देवताओ के हैं जिनमे अनेक मतानुयायी उपासना करते है।

वैशाली का प्रधान नगर अत्यन्त अधिक उजाड़ है। इसका क्षेत्रफल ६० से ७० ली तक और राजमहल का विस्तार ४ या ५ ली के घेरे मे है। बहुत थोडे से लोग इसमे निवास करते है। राजधानी के पश्चिमोत्तर ५ या ६ ली की दूरी पर एक सङ्घाराम है। इसमे कुछ साधु रहते हैं। ये लोग सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

इसके पास एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर तथागत भगवान ने विमल कीर्ति को सूत्र का उपदेश दिया था, तथा एक गृहस्थ के पुत्र रत्नाकर तथा औरो ने एक बहुमूल्य छत्र बुद्धदेव के अर्पण किया था। इसी स्थान पर शारिपुत्र तथा अन्य लोगों ने अरहट दशा को प्राप्त किया था।

इस अन्तिम स्थान के दक्षिण-पूर्व मे एक स्तूप वैशाली के राजा का बनवाया हुआ है। बुद्ध भगवान के निर्वाण के पश्चात् इस स्थान के किसी प्राचीन नरेश ने

---

(1) यात्री ने गङ्गा नही बल्कि गण्डक नदी पार की होगी जो द्रोण-स्तूप या देगवारा से लगभग १२ मील है, और इसलिए गडक के पूर्व मे 'वैशाली' होगा, जिसको जनरल कनिंघम साहब वर्तमान 'वेशाड' गाँव निश्चय करते है। यहाँ अब भी एक डीह है जिसको लोग राजा विशाल का गढ कहते हैं। यह स्थान देगवार से उत्तर-पूर्व २३ मील पर है। वैशाली स्थान वृज्जी य. वज्जी जाति के लोगो का मुख्य नगर था। ये लोग उत्तर-प्रदेश से आकर इस प्रान्त मे बस गये थे। इनका अधिकार उत्तर मे पहाड के नीचे से दक्षिण मे गंगा के किनारे तक और पश्चिम मे गण्डक से लेकर पूर्व मे महानदी तक था। ये लोग यहाँ पर कब आये और कितने प्राचीन है इसका पता नही, परन्तु बौद्ध-पुस्तको के निर्माण का जो काल है वही इनका भी है। चीनी ग्रन्थकारो ने भी इनका उल्लेख किया है।

बुद्धावशेष का कुछ भाग पाया था, और उसी के ऊपर उसने यह अत्यन्त बृहद् स्तूप का निर्माण कराया[५]।

भारतीय इतिहास से विदित होता है कि पहले इस स्तूप मे बहुत सा शरीराव-शेष था। अशोक राजा ने उसको खोलकर उसमे से निकाल लिया और केवल एक भाग रहने दिया था। इसके पश्चात् इस देश के किसी नरेश ने द्वितीय बार इस स्तूप को खुदवाना चाहा था। परन्तु उसके हाथ लगाते ही भूमि विकम्पित हो उठी, जिससे वह नरेश भयभीत होकर चला गया।

उत्तर-पश्चिम मे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है जिसके पास एक पत्थर का स्तम्भ ५० या ६० फीट ऊँचा बना हुआ है। इसके शिरोभाग मे सिंह[२] की मूर्ति बनी हुई है। इस स्तम्भ के दक्षिण मे एक तडाग (मर्कटह्लद) है जिसको बन्दरो ने बुद्ध भगवान् के लिए बनाया था' तथागत भगवान् जब तक ससार मे रहे तब तक बहुधा यहाँ पर आकर निवास किया करते थे। इस तडाग के दक्षिण मे थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जहाँ पर बुद्ध भगवान् का भिक्षा पात्र लेकर बन्दर लोग वृक्ष पर चढ गये थे और उसको शहद से भर लाये थे।

इसके दक्षिण मे थोडो दूर पर स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर बन्दरो ने शहद लाकर बुद्धदेव के अपण[3] किया था। तडाग के पश्चिमोत्तर कोण मे एक बन्दर की मूर्ति अब भी बनी हुई है।

सघाराम के उत्तर-पूर्व मे ३ या ४ ली की दूरी पर एक स्तूप उस स्थान पर

---

(1) लिच्छवी के लोगो ने भाग पाया था और स्तूप को बनवाया था। सांची के दृश्य मे यह स्तूप दिखाया गया है। इसमे के मनुष्यो की सूरत से प्रकट होता है कि वे लोग उत्तरीय जातिवाले थे। उनके बाल और वाद्य-यन्त्रादि भी उसी प्रकार के हैं जैसे यूची लोगो के वृत्तान्त मे पाये जाते हैं। पाली भापा की तथा उत्तर-देशीय बौद्धो की पुस्तको मे लिखा है कि लिच्छवी लोगो का रग जैसा साफ था वैसे ही उनके वस्त्रादि भी थे। इन सब बातो पर ध्यान देने से यही विदित होता है कि ये लोग यूची जाति के थे।

(2) लिच्छवि लोग सिंह कहलाते थे इस कारण कदाचित् यह सिंह भी उसको का बोधक हो।

(3) इस घटना का भी एक चित्र सांची मे पाया गया है। यह एक स्तम्भ पर बना हुआ है जो वैशाली लोगो की कारीगरी का नमूना है।

बना हुआ है जहाँ पर विमलकीर्ति[1] का मकान था। इस स्थान पर अनेक अद्भुत दृश्य दिखलाई देते हैं।

इसके निकट ही एक समाधि बनी है[2] जो केवल ईंटो का ढेर है। कहा जाता है कि यह ढेर ठीक उस सथन पर है जहाँ पर रुग्नावस्था मे विमलकीर्ति ने धर्मोपदेश दिया था।

इसके निकट ही एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर रत्नाकर का निवास-भवन था।

इसके निकट एक स्तूप और है। यह वह स्थान है जहाँ पर आम्रकन्या[3] का प्राचीन वासस्थल था। इसी स्थान पर बुद्ध की चाची और अन्य भिक्षुनियो ने निर्वाण प्राप्त किया था।

संघाराम के उत्तर मे ३ या ४ ली की दूरी पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर तथागत भगवान् आकर उस समय ठहरे थे, जब वह मनुष्यो और किन्नरो[4] को साथ लिये हुए निर्वाण प्राप्त करने कुशीनगर को जाते थे। यहाँ से थोडी दूर पर उत्तर-पश्चिम दिशा मे एक और स्तूप है। इसी स्थान से बुद्धदेव ने अन्तिम बार वैशाली नगरी का अवलोकन किया था। इसके दक्षिण मे थोडी दूर पर एक विहार है जिसके सामने एक स्तूप बना हुआ है। यह वह स्थान है जहाँ पर आम्रकन्या का बाग़ था, जिसको उसने बुद्धदेव को अर्पण कर दिया था।

इस बाग के निकट ही एक स्तूप उस स्थान पर बना हुआ है जिस स्थान पर तथागत भगवान् ने अपनी मृत्यु का समाचार प्रकट किया था। पूर्व काल में जब बुद्धदेव इस स्थान पर निवास करते थे तब उन्होंने 'आनन्द' से यह कहा था, "वे लोग जिनको

---

(1) विमलकीर्ति वैशाली का निवासी और बौद्धधर्म का माननेवाला था। यद्यपि पुस्तको मे उसका वृत्तान्त बहुत थोड़ा मिलता है परन्तु तो भी ऐसा मालूम होता है कि उसने चीन की यात्रा की थी।

(2) कदाचित् यह समाधि किसी वज्जन जातिवाले चेतयानी या यक्ष चेतयानी की होगी जिसका वृत्तान्त महाराणो तथा अन्य स्थानो मे मिलता है।

(3) यह एक वेश्या थी जिसका नाम अम्बपाली भी था। इसके जन्मादि का इतिहास Manual of Buddhism मे लिखा है।

(4) किन्नर कुवेर के यहाँ गानेवाले कहलाते हैं; जिनका मुख घोड़े समान बताया जाता है। साँची के चित्रो मे इन लोगो का भी स्वरूप बना हुआ है। जिस पत्थर पर यह चित्रकारी बनी है वह पत्थर वैशाली ही का है।

चारो प्रकार का आध्यात्मिक बल प्राप्त है, कल्पपर्यन्त जीवित रह सकते हैं, फिर तथागत की मृत्यु का कौन सा काल निश्चय हो सकता है ?" बुद्धदेव ने यही प्रश्न तीन बार आनन्द से पूछा परन्तु 'आनन्द' 'मार' के वशीभूत हो रहा था इस कारण उसने कुछ उत्तर नही दिया। इसके उपरान्त आनन्द अपने स्थान से उठकर जङ्गल मे चला गया और वहाँ जाकर चुपचाप विचार करने लगा। उसी समय 'मार' बुद्धदेव के निकट आया और कहने लगा, "आपको ससार मे रहते और लोगो को धर्मोपदेश देते और शिष्य करते बहुत दिन हो गये। जिन लोगो को आपने जन्ममरण के बन्धन से मुक्त कर दिया है उनकी सख्या बालू के कणो के बराबर है। अतएव अब उचित समय आ गया कि आप निर्वाण के सुख को प्राप्त करे। तथागत भगवान् ने बालू के कुछ कण अपने नाखून पर रख कर 'मार' से पूछा, "मेरे नख पर के कण ससार भर की मिट्टी के बराबर हैं या नही ?" उसने उत्तर दिया, "पृथ्वी भर की धूल परिमाण मे इन कणो से अत्यन्त अधिक है।" तब बुद्ध भगवान् ने उत्तर दिया, "जिन लोगो की रक्षा की गई है उनकी सख्या मेरे नख पर के कणो के बराबर है, और जो अब तक सन्मार्ग पर नही लाये गये है उनकी सख्या पृथ्वी के कणो के तुल्य है, तो भी तीन मास के उपरान्त मैं शरीर त्याग करूँगा।" मार इसको सुनकर प्रसन्न हो गया और चला गया।

इसी समय आनन्द ने जगल मे बैठे हुए अकस्मात् एक अद्भुत स्वप्न देखा और बुद्ध भगवान् के निकट आकर उसका वृत्तान्त इस प्रकार निवेदन किया—"मैं जगल मे बैठा ध्यान कर रहा था कि मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा। मैंने देखा कि एक बडा भारी वृक्ष है जिसकी डाले और पत्तियाँ बहुत दूर तक फैली हुई हैं, और खूब सघन छाया कर रही हैं। अकस्मात् एक बडी भारी आँधी आई और वह वृक्ष पत्तियो और डालियो समेत ऐसा उखड गया कि उसका चिन्ह भी उस स्थान पर न रह गया। शोक ! मुझको मालूम होता है कि भगवान् अब शरीर त्याग करने वाले है। मेरा चित्त शोक से विकल हो रहा है। इसलिए मैं आपसे पूछने आया हूँ कि क्या यह सत्य है ? क्या ऐसा होनेवाला है ?"

बुद्ध भगवान् ने उत्तर दिया, "आनन्द ! मैने तुमसे पहले ही प्रश्न किया था परन्तु तुम 'मार' के ऐसे वशीभूत हो रहे थे कि तुमने कुछ उत्तर ही नही दिया। मेरे ससार मे वर्तमान रहने की प्रार्थना तुमको उसी समय करनी चाहिए थी। 'मार राजा' ने मुझ पर बहुत दबाव डाला और मैंने उसको वचन दे दिया, तथा समय भी निश्चित कर दिया, इसी सबब से तुमको ऐसा स्वप्न हुआ।"

इस स्थान के निकट एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर हजार पुत्रो ने अपने

माता-मिता का दर्शन किया था। प्राचीन काल में एक बहुत बड़ा ऋषि था जो घाटियो और गुफाओं मे अकेला निवास किया करता था, केवल वसन्त ऋतु के दूसरे मास मे वह शुद्ध जलधार मे स्नान करने के लिए बाहर आता था। एक दिन वह स्नान कर रहा था कि एक मृगी जल पीने के लिए आई। वह मृगी उसी समय गर्भवती हो गई जिससे एक कन्या का जन्म हुआ। इस बालिका की सुन्दरता ऐसी अनुपम थी कि जिसका जोड मानव-समाज मे नही मिल सकता था; परन्तु इसके पैर मृग के से थे। ऋषि ने उस बालिका को ले लिया और अपने स्थान पर लाकर उसका पालन किया। एक दिन जब वह कन्या सयानी हो गई, उस ऋषि ने उससे कहा कि कही से थोडी अग्नि ले आ। वह बालिका इस काम के लिए किसी दूसरे ऋषि के स्थान पर गई परन्तु जहाँ जहाँ उसका पैर पडा वहाँ वहाँ भूमि मे कमल पुष्प का चित्र अंकित हो गया। दूसरा ऋषि इस तमाशे को देखकर हैरान हो गया। उसने उस कन्या से कहा, "मेरी कुटी के चारो ओर तू प्रदक्षिणा कर, तब मैं तुझको अग्नि दूँगा।" वह कन्या उसकी आज्ञा का पालन करके और अग्नि लेकर अपने स्थान को लौट गई। उसी समय ब्रह्मदत्त राजा शिकार के लिए आया हुआ था। उसने भूमि मे कमल के चित्र देख कर इस बात की खोज की कि ये चित्र क्योकर बन गये। उन चिन्हो को देखता हुआ वह उस स्थान पर पहुँचा जहाँ वह कन्या थी। कन्या की सुन्दरता को देखकर राजा भौचक होकर मन और प्राण से उस पर मोहित हो गया और येन केन प्रकारेण उसको अपने रथ मे बैठा कर चल दिया। ज्योतिषियो ने उसके भाग्य का भविष्य इस प्रकार बतलाया कि इसके एक हज़ार पुत्र उत्पन्न होगे। राजा तो इस समाचार से बहुत प्रसन्न हो गया परन्तु उसकी अन्य रानियाँ उससे जलने लगी। कुछ दिन बाद उसके गर्भ से कमल का एक पुष्प उत्पन्न हुआ जिसमे हजार पँखुडियाँ थी, और प्रत्येक पँखुडी पर एक बालक बैठा हुआ था। दूसरी रानियो ने इस बात पर उसका बडी निन्दा की और यह कह कर कि "यह अनिष्ट घटना है" उस फूल को गगा जी मे फेक दिया, वह भी धार के साथ बह गया।

उजियन का राजा एक दिन शिकार के लिए जा रहा था। नदी के किनारे पहुँच कर उसने देखा कि एक सन्दूक पीले बादल से लपटा हुआ उसकी ओर बहता चला आ रहा है। राजा ने उसको पकड़ लिया और खोल कर देखा तो उसमे हज़ार लडके मिले। राजा उनको अपने घर लाया और बडे चाव से उनका पालन-पोषण करने लगा। थोडे दिनो मे वे सब सयाने होकर बडे बलवान् हुए। इन लोगो की वीरता के बल से वह अपना राज्य चारो ओर बढाने लगा, तथा अपनी सेना के सहारे उसको इतना बडा साहस हो गया कि वह इस देश (वैशाली) को भी जीतने के लिए उद्यत हो गया। ब्राह्मदत्त राजा इसको सुनकर बहुत भयभीत हुआ। उसको

यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि उसकी सेना चढाई करने वाले राजा का सामना कदापि नही कर सकेगी। इस कारण उसको बडी चिन्ता हो गई कि क्या उपाय करना चाहिए। परन्तु मृग-पद बालिका अपने चित्त मे जान गई कि ये लोग उसके पुत्र है। उसने जाकर राजा से कहा कि "जवान लडाके सीमा पर आ पहुँचना चाहते हैं परन्तु आपके यहाँ के सब छोटे बडे लोग साहसहीन हो रहे हैं, यदि आज्ञा होवे तो आपकी दासी कुछ कर दिखावे, वह इन आगन्तुक वीरो को जीत सकती है।" राजा को उसकी बात पर विश्वास न हुआ और उसकी घबडाहट ज्यो की त्यो बनी रही। मृग-कन्या वहाँ से चलकर नगर की सीमा पर पहुँची और चहारदीवारी के ऊपर चढ कर चढाई करने वाले वीरो का रास्ता देखने लगी। वे हजारो वीर अपनी सेना समेत आ गये और नगर को घेरने लगे। उस समय मृग-कन्या ने उनको सम्बोधन करके कहा, "विद्रोही मत बनो! मैं तुम्हारी माता हूँ, और तुम मेरे पुत्र हो।" उन लोगो ने उत्तर दिया, "इस बात का क्या प्रमाण है?" मृग-कन्या ने उसी समय अपने स्तन को दबा कर हजार धाराएँ प्रकट कर दी और वे धाराएँ, उसके दैवी बल से, उन लोगो के मुख मे प्रवेश कर गई।

इस बात को देख कर वे प्रसन्न हो गये और युद्ध को बन्द करके अपने कुटुम्बियो और सजातियो मे जाकर मिल गये। दोनो राज्यो मे प्रेम हो गया तथा प्रजा आनन्दित हो गई।

इस स्थान के निकट एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ बुद्ध भगवान् ने टहल टहल कर भूमि मे चिन्ह बनाया, और उपदेश देते समय लोग को सूचित किया कि "प्राचीन काल मे इसी स्थान पर मैं अपनी माता को देख अपने परिवार वालो से जा मिला था। तुमको मालूम होगा कि वे हजार वीर ही इस भद्रकल्प के हजार बुद्ध हैं।" बुद्ध भगवान् ने जिस स्थान पर अपना यह 'जातक' वर्णन किया था उसके पूर्व की ओर एक डीह पर एक स्तूप बना हुआ है। इसमे से समय समय पर प्रकाश निकला करता है तथा जो लोग प्रार्थना करते हैं उनकी मनोकामना पूर्ण होती है। उस उपदेश-भवन के भग्नावलेष अब तक वर्तमान हैं जहाँ पर बुद्ध भगवान् ने समन्त सुख धारणी[1] तथा अन्यान्य सूत्रो का प्रकाशन किया था।

इस उपदेश-भवन के पास ही थोडी दूर पर एक स्तूप है जिसमे आनन्द का

---

(1) यह ग्रन्थ 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' का एक भाग है। परन्तु इस ग्रन्थ की प्राचीनता उतनी अधिक नही मालूम होती जितना अधिक पुराना बुद्धदेव का समय निश्चित किया जाता है। सैमुअल बील साहब की यही राय है।

आधा शरीर[1] रक्खा हुआ है।

इसके निकट ही और भी अनेक स्तूप हैं जिनकी ठीक संख्या निश्चित नही हो सकी। यहाँ पर एक हजार प्रत्येक बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। वैशाली नगर के भीतरी भाग मे तथा उसके बाहर चारो ओर इतने अधिक पुनीत स्थान है कि उनकी गिनती करना कठिन है। परन्तु अब सबकी हालत खराब है, यहाँ तक कि जङ्गल भी काट डाले गये और झीले भी जलहीन हो गई। किसी वस्तु का ठीक ठीक पता नही लगता; केवल डीने वर्तमान है, जो हजारो वर्ष से नष्ट होते होते और प्राकृतिक फेरफार सहते सहते इस दशा को प्राप्त हुए हैं।

मुख्य नगर से पश्चिम-उत्तर की लगभग ५० या ६० ली चलकर हम एक स्तूप के निकट पहुँचे। यह विशाल स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर लिच्छवी लोग बुद्धदेव से अलग हुए थे[2]। तथागत भगवान् जब वैशाली से कुशीनगर को जाते थे, तब लिच्छवी लोग यह सुनकर कि बुद्धदेव अब शरीर त्याग करेंगे रोते और चिल्लाते हुए उनके पीछे उठ दौडे। बुद्ध भगवान् ने उनके प्रेम को विचार कर, कि शाब्दिक आश्वासन से ये लोग शान्त नही होगे, अपने आध्यात्मिक बल से एक गहरी और बडी भारी नदी, जिसके किनारे बहुत ऊंचे थे, मार्ग मे प्रकट कर दी। लिच्छवी लोगो को इस तीव्र गामिनी धारा का पार करना कठिन हो गया। वे लोग इस आकस्मिक घटना से ठहर तो गये परन्तु उनका दुख और भी अधिक बढ गया! इस समय बुद्ध भगवान् ने उनको धीरज बँधाने के लिए स्मारक-स्वरूप अपना पात्र वही पर छोड दिया।

वैशाली नगर से उत्तर-पश्चिम दो सौ या इससे कुछ कम दूरी पर एक प्राचीन नगर है जो आज-कल प्राय उजाड हो रहा है। बहुत थोडे लोग इसमे निवास करते हैं। इस नगर के भीतर एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर किसी अत्यन्त प्राचीन समय मे बुद्ध भगवान् निवास करते थे। इसका वृत्तान्त जातक बुद्धदेव ने मनुष्यो, देवताओ और बोधिसत्वो को इस प्रकार सुनाया था। उन्होने कहा था कि 'मैं पूर्वकाल मे इस नगर का राजा था। मेरा नाम महादेव था तथा सम्पूर्ण ससार'

---

(1) आनन्द के शरीर के विभाग का वृत्तान्त फाहियान की पुस्तक अ० २६ मे देखो।

(2) इसका भी विशेष वृत्तान्त फाहियान की पुस्तक अध्याय २४ मे देखो।

पर मेरा आधिपत्य था। अपनी घटती के चिह्न[1] देखकर और यह विचारकर कि शरीर का कोई ठिकाना नही है मुझे वैराग्य हो गया, जिस सबब से कि राज्य और सिहासन को परित्याग करके और सन्यासी होकर मैं तपस्या करने लगा था।"

नगर से दक्षिण-पूर्व १४ या १५ ली चलकर हम एक वडे स्तूप के निकट पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ पर सात सौ साधुओ और विद्वानो की सभा[2] हुई थी। बुद्ध निर्वाण के ११० वर्ष पश्चात् वैशाली के भिक्षुओ ने शिष्य-धर्म के नियमो को तोड कर बुद्ध-सिद्धान्तो को बिगाड डाला था। उस समय 'यशद आयुष्मत' कोशल देश मे, सम्भोग आयुष्मत मथुरा मे, रेवत आयुष्मत हान जो (कन्नौज ?) मे, शाल आयुष्मत वैशाली मे और पूजा सुमिर आयुष्मत शालोलीफो (सलीरभ?) देश मे, निवास करते थे। ये सब विद्वान् अरहट एक से एक वढ कर तीनो विद्याओ के जाननेवाले और तृपिटक के भक्त थे तथा जो कुछ जानना चाहिए उसको आनन्द की शिष्यता मे जानकर बहुत प्रसिद्ध हुए थे।

वैशालीवालो की धृष्टता पर खिन्न होकर यशद ने सब विद्वान् और महात्माओ को वैशाली मे सभा करने के लिए बुला भेजा। सब लोग आकर एकत्रित हो गये परन्तु सात सौ की सख्या पूर्ण होने मे फिर भी एक व्यक्ति की कमी रह गई। उसी समय, फुसी सुमीलो (पूजासुमिर) ने अपने अन्त.चक्षु से यह विचार कर कि सब महात्मा लोग सभा मे आ चुके हैं और पुनीत धर्म के कार्य को सम्पादन करना चाहते है, अपने आध्यात्मिक प्रभाव से सभा मे पहुँच कर उस कमी को पूरा कर दिया।

तब सम्भोग आयुष्मत सबको दण्डवत् करके और अपनी दाहिनी छाती खोल कर सभा के बीच मे खडा हो गया। उसने चिल्ला कर कहा, "सब सभासद् चुप हो जायँ और भक्तिपूर्वक मेरी बातो पर विचार करे। हमारे धर्मेश्वर बुद्ध भगवान् हम लोगो की सब प्रकार रक्षा करके निर्वाण को प्राप्त हो गये। यद्यपि उस समय से लेकर अब तक अनेक वर्ष और मास व्यतीत हो गये हैं परन्तु तो भी उनके शब्द और उपदेश अब तक जीवित हैं। अब आज-कल वैशाली के भिक्षु लोग उनकी आज्ञा को बिगाड रहे हैं और धार्मिक नियमो मे भूल कर रहे हैं। सब मिलाकर दस विषय हैं, जिनमे उन लोगो ने बुद्धदेव के वचनो का उल्लङ्घन किया है। हे विद्वान्

---

1) सबसे प्रथम घटती के चिह्न सिर मे सफेद वाल दिखाई पडे थे, जिनको देखकर महादेव ने पुत्र को राज्य देकर वन का रास्ता लिया था।

(2) इस सभा का नाम 'द्वितीय बौद्ध-सभा' है। इसके विशेष वृत्तान्त के लिए देखो 'विनयपिटक' जि० १।

महात्माओ ! आप उन भूलो को अच्छी तरह जानते है और उस धुरंधर विद्वान् आनन्द की शिक्षा से भी भली भांति अभिज्ञ हैं। इसलिए हम सबका धर्म है कि बुद्धदेव की भक्ति करते हुए उनके पवित्र आदेशो का फिर से निरूपण करे।"

सम्पूर्ण सभासद् इस बात को सुनकर दुखित हो गये। उन लोगो ने वैशाली वालो को बुला भेजा और 'विनय' के अनुसार उन पर धर्मोल्लङ्घन का दोष लगा कर और उनके विगाडे हुए नियमो को दूर करके पवित्र धर्म के नियमो को नवीन रूप से स्थापित किया।

इस स्थान से ८० या ९० ली दक्षिण दिशा मे जाकर हम श्वेतपुर नामक सघाराम मे पहुँचे। इसकी दुमञ्जिली इमारत पर गोल गोल ऊँचे ऊँचे शिखर आकाश से बाते करते हैं। यहां के साधु शान्त और आदरणीय हैं, तथा महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते है। इसके पार्श्व मे चारों गत बुद्धों के उठने बैठने आदि के चिन्ह बने हुए हैं।

इन चिह्नो के निकट एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ उस स्थान पर है जहां पर बुद्धदेव ने दक्षिण दिशा मे मगधदेश को जाते हुए, उत्तरमुख खडे होकर वैशाली नगरी को नजर भर कर देखा था, और सडक पर, जहाँ से खड़े होकर उन्होंने देखा था, इस दृश्य के चिह्न हो गये थे।

श्वेतपुर सघाराम के दक्षिण-पूर्व मे लगभग ३० ली का दूरी पर गंगा के दोनो किनारो पर एक एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहा पर महात्मा आनन्द का शरीर दो राज्यो मे विभक्त हुआ था। आनन्द तथागत भगवान् के वंश का था। वह उनके चचा का पुत्र[1] था। वह बहुत योग्य शिष्य, सब सिद्धान्तो का जानने वाला तथा प्रतिभासम्पन्न सुशिक्षित व्यक्ति था। बुद्ध भगवान् के वियोग होने पर महाकाश्यप का स्थानापन्न और धर्म का रक्षक भी वही बनाया गया था। तथा वही व्यक्ति मनुष्यो का सुधारक और धर्मोपदेशक नियत किया गया था। उसका निवास स्थान मगधदेश के किसी जङ्गल मे था। एक दिन इधर-उधर घूमते हुए उसने क्या देखा कि एक श्रमण एक सूत्र का ऊटपटांग पाठ कर रहा है जिससे कि सूत्र के अनेक शब्द और वाक्य अशुद्ध हो गये है। आनन्द उस सूत्र को सुनकर दुखी हुआ। वह बडे प्रेम से उस श्रमण के पास गया, और उसकी भूल-दिखा कर उसने उसे बतलाया कि इसका ठीक ठीक पाठ इस प्रकार है। श्रमण ने हँस कर उत्तर दिया, "महाशय ! आप बुद्ध है, आपका शब्दोच्चारण अशुद्ध है। मेरा गुरु बड़ा विद्वान् है, उसने वर्षों परिश्रम करके अपनी विद्वत्ता को परिपुष्ट किया है तथा मैंने स्वयं जाकर

(1) आनन्द राजा शुक्लोदन का पुत्र था।

उससे ठीक ठीक उच्चारण और पाठ सीखा है, इससे मेरे पाठ मे भूल नही है।" आनन्द वहा से चुप होकर चला गया परन्तु उसको बडा शोक हुआ। उसने कहा, "यद्यपि मेरी बहुत अवस्था हो चुकी है तो भी मनुष्यो की भलाई के लिए मेरी इच्छा थी कि और अधिक दिन ससार मे रहकर सत्य-धर्म की रक्षा करू और लोगो को धर्माचरण सिखलाऊँ परन्तु अब मनुष्य पापी हो चले हैं, इनको सिखला कर सन्मार्ग पर लाना कठिन है। इसलिए अब अधिक दिन ठहरना व्यर्थ ही होगा।" यह विचार कर वह मगधदेश को परित्याग करके वैशाली नगर की ओर रवाना हुआ। जिस समय वह नाव मे बैठ कर गगा नदी उतर रहा था उसी समय मगधनरेश, यह सुन कर कि आनन्द अब ससार परित्याग करेगे, बहुत दुखित होकर और झटपट रथ पर सवार होकर सेना-समेत गगा नदी के दक्षिणी तट पर पहुँच गया और दूसरी तरफ़ से वैशाली-नरेश भी आनन्द का आना सुनकर बडे शोक के साथ द्रुतगति से उससे मिलने के लिए उठ दौडा। उसकी भी अगणित सेना गगा के दूसरे किनारे (उत्तरी किनारे) पर पहुँच गई। दोनो सेनाओ का मुकाबिला हो गया तथा दोनो ओर से अस्त्र-शस्त्र और ध्वजा-पताका धूप मे चमकने लगी। आनन्द, यह भय खाकर कि दोनो सेनाये लड मरेगी और व्यर्थ को बडा भारी संग्राम हो जायगा, अपने शरीर को नाव मे से उठा कर अबर मे जा पहुचा, और वहाँ पर अपने अद्भुत चमत्कार को दिखा के निर्वाण को प्राप्त हो गया। लोगो ने देखा कि अधर मे लटका हुआ आनन्द का शरीर भस्म हो गया और उसकी हड्डियाँ दो भाग होकर भूमि पर गिर पडी, अर्थात् एक भाग नदी के दक्षिणी किनारे पर और दूसरा भाग उत्तरी किनारे पर। दोनो राजा अपना अपना भाग उठाकर अपनी अपनी सेना के समेत आनन्द के शोक मे रोते हुए लौट गये, और अपने अपने स्थान मे जाकर उन्होने ने उन भागो पर स्तूप बनवाये।

यहाँ से ५०० ली के लगभग पूर्वोत्तर दिशा मे जाकर हम फ़ालीशी देश मे पहुचे।

फोलीशी [वृज्जी[1]]

इस राज्य का क्षेत्रफल ४,००० ली है। यह देश पूर्व से पश्चिम तक अधिक

(1) यह देश उत्तर-भारत मे था, इसको लोग समवृज्जी भी कहते हैं। वृज्जी अथवा लोगो की सम्मिलित आठ जातिया थीं जिनमे से एक लिच्छवीय भी थे, जिनका वर्णन वैशाली के वृत्तान्त मे आया है। ये लोग भारत के उत्तर से आकर बहुत प्राचीन समय मे यहा पर बस गये थे, परतु कुछ दिनो के बाद मगध-नरेश अजातशत्रु ने इनको फिर निकाल बाहर किया था।

फैला हुआ है परन्तु उत्तर से दक्षिण की ओर संकीर्ण है। भूमि उपजाऊ और उत्तम है, तथा फल और फूल बहुत होते है। प्रकृति शीतल तथा मनुष्य फुरतीले और मेहनती हैं। अधिकतर लोग भिन्न धर्मावलम्बी है, केवल थोडे से मनुष्य बुद्ध धर्म पर विश्वास करनेवाले हैं। कोई दस संघाराम है जिनमे १,००० से कुछ कम सन्यासी हीनयान और महायान दोनो सम्प्रदायो का अनुसरण करने वाले रहते हैं। देवताओं के बीसो मन्दिर हैं तथा उनके उपासक भी अगणित हैं। राजधानी का नाम चेनशुन[1] है। यह उजाड दशा मे है। यद्यपि अब भी इसमे ३,००० के लगभग मकान बने हैं परन्तु इसकी अवस्था एक ग्राम या छोटे कसबे से अधिक नही है।

नदी के पूर्वोत्तर एक सघाराम है जिसमे साधु तो थोडे है, परन्तु है सब शुद्ध, विद्वान् और सच्चरित्र।

यहा से पश्चिम दिशा मे नदी के किनारे किनारे चलकर हम एक स्तूप के निकट पहुँचे जो ३० फीट ऊचा है। इसके दक्षिण की ओर एक गहरी खाई है, बुद्ध भगवान् ने इस स्थान पर कुछ मछुवो को अपना शिष्य बनाया था। प्राचीन काल मे ५०० मछुवे यहां पर मिल-जुल कर मत्स्य पकड रहे थे कि अकस्मात् एक बडा भारी मत्स्य उनके जाल में फँस गया जिसके कि अठारह सिर और प्रत्येक सिर मे दो नेत्र थे। उन मछुओं ने उस मत्स्य को मार डालना चाहा, परन्तु तथागत भगवान् जो उन दिनो वैशाली मे थे, और इस स्थान के सारे दृश्य को अपने अन्त-चक्षु से देख रहे थे, अत्यन्त दयालु होकर और इस अवसर को लोगो की शिक्षा के लिए बहुत उपयुक्त समझ कर तथा मनुष्यो का हृदयान्धकार दूर करने के मिस, अपनी सभा से बोले, "वृज्जी प्रदेश मे एक बडा भारी मत्स्य हैं, मैं मछुवो को बुद्धिमान् बनाने के लिए उसकी रक्षा किया चाहता हूँ, इस वास्ते तुम लोगो को भी यह अवसर हाथ से न खोना चाहिए।"

उनकी इस आज्ञा पर सम्पूर्ण सभा अपने आध्यात्मिक बल से बुद्ध भगवान् के साथ साथ वायुगामी होकर नदी के तट पर जा पहुँची। बुद्ध भगवान् साधारण रीति से जाकर मछुवो के पास बैठ गये और कहने लगे, "इस मत्स्य को मत मारो, मेरी शक्ति से इस मत्स्य को अपने जन्म-जन्मान्तर का ज्ञान हो जावेगा और यह मनुष्यो की बोली मे अपनी सब कथा सुना देगा जिससे संसार को बहुत लाभ होगा।" इसके उपरान्त त्रिकालदर्शी तथागत भगवान् ने, उस मत्स्य से पूछा, "अपने पूर्वजन्मो मे

(1) मारटीन साहब इस शब्द का सम्बन्ध जनक और मिथिला की राजधानी जनकपुर से मानते हैं।

तूने क्या पातक किया था जिससे तू जन्म-जन्मान्तर मे भटकता हुआ इस वर्तमान योनि को प्राप्त हुआ है ?" मत्स्य ने उत्तर दिया, "प्राचीन काल मे, अपने पुण्य-प्रताप से मेरा जन्म एक पवित्र कुल मे हुआ था। उस वश की प्रतिष्ठा का गर्व करके मैं दूसरे मनुष्यो को अपमानित किया करता था तथा अपनी विद्वत्ता पर भरोसा करके सब पुस्तको और नियमो को तुच्छ समझते हुए बौद्ध लोगो को बुरे शब्दो मे गाली दिया करता था, तथा साधुओ की तुलना गदहे, घोडे अथवा हाथी आदि पशुओ से करके उनकी हँसी उडाया करता था। इन्ही सबके बदले मे मुझको वर्तमान अधम शरीर प्राप्त हुआ है। परन्तु, धन्यवाद है! अपने पूर्व-जन्मो मे मैंने कुछ ऐसे पुण्य कर रक्खे हैं जिनके फल से मेरा जन्म अब ऐसे समय मे हुआ जब बुद्ध भगवान् ससार मे वर्तमान हैं। उन्ही कर्मो के फल से मैं आपका दर्शन और आपकी पुनीत शिक्षा प्राप्त करके, और अपने पापो के लिए पश्चात्ताप करके सुगति प्राप्त करूँगा।"

तथागत भगवान् ने आवश्यकतानुसार शिक्षा देकर उसको अपना शिष्य बना लिया। बुद्ध भगवान् ने उसको जो कुछ उपदेश दिया उसका यह फल हुआ कि उस मस्य का अज्ञान जाता रहा और उसने अपने मत्स्य-शरीर को परित्याग करके स्वर्ग मे जन्म पाया। अपने स्वर्गीय शरीर तथा पूर्वापर कर्मों का विचार करके उसके हृदय मे बुद्ध भगवान् की बडी भक्ति उत्पन्न हो गई। वह सब देव-मण्डली को साथ लेकर बुद्ध भगवान् की पूजा करने के लिए आया। दण्डवत् तथा प्रदक्षिणा करके और उत्तमोत्तम पुष्पो की वृष्टि करके वह अपने लोक को फिर वापस गया। इसके उपरान्त बुद्ध भगवान् ने इस घटना पर विचार करने की आज्ञा देकर और उन मछुओ को धर्मोपदेश देकर अपना शिष्य बना लिया। उन लोगो ने ज्ञान प्राप्त करके बडी भक्ति से बुद्धदेव की पूजा करने के उपरान्त अपने पापो के लिए पश्चात्ताप करते हुए अपने जालो को छिन्न भिन्न कर डाला तथा नावो को तोड ताड कर भस्म कर दिया। धर्म की शरण लेने से उनके आचरण भी धार्मिक हो गये, तथा विशुद्ध सिद्धान्तो पर अभ्यास करके वे लोग सासारिक बन्धनो से छूट गये और परम पद के भागी हुए।

इस स्थान के पूर्वोत्तर मे लगभग १०० ली जाने पर हम एक प्राचीन नगर मे पहुँचे। जिसके पश्चिम ओर अशोक राजा का बनवाया हुआ लगभग १०० फीट ऊँचा एक स्तूप हैं। इस स्थान पर बुद्धदेव ने छः मास तक धर्मोपदेश करके देवताओ को शिष्य किया था। इसके उत्तर मे १४० या १५० क़दम पर एक छोटा स्तूप है। यहाँ पर बुद्धदेव ने शिष्य लोगो के लिए कुछ नियमो का सङ्कलन

किया था। इसके पश्चिम मे थोड़ी दूर पर एक स्तूप है जिसमें बुद्धदेव के नख और बाल हैं। प्राचीन काल मे बुद्ध भगवान् इस स्थान पर निवास किया करते थे, तथा निकटवर्ती ग्रामों और नगरों के मनुष्य आकर धूप, आरती, तथा फूल पत्ती इत्यादि से उनकी पूजाअर्चा किया करते थे।

यहाँ से १, ४०० या १,५०० ली चल कर और कुछ पहाडों को पार करके, तथा एक घाटी मे होकर हम निपोलो-प्रदेश में पहुँचे।

निपोलो [नैपाल]

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली है तथा इसकी स्थिति हिमालय पहाड के अन्तर्गत है। राजधानी का क्षेत्रफल लगभग २० ली है। पहाड और घाटियाँ शृंखलाबद्ध मिली हुई चली गई हैं। अन्न आदि तथा फल-फूल भी यहाँ होते हैं। लाल ताँबा, याक और जीवञ्जीव पक्षी भी यहाँ होता है। वाणिज्य-व्यवसाय मे ताँबे के सिक्के का प्रचार है। प्रकृति ठंडी और बर्फीली है तथा मनुष्य असत्यवादी और बेईमान हैं। इनका स्वभाव कठोर और भयानक है। ये लोग प्रतिष्ठा अथवा सत्य का कुछ भी विचार नही करते। इन लोगों की सूरत निकम्मी और बेढङ्गी होती है। पढ़ने-लिखने का तो प्रचार नही है परन्तु ये लोग चतुर कारीगर अवश्य हैं। विरोधी और बौद्ध मिले-जुले निवास करते हैं तथा इन लोगो के संघाराम और देवमन्दिर पास पास बने हुए है। कोई २,००० संन्यासी हीनयान और महायान दोनो सम्प्रदायो के अनुयायी है। विरोधियो तथा अन्यान्य जातियों की सख्या अनिश्चित है। राजा जाति का क्षत्रिय तथा लिच्छवि-वंश का है। इसका अन्तःकरण स्वच्छ तथा आचरण शुद्ध और सात्विक है, और बौद्ध-धर्म से इसको बहुत प्रेम है।

थोड़े दिन हुए तब इस देश मे अंशुवर्म्मन्[1] नामक एक राजा बडा विद्वान्

---

(1) प्रिंसेप साहब ने चीनी पुस्तको के आधार पर नैपाल-वंश मे शिवदेव के बाद ही अंशुवर्म्मन् का नाम लिखा है, जिसका समय वह ४७० ई० निश्चय करते हैं। राइट साहब की सूची मे शिवदेव का नाम नही है और अंशुवर्मन् का नाम सर्वप्रथम लिखा हुआ है। शिवदेव के एक लेख मे अंशुवर्मन् एक वीर सर्दार अथवा सेनापति लिखा हुआ है। सम्भव है अपनी वीरता से वह राजा हो गया हो। दूसरे लेखो में जो संवत् ३६ और ४५ के हैं उसको राजा लिखा है। किंवदन्तियो के आधार पर यह पुराने राजा का दामाद और विक्रमा-

और बुद्धिमान हो गया है। इसके प्रभाव और विद्या-प्रेम की कीर्ति चारो ओर फैल गई थी तथा इसने स्वयं भी शब्द-विद्या पर एक उत्तम ग्रथ लिखा था।

राजधानी के दक्षिण-पूर्व एक छोटा सा चश्मा और कुड है। यदि इसमें अङ्गारा फेंका जावे तो तुरन्त ज्वाला प्रकट हो जाती है। अन्यान्य वस्तुएँ भी, डालने पर, जल कर कोयला हो जाती हैं।

यहाँ से वैशाली देश को लौट कर और दक्षिण दिशा मे गंगा पार करके हम मोकइटो प्रदेश मे पहुँचे।

दित्य का सहयोगी वताया जाता है, परन्तु ह्वेन सांग का हवाला देकर सेमुअल वील साहब इसका समय ५८० से ६०० ई० तक निश्चय करते हैं, साथ ही इसके, शिवदेव के लेखवाले सवत् को हर्ष-सवत् मानते हैं। इन सवतो को हर्ष-संवत् मानने से ईसवी सन् ६४४-३५२ होगा, तब तो ह्वेन साग के समय मे शिवदेव का वर्तमान हाना मानना पडेगा, क्योकि ह्वेन साग ६२६ ई० मे भारतवर्ष मे आया था। इस कारण यह विक्रमी सवत् हा है, और यह विक्रमादित्य के समय मे था, यही ठीक मालूम होता। यह भी कहा जाता हैं कि अशुवर्मन् ही ने शिवदेव के नाम से राज्य किया था, तथा उसका उत्तराधिकारी जिष्णुगुप्त बताया जाता है, जिसका लेख स० ४८ का पाया गया है। अशुवर्मन् की बहिन भोग-देवी सूरसेन को विवाही गई थी और भोग्यवर्मन् और भाग्य-देवी की माता थी।

आठवां अध्याय

(मगधदेश पूर्वार्द्ध)

मगधदेश का क्षेत्रफल लगभग ५,००० ली है। बडे बडे नगर विशेप आबाद नही हैं, परन्तु कसबो की आबादी अवश्य घनी है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है, तथा अनाज अच्छा उत्पन्न होता है। यहां पर विशेष प्रकार का चावल उत्पन्न होता है जिसका दाना बडा सुगन्धित और सुस्वादु होने के अतिरिक्त रग मे भी बडा चमकीला होता है। इसका नाम 'महाशालि' तथा 'सुगन्धिका' बताया जाता है। अधिकतर भूमि नीची और तर है इसलिए मनुष्यो के बसने के निमित्त कसवे आदि ऊंची भूमि पर बसाये गये हैं। ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के उपरान्त सम्पूर्ण देश मे पानी भर जाता हैं, जो शरद ऋतु के द्वितीय मास तक भरा रहता है; इन दिनो लोगो का आवागमन केवल नौका द्वारा होता है। मनुष्यो का आचरण शुद्ध और सात्विक है। यहां गरमी खूब पडती है। यहां के लोग विद्योपार्जन मे बहुत दत्तचित्त रहते हैं तथा बौद्ध-धर्म के विशेप भक्त हैं। कोई ५० सघाराम १०,००० साधुओ सहित है जिनमे अधिकतर लोग महायान-सम्प्रदायी हैं। अनेक प्रकार के विरुद्ध मतावलम्बियो के कोई दस देव-मन्दिर हैं। इन लोगो की सख्या अत्यन्त अधिक है।

गगा नदी के दक्षिण मे एक प्राचीन नगर लगभग ७० ली के घेरे मे है। यद्यपि यह बहुत दिनो से उजाड हो रहा है परन्तु मकानात अब भी अच्छे अच्छे बने हुए हैं। प्राचीन काल मे जब मनुष्यो की आयु बहुत होती थी इस नगर का नाम कुसुमपुर था। क्योकि राजमहल मे फूलो की विशेप अधिकता थी। पीछे से जब मनुष्यो की आयु हजारो वर्ष ही की रह गई तब इसका नाम बदल कर पाटलिपुत्र हो गया[1]।

---

(1) ह्वेनसांग इस नगर की स्थिति बहुत प्राचीन मानता है और इस बात में दिओदोरोस (Deodoros) से सहमत है, जो इस नगर को हरकलस (Heraklcs) का बसाया हुआ मानता है। बौद्धो की पुस्तको में यह केवल ग्राम लिखा हुआ है, अर्थात् पाटली ग्राम को, बुद्धदेव के समकालीन अजातशत्रु ने वृज्जी राजाओं की वृद्धि को रोकने करने के लिए, विशेप रूप से परवर्द्धित किया था।

आदि काल मे यहा पर एक ब्राह्मण बडा बुद्धिमान् और अद्वितीय विद्वान् रहता था। हजारो आदमी उससे शिक्षा ग्रहण करने आते। एक दिन सब विद्यार्थी मैदान मे सैर और आनन्द कर रहे थे कि उनमे से एक कुछ मलीन और खिन्नचित्त हो गया। उसके साथियो ने उससे पूछा, "मित्र तुमको क्या दु ख है जो अनमने हो रहे हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं पूर्ण युवावस्था को पहुँच गया तथा बलवान् भी हो गया, परन्तु तो भी मैं इधर-उधर शून्य छाया के समान फिरा करता हूँ। कितने महीने और साल व्यतीत हो गये, परन्तु मेरा जो धर्म था वह पूर्णता को प्राप्त नही हुआ। इन्ही बातो को विचार कर मैं दुखी हो रहा हूँ।"

इस बात को सुनकर उसके साथियो ने खिलवाड सा करते हुए उससे कहा, "तब तो हम तुम्हारे लिए अवश्य एक भार्या और उसके सम्बन्धी तलाश करेंगे।" इसके उपरान्त उन्होने दो मनुष्यो को वर का माता-पिता और दो को कन्या का माता-पिता बनाया, तथा वे लोग पाटली-वृक्ष के नीचे बैठे थे इस कारण उस वृक्ष को उन्होने दामाद का वृक्ष बताया[1]। तत्पश्चात् उन्होने कुछ फल और शुद्ध जल लेकर विवाह-सम्बन्धी अन्यान्य रीतियो को करके विवाह की लग्न को नियत किया। उस नियत समय पर कल्पित कन्या के कल्पित पिता ने फूलो समेत वृक्ष की एक डाली लाकर विद्यार्थी के हाथ मे दे दी और कहा, "यही तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी है, इसको प्रसन्नता से अङ्गीकार करो।" विद्यार्थी का चित्त उसको पाकर आह्लादित हो गया। सूर्य्यास्त के समय सब विद्यार्थी अपने स्थान को लौटने के लिए उद्यत हुए परन्तु उस युवा विद्यार्थी ने प्रेम-पाश मे बँधकर उसी स्थान पर रहना निश्चित किया।

सब लोगो ने उससे कहा, "अजी यह सब दिल्लगी थी; उठो, हमारे साथ चलो, यहाँ जङ्गल मे रहने से हमको भय है कि जगली जन्तु तुमको मार डालेंगे।" परन्तु विद्यार्थी ने जाना पसन्द नही किया। वह उसी वृक्ष के नीचे ऊपर तथा इधर-उधर फिरने लगा।

सूर्यास्त होने पर एक अद्भुत प्रकाश उस मैदान मे फैल गया तथा वीणा और बाँसुरी के स्वर मे मिले हुए गाने का मधुर शब्द सुनाई पडने लगा, और भूमि पर बहुमूल्य फर्श बिछ गया। तदनन्तर अकस्मात् एक वृद्ध पुरुष जिसका स्वरूप बडा सुन्दर था लाठी टेकता हुआ आता दिखाई पडा तथा एक वृद्धा भी एक कुमारी को साथ लिये हुए उसके साथ थी।

(1) अर्थात् उन्होने वृक्ष को विद्यार्थी का श्वसुर निश्चय किया, जिसका तात्पर्य यह है कि उसका विवाह वृक्ष की कन्या-पाटलीपुष्प से होने वाला था।

इनके आगे आगे बाजे गाजे सहित उत्तम उत्तम वस्त्र आभूषण धारण किये बड़े ठाठ बाट से जनसमूह चला आ रहा था। निकट पहुँच कर बुड्ढे ने कुमारी को दिखाकर विद्यार्थी से कहा, "यही तुम्हारी प्यारी स्त्री है।" सात दिन उस युवा विद्यार्थी को उस स्थान पर गाने बजाने और आनन्द मनाने मे बीत गये, जब उसके साथी विद्यार्थी, इस बात का सन्देह करके कि कदाचित् उसको जंगली पशुओ ने मार डाला होगा, उसकी अवस्था देखने के लिए उस स्थान पर आये तो उन्होने क्या देखा कि उसके चहरे से प्रसन्नता की आभा निकल रही है और वह वृक्ष की छाया मे अकेला बैठा हुआ है। उन लोगो ने उससे लौट चलने के लिए फिर भी बहुत कुछ कहा परन्तु उसने नम्रता के साथ इनकार कर दिया।

कुछ दिनो बाद एक दिन वह स्वयं ही अपनी इच्छा से नगर मे आया। अपने सम्बन्धियो से भेट मुलाकात और प्रणाम आशीर्वाद करने के पश्चात् उसने अपनी सब कथा आदि से अन्त तक उन्हे सुनाई। इस वृत्तान्त को सुनकर वे सब लोग बड़े आश्चर्य से उसके साथ जंगल मे गये। वहाँ जाकर उन्होने देखा कि वह फूलवाला वृक्ष एक सुन्दर मकान बन गया है और सब प्रकार के नौकर चाकर इधर से उधर अपने अपने काम में लगे घूम रहे हैं। वृद्ध पुरुष ने उनके निकट आकर बडी नम्रता के साथ उनसे भेट की तथा गाने-बजाने के समारोह के सहित उनके खान-पान का प्रबध और उनका आदर-सत्कार किया। इसके उपरान्त बिदा होकर वे लोग नगर को लौट आये और जो कुछ उन्होंने देखा अथवा पाया था उसका समाचार चारो ओर प्रकट किया।

साल समाप्त होने पर स्त्री के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय उस विद्यार्थी ने अपनी पत्नी से कहा, "मेरा विचार अब लौट जाने का है, परन्तु तुम्हारा वियोग मुझमे सहन नही हो सकेगा, और यदि यहाँ रहता हूँ तो हवा और धूप तथा सर्दी-गरमी का दुख इस मैदान मे बहुत कष्ट देगा।"

स्त्री ने यह सुनकर सब समाचार अपने पिता से जाकर कहा। वृद्ध पुरुष ने युवा विद्यार्थी को बुलाकर पूछा, "जब आनन्द और सुख के साथ तुम रह सकते हो, तब क्या कारण है जो तुम चले जाना चाहते हो! मैं तुम्हारे लिए एक मकान बनवाये देता हूँ, तब तो जंगल का कुछ विचार और कष्ट न रहेगा?" यह कहकर उसने अपने सेवको को आज्ञा दी और दिन भी समाप्त नहीं होने पाया था कि [illegible] बनकर तैयार हो गया।

जब प्राचीन राजधानी कुसुमपुर बदली जाने लगी[1] तब यही स्थान नवीन राजधानी के लिए पसन्द किया गया। यहाँ पर पहले से ही सुन्दर मकान उस युवा के नाम से बना हुआ था, इस कारण इसका नाम पाटलिपुत्रपुर (अर्थात् पाटली-वृक्ष के पुत्र का नगर) हो गया।

प्राचीन राजभवन के उत्तर मे एक पाषाण-स्तम्भ बीसियो फीट ऊँचा है। यह वह स्थान है जहाँ पर अशोक राजा ने एक भवन बनवाया था। तथागत के निर्वाण प्राप्त करने के सौवें वर्ष यहाँ पर एक अशोक[2] नामक राजा हो गया है, जो बिम्बसार राजा का प्रपौत्र था। इसने अपनी राजधानी राजगृही को बदल कर पाटली बनाई थी और प्राचीन नगर के चारो ओर रक्षा के लिए बाहरी दीवार बनवाई थी। इसकी नीव, यद्यपि तब से अनेक वंश समाप्त हो गये, अब भी वर्तमान है। संघाराम, देवमन्दिर और स्तूप जो खँडहर होकर धराशायी हो गये हैं उनकी संख्या सैकडो है। केवल दो या तीन कुछ अच्छी दशा मे वर्तमान हैं। प्राचीन राजभवन[3] के उत्तर मे गंगा के किनारे एक छोटा कसबा है जिसमे लगभग १,००० घर हैं।

राजा अशोक जब सिंहासनारूढ हुआ था तब बहुत निर्दयता से शासन करता था। प्राणियो को दुख देने के लिए उसने एक नरकस्थान भी बनवाया था,

(1) इससे प्रतीत होता है कि कुसुमपुर उसी स्थान पर नही था जहाँ पर पाटलिपुत्र था। राजगृही अजातशत्रु की राजधानी थी जिसने पाटलिपुत्र को प्रभावशाली बनाया था। दूसरे स्थान पर यह लिखा हुआ है कि अशोक ने राजगृही को परिवर्तन करके पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया था। यह राजा बिम्बसार का प्रपौत्र बतलाया जाता है इस कारण अजातशत्रु का पौत्र होता है। वायुपुराण मे लिखा है कि कुसुमपुर या पाटलिपुत्र अजातशत्रु के पौत्र उदयाश्व का बसाया हुआ है, परन्तु महावंश-ग्रंथ मे उदय अजातशत्रु का पुत्र लिखा हुआ है।

(2) ह्वेन सांग इस स्थान पर अशोक के लिए अर्थवाचक शब्द 'ओयुकिया' लिखता है, जिस पर डाक्टर ओल्डेन बर्ग बहुत वाद विवाद मे निश्चय करते हैं कि यह धर्माशोक नहीं है, वरञ्च कालाशोक है (देखो विनयपिट्टक जि० १ भूमिका पृ० ३३)। परन्तु मूल पुस्तक मे एक नोट है जिससे मालूम होता है कि चीनी शब्द 'ऊयाव' का संस्कृत स्वरूप 'ओयुकियो' होता है। इस प्रथम शब्द का अर्थ है शोकरहित अर्थात् अशोक।

(3) इससे तात्पर्य कदाचित् कुसुमपुर 'पुष्पभवन' से है, अथवा प्राचीन नगर पाटलिपुत्र के राजभवन से।

जिसके चारो ओर ऊँची दीवारें और विशाल बुर्ज थे। इसके भीतर धातु गलाने वाली बड़ी बडी भट्टियां बनी थी; और पैनी धारवाले हँसुवे आदि सब प्रकार के वेदना-दायक शस्त्र, जिनका होना नरक में बताया जाता है, रक्खे थे। उसने एक बड़े निर्दय पुरुष को उस नरक का अध्यक्ष नियत किया था। पहले-पहल वही लोग इस स्थान पर दण्ड देने के लिए लाये जाते थे जो राज्य भर मे किसी प्रकार का अपराध करते थे; परन्तु पीछे से तो यह ढंग हो गया कि जो कोई उस स्थान के निकट होकर निकल गया वही पकड कर मार डाला गया ! जो कोई इस स्थान पर आ गया कभी जीता जागता लौट कर न गया !!

किसी समय एक श्रमण, जो थोडे ही दिनों से धर्माचरण मे प्रवृत्त हुआ था, भिक्षा मांगने के लिए नगर को जा रहा था। वह इस स्थान के निकट होकर निकला और पकड कर नरक कुण्ड में पहुँचाया गया। अध्यक्ष ने उसके वध किये जाने का हुक्म दिया। श्रमण ने, भयभीत होकर, अपनी पूजा और पाठ के लिए थोडे से समय की प्रार्थना की। साथ ही इसके, उसी क्षण उसने यह भी देखा कि एक आदमी जंजीरों से बांधकर लाया गया और तुरन्त हाथ पैर काट कर चूने से भरे हुए एक कुंड में पटक दिया गया। उस कुंड में उसका शरीर इतना अधिक कुचला और पीसा गया कि उसका सर्वांग चुरमुर होकर उसी गारे में मिल गया।

श्रमण को यह देखकर बडा शोक हुआ। उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि संसार की सब वस्तुएँ अनित्य हैं। इस ज्ञान के उत्पन्न होते ही उसकी दशा बदल गई और वह अरहट के पद को प्राप्त हो गया। नरकाधीश ने उससे कहा, "अब तुम्हारी वारी है।" श्रमण अरहट हो चुका था, जन्ममरण की शक्ति उसको बन्धन में नही डाल सकती थी। इस कारण, यद्यपि वह खौलते हुए कढाह में डाल दिया गया, परन्तु वह उसके लिए तडाग-जल के समान शीतल हो गया। लोगों ने देखा कि कढाह के ऊपर एक कमल का फूल खिला हुआ है और जिसके ऊपर वह अरहट बैठा है। नरकाधीश इस तमाशे को देखकर घबड़ा गया। उसने झटपट एक आदमी को राजा के पास यह समाचार कहने के लिए दौडाया। राजा स्वयं दौड आया और इस दृश्य को देखकर बडी प्रार्थना के साथ अरहट की प्रशंसा करने लगा।

अध्यक्ष ने राजा से कहा, "महाराज, आपको भी मरना चाहिए।" राजा ने पूछा, "क्यों ?" उसने उत्तर दिया, "महाराज ने आज्ञा दी थी कि जो कोई इस नरक कुण्ड के भीतर आ जाय वह मारा जाय उसमें यह शर्त नही थी कि यदि राजा जाय तो छोड दिया जाय।

राजा ने उत्तर दिया, "बेशक यह आज्ञा थी, और बदली नही जानी चाहिए, परन्तु जब यह नियम बनाया गया था तब तुम क्या इस नियम से अबाध्य रक्खे गये थे ? तुमने बहुत दिनो तक घातपना किया है, आज मैं इसको समाप्त किये देता हूँ।" यह कह कर उसने अपने सेवको को हुक्म दिया; उन्होने पकड कर उसको कढाह मे डाल दिया। उसके मरने पर राजा वहाँ से चला गया। उस नरक कुण्ड की दीवारे खोद डाली गईं कुंड पाट दिये गये और उस भयानक दण्ड-विधान का उस दिन से अन्त हो गया।

इस नरक कुण्ड के दक्षिण मे थोडी दूर पर एक स्तूप है। इसका अधोभाग भूमि मे धँस-गया है और यह कुछ टेढा भी हो गया है, जिससे निश्चय है कि यह शीघ्र ही खँडहर हो जायगा। परन्तु अभी तक शिखर ज्यो का त्यो बना हुआ है। यह (स्तूप) नक्काशी किये हुए पत्थर से बनाया गया है और इसके चारो ओर कठघरा लगा हुआ है। यह ८४,००० स्तूपो मे से पहला स्तूप है जिसका अशोक राजा ने अपने पुण्य-प्रभाव से अपने राजभवन के मध्य मे बनवाया था। इसमे एक चिङ्ग (यह एक माप है) तथागत भगवान् का शरीरावशेष रक्खा है। अद्भुत दृश्य इस स्थान पर बहुधा प्रदर्शित होते रहते हैं और दैवी प्रकाश समय समय पर फूट निकलता है।

राजा अशोक, नरक कुण्ड को नाश करके, उपगुप्त-नामक एक महात्मा अरहट की शरण हुआ जिसने समुचित रीति से, तथा जिस तरह पर उसको विश्वास करा सका उस तरह पर, उपदेश करके धर्म का ठीक मार्ग बतला दिया, और उसे अपना शिष्य कर लिया। राजा ने अरहट से प्रतिज्ञा की, "मेरे पूर्व जन्म के पुण्यों को धन्यवाद है जिनके प्रभाव से मुझको राजसत्ता प्राप्त हुई है, परन्तु मेरे पातकों ने मुझको बुद्ध के दर्शन करके शिष्य होने से वचित रक्खा इसलिए अब मेरी आन्तरिक इच्छा यही है कि मैं उनके पवित्र शरीरावशेष की उच्चतम प्रतिष्ठा करने के लिए स्तूपो को बनवाऊँ।"

अरहट ने कहा, "मेरी भी यही इच्छा है कि महाराज ने जो सँकल्प रत्नत्रयी की रक्षा का किया है, उसके पूरा करने मे आपकी अन्तरात्मा सदा लगी रहे और आपका पुण्य इस कार्य मे सहायक हो।" इसके उपरान्त उसने, यही ठीक समय जानकर बुद्ध भगवान् की भविष्यद्वाणी की कथा उसे सुनाई जिसको सुनकर राजा को पृथ्वी भर मे स्तूप बनाकर पूजा करने की कामना हो गई। तब राजा ने अपने उन सब देवो को बुलाया जिनको उसने पहले ही से अपने अधीन कर रक्खा था और उनको आज्ञा दी' "धर्मेश्वर (बुद्धदेव) भगवान् की रक्षण शक्ति,

आध्यात्मिक गुण तथा विशुद्ध इच्छानुसार, और अपने पूर्व जन्मो के पुण्य-प्रभाव से मैं अद्वितीय प्रभुताशाली कार्य सम्पादन करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि बुद्ध भगवान् के पवित्र शरीरावशेषो की उपासना को सुलभ करने के लिए विशेष ध्यान दूँ। इसलिए तुम सब देव लोग अपने सम्मिलित शक्ति से इस कार्य मे सहमत होकर, सम्पूर्ण जम्बूद्वीप मे आदि से अन्त तक बुद्ध भगवान् के शरीरावशेष के लिए स्तूपो का निर्माण करो। इस कार्य मे उद्देश्य का पुण्य मेरा है, और सम्पादन का पुण्य तुम लोगो का होगा। इस परमोत्तम धार्मिक कृत्य से जो कुछ लाभ होगा वह मैं नही चाहता कि केवल एक मनुष्य के ही हिस्मे मे रहे. इस कारण तुम सब जाकर एक एक स्तूप बनाकर ठीक करो, उसके पश्चात् जो कुछ करना होगा वह फिर बतलाया जावेगा।"

इस आज्ञा को पाकर वे सब देव लोग स्थान स्थान पर जाकर बड़ी चतुरता से स्तूप बनाने लगे। काम के समाप्त हो जाने पर वे लोग राजा के पास लौट आये और प्रार्थी हुए कि अब क्या आज्ञा है। अशोक राजा न आठो देशों के स्तूपो को, जहाँ जहाँ वे बने हुए थे, खोल कर शरीरावशेष का विभाजन कर लिया और उनको देवो क हवाले करके अरहट[1] से निवेदन किया कि "मेरी इच्छा है कि शरीरावशेष सब स्थानो मे एक ही समय मे रक्खा जावे। यद्यपि इसके लिए मैं अत्यन्त उत्कंठित हूँ परन्तु कर सकने की कोई तदबीर समझ मे नही आती।"

अरहट ने राजा को उत्तर दिया, "देवो से कह दो कि अपने अपने नियत स्थान पर चले जावे और सूर्य पर लक्ष रक्खे। जिस समय सूर्य प्रकाशहीन होने लगे और ऐसी दशा को प्राप्त हो जावे मानो हाथ से ढक लिया गया हो बस वही समय स्तूपो में शरीरावशेष रखने का है।" राजा ने इस आदेश को पाकर सब देवो को समझा दिया कि नियत समय की प्रतीक्षा करे।

राजा अशोक सूर्यमडल को देखकर निश्चत संकेत की प्रतीक्षा करने लगा। इधर अरहट ने मध्याह्न काल मे अपने आध्यात्मिक प्रभाव से अपने हाथ को फैला कर सूर्य को ढक दिया। उसी समय देवो ने सब स्थानो मे शरीरावशेष को रखकर अपने पुनीत कार्य को पूर्ण किया।

स्तूप के पास थोडी दूर पर एक विहार है जिसमे एक पत्थर रक्खा हुआ है। इस पर तथागत भगवान् चले थे। इसके ऊपर अब भी उनके दोनो पैरों के चिह्न बने हुए हैं। ये चरण-चिह्न अठारह इच लम्बे और छ इंच चौडे हैं। दाहिने

(1) उपगुप्त।

और वांए दोनो पैरो मे चक्र की छाप है और दसो उँगलियो मे मछली और किनारे पर फूल बने हुए हैं। प्राचीन काल मे तथागत भगवान् निर्वाण प्राप्त करने के लिए उत्तर दिशा मे कुशीनगर को जा रहे थे। उस समय इस पत्थर पर दक्षिण-मुख खडे होकर और मगध को अवलोकन करके उन्होने आनन्द से कहा, "यह अन्तिम समय है कि निर्वाणप्राप्ति के सन्निकट पहुँच कर और मगध को देखकर मैं अपना चरण-चिन्ह इस पत्थर पर छोडता हूँ। अव से सौ साल पश्चात् एक अशोक नामक राजा होगा जो इस स्थान पर अपनी राजधानी वनाकर निवास करेगा। वह रत्नत्रयी का रक्षक और देवो का अधिपति होगा।"

राज्यासन पर सुशोभित होकर अशोक ने अपनी राजधानी इस स्थान पर बनाई और उस छापवाले पत्थर को एक सुन्दर भवन मे स्थापित किया। राजभवन के सन्निकट होने के कारण राजा इस पत्थर की बहुधा पूजा किया करता था। उनके पश्चात् निकटवर्ती अनेक राजाओ ने इस पत्थर को अपने देश मे उठा ले जाने का प्रयत्न किया, और यद्यपि पत्थर भारी नही है परन्तु तो भी वे लोग इसको तिलमात्र भी न हटा सके।

थोडे दिन हुए शशाङ्क राजा जो बौद्ध-धर्म को सत्यानाश कर रहा था इसी अभिप्राय से इस स्थान पर भी आया। उसकी इच्छा पत्थर पर के पदचिन्ह मिटा देने की थी। उसने इसको टुकडे टुकडे कर डाला, परन्तु उसी क्षण यह फिर ज्यो का त्यो हो गया और इस पर की छाप भी ज्यो की त्यों वन गई। तब उसने इसको गङ्गा-नदी मे फेक दिया, परन्तु यह फिर अपने पुराने स्थान पर लौट आया।

पत्थर के निकट ही एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर गत चारों बुद्धो के चलने, फिरने, बैठने आदि के चिन्ह बने हुए हैं।

छापवाले विहार के पास थोडी दूर पर, लगभग ३० फीट ऊँचा एक बडा पाषाण-स्तम्भ है जिस पर कुछ विगडा हुआ लेख है। उसका मुख्य आशय यह है, "अशोक राजा ने धर्म पर दृढ विश्वास करके तीन बार जम्बूद्वीप को, बुद्ध, धर्म और सघ की धार्मिक भेट मे अर्पण कर दिया, और तीनो बार उसने धन-रत्न देकर उसे वदल लिया और वह लेख उसी की स्मृति मे लगवा दिया।" यही उस लेख का अभिप्राय है।

प्राचीन राजभवन के उत्तर मे पत्थर से बना हुआ एक बडा मकान है। वाहर से यह मकान पहाड के समान दिखाई पडता है और भीतर से पच्चीसों फीट

चौडा है। इस मकान को अशोक राजा ने देवो को आज्ञा देकर अपने भाई के लिए, जो कि सन्यासी हो गया था, बनवाया था। अशोक के प्रारम्भिक काल मे उसका एक विमातृज भाई था जिसका नाम महेन्द्र[1] था और जिसकी माता एक कुलीन घराने मे से थी। इसका ठाठ-बाट राजा से भी बढा-चढा रहता था, तथा यह बडा निर्दय, उद्दण्ड और विषयी था। यहाँ तक कि सब लोग इससे कुपित रहा करते थे। एक दिन मंत्री और पुराने पुराने कर्मचारी सरदार राजा के पास आये और यह निवेदन किया, "आपका घमण्डी भाई बडा अत्याचार करता है। मानो वही सब कुछ है और दूसरे लोग उसके सामने कुछ वस्तु हैं ही नही। जो शासन निष्पक्ष है तो देश मे शान्ति है, और जो प्रजा सन्तुष्ट है तो राजा को भी चैन है; यही सिद्धान्त हम लोगो के यहाँ वंशपरम्परा से चला आता है। हम लोगो की प्रार्थना है कि आप भी हमारे देश के इस नियम को स्थिर रक्खगे और जो लोग इसके पलटने की चेष्टा करेंगे उनके साथ न्याय से पेश आवेगे।" तब अशोक ने रोकर अपने भाई से कहा, 'मुझको शासन-भार इस वास्ते मिला है कि मैं प्रजा की रक्षा और उसका पालन करूँ। हे मेरे प्यारे भाई! तुमने मेरे इस प्रेम और दया के नियम को क्यो भुला दिया है? अभी मेरे शासन का श्रीगणेशही हुआ है, ऐसे समय मे न्याय के मामले मे ढील करना नितान्त असम्भव है। यदि मैं तुमको दड देता हूँ तो मुझे अपने बडे लोगो के रुष्ट हो जाने का भय है, और इसके विपरीत यदि मैं तुमको क्षमा करता हूँ, तो प्रजा के असन्तुष्ट होने का भय है।"

महेन्द्र ने सिर झुका कर उत्तर दिया, "मैंने अपने आचरण की ओर ध्यान नही दिया और देश के नियमो (कानून) का उल्लघन किया है। मैं अवश्य अपराधी हूँ परन्तु मैं केवल सात दिन के लिए और जीवन-दान माँगता हूँ।"

राजा ने इसको स्वीकार कर लिया और उसको एक अन्धकार पूर्ण कारागार मे बन्द करके उसके ऊपर कठिन पहरा बिठा दिया। उसने उसके लिये सब प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ और उत्तम भोजन आदि का प्रबन्ध कर दिया। प्रथम दिन के समाप्त होने पर पहरे वालो ने उसको सूचित किया, "एक दिन बीत गया, अब केवल छः दिन

---

(1) महेन्द्र कदाचित् अशोक का पुत्र भी कहा जाता है। सिंहालियो के इतिहास से विदित होता है कि [illegible] लिए सबसे पहले वही लङ्का को [illegible] महावंश परन्तु डाक्टर ओल्डन बर्ग इस वृत्तान्त को सत्य नही मानते।

शेष रहे हैं।" अपने अपराधो पर शोक करते और अपने तन मन को दुखी करते हुये छठा दिन समाप्त हुआ, उसी समय उसको धर्म का पुनीत फल प्राप्त हो गया। (अर्थात् वह अरहट-अवस्था को प्राप्त हो गया)। धार्मिक शक्ति प्राप्त करके वह आकाश मे पहुँचा और वहाँ पर अपने अद्भुत चमत्कार को प्रकट करता हुआ, सांसारिक वन्धनो से अलग होकर बहुत दूर चला गया और पहाडो तथा घाटियो मे जाकर रहने लगा।

अशोक राजा स्वय चलकर उसके पास गया और कहा, "हे मेरे भाई! देश के कानून को प्रवल बनाये रखने की इच्छा से प्रथम मैं तुमको दण्डित करना चाहता था। परन्तु मेरा विचार है कि बिना ही दण्ड के, अथवा किञ्चित-मात्र दण्ड ही से, तुम इतने बडे पवित्र और उच्च पद को पहुँच गये। इस दशा को पहुँच कर और ससार से नाता तोड कर भी तुम अपने देश मे लौट कर चल सकते हो।"

भाई ने उत्तर दिया, "पहले मैं सांसारिक प्रेमपाश मे बँधा हुआ था, मेरा मन सुन्दरता और स्वर (गाना) पर मुग्ध था, परन्तु अब मैं इन सबसे अलग हो गया हूँ, मेरा मन पहाडो और घाटियो मे बहुत सुखी रहता है। मैं ससार को छोड देने मे और एकान्तवास करने ही मे प्रसन्न हूँ।

राजा ने उत्तर दिया, "यदि तुम अपने चित्त तो एकान्तवास करके ही निस्तब्ध बनाया चाहते हो, तो कोई आवश्यकता नही कि पहाडी गुफाओ मे ही निवास करो। तुम्हारी इच्छानुसार मैं एक मकान बनवाये देता हूँ।"

यह कह कर उसने अपने सब देवो को बुलाया और उनसे कहा, "कल मैं एक बहुत बढिया भोज देना चाहता हूँ। मैं तुमको भी न्योता देता हूँ कि तुम सब लोग आओ और अपने साथ अपने बैठने के लिये एक-एक बडा पत्थर लेते आओ।" देव लोग इस आज्ञा के अनुसार नियत समय पर भोज मे पहुँचे। राजा ने उन लोगो से कहा, "यह जो पत्थर श्रणीबद्ध भूमि पर पडे हुये हैं इनको तुम बिना प्रयास ही ढेर के समान एक पर एक लगातार मेरे लिये मकान बना सकते हो।" देव लोगो ने यह आज्ञा पाकर दिन समाप्त होने से पहले ही मकान बना डाला। तब अशोक इस पथरीली कोठरी मे निवास करने के लिये अपने भाई को बुलाने के लिये स्वयं चल कर गया।

प्राचीन राजभवन के उत्तर मे और नरक कुण्ड के दक्षिण मे एक बडी भारी पत्थर की नांद है। अशोक राजा ने यह नांद अपने देवो को लगाकर बनवाई थी। साधु लोग जब भोजन करने के लिये निमन्त्रित किये जाते थे तब यह नांद भोजन के काम आती थी।

प्राचीन राजभवन के दक्षिण-पश्चिम मे एक छोटा पहाड़ है। इसकी घाटियो और चट्टानो मे पचासो गुफाएँ हैं जिनको अशोक ने उपगुप्त तथा अन्यान्य अरहटो के लिये देवो के द्वारा बनवाया था।

इसके पास ही एक पुराना बुर्ज है जो खँडहर होकर पत्थरों के ढेरों का टीला बन गया है। एक तडाग भी है जिसका स्वच्छ जल कांच के समान लहरों के साथ चमक उठता है। सब स्थान के लोग इस जल को पवित्र मानते हैं। यदि कोई इसमें का जल पान करे, अथवा इसमे स्नान करे, तो उसके पातको का कलुष बह जाता है, नष्ट हो जाता है।

पहाड के दक्षिण-पश्चिम में पांच स्तूपो का एक समूह है। इनकी बनावट बहुत ऊँची है। आजकल ये खँडहर हो रहे हैं, पर तो भी जो कुछ अवशेष है वह खाशा ऊँचा है। दूर से ये छोटी पहाडियो के समान दिखाई पडते हैं। हर एक के अग्र भाग मे थोडा मैदान है। उन प्राचीन स्तूपो के ढेर हो जाने पर लोगो ने उनके ऊपर छोटे-छोटे स्तूप बना दिये हैं। भारतीय इतिहास से विदित होता है कि प्राचीन काल में; जब अशोक ने ८४,००० स्तूप बनवा डाले तब भी पाँच भाग शरीरावशेष बच रहा। तब अशोक ने पांच विशाल वृहदाकार स्तूप और बनवाये जो अपनी अलौकिक शक्ति के लिये बहुत प्रसिद्ध हुये, अर्थात् ये स्तूप तथागत भगवान् के शरीर सम्बन्धी पाँचो आध्यात्मिक शक्तियो[1] को प्रदर्शित करने वाले हैं। अपूर्ण विश्वास वाले कुछ शिष्य यहाँ की कथा इस प्रकार सुनाते हैं—'प्राचीनकाल मे नन्द राजा ने इन पाँचो (स्तूपों) को द्रव्य-कोष के मतलब के लिये निर्माण कराया था।[2] इस गप को सुनकर कुछ दिनो बाद 'एक विरोधी राजा, लोभपाश मे फँसा, सेना लेकर इस स्थान पर आ चढा। जैसे ही उसने इस स्थान के खोदने मे हाथ लगाया वैसे ही भूमि हिल उठी, पहाड टेढे हो गये और मेघो ने सूर्य को घेर कर आच्छादित कर लिया, इसके साथ ही स्तूपों में

(1) 'तथागत भगवान् का धर्म-शरीर पाँच भागो मे विभक्त है,' इस वाक्य से उनके पंच स्कंधो का भी विचार हो सकता है जो रूप-स्कध, वेदना-स्कंध, संज्ञान-स्कंध, संस्कार-स्कध और विज्ञान-स्कंध है।

(2) यह नन्द महानन्द का बेटा था और महापद्म कहलाता था। यह बड़ा लालची था और शूद्र-जातीय स्त्री के गर्भ से उत्पन्न था। वह सम्पूर्ण पृथ्वी को एक ही छत्र के नीचे ले आया था, (देखो विष्णुपुराण) महावश मे इसको धननन्द लिखा है क्योंकि वह धन संग्रह करने मे ही लगा रहता था। ह्वेनसांग जिस प्राचीन इतिहास का हवाला देता है उससे तो यही ध्वनि निकलती है कि नन्द और अशोक (कालाशोक) एक ही थे।

से भी एक घोर गर्जना की आवाज हुई जिससे कुछ सेना और दूसरे साथी मूर्छित होकर गिर पडे और घोडे हाथी भयभीत होकर भाग खडे हुये। राजा का सारा लालच पल भर मे जाता रहा और वह भी भयातुर होकर पलायन कर गया।' यह वृत्तान्त लिखा भी है। इस स्थान के पुजारियो की गप मे चाहे कुछ सन्देह किया जा सके परन्तु प्राचीन इतिहास के अनुसार होने के कारण हम इसको सच्चा मानते हैं।

प्राचीन नगर के दक्षिण-पूर्व मे एक सघाराम कुक्कुटाराम है, जिसको अशोक ने उस समय बनवाया था जब उसको पहले-पहल धर्म पर विश्वास हुआ था। धर्म-वृक्ष के आरोपण का प्रथम फलस्वरूप और उसके राज्य-वैभव का प्रदर्शक यह विशाल भवन है। उसने हजार सन्यासियो, और इसके दूने गृहस्थो तथा साधुओ के लिये चारों प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ तथा सर्वोपयोगा सब प्रकार की सामग्रियो को इस भवन मे भेट की भाँति सग्रह कर रक्खा था। यह इमारत बहुत दिनो से खँडहर हो रही है तब भी इसकी दीवारे अब तक वर्तमान हैं।

सघाराम के पास आमलक नामी (यह फल भारतवर्ष मे दवा के काम में आता है) एक बहुत बडा स्तूप बना हुआ है। अशोक राजा एक समय बहुत बीमार हो गया था और बहुत दिनो तक रुग्णावस्था मे पडे रहने से उसको अपने जीवन की आशा नही रही थी; उस समय पुण्य-सचय करने के लिये उसने अपनी सब अधिकृत सम्पत्ति को दान कर देना चाहा। मन्त्री[1] जिसके अधीन सब राज-कार्य का भार था, राजा की इस इच्छा से सहमत न हुआ। कुछ दिनो बाद एक दिन जब वह आमलक फल खा रहा था तब उसने उसका एक टुकडा हँसो से राजा के हाथ मे रख दिया। उस टुकडे को लेकर बडे दुख से उसने मन्त्री से पूछा, "इस समय जम्बूद्वीप का राजा कौन है ?"

मन्त्री ने उत्तर दिया, "केवल श्रीमहाराज।"

राजा ने उत्तर दिया, "ऐसा नही है, मैं अब अधिक दिनो तक राजा नही हूँ, क्योकि मैं केवल इस फल के टुकडे को अपना कह सकता हूँ, खेद की बात है कि सांसारिक प्रतिष्ठा और धन स्थिर रखना उतना ही कठिन है जितना की आँधी के सामने जलते हुये दीपक की रक्षा करना है। मेरा बडा भारी राज्य, मेरी प्रतिष्ठा और अप्रतिम कीर्ति मेरे अन्तिम दिनो मे मुझसे छिन गई, और मैं एक शक्ति-सम्पन्न मन्त्री के हाथ का खिलौना हो गया। अब राज्य श्री अधिक दिनो के लिये मेरी नही है, केवल यह अर्द्धफल मेरा है।"

---

(1) यहाँ पर मन्त्रि-मण्डल होना चाहिये, यह कथा अश्वघोष के भजनो में भी पाई जाती है।

यह कह कर उसने एक नौकर को बुलाया और उससे कहा, "यह अर्द्धफल लेकर काकवाटिका के सन्यासियो के पास ले जाओ और उन महात्माओ को भेट करके यह निवेदन कर दो, 'जो पहले जम्बूद्वीप का महाराज था, वह अब केवल इस अर्द्ध आमलक फल का मालिक रह गया है। वह सन्यासियो के चरणो मे गिर कर प्रार्थना करता है कि उसकी इस अन्तिम भेट का स्वीकार कर लीजिये। जो कुछ मेरे पास था वह सब जाता रहा, केवल मेरे अधिकार मे यह तुच्छतम अर्द्धफल अवशेष है। मेरी इस दरिद्र भेट को दयापूर्वक ग्रहण कीजिये और ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरे धार्मिक पुण्य के बीजो को यह सदा बढ़ाता रहे।"

उन सन्यासियो के मध्य मे स्थविर ने खडे होकर यह कहा, "अशोक राजा अपने पूर्व कर्मों के पुण्य से आरोग्य हो जायगा। उसके लोभी मन्त्रियो ने ऐसे समय मे, जब वह ज्वरग्रसित होकर बल हीन हो गया है, उसकी शक्ति को हरण कर लिया है, और उस सम्पत्ति को जो उनकी नही है हडप लेना चाहा है। परन्तु इस अर्द्धफल की भेट से राजा की आयु बढ़ेगी।" राजा रोग मुक्त हो गया और उसने बहुत कुछ दान सन्यासियो को देकर सङ्घाराम-सम्बन्धी कार्यों के मैनेजर (कर्म्मदान) को फल के बीजो को एक पात्र मे भर लेने की आज्ञा दी तथा अपने आरोग्य और दीर्घजीवन प्राप्त करने की कृतज्ञता मे इस स्तूप को बनवाया।

आमलक स्तूप के पश्चिमोत्तर मे एक प्राचीन संघाराम के मध्य मे एक स्तूप है। यह घटा बजाने वाला स्तूप कहलाता है। पहले इस नगर मे कोई १०० सङ्घाराम थे। यहाँ के सन्यासी गम्भार, विद्वान् और बडे ही सच्चरित्र थे। विरोधियो के सब विद्वान् उनके सामने चुप और गूंगे हो जाते थे। परन्तु पीछे से जब वे सब लोग मर गये तब उनके स्थानापन्न लोग उस क्षमता और योग्यता को नही पहुँच सके। विपरीत इसके, इस अवसर मे विरोधी लोग विद्योपार्जन करके बडे विद्वान् हो गये। उन्होने एक हजार से लेकर दस हजार तक अपने पक्षपाती मनुष्यो को सन्यासियो के स्थान में इकट्ठा किया, और सन्यासियो से यह कहा, 'अपने घंटे को बजाकर अपने सब विद्वानों को बुलाओ, हम उनसे शास्त्रार्थ करके उनकी मूर्खता को दूर कर देगे, और यदि हमारी भूल होगी तो हम हार जायँगे।"

इसके उपरान्त उन्होने राजा से मध्यस्थ होने की प्रार्थना की कि वह दोनो पक्षो की सबलता-निर्वलता का निर्णय करे। विरोधियो के विद्वान् उच्च कोटि के बुद्धिमान् और पूर्ण विद्यासम्पन्न थे, और बौद्ध यद्यपि संख्या मे बहुत थे परन्तु शास्त्रार्थ करने की क्षमता उनमे न थी, इस कारण हार गये।

विरोधियों ने कहा, "हम जीत गये हैं इस कारण आज से किसी सङ्घाराम में

सभा करने के निमित्त घटा न बजाया जाय।" राजा ने इस मन्तव्य को, जो शास्त्रार्थ का फल समझना चाहिये, स्वीकार कर लिया और उनसे सहमत होकर आज्ञा दे दी कि बौद्ध लोग यदि विरुद्धाचरण करेंगे तो अवश्य दडित होंगे। बौद्ध लोग लज्जित होकर और विरोधी उनको चिढाते हुये अपने-अपने स्थान को चले गये। इस समय से बारह वर्ष तक घटा बजाना बन्द रहा।

इन दिनो नागार्जुन बोधिसत्व दक्षिण-प्रान्त मे एक प्रसिद्ध विद्वान् था। अपनी योग्यता के कारण परमोत्तम पद को प्राप्त करके उसने गृहस्थी और उसके सुख को परित्याग कर दिया था। तथा धर्म के सर्वोच्च सिद्धान्तो को पूर्ण रीति से प्राप्त करने के लिये कठिन परिश्रम करके सर्वोपरि हो गया था। उसका देव नामक एक शिष्य अपनी आध्यात्मिक शक्ति और दूरदर्शिता के लिये बहुत प्रसिद्ध था। इसने, कर्म करने के लिये कटिबद्ध होकर कहा, "वैशाली मे बौद्ध लोग विरोधियो से शास्त्रार्थ मे परास्त हो गये हैं, इस समय बारह वर्ष कुछ मास और कुछ दिन व्यतीत हो चुके हैं कि उन्होंने घटा नही बजाया है। मुझको साहस होता है कि विरोधियो के पहाड को गिराकर सत्य धर्म की मशाल को प्रज्वलित कर दूँ।"

नागार्जुन ने कहा, "वैशाली के विरुद्ध धर्मावलम्बी अद्वितीय विद्वान् हैं; तुम्हारा उनका कुछ जोड नही है; मैं स्वय चलूगा।"

देव ने उत्तर दिया, "एक सडे और जर्जरित पेड को पीसने के लिये उसको पहाड से कुचलने की क्या आवश्यकता है? मुझको जो कुछ शिक्षा प्राप्त हुई है उसके प्रसाद से मुझको इस बात का पूर्ण विश्वास है कि मैं विरोधियो का बोल बन्द कर दूँगा। यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो आप विरोधियो का पक्ष लीजिये, और मैं आपका खण्डन करूँगा। इस बात से यह भी निश्चय हो जायगा कि मेरा जाना ठीक होगा या नही।"

इस पर नागार्जुन ने विरोधियो का पक्ष लेकर प्रश्न करना प्रारम्भ किया और देव उसकी युक्तियो को खडन करने लगा। सात दिन के बाद नागार्जुन हार गया और उसने बडे खेद के साथ कहा, "झूठ को स्थिरता नही होती, झूठी बात को बचाना बहुत कठिन है, तुम जाओ। तुम उन आदमियो को अवश्य परास्त करोगे।"

देव की प्रतिष्ठा का वृत्तान्त वैशाली के विरोधियो को भली-भाँति विदित था, इस कारण उन्होने सभा करके और सबकी सम्मति से राजा के पास जाकर यह निवेदन किया, "महाराज, आपने हमारी सभा मे पधारने की कृपा करके बौद्धो को घटा बजाने से रोक दिया है, अब हमारी प्रार्थना है कि आप यह भी आज्ञा दे दीजिये कि कोई विदेशी श्रमण नगर मे न घुसने पावे, नही तो वे लोग मिलजुल कर पुरानी आज्ञा

के भङ्ग करने का उपाय करेंगे।" राजा ने इस प्रार्थना से सहमत होकर अपने कर्मचारियो को बहुत कड़ाई से आज्ञा दी कि इसका पालन अवश्य किया जावे।

देव यहाँ तक आ गया परन्तु नगर में घुसने नही पाया। वह आज्ञा के भेद को समझ गया इस कारण अपने काषाय वस्त्र को उतार कर उन्हें तो घास में बन्द किया, और उस घास की गठरी बनाकर अपनी पीठ पर लाद कर नगर की ओर चल दिया और बेखटके भीतर घुस गया। नगर के मध्य में पहुँच कर उसने घास के गट्ठे को एक किनारे पटका और उसमे से अपने वस्त्र निकाल कर, ठहरने के अभिप्राय से एक सङ्घाराम मे गया। वहाँ पर कुछ लोग पहले से ठहरे थे इस कारण उसके लिये जगह न थी, तब वह घन्टे वाले मण्डप मे ठहर गया। सबेरे तडके उठ कर उसने घन्टे को बड़े जोर से बजा दिया।

लोग इसको सुनकर अचम्भे मे आ गये और पता लगाने लगे कि क्या बात है। उस समय उनको विदित हुआ कि रात को आने वाला नवागत व्यक्ति भिक्षु यात्री है।

थोड़ी देर में यह समाचार चारो ओर फैल गया तथा सब सङ्घारामो में घन्टों का तुमुलनाद निनादित हो उठा। राजा ने भी इस शब्द को सुना। उसने अपने आदमियो को पता लगाने के लिये भेजा। वे लोग सब स्थानों पर पता लगाते-लगाते इस सङ्घाराम मे भी पहुचे और देव को इस, काम का अपराधी ठहराया। देव ने उनको उत्तर दिया "घंटा समाज बुलाने के लिये बजाया जाता है, यदि इससे यह प्रयोजन न निकाला जावे तो फिर इसकी आवश्यकता ही क्या है?

राजा के लोगो ने उत्तर दिया, "यहाँ के सन्यासियो की मंडली पहले एक बार विवाद करके परास्त हो चुकी है। उस समय यह निर्णय हो चुका है कि घंटा बन्द कर दिया जाय, इस बात को बारह वर्ष से अधिक हो गये।"

देव ने उत्तर दिया, "क्या ऐसा है? तब तो मैं धर्म की दुन्दुभी को फिर से बजाने के लिये तैयार हूँ।"

उन लोगो ने जाकर राजा को समाचार सुनाया कि कोई नया श्रमण आया है जो अपने सहधर्मियो की पुरानी बदनामी को हटा देना चाहता है।

इसको सुनकर राजा ने सब लोगो को बुला भेजा और यह आज्ञा दी कि अब की बार जो हारे वह अपनी हार प्रकट करने के लिये प्राण त्याग करे।

इस समाचार को सुनकर सब विरोधी लोग अपना झंडा निशान लेकर आ पहुँचे और अपनी अपनी सामर्थ्यानुसार वाद-विवाद करने लगे। प्रत्येक ने अपनी-अपनी पहुँच के मुताबिक अपने-अपने प्रश्नो को पेश किया। तब देव बोधिसत्व उठकर धर्मा-

सन पर जाके खडा हुआ और उन लोगो के विवादो को लेकर शब्द-शब्द का खडन करने लगा। पूरा एक घंटा भी नही लगा उसने उन सबके सिद्धान्तों को छिन्न-भिन्न कर डाला। राजा और उसके मन्त्री बहुत सन्तुष्ट हो गये तथा इस पूज्य स्मारक को उसकी प्रतिष्ठा के लिये निर्मित कराया।

उस स्तूप के उत्तर मे जहाँ पर घटा बजाया गया था एक प्राचीन भवन है। यह स्थान एक ब्राह्मण का था जिसको राक्षसो ने मार डाला था। इस नगर के बसने के पहले एक ब्राह्मण था जिसने मनुष्यो की पहुँच से बहुत दूर जङ्गल मे एक स्थान पर एक कुटी बनाई थी, और वही पर उसने सिद्धि-लाभ करने के लिये राक्षसो का बलि प्रदान किया था। इस अन्तरिक्षीय सहायता को प्राप्त करके वह बहुत बढ-बढ कर बाते मारने लगा और बडे जोश मे आकर विवाद करने लगा। उसकी इन वक्तृताओं का समाचार सारे ससार मे फैल गया! कोई भी आदमी किसी प्रकार का प्रश्न उससे करे, वह एक परदे की ओट मे बैठ कर उसका उत्तर ठीक ठीक दे देता था। कोई भी व्यक्ति चाहे कैसा ही पुराना विद्वान और उच्च कोटि का बुद्धिमान हो, उसकी युक्तियो का खडन नही कर पाता था। सब सरदार और बडे आदमी उसको देखकर चुप हो जाते और उसको बडा भारी महात्मा समझते थे। इसी समय अश्वघोष बोधिसत्व[1] भी वर्तमान था, सम्पूर्ण विषय इसकी बुद्धि के अन्तर्गत थे, तथा तीनो यानो (हीन, महा और मध्य यान) के सिद्धान्त उसके हृदयङ्गम हो चुके थे। वह बहुधा यह कहा करता था, "यह ब्राह्मण बिना किसी गुरु से पढे विद्वान् हो गया है, इसकी जो कुछ बुद्धि है वह कल्पित है; प्राचीन सिद्धान्तो का इसने मनन नही किया है। केवल जङ्गल मे वास करके इसने नाम प्राप्त कर लिया है। यह सब जो कुछ करता है वह प्रेतो और गुप्त शक्ति की सहायता से करता है। इस सबब से मनुष्य उसके कहे हुये शब्दों का उत्तर नही दे पाते हैं और उसकी प्रसिद्धि को बढाते हुये उसको अजेय बतलाते हैं। मैं उसके स्थान पर जाऊँगा और देखूँगा कि यह क्या बात है, जिसमे उसका भेद खुल जाय।,

इस विचार से वह उसकी कुटी पर गया और कहा, "मुझको आपके प्रसिद्ध गुणो पर बहुत दिनो से भक्ति है। मेरी प्रार्थना है कि जब तक मैं अपने दिल की बात न समाप्त कर लूँ आप परदे को खुला रक्खे।" परन्तु ब्राह्मण ने बडे घमण्ड से परदे

---

(1) यह व्यक्ति बौद्ध धर्म का बारहवा रक्षक बताया जाता है। तिब्बत वालों के अनुसार यह मातृजेत के समान था, जिसने बुद्धोपासना के पद बनाये थे। नागार्जुन भी कवि था, इसने 'सुहृदलेख' नामक ग्रन्थ बनाया था और उसको दक्षिण कोशल के नरेश 'सद्वह' को समर्पण किया था।

को गिरा दिया और उत्तर देने के लिये उसके भीतर बैठ गया, और अन्त तक अपने प्रश्नकर्ता के सामने नही आया ।

अश्वघोष ने अपने दिल में बिचारा कि इसकी सिद्धि जब तक इसके पास रहेगी, तब तक मेरी बुद्धि बिगडी रहेगी । इसलिये उसने उस समय बातचीत करना बन्द कर दिया । परन्तु चलते समय उसने अपने मन मे कहा, "मैंने इसकी करामत को जान लिया यह अवश्य परास्त होगा ।" वह सीधा राजा के पास चला गया और यह कहा, "अगर आप कृपा करके मुझको आज्ञा दें तो मैं उस विद्वान् महात्मा से एक विषय पर बात चीत करूँ ।

राजा ने उसकी प्रार्थना को सुनकर बडे प्रेम से उत्तर दिया, "तुममे क्या इतनी शक्ति है ? जब तक कोई आदमी तीनो विद्या और छहो आध्यात्मिक-शक्तियो में पूर्ण व्युत्पन्न न हो जाय तब तक उससे कैसे शास्त्रार्थ कर सकता है ?" तो भी राजा ने आज्ञा दे दी और यह भी कहा कि विवाद के समय मेरा भी रथ पहुँचेगा और मैं स्वय हार-जीत का निर्णय करूँगा ।

विवाद के समय अश्वघोष ने तीनो पिट्टक के गूढ़ शब्दो का और पञ्च महा-विद्याओ के विशद सिद्धान्तो का आदि से अन्त तक अनेक प्रकार से वर्णन किया । इसी विषय को लेकर जिस समय ब्राह्मण अपना मत निरूपण कर रहा था उसी समय अश्वघोष ने बीच मे टोक दिया, 'तुम्हारे विषय का क्रमसूत्र खडित हो गया, तुमको मेरी बातो का सिलसिलेवार अनुसरण करना चाहिये ।"

अब तो ब्राह्मण का मुख बन्द हो गया और वह कुछ न कह सका । अश्वघोष उसकी दशा को ताड गया, उसने कहा, "क्यो नही मेरी गुत्थी को सुलझाते हो ? अपनी सिद्धि को बुलाओ और जितना शीघ्र हो सके उससे शाब्दिक सहायता प्राप्त करो ।" यह कह कर उसने ब्राह्मण की दशा को जानने के लिये परदे को उठाया ।

ब्राह्मण भयभीत होकर चिल्ला उठा, "परदा बन्द करो ! परदा बन्द करो !"

अश्वघोष ने समाप्त करते हुये कहा, "इस ब्राह्मण की कीर्ति का अब अन्त हो चुका । 'कोरी प्रसिद्धि थोडे दिन' की कहावत ठीक है ।"

राजा ने कहा, "जब तक पूर्ण योग्यता वाला आदमी न मिले मूर्ख लोगों की भूल को कौन दिखा सकता है । जो योग्य पुरुष होते हैं वही अपने बड़ो की बड़ाई को स्थिर करते है, और छोटे लोगो के मिथ्या आडम्बर को हटा देते हैं । इस प्रकार के लोगो की प्रतिष्ठा और आदर के लिये देश मे सदा से नियम चला आया है ।"

नगर के दक्षिण-पश्चिम कोण से निकल कर और लगभग २०० ली[1] चलकर एक प्राचीन और खण्डहर सङ्घाराम मिलता है। इसके निकट ही एक स्तूप भी है जिसमे से समय-समय पर दैवी प्रकाश और विलक्षण चमत्कार प्रकट होते रहते हैं। इस स्थान पर दूर तथा निकटवर्ती मनुष्यो की, जो भेट-पूजा करने आते है, नित्य भीड बनी रहती है। वे चिन्ह भी बने हुये है जहाँ पर गत चारो बुद्ध उठते-बैठते और चलते-फिरते रहे थे।

प्राचीन सङ्घाराम के दक्षिण-पश्चिम मे लगभग १०० ली पर एक सङ्घाराम तिलडक[2] (तिलोशीकिया) नामक है। इस भवन मे चार मडप तथा तीन खण्ड हैं। दो-दो द्वारो जो भीतर की तरफ खुलते हैं—का बीच देकर ऊँचे-ऊँचे बुर्ज बनाये गये हैं। यह बिम्बसार राजा के अन्तिम वशज[3] का—जो अपनी दूरदर्शिता और सत्कर्मो के लिये बहुत प्रसिद्ध हो गया है—बनवाया हुआ है। अनेक नगरो के पण्डित और बडे विद्वान् दूर-दूर से यहाँ पर आकर इस सङ्घाराम मे विश्राम करते थे। कोई १,००० सन्यासी है जो महायान सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं। मध्यवर्ती द्वारवाली सडक पर तीन विहार बने हुये हैं जो नीचे से ऊपर तक खण्ड पर खण्ड बनते चले गये हैं, और सबके ऊपर धातु की फिरकियाँ और घटिया लगी हुई है, जो हवा मे नाचा करती हैं। इनके चारो ओर कठघरा लगा हुआ है तथा दरवाजे, खिडकियाँ, खम्भे, धन्नियाँ और सीढी सब पर सुन्दर नक्काशी किया हुआ तांबा, और उस पर साने का मुलम्मा

---

(1) फ्रेच अनुवाद मे दूरी २०० पग लिखी हुई है। यहाँ पर मूल पुस्तक मे कुछ गडबड है। इस कारण जनरल कनिंघम साहब को भी स्थान के निर्णय मे कठिनाई पडी है।

(2) 'तिलडक' शब्द कनिंघम साहब ने भी निश्चय किया है, क्योंकि ची० ड, का बोधक है, जैसे 'चण्डक'। इससे वशिक और बिम्बसार राजा के वश का अन्तिम पुरुष नागडासक भी माना जा सकता है, परन्तु ठीक निर्णय तिलडक ही है। परन्तु आइसिङ्ग कुछ फेर कर 'तिलोचा' लिखता है जो 'तिलडा' का बोधक है। यह तिलडक भवन नालन्दा से पश्चिम तीन योजन अथवा लगभग २१ मील था। अपने अन्तिम वाक्य मे ह्वेनसाग लिखता है कि जब वह यहाँ आया था तब इसमे एक प्रभावशाली साधु प्रज्ञानभद्र रहता था, और उसके कुछ दिन बाद जब आइसिङ्ग आया तब यहाँ पर प्रज्ञानचन्द्र था। मैक्समूलर साहब ने तिलडक को सूरत मे बताया है। इसको सलवील साहब गलत मानते हैं, तथा आइसिङ्ग ने भी ऐसा नही लिखा है।

(3) बिम्बसार का वशज नागदाशक था, जिसके बाद नवनन्दो का राज्य हो गया था। कदाचित् यह महानन्दित के समान था।

चढ़ा हुआ है। मध्यवाले विहार में बुद्ध भगवान् की एक मूर्ति बनाई गई है जो तीस फुट ऊंची है। दाहिनी ओरवाले विहार में अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की मूर्ति बनी है, और बाईं ओर वाले विहार में तारा बोधिसत्व[1] की मूर्त्ति है। ये सब मूर्त्तियाँ धातु की बनी हुई हैं। इनका प्रभावशाली स्वरूप देखते ही सब दुख भाग जाते हैं तथा इनके चमत्कार का माहात्म्य दूर ही से यात्रियो को मालूम होने लगता है। प्रत्येक विहार मे थोडा थोडा शरीरावलेष भी रक्खा है जिसमें से अलौकिक प्रकाश निकला करता है तथा समय समय पर आश्चर्यजनक दृश्य प्रकट होते रहते हैं।

तिलडक संघाराम के दक्षिण-पश्चिम मे लगभग ९० ली चलकर हम एक नीले-काले संगमरमर के पहाड पर पहुँचे जो सघन वन से आच्छादित होकर अन्धकारमय हो रहा है। यहाँ पर पवित्र ऋषियो का वास है, विषैले सर्प और निर्दयी नागों की बाँबियाँ अगणित हैं, वनैले पशु और हिंसक पक्षी भी अधिक संख्या मे हैं। चोटी के पृष्ठ भाग पर एक बहुत मनोहर चट्टान है जिसके ऊपर एक स्तूप लगभग १० फीट ऊँचा बना हुआ है। यही स्थान है जहाँ पर बुद्ध भगवान् ने योगाश्रम में प्रवेश किया था। अपने जन्म धारण करने मे पूर्व तथागत भगवान् इस चट्टान पर आये थे, और पूर्ण समाधि में लीन होकर रात्रि भर रहे थे। उस समय देवता और महात्मा ऋषियो ने फूलवर्षा करके तथागत का पूजन किया था, और स्वर्गीय गान-वाद्य इत्यादि मे उनका सत्कार किया था, जिससे कि तथागत भगवान् की समाधि टूट गई थी। देवताओ ने उनकी भक्ति प्रदर्शित करते हुए सोने-चांदी का एक रत्नजटित स्तूप बनवाया था। इस बात को अब बहुत काल व्यतीत हो चुका है इस कारण वे बहुमूल्य वस्तुएँ पत्थर हो गई हैं। वर्षों से कोई मनुष्य यहां पर नही आया है, परन्तु दूर से पहाड की तरफ दृष्टि डालने से दिखाई पडता है कि अनेक प्रकार के वनैले पशु और सर्प इसकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। देवता, ऋषि और महात्मा लोग मिलजुल कर यहां पूजन-पाठ किया करते हैं।

पहाड की पूर्वी चोटी पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहा पर से कुछ देर खडे होकर तथागत ने मगधदेश को देखा था।

पहाड के उत्तर-पश्चिम मे लगभग ३० ली पर पहाड की ढाल मे एक संघाराम है। इसके चारो ओर खाईं ऊँची ऊँची दीवारे तथा बुर्ज, बीच बीच मे चट्टाने देकर बनाये गये हैं। महायान-सम्प्रदायी कोई पचास संन्यासी यहां पर निवास

(1) तारा देवी तिब्बतवालो मे योगाचार-संस्था-द्वारा पूजनीय है। तारावती, दुर्गा का भी स्वरूप है।

करते हैं। इस स्थान पर गुणमति बोधिसत्व ने विरोधियो को परास्त किया था। प्राचीन काल मे इस पहाड पर माधव नामक एक विरोधी निवास करता था, जिसने पहले साख्यशास्त्र का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया था। उसने आदि से अन्त तक 'शून्य-विषयक' सिद्धान्तो का जो विरोधियो की पुस्तको मे बहुत प्रबलता से निर्णय किये गये हैं, अध्ययन किया था। उसकी प्रसिद्धि सब प्राचीन विद्वानो से बढ गई थी और वह सब मनुष्यो मे विशेष पूज्य माना जाता था। राजा भी उसकी बडी प्रतिष्ठा करता था और उसको 'देश का खजाना' नाम से सम्बोधन करता था। मन्त्री तथा सब लोग उसकी बडो प्रशसा करके उसको गृहस्थ-धर्म का शिक्षक मानते थे। निकटवर्ती देशों के विद्वान् लोग भी उसकी विद्वत्ता की प्रतिष्ठा करके उसके ज्ञान का महत्त्व स्वीकार करते थे। अपने बडे बडे प्राचीन विद्वानो से तुलना करके वे लोग कहा करते थे कि यह व्यक्ति विद्वत्ता मे सर्वोपरि है। इसकी जीविका के लिए दो ग्राम नियत थे जिनके निवासी उसको कर देते थे।

इसी समय मे दक्षिण प्रान्त मे गुणमति बोधिसत्व रहता था जिसने अपने जीवन के प्रभातकाल ही मे बडी प्रतिष्ठा प्राप्त करके युवावस्था मे बडी बुद्धिमानी के कार्य किये थे। उसने तीनो पिटक के अर्थ को पूर्णतया अध्ययन करके हृदयङ्गम कर लिया था और चारों प्रकार की सत्यता[1] को जान लिया था। उसने सुना कि माधव गुप्त से गुप्त और सूक्ष्म प्रश्नों पर बहुत उत्तमता से विवाद करता है इस कारण उसने इसको परास्त करके दबा देने का विचार किया। उसने एक पत्र लिखकर अपने चेले के हाथ उसके पास भेजा। उसमे लिखा था, "हमने माधव की योग्यता का समाचार बहुत बार सुना है। इसलिए तुमको उचित है कि बिना परिश्रम का विचार किये हुए, अपनी पुरानी पढी हुई विद्या को फिर एक बार पढ जाओ, क्योंकि तीन वर्ष के भीतर भीतर मैंने तुमको परास्त करके तुम्हारी प्रतिष्ठा को धूल कर देने का इरादा किया है।"

इसी प्रकार उसने दूसरे और तीसरे वर्ष भी ऐसा ही सन्देशा भेजा, और जिस समय वह चलने पर उद्यत हुआ उस समय भी एक पत्र इस आशय का उसके पास भेजा, "नियत समय व्यतीत हो गया। अब तुमको सचेत हो जाना चाहिये, क्योंकि जो कुछ तुम्हारी विद्या है उसको जाँचने के लिये मैं आता हूँ।"

---

(1) चारो प्रकार की सत्यता, जो बुद्ध-धर्म की जड है—(१) दुःख की सत्यता। (२) समुदय अर्थात् दौर्भाग्य की वृद्धि। (३) निरोध अर्थात् दुखो का नाश सम्भव है। (४) मार्ग अर्थात् रास्ता।

माधव इस समाचार से भयभीत हो गया, उसने अपने शिष्यों और ग्रामवासियो को आज्ञा दे दी। "आज की मिती से किमी श्रमण का आतिथ्य सत्कार न किया जावे, इस आज्ञा को सब लोग पूरे तौर से पालन करें।"

कुछ दिनो बाद गुणमति बोधिसत्व अपना धर्म-दंड लिये हुये माधव के ग्राम में आ पहुँचा, परन्तु ग्राम रक्षको ने आज्ञानुसार उसको ठहरने न दिया। अलावा इसके ब्राह्मणो ने उसकी हँसी करते हुये उससे कहा, "इस अनोखे वस्त्र और मुंडे सिर से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? चलो यहाँ से, दूर हो, तुम्हारे ठहरने के लिये यहाँ पर स्थान नही है।"

विरोधी को परास्त करने की इच्छा रखने वाला गुणमति बोधिसत्व केवल रात भर ठहरने का प्रार्थी हुआ, उसने बडे कोमल शब्दो मे कहा, "तुम अपने सांसारिक कामो मे लगे हुये अपने को सच्चरित्र मानते हो, और मैं सत्य का आश्रय ग्रहण करके अपने को सच्चरित्र मानता हूँ, हमारा तुम्हारा जीवन-उद्देश्य एक ही है। फिर क्यो नही तुम मुझको ठहरने देते हो।"

परन्तु ब्राह्मण ने कुछ उत्तर नही दिया और उसको वहां से निकाल दिया। वहां से चलकर वह एक विशाल वन मे गया जहां पर बनैले पशु पथिको को भक्षण करने के लिये घूमा करते थे। उस समय उस स्थान पर एक बौद्ध भी था जो जङ्गली जन्तुओ और कांटों से भयभीत होकर हाथ मे डंडा लिये हुये उसकी तरफ लपका। बोधिसत्व से भेट करके उसने कहा, 'दक्षिण-भारत में गुणमति नामक एक बोधिसत्व बडा प्रसिद्ध है। वह यहां के ग्रामपति से धार्मिक विवाद करने के लिये आने वाला है। ग्रामपति ने उससे भयभीत होकर बहुत कडा हुक्म दे दिया है कि श्रमण लोगो की रक्षा न की जाय और न ठहरने को जगह दी जाय। इसलिये मुझको भय है कि कही कोई विपत्ति उस पर न आ पडे, और इसीलिये मैं आया हूँ कि उसके साथ रहकर उसकी रक्षा करूं, और उसको सब प्रकार के भय से बचाये रहूँ।

गुणमति ने उत्तर दिया, "हे मेरे परम कृपालु भाई! मैं ही गुणमति हूँ।" बौद्ध ने यह सुन कर बडी भक्ति के साथ उससे कहा, "यदि जो कुछ आप कहते हैं सत्य है तो आपको बहुत शीघ्र यहा से चल देना चाहिये।" उस जंगल को छोडकर वे दोनो थोडी देर के लिये मैदान मे ठहरे। वहाँ पर वह धर्मिष्ठ बौद्ध हाथ मे मशाल और कमान लिये हुये दाहिने बाएँ घूम-घूम कर उसकी रखवाली करता रहा। रात्रि का प्रथम भाग समाप्त होने पर उसने गुणमति से कहा, "यह उत्तम होगा कि हम लोग यहां से चल दे, नही तो लोग यह जानकर कि आप आ गये हैं आपके वध का प्रबन्ध करेंगे।"

गुणमति ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए उत्तर दिया, "मैं आपकी आज्ञा को उल्लङ्घन नही कर सकता।" इस बात पर वे दोनो राजा के भवन पर गये और द्वारपाल से कहा कि राजा से जाकर निवेदन करो कि एक श्रमण बहुत दूर से चलकर आया है, और प्रार्थना करता है कि महाराज कृपा करके उसको माधव के साथ शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दे देवे।

राजा ने इस सामाचार को सुनकर बडे जोश से कहा, 'यह मनुष्य कुछ बुद्धिहीन मालूम होता है।" इतना कहकर उसने अपने एक कर्मचारी को आज्ञा दी कि वह माधव के स्थान पर जाकर हमारी आज्ञा की शूचना इस प्रकार देवे, "एक विदेशी श्रमण तुमसे शास्त्रार्थ करने के लिए यहाँ आया है। इसलिए मैंने आज्ञा दे दी है कि शास्त्रार्थ-मडप लीप-पोत कर ठीक कर दिया जाय। और जो अन्यान्य बाते होगी वे आपके पधारने पर हो जायँगी तथा दूर और निकट के लोग भी उसी समय बुलाये जायँगे। कृपा करके आप अवश्य पधारिए।"

माधव ने राजा के दूत से पूछा, "क्या वास्तव में दक्षिण-भारत का विद्वान् गुणमति आया है?" उसने कहा, "हाँ वही आया है।"

माधव को यह सुनकर आन्तरिक दुःख तो अवश्य बहुत हुआ परन्तु इस कठिनाई से बचने का काई उत्तम उपाय वह नही कर सकता था इस कारण वह सभा-मडप की ओर रवाना हुआ जहाँ पर राजा, मंत्री और जनसमुदाय एकत्रित होकर इस महासभा के लिए उत्कठित हो रहे थे। पहले गुणमति ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का निरूपण किया और इसी विषय मे सूर्यास्त तक व्याख्यान देता रहा। माधव ने कहा, 'मैं अधिक अवस्था होने के कारण निर्बल हो रहा हूँ इस कारण मैं इस समय उत्तर नहीं दे सकता। विश्राम कर लेने और अच्छी तरह पर सोच विचार करने के उपरान्त मैं गुणमति के सब प्रश्नो का उत्तर क्रमबद्ध दे दूँगा।" दूसरे दिन प्रातःकाल आकर उसने उत्तर दिया। इसी तरह पर उन दोनो का विवाद छठे दिन तक होता रहा परन्तु छठे दिन माधव के मुख से खून गिरने लगा और वह मर गया। मरते समय उसने अपनी स्त्री को आज्ञा दी "तुम बड़ी बुद्धिमती हो, जो कुछ मेरी अप्रतिष्ठा हुई है उमको भूल मत जाना।" जब माधव का देहान्त हो गया, उसकी स्त्री, असली बात को छिपाकर और बिना उसका अन्तिम क्रिया-कर्म किये, उत्तम पोशाक पहिन कर सभा मे गई जहाँ पर शास्त्रार्थ होता था। लोग उसको देखकर हँसी से कहने लगे, "माधव जो अपनो बुद्धि की बडी शेखी मारा करता था गुणमति से शास्त्रार्थ करने मे असमर्थ हो गया है, और उस कसर को पूरा करने के लिए उसने अपनी स्त्री को भेजा है।"

गुणमति ने स्त्री से कहा "वह व्यक्ति जिसने तुमको विकल कर रक्खा है मेरे द्वारा विकल हो चुका है।"

माधव की स्त्री, मामिला बेढब समझ कर उलटे पैरो लौट गई। राजा ने पूछा, "इन शब्दो मे क्या भेद है जिससे यह स्त्री चुप हो गई।"

गुणमति ने उत्तर दिया, "शोक है माधव का देहान्त हो गया इसलिए उसकी स्त्री मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहती है।"

राजा ने पूछा, "आपने क्योकर जाना? कृपा करके मुझको समझा कर बताइए।"

तब गुणमति ने उत्तर दिया, "स्त्री के आने पर मैंने देखा कि उसके मुख पर मुरदे के समान पीलापन छाया हुआ था, तथा उसके मुख से जो शब्द निकलते थे वे शत्रुता से भरे हुए थे। इन्ही चिह्नो से मैं समझ गया कि माधव मर गया। 'जिसने तुमको विकल कर रक्खा है' ये शब्द उसके पति को ओर इशारा करने के लिए थे।"

इस बात की सत्यता की जाँच से लिए राजा ने दूत भेजा। ठीक पाने पर राजा ने बडे प्रेम से कहा कि 'बौद्धधर्म बहुत गूढ है, केवल अपनी ही भलाई के लिए ये लोग बुद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न नही करत हैं, और न इनकी गुप्त बुद्धि केवल लोगों को चेला बनाकर मूडने के लिए है। देश के नियमानुसार आप सरीखे योग्य महात्मा को कीर्ति स्थिर रखने का प्रयत्न होना चाहिए।"

गुणमति ने उत्तर दिया, जो कुछ तुच्छ बुद्धि मेरे पास है वह सबकी सब प्राणियो की भलाई के लिए है। जब मैं लोगो की हितकामना के लिए सन्मार्ग प्रदर्शित करने के लिए खडा होता हूँ तब सबसे पहले उनके घमंड को तोडता हूँ, और पीछे उन पर शिष्य होने का दबाव डालता हूँ। अब मेरी महाराज से यही प्रार्थना है कि इस जीत के बदले मे माधव के वशजो को आज्ञा दी जावे कि हजार पीढ़ी तक संघाराम की सेवा करते रहे। ऐसा करने से आपकी बनाई पद्धति सैकडो वर्ष तक चली जायगी। जिससे आपकी कीर्ति अमर हो जायगी। वे लोग धर्मिष्ठ होकर अपने ज्ञान और धार्मिक कृत्य से देश को शताब्दियो तक लाभ पहुँचाते रहेगे। उनका भरण-पोषण सन्यासियो के समान होना रहेगा, और जितने लोग बौद्ध-धर्म पर विश्वास करनेवाले हैं सब उनकी प्रतिष्ठा करके लाभ उठावेगे।"

इसके उपरान्त विजय का स्मारक उसने सघाराम बनाया।

माधव की हार के पीछे छः ब्राह्मण भाग कर सीमान्त-प्रदेश मे चले गये और उन लोगो की जो कुछ अप्रतिष्ठा हुई थी उसका वर्णन करके बडे बडे बुद्धिमान् पुरुषों

को उन्होने इकट्ठा किया, और अपनी कलक-कालिमा को दूर करने के लिए उन्हे ले आये।

राजा के चित्त मे गुणमति की वडी भक्ति हो गई थी। यह स्वयं चलकर उनके पास गया और इस प्रकार कहा, 'विरोधी लोग, विना अपने बल की तुलना किये हुए, आकर जमा हुए हैं और शास्त्रार्थ की दुन्दुभी वजाना चाहते हैं; इसलिए आपसे प्रार्थना है कि कृपा करके उनका मुख-मर्दन कर दीजिए।"

गुणमति ने उत्तर दिया, "क्या हर्ज है, जो लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं उनको आने दीजिए।"

विरोधियो के विद्वान् वहुत प्रसन्न थे। उन लोगो का कहाना था कि आज हम अवश्य जीत लेंगे। विरोधियों ने शास्त्रार्थ आरम्भ करने के लिए वडे जोर शोर से अपने सिद्धान्तो को पेश किया।

गुणमति वोधिसत्व ने उत्तर दिया, "जो लोग शास्त्रार्थ करने के लिए आये हैं वे पहले यहां से भाग गये थे, और राजा के नौकर थे, इस कारण इनकी कुछ मर्यादा नही है। ऐसे आदमियो से मेरा शास्त्रार्थ करना कुछ काम का नही है। सिंहासन के निकट एक भृत्य बैठा हुआ है जो इस प्रकार के वातानुवाद और शका समाधान को सुनता रहा हैं। ऐसे प्रश्नो का जो कुछ मैं उत्तर देता हूँ, उनको वह भली भांति जानता है"। यह कह कर गुणमति सिंहासन से उठ खडा हुआ और नौकर से कहा, "मेरे स्थान पर बैठ और शास्त्रार्थ कर" अदभुत कार्रवाई से सम्पूर्ण सभा दङ्ग रह गई। वह भृत्य सिंहासन के पास वैठकर विरोधियो के प्रश्न मे जो कुछ जटिलता थी उसकी जांच करने लगा। उसकी धाराप्रवाह वक्तृता ऐसी साफ निकल रही थी जैसे सोते से जल निकल रहा हो और उसकी बातें ऐसी सत्य थी जैसी कि आकाश वाणी। तीन ही उत्तर मे विरोधी परास्त हो गये और पर कटे पक्षी के समान विवश होकर लज्जित होते चले गये. इस विजय से सघाराम मे उसके खर्च के लिए बहुत से ग्राम और जनपद लगा दिये गये।

गुणमति के संघाराम से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग २० ली चलकर हम एक शून्य पहाडी पर आये जिसके ऊपर शिताभद्र नामक एक सघाराम है। यह वह सघाराम हैं जिसको विद्वान शास्त्री ने, विजय के उपरान्त जो कुछ ग्राम भेंट मे मिले थे, उनकी बचत से वनवायां था। इसके निकट ही एक नुकीली चोटी स्तूप के समान खडी हैं जिसमे बुद्ध भगवान का पुनीत शरीरावशेष रक्खा हुआ है। समतट राजा का वशज और जाति का ब्राह्मण था। यह वडा विद्या-प्रेमी था और उसकी कीर्ति भी वडी भारी थी। सत्य धर्म की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण भारतवर्ष मे घूमते

घूमते वह इस देश मे और नालन्दा के संघाराम में पहुँचा। धर्म बोधिसत्व मे सामना होने पर और उसके धर्मोपदेश को सुनकर उसका अन्त.करण खुलगया और उसने शिष्य होने की प्रार्थना की। उसने बडे बडे सूक्ष्म प्रश्न[1] किए और इसी सिलसिले मे मुक्ति का भी उपाय पूछा। उन सबका उचित उत्तर पाकर वह पूर्ण ज्ञानी हो गया उस समय के वर्तमान मनुष्यो मे बहुत दूर दूर तक उसकी कीर्ति फैल गई।

उन दिनो दक्षिण भारत मे एक विरोधी रहता था जिसने गूढ विषयों को मनन करने मे, सूक्ष्म तत्वो को ढूंढ निकालने में और जटिल से जटिल तथा अधकाराच्छन्न सिद्धान्तो को सुस्पष्ट करने मे बडा परिश्रम किया था। धर्मपाल की कीर्ति सुनकर उसके भी चित्त मे गर्व उत्पन्न हो गया। अथवा ईर्ष्या के वशीभूत होकर वह व्यक्ति पहाडो और नदियो को पार करता और शास्त्रार्थ की इच्छा से दुन्दुभी बजाता हुआ आ पहुँचा। उसने कहा, "मैं दक्षिण भारत का निवासी हूँ, मैंने सुना हैं इस राज्य मे एक बडा विद्वान शास्त्री निवास करता है यद्यपि में विद्यान नही हूँ परन्तु उससे शास्त्रार्थ करने आया हूँ"।

राजा ने कहा, "जो कुछ तुम कहते हो वह सत्य है।" इसके उपरान्त उसने एक दूत भेजकर धर्मपाल से यह कहला भेजा, "बहुत दूर से चल कर दक्षिण-भारत

---

(1) उसने पूछा कि सब लोगो का अन्तिम परिणाम क्या होता है ? इस प्रकार का विचार कि "सब लोगों का निश्चित स्थान" सस्कृत ध्रुव शब्द के समान हैं। यह समाधि का भी नाम है और निर्वाण के निरूपण करने में भी प्रयोग किया जाता है। बौद्ध लोगो के प्रसिद्ध सूत्र शुरङ्गन का भी यही सिद्धान्त शब्द हैं। इस पुस्तक मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने का विचार किया गया हैं। यह नालन्दा मे लिखी गई थी और कदाचित धर्मपाल की बनाई हुई हैं। इसी नाम की एक और भी पुस्तक हैं जिसका कुमारजीव ने अनुवाद किया था और फाहियान ने राजगृही के गृद्धकूट के स्थान पर पाठ किया था। यह पुस्तक सन् ७०५ ई० मे चीन मे गई और वहां की भाषा मे अनुवादित हुई। उस अनुवाद मे लिखा हुआ है कि यह पुस्तक मुर्द्धभिषिक्त सम्प्रदाय की है और भारतवर्ष मे आई हैं। कोलब्रूक साहब लिखते हैं कि मुर्द्धभिषिक्त लोग एक ब्राम्हण और एक क्षत्रिय कन्या के योग से उत्पन्न हुये थे। इस नामवाली सम्प्रदाय भी इसी प्रकार कदाचित ब्राम्हणो और बौद्धो का सम्मिश्रण करके बनाई गई हो अर्थात उन दोनो के सिद्धान्तो का सार ग्रहण करके एक मे मिलाया गया हो। इन दिनो नालन्दा ब्राहमणो और बौद्धो दोनो ही के पठन पाठन का मुख्य स्थान। इसलिए सम्भव है यह सम्प्रदाय भी वही पर स्थापित हुई हो।

का एक निवासी यहाँ पर आया है और आपसे शास्त्रार्थ करना चाहता है, क्या आप कृपा करके सभा-भवन मे पधार कर उससे विवाद करेंगे ।"

इस समाचार को पाकर धर्मपाल अपने वस्त्र पहन करके चलने ही को था कि उसी समय शीलभद्र आदिक शिष्य उसके पास आये और पूछा, "आप इतनी जल्दी जल्दी कहाँ को पधार रहे हैं ?" धर्मपाल ने उत्तर दिया, "जब से ज्ञान का सूर्य अस्त हो गया[1] और केवल उसके बताये हुए सिद्धान्तो के दीपक अपना प्रकाश फैला रहे हैं तब से विरोधी पतगो और चीटियो के समूह के समान उमड पडे हैं, इसलिए मैं उन्ही को कुचलने के लिए जा रहा हूँ कि जो सामने आकर शास्त्रार्थ करेंगे ।"

शीलभद्र ने उत्तर दिया, "मैंने भी बहुत शास्त्रार्थ देखे हैं इस कारण मुझको ही आज्ञा दीजिए कि 'मैं इस विरोधी को परास्त करूँ ।" धर्मपाल उसका वृत्तान्त अच्छी तरह पर जानता था इस कारण उसको शास्त्रार्थ करने का हुक्म दे दिया ।

इस समय शीलभद्र की अवस्था केवल ३० साल की थी। सभासद् उसके अल्प वय को तुच्छ दृष्टि से देखकर इस बात का भय करने लगे कि कदाचित् यह अकेला उससे शास्त्रार्थ न कर सकेगा । धर्मपाल इस बात को जानकर कि उसके अनुयायियो का चित्त उद्विग्न हो रहा है, आप भी सबको सतुष्ट करने के लिए झटपट सभा मे पहुँच गया और कहने लगा, "किसी व्यक्ति की उत्तम बुद्धि की प्रतिष्ठा हम यह कह कर नही करते कि उसके दाँत नही हैं (अर्थात् दाँतो के हिसाब से आयु का अन्दाजा करना कि वृद्ध है अथवा युवक) जैसी कि इस समय हो रही है । मैं विश्वास करता हूँ कि यह विरोधी को अवश्य परास्त करेगा । इस काम के करने मे यह अच्छी तरह समर्थ है ।"

सभा के दिन दूर तथा पास के अनगिनती मनुष्य आकर इकट्ठे होगये । विरोधी पण्डित ने अपने जटिल प्रश्नो को बडे जोर शोर के साथ उपस्थित किया । शीलभद्र ने उसके सिद्धान्तो का गम्भीर और सूक्ष्म प्रकार से बहुत ही अच्छी तरह खन्डन किया, यहाँ तक कि विरोधी को कुछ उत्तर न बन आया और वह लज्जित होकर चला गया ।

राजा ने शीलभद्र की योग्यता के सत्कारार्थ इस नगर का कुल लगान सदा के लिये उसको दान कर दिया । विद्वान् शास्त्री ने इस भेट को अस्वीकार करते हुये उत्तर दिया, 'विद्वान् वही है जो धर्म-वस्त्र धारण करके इस बात पर भी ध्यान रक्खे कि

---

(1) जब से बुद्ध का देहान्त हो गया ।

सन्तोष किसको कहते हैं और उसका आचरण किस प्रकार शुद्ध रह सकता है। इस-लिये इस नगर को लेकर मैं क्या करूँगा ?"

राजा ने उत्तर मे निवेदन किया, "धर्मपति अज्ञात स्थान में पहुँच गया है, और ज्ञान का पात्र जलधार में डूब गया है। ऐसी अवस्था मे यदि मूर्ख और विद्वान् का भेद न किया जायगा तो धार्मिकता प्राप्त करने के लिये विद्वान् पुरुषो को किस तरह पर उत्तेजना मिलेगी। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि कृपा करके मेरी भेट को अङ्गीकार कीजिये।

इस बात को सुनकर उसने अस्वीकार करने के अपने हठ को त्याग दिया और नगर को ग्रहण करके इस विशाल और मनोहर सङ्घाराम को बनवाया। नगर की जो कुछ आमदनी थी वह सङ्घाराम में लगा दी गई जिसमें धार्मिक कृत्य के लिये सदा सहायता पहुँचती रहे।

शीलभद्र के सङ्घाराम के दक्षिण-पश्चिम मे लगभग ४० या ५० ली की दूरी पर नीराञ्जना [1] नदी पार करके हम गयानगर[2] मे पहुंचे। यह नगर प्रकृतितः सुदृढ़ है। इसके निवासी संख्या मे थोडे हैं—केवल १,००० के लगभग ब्राह्मणों के परिवार हैं जो एक ऋषि के वशज हैं। उनको राजा अपनी प्रजा नही समझता, और जन-समुदाय मे भी उनका बडा मान है।

नगर के उत्तर मे लगभग ३० ली की दूरी पर एक स्वच्छ जल का झरना है। भारतीय इतिहासो मे यह जल अत्यन्त पुनीत कहा जाता है। जो लोग इस जल को पान करते हैं अथवा इसमे स्नान करते हैं उनके बड़े से बड़े पातक नाश हो जाते हैं।

नगर के दक्षिण-पश्चिम ५ या ६ ली चलकर हम गया पर्वत पर आये जिसमे अँधियारी घाटियाँ, झरने और ऊँचे-ऊँचे तथा भयानक चट्टान हैं। भारतवर्ष वाले प्रायः इस पहाड का नाम देवप्रदत्त बतलाते हैं। प्राचीनकाल से इस देश की प्रथा है कि जब राजा का राजतिलक किया जाता है तब वह इस पहाड़ पर आकर कुछ कृत्यों

---

(1) यह नदी आजकल फल्गू कहलाती है। लीलाञ्जन या नीलाञ्जन नाम केवल पश्चिमी शाखा का है जो गया से पांच मील पर मोहानी नदी मे मिल जाती है।

(2) आजकल यह स्थान ब्रह्म-गया कहलाता है ताकि बुद्धगया जहां पर बुद्धदेव ज्ञानावस्था को प्राप्त हुये थे और इस स्थान का भेद स्पष्ट बना रहे। पटना से गया तक की दूरी आजकल के हिसाब से ६० मील है और ह्वेनसांग के मार्ग के अनुसार ७० मील होनी चाहिये। यह पटना से पुराने सङ्घाराम की दूरी २०० ली लिखता है, परन्तु यह नही मालूम होता कि वह किस दिशा मे था इस कारण उसके हिसाब की ठीक-ठीक जांच नही हो सकती।

को करके अपने राजा होने की सूचना देना है। उन लोगो का विश्वास है कि ऐसा करने से राजा का राज्य दूर-दूर तक फैलेगा और उसकी कीर्ति की वृद्धि होगी। पहाड की चोटी पर अशोक राजा का बनवाया हुआ एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा है। इसमे समय-समय पर दैवी चमत्कार और पुनीत व्यापार प्रदर्शित होते रहते हैं। प्राचीन काल मे तथागत भगवान ने इस स्थान पर 'रत्नमेघ' तथा अन्यान्य सूत्रों का सकलन किया था।

गयाद्रि के दक्षिण-पूर्व मे एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर काश्यप बुद्ध का जन्म हुआ था। इस स्तूप के दक्षिण मे दो और स्तूप हैं। ये वे स्थान हैं जहाँ पर गया काश्यप और नदी काश्यप ने अग्निपूजको के समान यज्ञ इत्यादि किया था।

जहाँ पर गया काश्यप ने यज्ञ किया था उस स्थान के पूर्व मे एक बडी नदी पार करके हम प्राग्बोधि नामक पहाड पर आये[1]। तथागत भगवान् छः वर्ष तक तपस्या करके भी जब पूर्ण ज्ञान से वञ्चित रहे तब तपस्या से हाथ उठा कर खीर को ग्रहण कर लिया था। खीर खाकर पूर्वोत्तर दिशा में जाते हुये उन्होंने इस पहाड को देखा जो जनपद से अलग और अन्धकाराच्छन्न था। यहा आकर उन्होने ज्ञान प्राप्त करने का विचार किया। पूर्वोत्तर की ओर वाले ढाल से चढकर वह चोटी पर गये, उसी समय धरती डोल उठी और पहाड हिल गया। उसी समय पहाड के देवता ने भयभीत होकर बोधिसत्व से इस प्रकार निवेदन किया, "पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह पहाड उपयुक्त स्थान नही है। यदि यहाँ ठहर कर आप वज्रसमाधि को धारण करेगे तो भूमि विकम्पित और सञ्चालित होकर पहाड को आपके ऊपर गिरा देगी।"

तब बोधिसत्व उतरने लगा और दक्षिण-पश्चिम वाले ढाल पर आधोआध मे ठहर गया, क्योकि वहाँ पर एक धारा के सामने चट्टान था जिसमे गुफा बनी हुई थी। वहाँ पर वह आसन मार कर बैठ गया। उस समय भूमि फिर हिल उठी और पहाड कांपने लगा। तब पग भर की दूरी से शुद्धवास स्थान का देवता चिल्ला उठा, "तथागत! यह स्थान भी पूर्ण ज्ञान सम्पादन करने के लिये उपयुक्त नही है। यहाँ से १४ या १५ ली दक्षिण-पश्चिम में तपस्या स्थान के निकट एक पीपल का वृक्ष है जिसके नीचे एक 'वज्रासन'[2] है। इस आसन पर सभी गत बुद्ध बैठते रहे हैं और सच्चा ज्ञान

---

(1) तथागत भगवान ज्ञान प्राप्त होने के समय इस पहाड पर चढे थे। इसी सबब से इस पहाड का यह नाम पडा है।

(2 वज्रासन वह आसन या सिंहासन कहलाता है जो कभी नाश न हो सके। जिस स्थान पर सब बुद्धो को ज्ञान प्राप्त हुआ था वह स्थान पृथ्वी का केन्द्र माना जाता है।

प्राप्त करते रहे हैं। इसी प्रकार भविष्य मे भी जो वैसा ही ज्ञान प्राप्त करना चाहें उनको भी उसी स्थान पर जाना चाहिये, इसलिये आपसे भी प्रार्थना है कि वही पर जाइये।

जिस समय बोधिसत्व उस स्थान से चलने लगा उसी समय गुफा मे रहने वाला नाग बाहर निकल आया और कहने लगा "यह गुफा शुद्ध और बहुत उत्तम है। इस स्थान पर आप अपने पुनीत मन्तव्य को सहज मे पूर्ण कर सकते है। यदि आप मेरे साथ रहना स्वीकार करेंगे तो आपकी अपरिमित कृपा होगी।"

परन्तु बोधिसत्व यह जानकर कि यह स्थान अभीष्ट प्राप्ति के लिये उपयुक्त नहीं है नाग की प्रसन्नता के लिये अपनी परछाँही उस स्थान पर छोड कर वहाँ से चल दिये। देवता मार्ग बताने के लिये आगे-आगे चलकर बोधिवृक्ष तक उनके साथ गये।

जिस समय अशोक का राज्य हुआ उसने इस पहाड़ पर ऊँचे नीचे सब स्थानों को, जहाँ-जहाँ बुद्धदेव गये थे, ढूँढ निकाला और सब स्थानो को स्तूपो तथा स्तम्भों से सुसज्जित कर दिया। यद्यपि इन सबका स्वरूप अनेक प्रकार का है परन्तु दैवी चमत्कार सबमे समान है। कभी-कभी इन पर स्वर्गीय पुष्पो की वृष्टि होती है और कभी-कभी अन्धकारपूर्ण घाटियो मे प्रकाश की जगमगाहट होने लगती है।

प्रत्येक वर्ष के अन्तिम दिन अनेक देशो के धार्मिक गृहस्थ अपनी धार्मिक भेट-पूजा के लिये इस पहाड पर जाते हैं। वे लोग एक रात्रि ठहर कर लौट आते हैं।

प्राग्बोधि पहाड़ के दक्षिण-पश्चिम मे लगभग १४ या १५ ली चलकर हम बोधिवृक्ष तक पहुँचे। इसके चारो ओर ऊँची और सुदृढ दीवार ईंटो से बनाई गई है। इसका फैलाव पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बा और उत्तर से दक्षिण की ओर चौडा है। इसके कुल क्षेत्रफल की नाप लगभग ५०० कदम है। प्रसिद्ध पुष्प वाले दुर्लभ वृक्ष अपनी छाया समेत इससे मिले हुये है तथा भूमि पर 'शा'[1] घास और अन्यान्य छोटी-छोटी झाड़ियाँ फैली हुई हैं। मुख्य फाटक नीराजन नदी की तरफ पूर्वाभिमुख है। दक्षिणी द्वार के सामने नदी तट पर सुन्दर पुष्पोद्यान बना हुआ है। पश्चिम की ओर की दीवार मे कोई द्वार नही है परन्तु यह सब ओर की दीवारो से अधिक दृढ है। उत्तरी फाटक खोलने से एक सङ्घाराम मे पहुचना होता है। इस चहारदीवारी के भीतरी भाग मे पग-पग पर पुनीत स्थान वर्तमान है। एक स्थान पर यदि स्तूप है तो दूसरे स्थान पर विहार हैं। सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के राजा, महाराजा, तथा बडे-बडे मनुष्यो ने जिन्होने इस धर्म मे दीक्षित होकर अपने को कृतार्थ किया है, इस स्थान पर आकर स्मृति-स्वरूप इन स्मारकों को बनाया है।

---

(1) यह चीनी शब्द है इसके अर्थ का द्योतक हिन्दी शब्द नही मिला।

बोधिवृक्ष की चहारदीवारी के मध्य मे वज्रासन है। प्राचीनकाल मे जिस समय भद्र कल्पविवर्त्त अवस्था को प्राप्त हो रहा था और जिस समय भूमि का उद्गमन हुआ था उसी समय यह आसन भी निकला था। इसके नीचे सोने का चक्र है और ऊपरी भाग भूमि के बराबर और चमकदार है, क्योकि हीरो से बना हुआ है। इसका क्षेत्रफल लगभग १०० पग है। भद्रकल्प मे एक हजार बुद्धो ने इस पर बैठ कर वज्र-समाधि को धारण किया था, इसी सबब से इसका नाम वज्रासन है। यही स्थान है जहाँ पर बुद्धदेव को सन्मार्ग की प्राप्ति हुई थी, इस कारण इसको बोधिमण्डप भी कहते हैं। सम्पूर्ण भूमि के विकम्पित होने पर भी यह स्थान अचल बना रहता है। जिस समय तथागत भगवान् बुद्ध दशा को प्राप्त हो रहे थे और इस स्थान के चारो कोनो पर घूम रहे थे उस समय भूमि हिल उठती थी, परन्तु इस स्थान पर आने से उनको कुछ भी विचार नही मालूम हुआ। यह सदा के समान निश्चल ही बना रहा। जिस समय कल्प की समाप्ति होने लगती है और सत्यधर्म का विनाश हो जाता है उस समय इस स्थान को मिट्टी और धूल आच्छादित कर लेती है जिससे यह अधिक दिनो तक दृष्टि से लोप ही बना रहता है।

बुद्धदेव के निर्वाण प्राप्त करने के उपरान्त अनेक देशो के राजा लोग वज्रासन की नाप का वृत्तान्त सुनकर यहाँ पर आये और उन्होने इसके उत्तर-दक्षिण का निर्णय, कि वास्तव मे कहाँ से कहाँ तक होना चाहिए, अवलोकितेश्वर बोधि-सत्व की दो प्रतिमाओ से किया जो एक एक किनारे पर पूर्वाभिमुख बैठी हुई हैं। पुराने पुराने लोग कहा करते हैं कि "जिस समय बोधिसत्व की मूर्तियाँ भूमि मे घुस कर अदृश्य हो जावेगी उस समय बुद्ध-धर्म का भी निश्चय अन्त हो जावेगा"। दक्षिण की तरफवाली प्रतिमा आजकल छाती तक भूमि मे समा चुकी है। वज्रासन के ऊपरवाला बोधिवृक्ष ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार का पीपल का वृक्ष होता है। प्राचीनकल मे बुद्ध भगवान् के जीवन-पर्य्यन्त इस वृक्ष की ऊँचाई कई सो फीट थी। इस समय भी यद्यपि यह कई बार काट कूट डाला गया है तो भी चालीस पचास फीट ऊँचा है। इसी वृक्ष के नीचे बैठ कर बुद्ध भगवान् ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। इसी कारण इसको 'सम्यक् सम्बोधि वृक्ष' कहते हैं। छाल का रङ्ग कुछ पीलापन लिये हुए श्वेत है तथा पत्र और पल्लव काही के रङ्ग के हैं। इसकी पत्तियाँ, चाहे गरमी हो और चाहे सरदी, कभी नही गिरती, वरञ्च सदा विकाररहित चमकीली और सुहावनी बनी रहती हैं। केवल उस समय जब किसी बुद्ध का निर्वाण हो जाता है सब पत्तियाँ एक-दम मे गिर कर थोडी ही देर मे फिर नवीन हो जाती है। उस दिन (निर्वाणवाले दिन) अनेक देशो के राजा लोग और अगणित धार्मिक पुरुष भिन्न भिन्न स्थानो से आकर हजारो और लाखो की सख्या में इस स्थान पर एकत्रित होते हैं। सुगंधित जल

और दुग्ध से इसकी जडों का सिञ्चन करके गाते-वजाते हुए पुष्प और सुगंधित धूप इत्यादि चढाते है। यहाँ तक कि जब दिन समाप्त हो जाता है तब भी रात्रि मे मशाले जला कर अपने धार्मिक कृत्य को करते रहते हैं।

बुद्ध-निर्वाण के पश्चात् जब अशोक राज्यासन पर वैठा तब उसका विश्वास इस धर्म पर नही था। बुद्धदेव के पवित्र स्मृति-चिन्हों को नष्ट करने के अभिप्राय से वह सेना-सहित इस स्थान पर वृक्ष का नाश करने के लिए आया। उसने वृक्ष को जड से काट डाला। तना, डाली, पत्तियाँ आदि सब टुकडे टुकडे करके उस स्थान से पश्चिम की ओर थोडी दूर पर ढेर कर दिये गये। इसके उपरान्त राजा ने एक ब्राह्मण को आज्ञा दी कि वृक्ष मे आग उत्पन्न करके यज्ञ का समारम्भ करे। सम्पूर्ण वृक्ष जल कर निर्मूल होने ही पर था कि एकाएक एक दूसरा वृक्ष पहले वृक्ष से दूना उस ज्वाला मे से निकल आया। इसके पत्र इत्यादि पक्षियो के पर के समान चमकीले थे। इस कारण इसका नाम 'भस्मबोधिवृक्ष' हुआ। अशोक राजा इस चमत्कार को देख कर अपने अपराध पर बहुत पश्चात्ताप करने लगा। उसने प्राचीन वृक्ष की जड़ को सुगंधित दूध से सिञ्चन किया। दूसरे दिन सवेरा होते ही पहले के समान वृक्ष उग आया। अशोक राजा इस घटना मे वहुत ही विचलित हो गया और बुद्ध-धर्म पर उसका विश्वास इतना अधिक बढ गया कि वह धार्म्मिक कर्म मे ऐसा लिप्त हुआ कि घर लौटना भूल गया। उसकी स्त्री भी विरोधियो मे से थी। उसने गुप्तरूप से एक मनुष्य को भेजा जिसने आकर रात्रि के प्रथम पहर मे वृक्ष को फिर से काट कर गिरा दिया। दूसरे दिन सवेरे जब अशोक वृक्ष की पूजा करने के लिए आया तो वृक्ष की दुर्दशा देखकर ही दुखित हुआ। बडी भक्ति के साथ प्रार्थना करते हुए वृक्ष की पूजा करके उसने फिर जडो को उसी प्रकार सुगंधित दुग्ध इत्यादि से सिञ्चन किया जिससे दिन भर के भीतर ही भीतर वृक्ष फिर नवीन हो गया। अशोक ने इस विलक्षणता को देख कर और अगाध भक्ति मे मग्न होकर वृक्ष के चारो ओर ईंटो से १० फीट ऊँची दीवार बनवा दी जो अब तक वर्तमान है। अन्तिम समय मे शशाङ्क राजा ने विरोधियो का अनुयायी होकर, बौद्ध-धर्म पर मिथ्या कलङ्क लगाने के लिए ईर्षावश अनेक संघारामो को खुदवा डाला और बोधिवृक्ष को काट कर गिरा दिया। इतने पर भी उसको सन्तोष नही हुआ। उसने पानी के सोते तक भूमि को खुदवा डाला, परन्तु जड का अन्त न मिला। तब उसने उसको फुँकवा दिया और ऊख के रस से भरवा दिया जिससे सर्वथा इसका नाश हो जावे और चिन्ह तक न बच रहे।

कुछ दिनो वाद जब पूर्णवर्म्मा नामक-देश के राजा ने जो अशोक-वंश का

अन्तिम नृपति था, इस समाचार को सुना तो वह बहुत दुखित हुआ। उसने कहा "ज्ञान का सूर्य अस्त हो चुका है, उसका स्मारक और कुछ नही केवल बोधिवृक्ष था, पर उसको भी इन दिनो लोगो ने विनष्ट कर डाला, धार्मिक जीवन का अब क्या अवलम्ब होगा?" इसी प्रकार विचार करते करते वह शोक-सम्मोहित होकर भूमि पर गिर पडा। इसके उपरान्त उसने एक हजार गौओ के दुग्ध स वृक्ष की जडो को सिँचवाया, जिससे रात्रि भर मे १० फोट ऊँचा वृक्ष निकल आया। इस बात का भय करके कि कदाचित् इसको फिर कोई न काट डाले उसने २४ फ़ोट ऊँची दीवार इसके चारो ओर बनवा दी जो अब भी वृक्ष को घेरे हुए २० फीट ऊँची वर्तमान है।

बोधिवृक्ष के पूर्व एक विहार १६० या १७० फीट ऊँचा है। इसकी नीव की चौडाई २० कदम के लगभग है। सम्पूर्ण इमारत नीली ईंटो की है जिसके ऊपर चूने का पलस्तर है। प्रत्येक खड मे जितने आले हैं उन सबमे सोने की मूर्तियाँ हैं। स्थान के चारो ओर बहुत सुन्दर चित्रकारी और पच्चीकारी का काम बना हुआ है। किसी किसी स्थान पर तो चित्र मोतो जड कर बनाये गये हैं। अनेक स्थानो पर ऋषियो की मूर्तियाँ हैं जिनके चारो ओर मुलम्मा किया हुआ ताँबा जडा है। पूर्व की ओर सिहपौर है जिसके निकले हुए छज्जे, एक पर एक बने हुए, यह सूचित करते हैं कि यह तीन खन्ड का है। इसके छज्जे, खम्भे, कडियाँ और खिडकियाँ इत्यादि सोने और चाँदी से मढी हुई हैं और बीच बीच मे मोती और रत्न इत्यादि जड़ दिये गये हैं। तीनो खण्डो मे से गुप्त कोठरियो और अधकाराच्छन्न तहखानो म जाने का अलग अलग रास्ता है। फाटक के बाहरी ओर दाहिने और बाएँ दोनो तरफ दो आले इतने बडे बडे हैं जितना बडा कोठरी का द्वार होता है। बाएँ ओरवाले आले मे अवलोकितेश्वर बोधिसत्व को प्रतिमूर्ति है और दाहिनी ओरवाले मे मैत्रेय बोधिसत्व की प्रतिमा है। य दोनो चाँदी की बनी हुई श्वेत-रङ्ग की है और कोई १० फीट ऊँची हैं। जिस स्थान पर यह विहार बना हुआ है ठीक उसी स्थान पर पहले एक छोटा सा विहार अशोक राजा का बनवाया हुआ था। पीछे से एक ब्राह्मण ने इसको वृहदाकार का बनवाया। आदि मे यह ब्राह्मण बुद्ध-धर्म मे विश्वास नही करता था। वरञ्च महेश्वर का उपासक था। इस बात को सुनकर कि उसका ईश्वर हिमालय पहाड मे रहता है वह अपने छोटे भाई के सहित उस स्थान पर महादेव से प्रार्थना करने गया। देवता ने उत्तर दिया, "जो प्रार्थना करके कुछ चाहते हो उनमे कुछ धार्मिक बल भी होना आवश्यक है। यदि तुम प्रार्थना करने वाले मे पुण्य-बल नही है तो न तो तुमको कुछ माँगने का अधिकार है और न मैं कुछ दे ही सकता हूँ।"

ब्राह्मण ने पूछा, "वह कौन सा पुण्य-कर्म है जिसके करने से मेरी कामना पूर्ण हो सकेगी ?"

महादेव जी ने उत्तर दिया "यदि तुम पुण्य की जड उत्तम प्रकार से जमाया चाहते हो तो उसके लिये उत्तम क्षेत्र भी तलाश करो। बुद्धावस्था प्राप्त करने का उत्तम स्थान बोधिवृक्ष है। तुम सीधे वही पर चले जाओ और बोधिवृक्ष के निकट ही एक बडा भारी विहार और एक तड़ाग बनवाओ तथा सब प्रकार की वस्तुएँ धार्मिक कृत्य के लिये भेट कर दो। इस पुण्य-कार्य के करने से अवश्य तुम्हारी कामना पूर्ण होगी।"

ब्राह्मण इस प्रकार की दैवी आज्ञा पाकर और इस आदेश को भक्तिपूर्वक धारण करके लौट आया। बडे भाई ने विहार बनवाया और छोटे ने तडाग। इसके उपरान्त धार्मिक भेट का समारोह करके वे दोनो अपनी कामना के पूर्ण होने की प्रतीक्षा करने लगे। उनकी कामना पूर्ण हुई। वह ब्राह्मण राजा का प्रधान मन्त्री हो गया। इस पद पर रहने से जो कुछ लाभ उसको होता था वह सबका सब वह दान कर देता था। जिस समय विहार उसकी इच्छानुकूल बन कर तैयार हो गया उस समय उसने बडे-बडे कारीगरो को बुलाकर आज्ञा दी कि बुद्धदेव की एक मूर्ति उस समय की बना दो जिस समय वह पहले पहल बुद्धावस्था को प्राप्त हुये थे। परन्तु किसी कारीगर ने इस प्रकार की मूर्ति बना देने का वचन नही दिया। वर्षों इसी प्रकार व्यर्थ प्रयत्न होता रहा। अन्त मे एक ब्राह्मण आया, उसने सब लोगो पर यह प्रकट किया कि मैं अभिलषित मूर्ति बना दूँगा।"

लोगो ने पूछा, "तुमको इस काम के करने के लिये किन-किन वस्तुओ की आवश्यकता होगी ?"

उसने उत्तर दिया "विहार के भीतर सुगंधित मिट्टी रख दो और दीपक जला दो, जब मै भीतर चला जाऊँ तब द्वार बन्द कर दो। उस द्वार को छः महीने बाद खोलना होगा, तब तक वह बन्द रहना चाहिये।"

सन्यासियो ने उसी समय उसकी आज्ञानुसार सब काम कर दिया। परन्तु चार ही महीने के बाद उत्सुक सन्यासियो ने, यह जानने के लिये कि भीतर क्या हो रहा है, द्वार खोल दिया। भीतर उन्होने क्या देखा कि एक सुन्दर मूर्ति बुद्ध भगवान की बैठी हुई है[1] जिसका मुख पूर्व की ओर है और यही मालूम होता है कि स्वयं बुद्धदेव सजीव बैठे हुये है। सिंहासन चार फीट दो इञ्च ऊँचा और बारह फीट पाँच इञ्च विस्तृत था। मूर्ति ११ फीट ५ इञ्च ऊँची, एक जाँघ का दूसरी जांघ से फासिला ८ फीट ८ इञ्च,

---

(1) यह मूर्ति पल्थी मार बैठी थी, जिसका दाहिना पैर ऊपर था, बायीं हाथ जाँघ पर रक्खा था और दहिना हाथ लटक कर भूमि से छू गया था।

अन्तिम नृपति था, इस समाचार को सुना तो वह बहुत दुखित हुआ। उसने कहा "ज्ञान का सूर्य अस्त हो चुका है, उसका स्मारक और कुछ नही केवल बोधिवृक्ष था, पर उसको भी इन दिनो लोगो ने विनष्ट कर डाला, धार्मिक जीवन का अब क्या अवलम्ब होगा ?" इसी प्रकार विचार करते करते वह शोक-सम्मोहित होकर भूमि पर गिर पडा। इसके उपरान्त उसने एक हजार गौओ के दुग्ध से वृक्ष की जडो को सिँचवाया, जिससे रात्रि भर मे १० फीट ऊँचा वृक्ष निकल आया। इस बात का भय करके कि कदाचित् इसको फिर कोई न काट डाले उसने २४ फीट ऊँची दीवार इसके चारो ओर बनवा दी जो अब भी वृक्ष को घेरे हुए २० फीट ऊँची वर्तमान है।

बोधिवृक्ष के पूर्व एक विहार १६० या १७० फीट ऊँचा है। इसकी नीव की चौडाई २० कदम के लगभग है। सम्पूर्ण इमारत नीली ईंटो की है जिसके ऊपर चूने का पलस्तर है। प्रत्येक खड मे जितने आले हैं उन सबमे सोने की मूर्तियाँ हैं। स्थान के चारो ओर बहुत सुन्दर चित्रकारी और पच्चीकारी का काम बना हुआ है। किसी किसी स्थान पर तो चित्र मोतो जड कर बनाये गये हैं। अनेक स्थानो पर ऋषियो की मूर्तियाँ हैं जिनके चारो ओर मुलम्मा किया हुआ ताँबा जडा है। पूर्व की ओर सिहपौर है जिसके निकले हुए छज्जे, एक पर एक बने हुए, यह सूचित करते हैं कि यह तीन खन्ड का है। इसके छज्जे, खम्भे, कडियाँ और खिडकियाँ इत्यादि सोने और चाँदी से मढी हुई हैं और बीच बीच मे मोती और रत्न इत्यादि जड़ दिये गये हैं। तीनो खण्डो मे से गुप्त कोठरियो और अधकाराच्छन्न तहखानो म जाने का अलग अलग रास्ता है। फाटक के बाहरी ओर दाहिने और बाएँ दोनो तरफ दो आले इतने बडे बडे हैं जितना बडा कोठरी का द्वार होता है। बाएँ ओरवाले आले मे अवलोकितेश्वर बोधिसत्व को प्रतिमूर्ति है और दाहिनी ओरवाले मे मैत्रेय बोधिसत्व को प्रतिमा है। य दोनो चाँदी की बनी हुई श्वेत-रङ्ग की है और कोई १० फीट ऊँची हैं। जिस स्थान पर यह विहार बना हुआ है ठीक उसी स्थान पर पहले एक छोटा सा विहार अशोक राजा का बनवाया हुआ था। पीछे से एक ब्राह्मण ने इसको वृहदाकार का बनवाया। आदि मे यह ब्राह्मण बुद्ध-धर्म मे विश्वास नही करता था। बरञ्च महेश्वर का उपासक था। इस बात को सुनकर कि उसका ईश्वर हिमालय पहाड मे रहता है वह अपने छोटे भाई के सहित उस स्थान पर महादेव से प्रार्थना करने गया। देवता ने उत्तर दिया, "जो प्रार्थना करके कुछ चाहते हो उनमे कुछ धार्मिक बल भी होना आवश्यक है। यदि तुम प्रार्थना करने वाले मे पुण्य-बल नही है तो न तो तुझको कुछ माँगने का अधिकार है और न मैं कुछ दे ही सकता हूँ।"

ब्राह्मण ने पूछा, "वह कौन सा पुण्य-कर्म है जिसके करने से मेरी कामना पूर्ण हो सकेगी ?"

महादेव जी ने उत्तर दिया "यदि तुम पुण्य की जड उत्तम प्रकार से जमाया चाहते हो तो उसके लिये उत्तम क्षेत्र भी तलाश करो। बुद्धावस्था प्राप्त करने का उत्तम स्थान बोधिवृक्ष है। तुम सीधे वही पर चले जाओ और बोधिवृक्ष के निकट ही एक बडा भारी विहार और एक तडाग बनवाओ तथा सब प्रकार की वस्तुएँ धार्मिक कृत्य के लिये भेट कर दो। इस पुण्य-कार्य के करने से अवश्य तुम्हारी कामना पूर्ण होगी।"

ब्राह्मण इस प्रकार की दैवी आज्ञा पाकर और इस आदेश को भक्तिपूर्वक धारण करके लौट आया। बडे भाई ने विहार बनवाया और छोटे ने तडाग। इसके उपरान्त धार्मिक भेट का समारोह करके वे दोनो अपनी कामना के पूर्ण होने की प्रतीक्षा करने लगे। उनकी कामना पूर्ण हुई। वह ब्राह्मण राजा का प्रधान मन्त्री हो गया। इस पद पर रहने से जो कुछ लाभ उसको होता था वह सबका सब वह दान कर देता था। जिस समय विहार उसकी इच्छानुकूल बन कर तैयार हो गया उस समय उसने बडे-बडे कारीगरो को बुलाकर आज्ञा दी कि बुद्धदेव की एक मूर्ति उस समय की बना दो जिस समय वह पहले पहल बुद्धावस्था को प्राप्त हुये थे। परन्तु किसी कारीगर ने इस प्रकार की मूर्ति बना देने का वचन नही दिया। वर्षों इसी प्रकार व्यर्थ प्रयत्न होता रहा। अन्त में एक ब्राह्मण आया, उसने सब लोगो पर यह प्रकट किया कि मैं अभिलषित मूर्ति बना दूँगा।"

लोगो ने पूछा, "तुमको इस काम के करने के लिये किन-किन वस्तुओ की आवश्यकता होगी ?"

उसने उत्तर दिया "विहार के भीतर सुगंधित मिट्टी रख दो और दीपक जला दो, जब मैं भीतर चला जाऊँ तब द्वार बन्द कर दो। उस द्वार को छः महीने बाद खोलना होगा, तब तक वह बन्द रहना चाहिये।"

सन्यासियो ने उसी समय उसकी आज्ञानुसार सब काम कर दिया। परन्तु चार ही महीने के बाद उत्सुक सन्यासियो ने, यह जानने के लिये कि भीतर क्या हो रहा है, द्वार खोल दिया। भीतर उन्होने क्या देखा कि एक सुन्दर मूर्ति बुद्ध भगवान की बैठी हुई है[1] जिसका मुख पूर्व की ओर है और यही मालूम होता है कि स्वयं बुद्धदेव सजीव बैठे हुये है। सिंहासन चार फीट दो इञ्च ऊँचा और बारह फीट पांच इञ्च विस्तृत था। मूर्ति ११ फीट ५ इञ्च ऊँची, एक जांघ का दूसरी जांघ से फासिला ८ फीट ८ इञ्च,

(1) यह मूर्ति पल्थी मार बैठी थी, जिसका दाहिना पैर ऊपर था, बायाँ हाथ जांघ पर रक्खा था और दहिना हाथ लटक कर भूमि से छू गया था।

और एक कन्धे की दूसरे कन्धे से दूरी ६ फोट २ इञ्च थी। बुद्धदेव के शरीर मे जो कुछ चिह्न इत्यादि थे सब पूरे तौर से बना दिये गये थे। उनका मुखारविन्द बिलकुल सजीव अवस्था के समान था, केवल मूर्ति की दाहिनी छाती अधूरी रह गई थी। उस स्थान पर किसी व्यक्ति को न देखकर उन लोगो को विश्वास हो गया कि यह ईश्वरीय चमत्कार है। उन लोगो ने बहुत कुछ ढूँढ खोज भी की परन्तु कुछ पता न लगा। इससे उनका विश्वास और भी अधिक हो गया। उसी दिन रात्रि मे एक श्रमण आकर उसी स्थान मे टिक रहा, वह बहुत ही सच्चे और सीधे चित्त का व्यक्ति था। उसके ऊपर इन सब वृत्तान्त का बडा प्रभाव हुआ। उसको रात्रि मे स्वप्न हुआ, जिसमे उसने देखा कि एक ब्राह्मण उसी प्रकार का जैसा उसने मूर्ति बनाने वाले का स्वरूप सुना था, उसके पास आकर कह रहा है, "मैं मैत्रेय बोधिसत्व हूँ, मुझको मालूम था कि उस पुनीत स्वरूप की छवि का अन्दाजा कोई कारीगर न कर सकेगा इस कारण मैं स्वय बुद्धदेव की मूर्ति को बनाने आया था। मूर्ति का दाहिना हाथ इस कारण लटका हुआ है कि जब बुद्धदेव बुद्धावस्था को प्राप्त होने के निकट पहुँचे उसी समय उनको भग करने के लिये 'मार' भी लालच दिखाता हुआ आ पहुँचा। उस समय भूमि का एक देवता 'मार' के आने का सब हाल बुद्धदेव से निवेदन करके उसके रोकने के लिये आगे बढा। तथागत ने उससे कहा, "मत भयभीत हो। अपने धैर्य से हम उसको दबा देगे।" मार ने पूछा, 'इस बात की गवाही क्या है कि आप जीत गये और मैं हार गया?" तथागत ने उसी समय अपना हाथ नीचे ले जाकर भूमि स्पर्श करते हुये उत्तर दिया, "यह मेरो गवाह है।" उसी समय एक दूसरा देवता भूमि से प्रकट होकर इस बात का साक्षी हो गया। यही कारण है कि वर्तमान मूर्ति इस तरह की बनाई गई है कि वह यथार्थरूप से बुद्ध भगवान् को उस समय की अवस्थाविशेष की द्योतक है।"

वे दोनो भाई (ब्राह्मण) इस पुनीत और आश्चर्योत्पादक समाचार को पाकर बहुत प्रसन्न हो गये। छाती को जहाँ का काम अधूरा रह गया था, उन्होने रत्नो के एक हार से सुसज्जित, और मस्तक का बहुमूल्य रत्न-जटित मुकुट से सुशोभित कर दिया।

शशाक राजा ने बोधिवृक्ष को काट कर इस मूर्ति को भी तोड-फोड डालना चाहा था, परन्तु इसके सुन्दर स्वरूप पर वह ऐसा मुग्ध हो गया कि चुपचाप अपने साथियो सहित लौटकर चला गया। मार्ग मे उसने अपने एक कर्मचारी से कहा, "हमको बुद्धदेव की वह मूर्ति भी हटा देनी चाहिये और उस स्थान पर महेश्वर की मूर्ति स्थापित करनी चाहिये।"

कर्मचारी इस आज्ञा को सुन कर बहुत भयभीत हो गया। उसने बडे दुख से कहा, "यदि मैं बुद्धदेव की प्रतिमा को नष्ट करता हूँ तो न मालूम कितने कल्प तक मैं

दुख भोगता रहूँगा, और यदि राजा की आज्ञा से विमुख होता हूँ तो वह मुझको बडी निर्दयता से मार कर मेरे परिवार का भी नाश कर देगा। दोनो अवस्थाओ मे, चाहे मैं उसकी आज्ञा पालन करूँ, या न करूँ, मेरी भलाई नही है। इस समय मुझको क्या करना चाहिये ?"

इसी प्रकार सोच विचार करते हुये उसने अपने एक वडे विश्वासी आदमी को बुलाकर यह समझाया कि मूर्ति वाली कोठरी मे मूर्ति से कुछ हट कर आगे की ओर एक दीवार बनाओ और उस पर महेश्वर भगवान् की मूर्ति बना दो। उस व्यक्ति से मारे लज्जा के दिन-दहाडे यह काम न हो सका इस कारण उसने दीपक जलाकर रात्रि मे दीवार वनाई और उसके ऊपर महेश्वर-देव का चित्र बना दिया।

काम के समाप्त होने पर जैसे ही यह समाचार राजा को सुनाया गया तो वह अत्यन्त भयभीत हो गया। उसके सम्पूर्ण शरीर मे घाव हो गये जिसमे से मांस गल-गल कर निकलने लगा और थोडी ही देर मे वह मर गया। उसी समय उस कर्मचारी ने फिर आज्ञा दी कि परदेवाली वह दीवार तुरन्त खोद डाली जावे। यद्यपि कई दिन दीवार वने हुये हो गये थे परन्तु खोदने वाले जिस समय उस स्थान पर पहुँचे उनको वह दीपक जलता हुआ मिला।

इस समय भी मूर्ति ठीक उसी भाँति है जैसी कि ईश्वर के पुनीत कारीगरी द्वारा विरचित हुई थी। यह एक तिमिरपूर्ण कोठरी मे स्थापित है जिसमे दीपक और पलीते जला करते है। तो भी जो लोग पवित्र स्वरूप का दर्शन करना चाहे वे बिना कोठरी के भीतर गये कदापि दर्शन नही कर सकते। शरीर के पुनीत और विशेष चिह्न देखने के लिए यह प्रवन्ध है कि प्रभात समय सूर्य को किरणे एक काच की सहायता से मूर्ति तक पहुचाई जाती हैं, उस समय वे चिन्ह देखे जा सकते हैं। जो ध्यानपूर्वक उनका दर्शन कर लेते हैं उनका विश्वास पुनीत धर्म की ओर विशेष दृढ हो जाता है। तथागत ने पूर्ण ज्ञान (सम्यक सम्वोधि) वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को प्राप्त किया था, जो हमारे यहा के तृतीय मास की आठवी तिथि हुई। स्थवीर सम्प्रदायवाले वैशाख मास शुक्ल पक्ष की १५ वी तिथि कहते हैं, जो हमारे यहां के तृतीय मास १५ वी तिथि हुई। तथागत की अवस्था उस समय ३० वर्ष की थी और कोई कोई ३५ वर्ष की भी वतलाते हैं।

बोधिवृक्ष के उत्तर मे एक स्थान है जहां पर बुद्धदेव टहलते थे। तथागत; पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी, सात दिन तक अपने आसन से नही उठे और विचार ही करते रहे। इसके उपरान्त उठ कर बोधिवृक्ष के उत्तर सात दिन तक टहलते रहे। वे उस स्थान पर पूर्व और पश्चिम दिशा मे कोई १० कदम टहले थे।

उस समय उनके पग के नीचे चमत्कारपूर्ण फूल उत्पन्न हो गये थे जिनकी सख्या १८ थी। पीछे से यह स्थान कोई तीन फीट ऊँची दीवार से घेर दिया गया है। लोगो का पुराना विश्वास है कि ये पवित्र चिन्ह जा दीवार से घिरे हुए हैं मनुष्य की आयु बतला देते है। जिस किसी को अपनी आयु जाननी हो वह सबसे पहले भक्तिपूर्वक प्रार्थना करे और फिर उस स्थान को नापे, यदि मनुष्य का जीवन अधिक है तो नाप भी अधिक होगी, और यदि कम है तो नाप भी कम होगी।

जहा पर बुद्ध भगवान् टहले थे उसके उत्तर तरफ सडक के बाएँ किनारे पर एक विहार है जिसके भीतर एक बडे पत्थर के ऊपर बुद्धदेव की एक मूर्ति, आंखें उठाये हुए ऊपर को देखती हुई, है। इस स्थान पर प्राचीन काल मे बुद्धदेव सात दिन तक बैठे हुए बोधिवृक्ष को देखते रहे थे। इस अवसर मे उन्होने पल-मात्र के लिए भी अपनी निगाह को नही हटाया था। वृक्ष के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकाशित करने के लिए ही वे इस प्रकार नेत्र जमाये देखते रहे थे।

बोधिवृक्ष के निकट ही पश्चिम दिशा मे एक बडा विहार है, जिसके भीतर बुद्धदेव की एक मूर्ति पीतल की बनी हुई है। यह मूर्ति पूर्वाभिमुख बैठी हुई दुर्लभ रत्न इत्यादि से विभूषित है। इसके सामने एक नीला पत्थर पडा है जिस पर अद्भुत अद्भुत चिन्ह और विचित्र विचित्र चित्र बने हुए हैं। यह पत्थर उस स्थान पर है जहाँ पर बुद्धावस्था प्राप्त करके बुद्ध भगवान, ब्रह्मा राजा के बनाये हुए बहुमूल्य सप्तधातु के भवन मे, शक्र राजा के बनवाये हुए सप्त रत्न के सिंहासन पर आसीन हुए थे। जिस समय वह इस प्रकार बैठे हुए सात दिन तक विचार-सागर मे मग्न रहे थे उस समय एक विचित्र प्रकाश उनके शरीर से ऐसा प्रस्फुटित होने लगा था जिससे बोधिवृक्ष जगमगा उठा था था। बुद्ध भगवान् के समय से लेकर अब तक अगणित वर्ष व्यतीत हो गये हैं, इस कारण रत्न इत्यादि सब बदल कर पत्थर हो गये हैं।

बोधिवृक्ष के दक्षिण मे थोडी दूर पर एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। बोधिसत्व नीराञ्जन नदी मे स्नान करके बोधिवृक्ष की तरफ जा रहे थे, उस समय उनको यह विचार हुआ कि बैठने के लिए क्या प्रबन्ध करना होगा उन्होने निश्चय किया किया कि दिन निकलने पर कुछ पवित्र घास[1] (कुश) तलाश कर लेनी चाहिए। उसी समय शक्र राजा घसियारे का स्वरूप बना कर और घास की गठरी पीठ पर लादे हुए सडक पर जाते दिखाई पडे।

(1) सेमुअल बील साहब ने जिसका अर्थ नागरमोथा होता है।

बोधिसत्व ने उनसे पूछा, "क्या तुम अपना घास का यह गट्ठा जो पीठ पर लादे हुए ले जा रहे हो मुझको दे सकते हो?"

बनावटी घसियारे ने इस प्रश्न को सुन कर बडी भक्ति के साथ अपनी घास उनको अर्पण कर दी। बोधिसत्व उसको लेकर वृक्ष की तरफ चला गया।

इसके निकट ही उत्तर दिशा मे एक स्तूप है। बोधिसत्व जिस समय बुद्धावस्था प्राप्त करने के निकट पहुँचे उस समय उन्होने देखा कि नीलकंठ पक्षी, जो शुभ सूचक कहे जाते हैं, झुड के झुड उनके सिर पर उड रहे है। भारतवर्ष मे जितने शकुन विचारे जाते है उन सबसे बससे बढ कर यह शकुद माना जाता है। इस कारण शुद्धवासस्थान के देवता लोगो ने, ससार के प्रचलित नियमानुसार, अपनी कार्यवाही प्रदर्शित करने के लिए इज पक्षियो को बुद्धदेव के ऊपर से उड़ा कर सब लोगो पर उनकी प्रभुता और पवित्रता का समाचार प्रकट कर दिया था।

बोधिवृक्ष के पूर्व सडक के दाईं और बांई दोनो तरफ दो स्तूप बने हुए है। ये वे स्थान है जहां पर मार राजा ने बोधिसत्व को लालच दिखाया था। जिस समय बोधिसत्व बुद्धावस्था को प्राप्त होने को हुए उस समय मार राजा ने उनसे जाकर कहा, 'तुम चक्रवर्ती महाराजा हो गये, जाओ राज्य करो।" परन्तु बुद्धदेव ने स्वीकार नही किया जिस पर वह निराश होकर चला गया। इसके उपरान्त उसकी कन्या बहुत मनोहर स्वरूप बनाकर उनके चित्त को लुभाने के लिए पहुँची। पर बुद्धदेव ने अपने प्रभाव से उसके सुन्दर स्वरूप और युवापन को वदल कर उसको कुद्रुप और वृद्धा वना दिया। वह भी लाठी टेकती हुई वहां से लौट गई[1]।

बोधिवृक्ष के उत्तर-पश्चिम मे एक विहार है जिसमे काश्यप बुद्ध की प्रतिमा है। यह अपने अद्भुत और पवित्र गुणो के कारण बहुत प्रसिद्ध है। समय समय पर इसमे से अलौकिक आलोक निकलता रहता है। इस स्थान के प्राचीन ऐतिहासिक वृत्तान्तो से विदित होता है कि जो आदमी पूर्ण विश्वास के साथ सात बार इस मूर्ति की प्रदक्षिणा करता है उसको अपने पूर्व जन्मो का वृत्तान्त अवगत हो जाता है कि कहा पर जन्म हुआ था और किस अवस्था मे वह व्यक्ति रहा था।

काश्यपबुद्ध के विहार से उत्तर-पश्चिम की ओर भूमि मे दो गुफाएँ बनी

---

(1) बुद्धदेव के ऐसे चित्र जिनमे उनको लालच दिखाया गया है अनेक हैं। और सब घटनाओ का वृत्तान्त जो ह्वेन सांग ने अपनी पुस्तक मे लिखा है, तथा गया के विशाल मन्दिर का वृत्तान्त जो लङ्का के राजा ने वनवाया था, डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने अपनी पुस्तक 'बुद्धगया' मे विस्तृत रूप से लिखा है।

हुई हैं जिनमे भूमि के दो देवताओ के चित्र बने हुए हैं। प्राचीन काल मे जिस समय बुद्धदेव पूर्णता को प्राप्त हो रहे थे उस समय मार राजा उनके निकट आकर परास्त हुआ था, जिसके साक्षी ये दोनो देवता हुए थे। इसके उपरान्त लोगो ने अपनी बुद्धि से तथा अपनी सम्पूर्ण कारीगरी को खर्च करके इनके कल्पित चित्रो को बनाया है।

बोधिवृक्ष की दीवार के उत्तर-पश्चिम मे एक स्तूप कुकुम नामक है जो ४० फीट ऊँट है। वा साउकुट देश के किसी बडे सौदागर का बनवाया हुआ है। प्राचीन काल मे एक बडा भारी सौदागर उस देश मे रहता था जो धार्मिक पुण्य प्राप्त करने के लिए देवताओ की यज्ञानुष्ठान आदि द्वारा अर्चना किया करता था। वह बुद्धधर्म से बहुत घृणा किया करता था और 'कर्म तथा उसका फल, इस सिद्धान्त को स्वीकार नही करता था। एक दिन वह अपने साथी व्यापारियो को साथ लेकर दक्षिणी समुद्र के किनारे अपने माल को जहाज पर लाद कर दूर देशो मे बेचने के लिए प्रस्थानित हुआ। मार्ग भूल गया और समुद्र की लहरो मे पड कर चक्कर खाने लगा। तीन वर्ष तक उसकी यही दशा रही। इतने अवकाश मे उसके पास जो कुछ भोजन की सामग्री थी वह सब समाप्त हो गई और उसका मुह मारे प्यास के सूखने लगा (अर्थात् उसके पास पीने के लिए जल भी न रह गया) यहा तक कि उन लोगो को सवेरे से सध्या और सध्या से सबेरा काटना कठिन हो गया। उस समय वे सब लोग एकचित्त होकर अपनी शक्ति भर अपने इष्ट देवताओ को स्मरण करने लगे परन्तु उनके परिश्रम का कुछ भी फल दिखाई न पडा। थोडी देर मे उन्होने देखा कि एक पहाड सामने हैं जिसकी ऊची ऊची चोटियाँ और खडे चट्टान हैं और ऐसा मालूम होता है कि दो सूर्य उसके ऊपर प्रकाशित हैं। उसको देखकर सौदागर लोग प्रसन्न हो गये और एक दूसरे को बधाई देकर कहने लगे "वास्तव मे हम लोग भाग्य-वान हैं जो यह पहाड दिखाई पडा है, यहाँ पर हम लोगो को विश्राम और भोजन इत्यादि प्राप्त हो सकेगा।" उस समय बड़े सौदागर ने कहा, "यह पहाड नही हैं यह 'मक्र' मछली है। यह जो ऊची-ऊची चोटियाँ और खडे चट्टान तुम समझ रहे हो वह उसके सिफुने और मूँछे है और उसकी चमकदार दोनो आँखे ही दो सूर्य हैं।" उसकी बात समाप्त होने भी नही पाई थी कि अकस्मात् जहाज के डूबने के लक्षण प्रतीत होने लगे जिसको देख कर 'बडे सौदागर' ने अपने साथियो से कहा, "हमने लोगो को यह कहते हुए सुना है कि बोधिसत्व उन लोगो की सहायता मे अवश्य समर्थ हैं जो दुखित होते हैं। इस कारण आओ हम सब लोग मिल कर ऐसे समय मे भक्तिपूर्वक उनका नाम स्मरण करे" इस बात पर वे सब लोग एकस्वर और एकचित्त होकर देव को प्रार्तना करने लगे और उनका नाम पुकार पुकार कर सहायता माँगने

लगे। उसी समय वह पहाड़ अन्तर्ध्यान होगया, दोनो सूर्य अदृश्य हो गये और अकस्मात् शान्त तथा मनोहर स्वरूप वाला हाथ मे दंड धारण किये हुए, आकाशमार्ग से आता हुआ एक श्रमण दिखलाई पडा। इसने पहुँच कर उस डूबते हुए जहाज को बचा लिया और क्षण भर मे उन सबको उनके दूश मे पहुँचा दिया। वहां पर उन लोगो ने अपने विश्वास की दृढता प्रदर्शित करने के लिए और अपने पुण्य की वृद्धि के लिए एक स्तूप बनवाया और उसको नीचे से ऊपर तक केसर के रङ्ग से पुतवा दिया। इस प्रकार अपनी भक्ति को दृढ़ करके अपने साथियो सहित वह सौदागर बुद्ध भगवान् के पवित्र स्थानो की यात्रा के लिए चला। बोधिवृक्ष के निकट पहुँच कर उन लोगो का चित्त ऐसा कुछ रम गया कि किसी को भी लौटने की इच्छा न हुई। एक मास व्यतीत हो जाने पर एक दिन वे लोग कहने लगे, "यहाँ से हमारा देश बहुत दूर है, कितने पहाड और नदियाँ बीच मे है, हमको यह भी नही मालूम कि जब से हम यहाँ आये हैं हमारे बनाये हुये स्तूप मे किसी ने झाड़ू बुहारी भी की है या नही।"

यह कर जैसे ही वे लोग इस स्थान पर आये (ज हा पर वर्तमान स्तूप है) और अपने स्तूप को पुन स्मरण करके भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा देने लगे कि उसी समय उन्होने देखा कि एक स्तूप उनके सामने उपस्थित है। उसके निकट जाकर उन्होने जो ध्यानपूर्वक देखा तो ठीक वैसा ही पाया जैसा उन्होने अपने देश मे बनवाया था। इसी सबब से इस स्तूप का नाम कुंकुम स्तूप है।

बोधिवृक्ष की दीवार के दक्षिण-पूर्ववाले कोण मे एक न्यग्रोध वृक्ष के निकट एक स्तूप है। इसके निकट ही एक विहार है जिसमे बुद्धदेव की एक बैठी हुई मूर्ति है। यही स्थान है जहां पर ब्रह्मा ने बुद्धदेव को, जब उहोने बुद्धावस्था प्राप्त की थी, पुनीत धर्म के चक्र को संचलित करने का उपदेश दिया था[1]।

---

(1) जिस समय बुद्धदेव इस सन्देह मे पडे थे कि कौन उसके उपदेश को धारण करेगा उसी समय सहलोकपति ब्रह्मा ने आकर बुद्धदेव को धर्म-चक्र संचलित करने का उपदेश दिया था। उन्होने समझाया था, "जिस प्रकार तडाग मे नीले और श्वेत फूल दिखाई पडते हैं, जिनमे से कितने ही अभी कली ही है, कितने ही फूलने पर आ चुके है और कितने पूर्णतया फूल चुके है, उसी प्रकार ससार मे भी कितने ही मनुष्य उपदेश देने के योग्य नही हैं, कितने ही उपदेश के योग्य बनाये जा सकते हैं और कितने ही सत्य-धर्म को धारण करने के लिए उद्यत है।

बोधिवृक्ष की चहारदीवारी के भीतरी भाग मे चारो कोनो पर एक एक स्तूत है। प्राचीन काल मे तथागत भगवान पुनीत घास को लेकर जब बोधिवृक्ष के चारो ओर घूमे थे, उस समय भूमि विकम्पित हो उठी थी। जिस समय वह वज्रासन पर पधारे उस समय भूमि फिर शान्त हो गई थी। चहारदीवारी के भीतरी भाग मे इतने अधिक पुनीत स्थान है जिनकी अलग अलग सख्या देना अत्यन्त कठिन है।

बोधिवृक्ष के दक्षिण-पश्चिम मे चहारदीवारी के बाहर एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर उन दोनो ग्वाल कन्याओ का मकान था जिन्होने बुद्धदेव को खीर दी थी। इसके निकट ही एक और स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर लडकियो ने खीर को पकाया था। इसी स्तूप के निकट तथागत ने खीर को ग्रहण किया था। बोधिवृक्ष के दक्षिणी द्वार के बाहर एक तडाग कोई ७०० पग के घेरे मे बना हुआ है। इसका जल दर्पण के सदृश अत्यन्त निर्मल है। नाग और मछलियाँ इसमे निवास करती हैं यह वही तालाब है जिसको ब्राह्मण भ्राता ने महेश्वर देव की आज्ञा से बनवाया था।

इसके दक्षिण मे एक और भी तालाब हैं। तथागत भगवान ने बुद्धावस्था प्राप्त करने के समय स्नान करने की इच्छा की थी, उस समय देवराज शक्र ने बुद्धदेव के वास्ते यह तडाग प्रकट किया था।

इसके पश्चिम मे एक बडा पत्थर उस स्थान पर है जहाँ पर बुद्धदेव ने अपने वस्त्र को धोकर फैलाना चाहा था और देवराज शक्र इस कार्य के लिये इस शिला को हिमालय पहाड से ले आये थे। इसके निकट ही एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर तथागत ने जीर्ण वस्त्रो को धारण किया था। इसके दक्षिण की ओर जगल मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर दरिद्र वृद्धा स्त्री ने जीर्ण वस्त्र तथागत को अर्पण किये थे और उन्होने उन्हे स्वीकार किया था।

शक्रवाले तडाग के पूर्व मे जङ्गल के मध्य मे एक झील नागराज मुचिलिन्द की है। इस झील का जल नीले काले रङ्ग का है इसका स्वाद मधुर और प्रफुल्ल करने वाला है। इसके पश्चिमी तट पर छोटा सा एक विहार बना हुआ है जिसके भीतर तथागत भगवान की मूर्ति है। प्राचीन काल मे जब तथागत बुद्धावस्था को प्राप्त हुये थे उस समय इस स्थान पर बडी शान्ति के साथ बैठे रहे थे और विचार करते हुये, यही पर उन्होंने सानन्द सात दिन बिताये थे। उस समय मुचिलिन्द नागराज अपने शरीर सात फेरे मे उनके शरीर से लपेट कर तथागत की रखवाली, और अपने अनेको सिर प्रकट करके उनके सिर पर छत्र के समान छाया करता रहा था। इसी कारण झील के पूर्व मे नाग का स्थान बना हुआ है

मुचिलिन्द झील के पूर्ववाले जङ्गल के मध्य मे एक बिहार के भीतर बुद्धदेव की प्रतिमा अत्यन्त दुर्बल और अशक्त अवस्था की सी है । इसके पास वह स्थान है जहाँ पर बूद्धदेव लगभग ७० पग टहले थे । इसकी प्रत्येक ओर पीपल का एक एक वृक्ष है । प्राचीन समय से लेकर अब तक यह नियम चला आता है कि रोगी पुरुष, चाहे धनी हो अथवा दरिद्र, इस मूर्ति मे सुगन्धित मिट्टी का लेप कर देने से बहुदा अच्छा हो जाता है । यह वह स्थान है जहां प र बोधिसत्व ने तपस्या की थी । इसी स्थान पर विरोधियो को परास्त करने के लिये उन्होने मार की प्रार्थना को स्वीकार करते हुये छः वर्ष का व्रत अगीकार किया था । उन दिनो वो गेहूँ और बाजरे का केवल एक दाना खाते थे । जिससे उनका शरीर दुर्बल और अशक्त, तथा मुख कातिहीन हो गया था । जिस स्थान पर बूद्धदेव टहलते थे उसी स्थान पर व्रत से निवृत्त हो कर एक वृक्ष की शाखा पकड कर खडे हो गये थे ।

पीपल के वृक्ष के निकट, जो बुद्धदेव की तपस्या का स्थान है, एक स्तूप बना हुआ है । यह वह स्थान है जहाँ पर अज्ञात कौरिडन्य आदि पाँचो व्यक्ति निवास करते थे । राजकुमार अवस्था मे जब बुद्धदेव ने घर छोडा था उस समय कुछ दिन तक वे पहाडो और मैदानो मे घूमा किये और जङ्गलो तथा जलकूपो के निकट विश्राम किया किये । पीछे से शुद्धोदन राजा ने पाँच व्यक्तियो को उनकी रक्षा और सेवा के लिये भेज दिया था । राजकुमार को तपस्या मे लगा हुआ देख कर अज्ञात कौरिडन्य कोदि भी उसी प्रकार की कठिन तपस्या मे रत हो गये थे ।

इस स्थान के दक्षिण-पश्चिम मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ बोधिसत्व ने नीराञ्जन नदी मे प्रवेष करके स्नान किया था । नदी के निकट ही वह स्थान है जहाँ पर बोधिसत्व ने खीर ग्रहण की थी ।

इस स्थान के निकट एक स्तूप उस स्थान पर है जहां किसी ब्यापारी ने वुद्धदेव को गेहूँ और शहद अर्पण किया था । वुद्ध भगवान विचार मे मग्न हो कर एक वृक्ष के नीचे आसन (पल्थी) मारे बैठे हुये परमानन्द का सुख अनुभव कर रहे थे । सात दिन के उपरान्त वे अपने ध्यान से निवृत्त हुये । उम जङ्गल के निकट हो कर दो ब्यापारो जा रहे थे । उनसे स्थानीय देवताओ ने कहा, "शाक्य-वंश का राज कुमार इस जङ्गल मे निवास करता है, वह अभी कुछ समय हुआ वुद्धावस्था को प्राप्त हुआ, उनचास दिन व्यतीत हो चुके हैं, इम अरसे मे ध्यान-धारणा में मग्न रहने के कारण उसने कुछ भी नही खाया है । जो कुछ तुम लोगो से हो सके जाकर उसको भेट करो इससे तुमको बहुत लाभ होगा ।"

इस आदेश के अनुसार उन लोगो ने अपनी वस्तुओ मे से थोडा गेहूँ का आटा और शहद बुद्ध भगवान की भेट किया और विश्वपूज्य बुद्धदेव ने उसको अगीकार किया।

जिस स्थान पर व्यापारियो ने यह समर्पण किया था उसके पास एक स्तूप उस स्थान पर है जहा पर चार देवराजो ने एक पात्र बुद्धदेव को भेट किया था। जिस समय व्यापारी बुद्ध भगवान को गोधूम और शहद समर्पण करने लगे उस समय उनको ध्यान हुआ कि किस पात्र मे मै इसको ग्रहण करु। तुरन्त ही चार देवाधिपति चारो दिशाओ से आ पहूँचे। प्रत्येक के हाथ मे एक एक सोने की थाली थी जिनको उन्होने उनक सामने रख दिया। बुद्धदेव उन थालियो को देख कर चुप हो गये, उन्होने उनको ग्रहण करना स्वीकार नही किया, क्योकि सन्यासो के लिये ऐसी मूल्यवान वस्तुये रखना कलक है। चारो राजाओ ने सोने को हटा कर चादी को थालिया, फिर बिल्लौर अम्बर माणिक आदि की थालिया समर्पण करनी चाही परन्तु जगत्पति ने उनमे से किया को ग्रहण नही किया। तब चारो राजा अपने स्थान को लौट गये और अत्यन्त निर्मल नीले रङ्ग के पत्थर के पात्र लाकर बुद्धदेव के अर्पण किये। इस भेद का भी बुद्धदेव ने यह कह कर कि एक को आवश्यकता है चार का क्या होगा? अगीकार न करना चाहा परन्तु प्रेम चारो हो राजाओ का समान था किसके पात्र को ग्रहण करे और किसके को नही। इस कारण उन चारो को जोड कर एक पात्र इस तरह बनाया गया कि भीतर एक थाली रख दी गई और वे सब चिपक कर एक पात्र हो गई। इसी सबब,से पात्र के चारो किनारे अलग अलग स्पष्ट विदित होते हैं।

इस स्थान से थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान पर है जहा बुद्धदेव ने अपनी माता को ज्ञानोपदेश दिया था। जिस समय बुद्धदेव पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके 'देवता और मनुष्यो के उपदेशक इस नाम से प्रसिद्ध हुये उस समय उनकी माता माया स्वर्ग से उतर कर इस स्थान पर आई थी। बुद्ध भगवान ने उसकी प्रसन्नता और भलाई के लिये समयानुसार उपदेश दिया था।

इस समय से निकट ही एक सूखी झील के किनारे एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहा पर तथागत ने प्राचीन काल में अपनी प्रभावोत्पादिनी शक्ति का भाषण करके कुछ मनुष्यो को जो शिक्षा के उपयुक्त थे, अपना शिष्य बनाया था।

इस स्थान के निकट एक स्तूप है। यहा पर तथागत भगवान ने उरविल्व काश्यप को उसके दोनो भाइयो और एक हज़ार साथियो के साथ शिष्य किया था। तथागत ने अपने विशुद्ध मार्ग-प्रदर्शक नियम को सचरित रखते हुये उसको समयानुसार ऐसा उपदेश दिया कि उसके चित्त मे इनकी ओर भक्ति उत्पन्न हो गई।

यहां तक कि एक दिन उसके ५०० साथियों ने बुद्ध भगवान के शिष्य होने की अनुमति के लिये उसने प्रार्थना की इस पर उरविल्व काश्यप ने कहा मैं भी अपने भ्रम को परित्याग करके उनका शिष्य हुंगा। यह कह कर उन सबको साथ लिये हुये वह उस स्थान पर गया जहां पर बुद्धदेव थे और उनकी कृपा का प्रार्थी हुआ। बुद्धदेव ने उत्तर दिया, अपने चर्म वस्त्र को उतार डालो और अपने हवन इत्यादि के पात्रो को फेक दो उन लोगो ने आज्ञानुसार अपनी उपासना की वस्तुओ को नीराञ्जन नदी मे फ़ेक दिया। जब काश्यप ने दखा कि उसके भाई की वस्तुयें नदी की धार मे बहती चली जा रही है वह विस्मित होकर अपने चेलो के सहित भाई से मिलने आया। अपने भाई का परिवर्तित स्वरूप और आचरण देखकर उसने भी पीत वस्त्रो को धारण कर लिया। गया काश्यप को जिस समय उसके भाइयो के धर्म परिवर्तन का समाचार विदित हुआ वह भी जिस स्थान पर बुद्ध भगवान थे, गया और जीवन को विशुद्ध वनाने के लिये धर्मोपदेश का प्रार्थी हुआ।

जहा पर काश्यप बघुशिष्य हुये थे वहाँ से उत्तर पश्चिम मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहां पर बुद्धदेव ने एक भयामक और क्रोधी नाग को जिसको काश्यप ने बलि दे दिया था, परास्त किया था। बुद्ध भगवान जिस समय इन लोगो को शिष्य करने लगे तो प्रथम इवके उपासना के नियम को उन्होने हटाया। फिर ब्रह्मचारियो सहित क्रोधी नाग के भवन मे जाकर ठहर रहे। आधी रात व्यतीत होने पर नाग अपने मुख मे धुंआः और अग्नि उगलने लगा। उस समय बुद्धदेव ने भी समाधि लगा कर ऐसी अग्नि की उत्पन्न किया जिससे कि लपटे उठकर मकान की छत तक पहुचने लगो। ब्रह्मचारी लोग यह भय करके कि अग्नि बुद्धदेव को नाश कर रही है, रोते चिल्लाते और सिर फो पीटते हुए उस स्थान पर पहुंचे। तब उरविल्व काश्यप ने अपने साथियो को सन्तुष्ट करने के लिये और उनका भय दूर करने के लिये समझाया कि यह जो दिखाई पड रही है वह अग्नि नही है वल्कि श्रमण नाग को परास्त कर रहा है। तथागत उस नाग को पकड कर और अपने भिक्षापात्र मे अच्छी तरह बन्द करये प्रात काल उसे हाथ में लिये हुये वाहर आये और अविश्वासियो के चेले को दिखाया। इस स्मारक के पास एक स्तूप उस स्थान पर है जहा पर ५०० प्रत्येक बुद्ध एक ही समय मे निवाण को प्राप्त हुये थे।

मुचिलिन्द नाग के तडाग के दक्षिण मे एक स्तूप उस स्थान का निदर्शक है जहाँ पर बुद्धदेव को प्रलयकारी जल राशि से बचाने के लिए काश्यप गया था। इसका वृतान्त इस प्रकार है कि—'काश्यप बन्धु यद्यपि शिष्य हो गये थे परन्तु दैवी

नियमो[1] के विपरीत आचरण करते थे जिस सबब से दूर तथा निकटवती लोग भी उनके कर्मो का आदर करके उनके आदेशानुसार कार्य करने लग गये थे। जगदीश्वर भगवान बुद्धदेव का यह स्वभाव था कि भटके हुओ को पथ दिखावे। इस कारण इन सब लोगो को (काश्यप और उनके अनुयायियी को) शुभमार्ग पर लाने के लिए उन्होने बडे बडे मेघ आकाश मे उत्पन्न करके दूर तक फैला दिये जिससे मूसलदार वृष्टि होने लगी और चारो ओर जल मई ही जलामयी हा गयी। भयानक तुङ्ग तरङ्गों ने बढकर बुद्धदेव को चारो ओर से घेर लिया परन्तु वह इनके अलग ही रहे। उस समय काश्यप ने मेघ और वृष्टि को देख कर अपने साथियो से बुलाकर कहा कि जिस स्थान पर श्रमण रहता हैं वह भी अवश्य जलमग्न हो गया होगा।

यह कह कर उनके बचाने के लिये वह एक नाव पर सवार होकर जहां पर बुद्धदेव थे गया। वहाँ पर उसने देखा कि बुद्धदेव पानी के ऊपर इस प्रकार टहल रहे है मानो पृथ्वी पर चलते हो। उसी समय बुद्धदेव उस जलराशि मे गोता मार गये जिससे पानी फटकर गायब हो गया और भूमि निकल आई। काश्यप इस प्रभावोत्पादक चमत्कार को देख कर अपने मन मे लज्जित हो कर लौट गया।

बोधिवृक्ष के पूर्वी फाटक के बाहर दो या तीन ली दूरी पर एक स्थान अधनाग का है। यह नाग अपने पूर्वजन्म के पापो के कारण अधा उत्पन्न हुआ था। जब तथागत भगवान प्राग्बोधि पर्वत से चल कर बोधिवृक्ष के निकट जा रहे थे तब वह इस स्थान के निकट होकर निकले। नाग के नेत्र सहसा खुल गये और उसने देखा कि बोधिसत्व बोधिवृक्ष के पास जा रहा है। उम समय उसने बोधिसत्व से कहा, हे महात्मा पुरुष ! आप बहुत शीघ्र बुद्धावस्था को प्राप्त होगे। मेरे नेत्रो को अन्धकार ग्रसित हुये अगणित वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु जिस समय ससार मे किसी बुद्ध का आविर्भाव होता है उस समय मेरे नेत्र ठीक हो जाते हैं। भद्रकल्प मे जब तीनो बुद्ध ससार मे अवतीर्ण हुये थे, उस समय भी मेरे नेत्रो मे प्रकाश हो गया था और मैं देखने लगा था। उसी प्रकार इस समय भी। हे महामहिम ! जिस समय आप इस स्थान पर पहुँचे उस समय एकाएक मेरे नेत्र खुल गये इसलिये मैं जानता हूँ कि आप बुद्धावस्था प्राप्त करेंगे।

बोधिवृक्ष की दीवर के पूर्वी फाटक के पास एक स्तूप हैं। इस स्थान पर मार राजा ने बोधिसत्व को भयभीत करना चाहा था। जिस समय मार राजा को विदित हुआ कि बोधिसत्व पूर्णज्ञान प्रप्त करने के करीब है उस समय लोभ प्रदर्शन और अनेक कला कौशल करके भी विफलमनोरथ होने पर वह अपने सब गणो को बुलाकर और सेना को अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित करके इस तरह पर चढ दौडा मानो

(1) वह नियम जो बुद्धदेव ने उनको सिखलाकर शिष्य बनाया था।

उनको मारने जाता हो। चारो ओर आंधी चलने लगी, पानी बरसने लगा, वादल गरजने लगे और विजली चमकने लगी। फिर आग की लपटे उठने लगी और धूमान्धकार के बादल छा गये। इसके उपरान्त धूल और पत्थर ऐसे बरसने लगे जैसे वरछियां चलती हो या धनुषो मे से तीर निकल रहें हो। इस दशा को देखकर बुद्धदेव 'महाप्रेम' समाधि मे मग्न हो गये जिससे मार राजा के अस्त्र शस्त्र कमल के फूल हो गये। मार राजा की सेना इस चमत्कार को देखकर भयभीत होकर भाग गई।

यहाँ से थोडा दूर पर दो स्तूप देवराज शक्र और ब्रह्मा राजा के बनवाये हुए हैं। बोधिवृक्ष की चहारदीवारी के उत्तरी फाटक के बाहर महाबोधिनामक संघाराम है। यह सिंहल देश के किसी प्राचीन नरेश का बनवाया हुआ है। इस धाम मे ध्यान धारणा के लिए बुर्जों सहित छः कमरे हैं। इसके चतुर्दिक् रक्षक-दीवार तीस या चालीस फीट ऊँची है। इस स्थान के बनाने मे उच्च कोटि की कारीगरी खर्च की गई है तथा इसमें जो चित्रकारी की गई है उसमे रङ्ग बहुत पुष्ट लगाया गया है। बुद्ध भगवान् की मूर्ति सोना और चाँदी के सम्मिश्रण से, ढालकर, बनाई गई है और बहुमूल्य पत्थर तथा रत्न इत्यादि से विभूषित है। इसके भीतर के ऊँचे और बडे स्तूप बडे ही मनोहर बने हुए हैं जिनमे बुद्ध भगवान का शरीरावशेष है। शरीरावशेष मे हड्डियां हाथ की उँगली के बराबर हैं, जो चिकनी, चमकीली, और निर्मल श्वेत रङ्ग की हैं तथा मांसावशेष बडे मोती के समान कुछ नीलापन लिये हुए लाल रङ्ग का है। प्रत्येक वर्ष उस पूर्णमासी के दिन[1], जिस दिन तथागत भगवान ने अपना चमत्कार विशेषरूप से प्रदर्शित किया था, ये शरीरावशेष सब लोगो के दर्शनो के लिए बाहर लाये जाते हैं। किसी अवसर पर इनमे से प्रकाश निकलने लगता है और कभी कभी आप ही आप पुष्पवृष्टि होने लगती है। इस सङ्घाराम मे १,००० से अधिक सन्यासी हैं जो स्थवीरसंस्था के महायान-सम्प्रदाय का अनुशीलन करते हैं। धर्म-विनय का प्रतिपालन ये लोग बडी सावधानतापूर्वक करते है। इनका आचरण शुद्ध और ठीक होता है।

प्राचीन काल मे एक राजा सिंहल देश मे, जो दक्षिणी समुद्र का एक द्वीप (टापू) है, राज करता था। यह राजा बौद्धधर्म का भक्त और सच्चा अनुयायी था। एक समय ऐसा हुआ कि उसका भाई, जो बुद्ध का शिष्य (गृहत्यागी) हो गया था

---

(1) भारतवर्ष मे बारहवे मास की तीसवी तिथि और चीन मे प्रथम मास की पन्द्रहवी तिथि।

समग्र भारत मे यात्रा करके बुद्ध भगवान् के पुनीत चिन्हो का दर्शन करने के लिए निकला। जिन जिन सङ्घारामो मे वह गया वहाँ वहाँ पर विदेशी होने के कारण उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। यह दशा देखकर वह अत्यन्त खिन्न होकर लौट गया। राजा उसको आगे से मिलने के लिए बहुत दूर चलकर गया परन्तु श्रमण इतना अधिक दुखित था कि उसके मुख से शब्द तक न निकला। राजा ने पूछा, "तुमको क्या कष्ट हुआ है जिससे तुम इतने अधिक दुखी हो ?" श्रमण ने उत्तर दिया 'हम महाराज के राज्य-वैभव पर भरोसा करके ससार की यात्रा के निमित्त घर से निकल कर अनेक दूरस्थ देशो और नवीन नवीन नगरो मे गये। गरमी और जाडे का कठिन कष्ट उठा-कर वर्षो घूमा किये परन्तु हमारा यह परिश्रम लोगो की अप्रसन्नता ही का कारण हुआ, जिस मनुष्य से मैंने जो कुछ प्रार्थना की उसके बदले मे उसने मेरा अपमान और हँसी-ठट्ठा ही किया। इस प्रकार के मानसिक और शारीरिक कष्टो को सहन करके मैं प्रसन्न-चित्त कैसे हो सकता हूँ ?"

राजा ने कहा, "यदि ऐसी बात है तो बताओ क्या करना चाहिए"?

उसने उत्तर दिया, "मेरी मुख्य और वास्तविक इच्छा यही है कि महाराज सम्पूर्ण भारतवर्ष मे सङ्घाराम निर्मित करावे। इस तरह पर पुनीत स्थानो की यात्रा भी आप करेंगे और सारे देश मे आपका नाम भी अमर रहेगा। आपका यह काम, आपने अपने पूर्व पुरुषो के हाथ से जो कुछ बडाई पाई है उसकी कृतज्ञतासूचक और जो आगे राज्याधिकारी होंगे उनके लिए पुण्य-पथ-प्रदर्शक होगा"।

राजा ने उत्तर दिया, "यह बहुत उत्तम विचार है; इस समय के अतिरिक्त और कभी, मेरा ध्यान जाना कौन कहे, मैंने ऐसे सद्विचार को सुना भी नही था।"

यह कह कर उसने अपने देश के अनमोल रत्नो को भारत-नरेश की भेट मे भेजा। राजा ने उस भेट को पाकर अपने कर्त्तव्य का विचार और अपने दूर देशस्थ मित्र से प्रेम करके एक दूत के द्वारा कहला भेजा, "मैं इसके बदले मे आपका क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ ?"

भारत-नरेश के इस प्रश्न के उत्तर मे सिंहल-नरेश ने अपने मन्त्री को भेजा, जिसने जाकर महाराजा से इस प्रकार विनय की:—

"महाश्रीराज भारत-नरेश के चरणो मे सिंहल-नरेश अभिवादन करके प्रार्थना करता है कि महाराज की प्रतिष्ठा चारो ओर विस्तृत है तथा आपके द्वारा अनेक दूरस्थ देश लाभवान् हो चुके है और होते हैं। इस कारण मेरे देश के श्रमण भी

आपकी आज्ञाओ का प्रतिपालन और आपके प्रभाव की समीपता चाहते हैं। आपके विशाल देश मे पर्यटन करके पुनीत स्थानो के दर्शनार्थ मैं अनेक सङ्घारामो मे गया परन्तु उनमे कही भी मेरा आतिथ्य-सत्कार नही किया गया। यहाँ तक कि मैं दुखित और अपमानित होकर अपने घर लौट आया। इस कारण अब जो भविष्य मे यात्री जावेगे उनके लाभ के लिए मैंने यह उपाय सोचा है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष मे सङ्घाराम बनवा दू जिनमे जाकर ये विदेशी यात्री ठहरे और विश्राम करे। इस कार्य से विदेशी यात्रियो को सुख तो होगा ही इसके अतिरिक्त दोनों राज्य भी प्रेम-सूत्र मे बंधे रहेगे।"

महाराजा ने मन्त्री को उत्तर दिया, मैं तुम्हारे स्वामी को आज्ञा देता हूँ कि तथागत भगवान् ने अपने चरित्र से जिन स्थानो को पुनीत किया है उनमे से किसी एक स्थान मे वह सङ्घाराम निर्माण करा लेवे।"

इस आज्ञा को पाकर वह मन्त्री महाराजा से बिदा होकर अपने देश को लौट गया और राजा से सब हाल निवेदन किया। मन्त्रिमण्डल ने उसका सत्कार और उसके कार्य की बडाई करके सब श्रमणों की सभा करके यह पूछा कि कहाँ पर सङ्घाराम बनाया जावे। श्रमणो ने उत्तर दिया, "बोधि-वृक्ष वह स्थान है जहाँ पर सब गत बुद्धो ने परम फल को प्राप्त किया है, और जहाँ से, भविष्य मे होने वाले भी, इस गति को प्राप्त करेगे, इस स्थान से बढकर और उपयुक्त स्थान इस कार्य के लिए नही है।"

इस निश्चय के अनुसार उन लोगो ने अपने देश मे सब प्रकार की सम्पत्ति को भेज कर अपने देश के लोगो के लिए यह सघाराम बनवाया था। यहाँ पर तावे के पत्र पर अङ्कित इस प्रकार आज्ञा लगी हुई है, "विना भेद-भाव के सबकी सहायता करना बुद्ध-धर्म का उच्चतम सिद्धान्त है। जैसी कुछ अवस्था हो उसके अनुसार दया प्रदर्शित करना प्राचीन महात्माओ का प्रसिद्ध सिद्धान्त है। इस समय मैं, जो राज-वंश का एक अयोग्य व्यक्ति हूँ, इस सघाराम को बनवाकर और पुनीत शरीरावशेष को स्थापित करके आशा करता हूँ कि इनकी प्रसिद्धि भविष्य मे बहुत दिन बनी रहेगी और मनुष्य इनके द्वारा लाभवान् होते रहेगे। मै यह भी आशा करता हूँ कि मेरे देश के साधु लोग भी अबाध्य रूप से इनका लाभ प्राप्त करके इस देश के लोगो मे आत्मीय जन के समान सहवास कर सकेगे। यह अमोघ लाभ वंश-परम्परा के लिए निर्विघ्न स्थिर रहे यही मेरी आन्तरिक आकाक्षा है।"

यही कारण है जिससे हम संघाराम मे सिंहल निवासी अनेक साधु निवास करते हैं। बोधिवृक्ष के दक्षिण लगभग १० ली पर इतने अधिक पुनीत स्थान हैं कि उन सबका नामोल्लेख नही किया जा सकता। प्रत्येक वर्ष जिस समय भिक्षु अपने विश्राम मे निवृत होते हैं उस समय हजारो और लाखो धार्मिक पुरुष प्रत्येक प्रान्त से यहा पर आते हैं। सात दिन तक वे लोग पुष्प-वर्षा कर सुगंधित वस्तुओ की धूप देकर तथा बाजा बजाते हुये सम्पूर्ण जिले में[1] घूमकर भेट पूजा इत्यादि करते हैं। भारत के साधु बुद्ध भगवान की पुनीत शिक्षा के अनुसार श्रावण मास के प्रथम पक्ष की प्रतिपदा को 'वास' ग्रहण करते हैं जो हमारे हिसाब से पंचम मास की सोलहवी तिथि होती है और आश्विन द्वितीय पक्ष की १५ वी तिथि को वे लोग अपना विश्राम परित्याग करते हैं, जो हमारे यहा के आठवे मास की १५ वीं तिथि होती हैं।

भारतवर्ष में महीना का नामकरण नक्षत्रो पर अवलम्बित है। बहुत प्राचीन समय से लेकर अब तक इसमे कुछ भी परिवर्तन नही हुआ है। परन्तु अनेक सम्प्रदायो ने देश के नियमानुसार एक देश से दूसरे देश का बिना किसी प्रकार का भेद भाव दिखलाये हूये दिन मिती का उल्लेख किया है जिससे अशुद्धिया उत्पन्न हो गई है और यही कारण है कि ऋतु विभाग करने मे एक देश कुछ कहता है तो दूसरा कुछ। इसी लिए कही-कही लोग चौथे मास की सोलहवी तिथि को 'वास' मे प्राप्त होते हैं, और सातवे मासकी १५ वी तिथि को उससे निवृत होते हैं।

---

(१) वह जिला जहाँ पर बुद्धदेव ने तपस्या की थी।

नवाँ अध्याय

(मगध देश उत्तरार्द्ध)

बोधिवृक्ष के पूर्व मे नीराञ्जन नदी पार करके, एक जङ्गल के मध्य मे एक स्तूप है। इसके दक्षिण मे एक तडाग है। यह वह स्थान है, जहाँ पर 'गन्धहस्ती' (एक हाथी) अपनी माता की सेवा-शुश्रूषा करता रहा था। प्राचीन काल में जिन दिनो तथागत बोधिसत्वावस्था का अभ्यास करते थे वह किसी गन्धहस्ती के पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे और उत्तरी पहाडो मे निवास करते थे। घूमते-घूमते एक दिन वह इस तडाग के किनारे आ पहुँचे, और यही पर निवास करके मीठे-मीठे कमलो की जड और स्वच्छ जल ले जाकर अपनी अन्धी माता की सेवा-शुश्रूषा करने लगे। एक दिन एक व्यक्ति अपना घर भूल कर इधर-उधर जङ्गल मे भटक रहा था। ठीक रास्ता न मालूम होने के कारण वह बहुत विकल हो गया और बडी करुणा से विलाप करने लगा। हस्ती-पुत्र उसके क्रंदन को सुनकर दयावश उसको ठीक रास्ते पर पहुचा आया। वह मनुष्य अपने ठिकाने पर पहुँच कर तुरन्त राजा के पास पहुंचा और कहा, "मुझको एक ऐसा जङ्गल मालूम है जिसमे एक गन्धहस्ती निवास करता है। यह पशु बडे मूल्य का है इसलिए आप जाकर उसको अवश्य पकड लाइए।[1]"

राजा उसकी बातो पर विश्वास करके अपनी सेना के सहित उस हाथी को पकडने के लिए चला और वही व्यक्ति आगे-आगे मार्ग बतलाता चला। जिस समय वह उस स्थान पर पहुँचा और राजा को हाथी बताने के लिए उसने अपना हाथ उठाया, उसी समय उसके दोनो हाथ ऐसे गिर पडे जैसे किसी ने उन्हे तलवार से काट डाला हो। राजा ने इस आश्चर्य व्यापार को देखकर भी उस हाथी को पकड लिया और उसको रस्सियो से बांध कर अपने स्थान को ले गया। वह शिशु हस्ती (पालतू होने के लिए) बांधे जाने पर अनेक दिनो तक बिना कुछ भोजन पान के पडा रहा। महावत ने सब वृत्तान्त जाकर राजा से निवेदन किया, जिस पर राजा स्वयं उसके

---

(1) जनरल कनिंघम साहब लिखते हैं कि स्तूप का भग्नावशेष और जहाँ पर हाथी पकडा गया था उस स्थान के स्तम्भ का निचला भाग, नीराञ्जन नदी के पूर्वी किनारे पर बकरोर स्थान में अब तक वर्तमान है। यह स्थान बुद्धगया से एक मील दक्षिण-पूर्व में है।

देखने के लिए आया और हाथी से कारण पूछने लगा। आश्चर्य ! हाथी बोलने लगा !! उसने उत्तर दिया, "मेरी माता अन्धी है, मैं ही उसको भोजन और जल पहुँचाता था, मैं यहाँ पर कठिन बन्धन मे पडा हूँ इस कारण मेरी माता को इतने दिनो से भोजन इत्यादि प्राप्त न हुआ होगा। ऐसी दशा मे यह कब सम्भव है कि मैं सुख पूर्वक भोजन करूँ ?" राजा ने उसके भाव और मन्तव्य पर दयालु होकर उसके छोडने की आज्ञा दे दी।

इस तडाग के पास एक स्तूप है जिसके सामने एक पाषाण-स्तम्भ लगा हुआ है। प्राचीन काल मे काश्यप बुद्ध इस स्थान पर समाधि मे मग्न हुए थे। इसी के निकट गत चारो बुद्धो के उठने-बैठने आदि के चिन्ह हैं।

इस स्थान के पूर्व मोहो[1] (माही) नदी पार करके हम एक बडे जङ्गल मे पहुँचे जिसमे एक पाषाण स्तम्भ है। यह वह स्थान है जहाँ पर एक विरोधी परमानन्द अवस्था प्राप्त करके भी नीच प्रतिज्ञा कर बैठा था। प्राचीन काल मे उद्रामपुत्र[2] नामक एक विरोधो था जो मेघो से ऊपर आकाश मे उडने के लिए वनवासी होकर साधना करता था। इस पुनीत अरण्य मे उसको पञ्चाध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त हो गई थी और वह ध्यान के परमतम पद को पहुँच गया था। मगध-नरेश उसके तप की प्रतिष्ठा करके प्रति दिन मध्यान्ह काल मे भोजन करने के लिए उसको अपने स्थान पर निमन्त्रित किया करता था। उद्रामपुत्र अधर मे चढ कर वायु द्वारा गमन करते हुए बिना किसी प्रकार की रुकावट के उसके स्थान पर जाया करता था। मगधराज उसके आने के समय बडी सावधानी रखता था और उसके आने पर बडी भक्ति से उसे अपने स्थान पर बैठाता था। एक दिन राजा को बाहर जाने की आवश्यकता हुई, उस समय वह इस बात की चिन्ता करने लगा कि अपनी अनुपस्थिति मे किसके ऊपर इस कार्य का भार डाला जाय, परन्तु उसके रनिवास मे कोई भी ऐसा न निकला जो उसकी आज्ञा पालन करने योग्य होता। परन्तु (उसके सेवको मे) एक छोटी कन्या लज्जा-स्वरूपिणी, शुद्धा चरणवाली और ऐसी चतुर थी कि राजा का कोई भी सेवक उससे बढ कर नही था। मगधराज ने उसको बुलाया और कहा "मैं राज्यकार्यवश बाहर जाता हूँ और तुमको एक बहुत आवश्यक कार्य पर नियत करना चाहता हूँ। तुमको चाहिए कि तुम भी बहुत सावधानी के साथ उस कार्य का सम्पादन करो। तुम जानती

(1) मोहन नदी।

(2) उद्रामपुत्र एक महात्मा हो गया है जिसके निकट बुद्धदेव तपस्या करने के पहले गये थे, परन्तु यह निश्चय नही है कि यह व्यक्ति जिसको ह्वेनसांग लिखता है वही है या और कोई।

हो कि प्रसिद्ध ऋषि उद्ररामपुत्र, जिसकी सेवा और प्रतिष्ठा बहुत दिनो से मैं भक्ति-पूर्वक करता रहा हूँ, मेरे जाने के उपरान्त जब नियत समय पर यहाँ भोजन करने के लिए आवे, तब तुम उसी प्रकार दत्तचित्त होके उसकी सेवा करना जैसे मैं करता हूँ।" इस प्रकार उसको शिक्षा देकर राजा अपने कार्य को चला गया।

वह कन्या उसी प्रकार जैसा राजा ने उसको बतलाया था ऋषि के आने के समय सावधानी से सब कार्य करती रही। जब वह आया तब उसने आदर के साथ उसको आसन पर बैठाया, परन्तु उद्ररामपुत्र उस कन्या का स्पर्श होते ही विचलित हो गया—उसके चित्त मे दुर्वासना का आविर्भाव हुआ जिससे उसकी सम्पूर्ण आध्यात्मिकता जाती रही। भोजन समाप्त करके चलते समय उसमे इतनी सामर्थ्य नही रह गई कि वह वायु पर चढ सके। अपनी यह दशा देखकर उसको बडी लज्जा हुई। उसने झूठी बाते बनाकर कन्या से कहा, "महात्मा पुरुषो के समान मैं समाधि-अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ, मैं वायु पर चढकर पल-मात्र मे जहा चाहूँ वहां घूम फिर सकता हूँ। मेरे इस प्रभाव के कारण, मैंने सुना है, देश के लोग मेरे दर्शनो की बड़ी अभिलाषा रखते हैं। प्राचीन नियमानुसार मेरा यह परम धर्म है कि मैं सम्पूर्ण संसार का उपकार करता रहूँ। यदि केवल अपना स्वार्थ देखता रहूँ और दूसरो की ओर ध्यान न दूँ तो लोग मेरी क्या प्रतिष्ठा करेंगे? इस कारण आज मेरी इच्छा है कि द्वार से होकर भूमि पर पग-सञ्चालन करता हुआ लौट कर जाऊँ, और सब लोगो को अपना दर्शन देकर प्रसन्न और सुखी करूँ।"

उस कन्या ने इस आज्ञा को सुनकर इसका समाचार सब स्थानो मे झटपट पहुँचा दिया। सैकड़ो आदमी मार्ग झाडने बुहारने और छिड़कने मे लग गये तथा लाखो मनुष्यो की भीड उसके दर्शन के निमित्त दौड पड़ी। उद्ररामपुत्र राजभवन से पैदल चलकर अपने आश्रम को चला गया। अपने आश्रम मे जिस समय शान्ति के साथ समाधि मे मग्न होकर वह अवरगामी होने लगा उस समय उसमें इतनी शक्ति नही रह गई कि वह वन की सीमा के बाहर भ्रमण कर सके। साथ ही इसके, जब वह वन मे भ्रमण कर रहा था तब उसने देखा कि पक्षी उसके निकट आकर चिल्ला रहे है और डालो पर फड़फड़ा रहे हैं। जिस समय वह तड़ाग के किनारे पहुँचा मछलियाँ पानी के बाहर कूदने लगी और छींटे उड़ा-उड़ा कर उस पर डालने लगी। यह दशा देखकर उसका क्रोध और भी और होकर चित्त अत्यन्त विकल हो गया तथा उसकी सम्पूर्ण महिमा विलीन हो गई तथा उसने क्रोध मे आकर यह संकल्प किया, "मेरा जन्म भविष्य मे किसी ऐसे भयानक पशु की योनि में होवे जो शरीर से तो लोमड़ी के समान हो परन्तु पक्षियों के सदृश परधारी भी हो जिससे मैं प्राणियों को

पकड कर भक्षण कर सकूँ । मेरे शरीर की लम्बाई ३,००० ली और परो का फैलाव १,५०० ली हो और मैं जङ्गलो मे घुसकर पक्षियो को और नदियो मे घुसकर मछलियो को पकड-पकड कर भक्षण कर सकूँ ।'

यह सकल्प करके वह फिर तपस्या मे लीन हो गया तथा कठिन परिश्रम करके फिर अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो गया । कुछ दिनो के बाद उसका देहान्त हो गया और उसका जन्म 'भुवानि स्वर्ग[1]' मे हुआ जहा पर वह अस्सी हजार कल्प तक निवास करेगा । तथागत भगवान ने इसकी बाबत लिखा है कि "उसकी आयु के वर्ष उस स्वर्ग मे समाप्त होने पर वह अपनी प्रतिज्ञा का फल प्राप्त करेगा और अधम शरीर मे जन्म लेकर अधम कर्मों मे फँसा हुआ कभी भी छुटकारा न पा सकेगा[2] ।"

माही नदी के पूर्व हम एक बडे विकट बन मे घुसे और लगभग १०० ली चल कर 'कुक्कुट पादगिरि' तक पहुँचे इसका नाम 'गुरुपादा गिरि'[3] भी कहा जाता है । इस

---

(1) अर्थात अरूप-स्वर्ग मे सर्वोपरि स्थान को भुवानि स्वर्ग कहते हैं। चीनी भाषा मे इस स्वर्ग का नाम 'फिसि अग' फिफि 'निअगटिन' है जिसका अर्थ यह है कि वह स्वर्ग जहा विचार अविचार कुछ नही है । पाली मे इसको 'नेव सन्नाना सन्ना' कहते हैं ।

(2) अर्थात यद्यपि इस समय वह सर्वोपरि स्वर्ग मे वास करता है और ८,०००० महाकल्प तक वही पर रहेगा, तो भी भविष्य यन्त्रणा से उसका छुटकारा नही हो सकता । इस दृष्टान्त से बुद्धदेव के निर्वाण की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है कि उसको प्राप्त करके मनुष्य किसी प्रकार भी आवागमन के जाल मे नही फस सकता ।

(3) अर्थात प्रतिष्ठित गुरु का पर्वत काश्यपपाद केवल भक्ति के लिए जोड दिया जाता है, जैसे देवपादाः कुमारिल पादाः इत्यादि । कदाचित अपनी बनावट के कारण यह कुक्कुट कहलाता है क्योंकि इसकी तीन चोटिया कुक्कुट के पैर के समान हैं । फाहियान इसको गया के दक्षिण मे ३ ली लिखता है जो कदाचित् भूल से तीन योजन के स्थान पर हो गया है, और दिशा भी दक्षिण गलत है, पूर्व होनी चाहिए । जनरल कनिंघम साहब ने कुर विहार ग्राम को ही स्थान निश्चय किया है । कुक्कुट पाद पहाडी को पटना के निकटवाला कुक्कुट बाग सघाराम समझना भूल है । इस बात का कोई सबूत नही है कि इस सघाराम के निकट पहाडी थी । और किसी स्थान पर भी इसको कुक्कुट पाद विहार नही लिखा गया है जुलियन साहब ने और बरनफ साहब ने जो प्रमाण दिये हैं उनसे गया के निकट पहाडी का होना निश्चय होता है ।

पहाड के किनारे बहुत ऊँचे हैं तथा घाटियां और रास्ते बडे दुर्गम है। इसके निकट होकर जलधारा बडे वेग से बहती है और घाटियां विकट वन से परिपूर्ण हैं। इसकी नुकीली चोटियां, जो तीन ऊपर हैं ऊपर वायु मंडल में उठी हुई मेघ मंडल मे विलीन हो जाती है और स्वर्गीय वाष्प (वर्फ) से लदी हुई हैं। इन चोटियो के पीछे महाकाश्यप निर्वाणावस्था मे निवास करते हैं। इनका प्रभाव ऐसा प्रबल है कि लोग नामोच्चारण तक करते हुए झिझकते हैं इस कारण गुरुपादाः कह कर सम्बोधन करते हैं। महाकाश्यप श्रावक था और इतना बडा महात्मा था कि 'षडभिज्ञा' (छहो अलौकिक शक्तियां) और 'अष्ठौविमोक्ष' (आठ प्रकार की मुक्ति) इसको सिद्ध थे। तथागत धर्मप्रचार का काम समाप्त करके जिस समय निर्वाण के सन्निकट हुए उस समय उन्होने काश्यप से कहा, "अनेकों कल्प तक जन्म मरण का कष्ट मैंने केवल इस लिये सहन किया है कि प्राणियो के लिये धर्म के उत्कृष्ट स्वरूप का निर्माण कर दूँ। जो कुछ मेरी वासना थी वह सब परिपूर्ण हो गई इसलिए अब मेरी इच्छा महानिर्वाण मे लिप्त होने की है। मेरे पीछे पिट्टक का भार तुम्हारे ऊपर रहेगा। इसमे किसी प्रकार की घटी न होने पावे वरच ऐसा उपाय करना जिससे उत्तरोत्तर वृद्धि और प्रचार मे उन्नति ही होती रहे। मेरी चाची के दिये हुए स्वर्णतन्तु सपूरित काषाय वस्त्र के विषय में मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि इसे अपने पास रक्खो और जब मैत्रेय बुद्धावस्था को प्राप्त हो जावे तब उनको दे दो। जो लोग मेरे धर्म मे व्रती होवे, चाहे वे भिक्षु हो भिक्षुनी, उपासक हो या उपासिका, उनका प्रथम कर्तव्य यही होगा कि जन्म-मृत्यु-रूपी धारा से बचे अथवा उसको पार करें।"

काश्यप ने यह आज्ञा पाकर सत्य धर्मकी रक्षा के लिए एक बडी भारी सभा एकत्रित की। उस सभा के साथ वह बीस वर्ष तक काम करता रहा, परन्तु ससार की अनित्यता पर खिन्न होकर वह मरने की इच्छा से कुक्कुटपाद गिरि की तरफ चल दिया। पहाड के उत्तरी भाग से चढ़कर घूम घुमौवे रास्तो को पार करता हुआ वह दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर पहुँचा यहाँ पर चट्टानो और कगारो के कारण वह आगे न बढ सका, इसलिए एक घनी झाड़ी मे घुस कर उसने अपने दण्ड से चट्टान को तोड कर मार्ग निकाला। इस प्रकार चट्टान को विभक्त करके वह और आगे बढा। थोडी दूर जाने पर एक दूसरी चट्टान उसके मार्ग में बाधक हुई, उसने फिर उसी तरह रास्ता बनाया और चलता-चलता पूर्वोत्तर दिशा की चोटी पर पहुँचा। वहाँ से तग रास्तो को पार करता हुआ जिस समय वह तीनों चोटियो के मध्य में पहुँचा उसने बुद्धदेव के काषाय वस्त्र (चीवर) को हाथ में लेकर और खडे होकर अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण किया। उस समय तीनो चोटियो ने उठ कर उसको घेर लिया। यही कारण है कि ये तीनो ऊपर वायु-मंडल में पहुँची हुई हैं। भविष्य में

जब मैत्रेय ससार मे आवेगे और त्रिपिटक का उपदेश करेगे उस समय अगणित घमडी उनके सिद्धान्तो का प्रतिवाद करेगे। उन लोगो को लेकर वह इस पहाड पर आवेंगे और जिस स्थान पर काश्यप हैं वहा पहुँच कर उस स्थान को झटपट (चुटकी बजाकर) खोल देगे परन्तु लोग काश्यप को देख कर और भी गर्वित तथा दुराग्रही हो जावेंगे। उस समय काश्यप मैत्रेय भगवान को पूर्णभक्ति और नम्रता के साथ काषाय वस्त्र दे देगे। तदुपरान्त वायु मे चढकर सब प्रकार के आध्यात्मिक चमत्कारो को दिखाते हुये अपने शरीर से अग्नि और वाष्प को उत्पन्न करके निर्वाण को प्राप्त हो जायँगे। उस समय लोग इन चमत्कारो को देखकर अपने घमन्ड का परित्याग कर देगे और अपने अन्तःकरण का उद्घाटन करके पुनीत फल को प्राप्त करेगे। यही कारण है कि पहाड की चोटी पर स्तूप बना हुआ है। सध्या के समय जिस दिन प्राकृतिक शान्ति का अधिराज्य होता है उस दिन लोगो का दूर से दिखाई पडता है कि कोई वस्तु ऐसी प्रकाशित है जैसे मशाल जलती हो। परन्तु यदि पहाड पर जाकर देखा जाय तो कुछ भी पता नही चलता[1]।

कुक्कुटपाद गिरि के पूर्वोत्तर दिशा मे जाकर लगभग १०० ली पर बुद्धवन नामक पहाड हैं जिसकी चोटिया और पहाडिया ऊँची और खडी है। ऊँची पहाडियो के मध्य मे एक गुफा है जहाँ पर एक बार बुद्धदेव आकर ठहरे थे। इसके निकट ही एक बडा पत्थर पडा हुआ है जिस पर देवराज शक्र और ब्रह्मा ने गोशोर्पचन्दन[2] को रगड कर तथागत भगवान के तिलक किया था। पत्थर मे से अब भी इसको सुगधि आती है। यहा पर भी पाच सौ अरहट गुप्तरूप से निवास करते हैं। जो लोग अपने धर्म मे कट्टर हाते हैं और इनके दर्शन की इच्छा करते हैं उनको कभी कभी दर्शन हो भी जाते हैं। किसी समय ये श्रमणो के भेष मे गांव मे भिक्षा मांगने

---

(1) तीन चोटियो वाले पहाड़ के सम्बन्ध मे, जिसका वर्णन हो रहा है, जनरल कनिघम साहब निश्चय करते हैं कि आज कल का मुराली पहाड ही कुक्कुटपाद है जो कुरकिहार ग्राम से उत्तर पूर्व मे तीन मील पर है। यहाँ पर अब भी मध्य वाली अथवा ऊँची चोटी पर एक चौकोर नीव है जिसके आस-पास ईंटो का ढेर है।

(2) सेमुएल वील साहब लिखते हैं। जिनका अनुवाद 'गोशीर्ष चन्दन' किया है। इस शब्द के समझने के लिए उन साहब ने बहुत प्रयत्न किया है परन्तु ठीक समझ नही सके। मेरे विचार मे इस शब्द से तात्पर्य 'गोरोचन' से है जो एक सुगधित वस्तु है तथा गायो के सिर मे निकलती है, और जिसके तिलक का वर्णन पुराणो मे प्रायः आया है। तान्त्रिक लोगो के यहा इसका अधिक व्यवहार होता है।

निकलते हैं किसी समय अपनी गुफाओ में प्रवेश करते हुए दिखाई पडते हैं। वे लोग समय-समय पर जो अपने आध्यात्मिक चमत्कारो के चिन्ह छोड जाते है उन सबका विस्तृत वर्णन करना कठिन है।

बुद्धवन पहाड की वनैली घाटी मे पूर्वाभिमुख कोई ३० ली चलकर हम एक वन में पहुँचे जिसका नाम यष्टोवन है । बाँस जो यहा उत्पन्न होते है। बहुत बडे-वडे होते हैं। ये पहाडो को घेरे हुये सम्पूर्ण घाटी मे फैन्ने चले गये है । प्राचीन काल मे एक ब्राह्मण था, जो यह सुन कर कि शाक्य बुद्ध का शरीर १६ फीट ऊँचा था वहुत सन्देहान्वित हो गया था। उसकों इस बात का विश्वास हो नही हुआ था। एक बार वह एक वाँस १६ फीट ऊचा लेकर बुद्धदेव को ऊँचाई नापने के लिए आया। परन्तु वुद्धदेव का शरीर उस वास के सिरे से और भी १६ फीट ऊँचा हो गया। इस वृद्धि को देखकर वह हैरान हो गया; वह समझ न सका कि ठीक नाप किस प्रकार और क्या हो सकती है । वह उस बास को भूमि पर फेक कर चला गया परन्तु वह बास उठ कर खडा हो गया और जम आया। जगल के मध्य मे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यहा पर बुद्ध देवता ने देवताओ को अनेक प्रकार के चमत्कार दिखलाये थे और सात दिन तक गुप्त और विशुद्ध धर्म का उपदेश दिया था।

यष्टिवन मे थोड़े दिन हुये जयसेन नामक एक उपासक रहता था। यह जाति का क्षत्री और पश्चिम भारत का निवासी था। वह वहुत ही साधुचित्त और सुशील पुरुष था और जङ्गलो और पहाडो मे निवास करने मे हा सुख मानना था ऐसे स्थान मे रहता था जो एक प्रकार से अप्सराओ की भूमि कहना चाहिए, परन्तु उसका चित्त सदा सत्य ही को परिधि के भीतर भ्रमण करता था। उसने कट्टर लोगो के ग्रंथो तथा अन्य प्रकार की पुस्तको के गूढ सिद्धान्तो का वहुत परिश्रम पूर्वक अध्ययन किया था। उसके शब्द और विचार शुद्ध उसके भाव उच्च और उसका स्वरूप शान्त और गम्भीर था । श्रमण, ब्राह्मण, अन्यान्य मतवाले लोग, राजा, मन्त्री गृहस्थ और सब प्रकार के उच्च पदाधिकारी उसके पास उनके दर्शन करने और शङ्का-समाधान करने के लिये आया करते थे । उसके शिष्यो को सोलह कक्षाये थो। यद्यपि उसकी अवस्था लगभग ७० वर्ष के हो चुकी थी तो भी अपने शिष्यो को वह वडे परिश्रम मे पढाया करता था, वह केवल बौद्धो के सूत्रो को पढाता था, दूसरे प्रकार को पुस्तको का ओर ध्यान नहीं देता था। तात्पर्य यह कि वह दिन रात जो कुछ शारीरिक तथा मानसिक कार्य करता था वह सब सत्य धर्म ही के लिए होता था।

भारतवर्ष मे यह प्रथा है कि सुगन्धित वस्तुएं डाल कर गारा वनाते हैं और उस गारे से छोटे-छोटे स्तूप तैयार करते हैं, जिनकी ऊंचाई छः या सात इञ्च से

अधिक नही होती। इन स्तूपो के भीतर किसी सूत्र का कुछ भाग जिसको 'धर्मशरीर' कहते हैं लिख कर रख देते हैं। जब इन धर्मशरीरो की संख्या अधिक हो जाती है तब बडा स्तूप बनाकर उसके भीतर इन्हे रखते हैं और सदा उसकी पूजा अर्चा किया करते हैं। जयसेन का यह व्यसन हो गया था कि मुख से तो वह अपने शिष्यों को विशुद्ध धर्म सिखला कर धार्मिक बनाता था और हाथो से इस प्रकार के स्तूप बनाया करता था। इस प्रकार धर्माचरण करके उसने उच्चतम और सर्वोत्तम पुण्य को प्राप्त कर लिया था। सायकाल के समय वह मन्त्रो का पाठ करता हुआ पुनीत स्थानो की पूजा अर्चा करने जाता था अथवा शान्ति के साथ बैठ कर ध्यान मे लीन हो जाता था। सोने और भोजन करने के लिए उसको बहुत ही कम समय मिलता था। रात दिन उसको शिष्य लोग घेरे रहते थे। इसी अभ्यास के कारण १०० वर्ष की अवस्था होने पर भी उसका शरीर और मन अशक्त नही हुआ। तीस वर्ष तक परिश्रम करके उसने सात कोटि धर्म शरीर स्तूप बनाये थे और प्रत्येक कोटि के लिए एक बडा स्तूप बनाकर उनको उसके भीतर रख दिया था। इतने बडे परिश्रम से काम की समाप्ति मे अपनी धार्मिक भेट अर्पण करके उसने अन्य उपासकों को निमंत्रित किया। उन लोगों ने बडाई करते हुये उसको बहुत-बहुत बधाई दी। इसी समय एक दैवी प्रकाश चारो ओर फैल गया और अद्भद अद्भुत व्यापार आप ही आप प्रदर्शित होने लगे। उस समय से लेकर अब तक दैवी प्रकाश दिखलाई दिया करता है।

यष्टिवन[1] के दक्षिण पश्चिम मे लगभग १० ली दूर एक बडे पहाड के किनारे पर दो तप्तकुण्ड[2] हैं जिनका जल बहुत गरम है। प्राचीन काल मे तथागत भगवान ने इस जल को प्रकट करके स्नान किया था। इनके जल का शुद्ध प्रवाह अब तक जैसा का तैसा वर्तमान है। दूर तथा निकटवर्ती स्थान के लोग यहा आकर स्नान किया करते हैं जिनमे से बहुधा जीर्ण और असाध्य रोगी अच्छे भी हो जाते हैं। कुण्डो के किनारे एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर तथागत ने धर्मोपदेश दिया था।

यष्टिवन के दक्षिण-पूर्व मे लगभग ६ या ७ ली चलकर हम एक पहाड के निकट पहुँचे। इस पहाड के एक ओर कगार के सामने एक स्तूप है। यहा पर प्राचीन

(1) जनरल कनिंघम साहब लिखते हैं, "बांस का वन अब भी वर्तमान है जो 'जखतीवन' कहलाता है। यह बुधेन पहाडो (बुद्धवन) के पूर्व मे है। लोग बहुधा इसमे से बास काट कर अपने काम मे लाते हैं।

(2) जखतीवन के दक्षिण मे लगभग दो मील पर ये दोनो कुण्ड तपोवन के नाम से प्रसिद्ध हैं।

काल मे तथागत भगवान ने प्रावृट ऋतु के विश्राम काल मे तीन मास तक देवता और मनुष्यों के उपकारार्थ धर्म का उपदेश दिया था। उन दिनो विम्बसार राजा धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए आया था उसने पहाड को काट कर चढने के निमित्त सीढिया वनवा दी थी। ये सीढियां कोई २० पग चौडी तीन या ४ ली की ऊँचाई तक चली गई हैं[1]।

इस पहाड के उत्तर मे ३ या ४ ली आगे एक निर्जन पहाडी है। प्राचीन काल मे व्यास ऋषि इस स्थान पर एकान्तवास करते थे। उन्होने पहाड के पार्श्व को खोद कर एक निवास भवन वनाया था जिसका कुछ भाग अव भी दृष्टिगोचर होता है। इनके उपदेशो का प्रचार अव भी वर्तमान है। शिष्य लोग उन सिद्धान्तों को सादर ग्रहण करते है।

इन निर्जन पहाडी के उत्तर पूर्व मे ४ या ५ ली दूर एक और छोटी पहाडी है। यह पहाडी भी एकान्त मे है और इसके पास एक गुफा वनी है। इस गुफा की लम्वाई-चौडाई १,००० मनुष्यो के वैठने भर को यथेष्ठ है। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने तीन मास तक धर्म का निरूपण किया था। गुफा के ऊपर एक वड़ी और सुहावनी चट्टान है जिस पर देवराज शक्र और राजा व्रह्मा ने गोशीर्ष चन्दन पीस कर तथागत के शरीर को चर्चित किया था। इसके ऊपरी भग मे से अव भी सुगन्ध निकलती है।

इस गुफा के दक्षिण-पश्चिम वाले कोण पर एक ऊँची गुफा है जिसको भारतवासी असुरो का भवन कहते है। प्राचीन काल मे एक पुरुष वड़ा सुशील और जादूगरो के काम मे निपुण था। उसने एक दिन अपने साथियो समेत, जिनकी संख्या उसके सहित चौदह हो गई थी, इस ऊँची गुफा मे प्रवेश किया। लगभग ३० या ४० ली जाने पर सम्पूर्ण भवन विशद आलोक मे आलोकित हो उठा जिसके प्रकाश मे उन्होंने देखा कि एक नगर, जिसके चारो ओर दीवार वनी हैं, सामने है, जिसके भवन आदि जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहे है सव सोना-चांदी रत्न इत्यादि के वने हुए हैं! नगर मे प्रवेश करने के लिए आगे वढने पर उन्होने देखा कि कुछ युवा कुमारिकायें फाटक पर वैठी हैं। उन कुमारियो ने प्रफुल्ल-वदन से उन सवका प्रणामपूर्वक स्वागत किया। थोड़ी दूर और आगे वढ कर वे लोग नगर के भीतरी फाटक पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने देखा कि दो परिचारिकायें फूल और सुगंधित वस्तुओं को सोने के घड़ो मे भरे हुए लिये खडी

(1) जनरल कनिंघम इस पहाड़ को हंडिया की १,४[illegible]३ फीट ऊँची पहाड़ी निश्चय करते हैं।

हैं। उन वस्तुओ को लेकर वे इनके पास आईं और कहने लगी, "आप लोगो को पहले उस सामने वाले तडाग मे स्नान करना चाहिए, इसके उपरान्त अपने को इन सुगंधित वस्तुओ से सुवासित और पुष्पो से सुसज्जित करना चाहिए। तब आप लोग नगर के भीतर प्रवेश कर सकते हैं। इसलिये आप लोग जल्दी मन कीजिए। केवल जादूगर इसमे इसी समय जा सकते है। इस बात पर शेष तेरह आदमी उसी क्षण स्नान करने चले गए। तडाग मे प्रवेश करते ही वे लोग वेसुध हो गये, जो कुछ उन्होने देखा था सब भूल गये, और यहाँ से उत्तर मे तीस चालीस ली दूर, समतल भूमि के एक धान के खेत मे बैठे हुए पाये गये।

गुफा के पास एक मार्ग लकडी का बना हुआ है जिसकी चौडाई १० पग और लम्बाई ४ या ५ ली है। प्राचीन काल मे विम्बसार राजा जिस समय बुद्धदेव का दर्शन करने जा रहा था उसने चट्टानो को काट कर घाटियो का उद्घाटन और कगारो को समतल कर नदी के ऊपर यह मार्ग बनवाया था। जिस स्थान पर बुद्धदेव रहते थे वहाँ तक ऊँचाई पर चढने के लिए उसने दीवारे बनवा कर और चट्टानो मे छेद करके सीढियाँ बनवा दी थी।

इस स्थान से पूर्व दिशा मे पहाडो को पार करते हुए लगभग ६० ली दूर हम कुशगारपुर[1] मे पहुँचे। यह स्थान मगधराज्य का केन्द्र है। इस स्थान पर देश के प्राचीन नरेश ने अपनी राजधानी बसाई थी। यहाँ पर बहुत उत्तम सुगंधित कुश उत्पन्न होता है इसीलिए इसको कुशगारपुर कहते हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड इसके चारो ओर से चहारदिवारी के समान घेरे हुए है[2]। पश्चिम की तरफ एक सकीर्ण दर्रा है और उत्तर की तरफ पहाडो के मध्य मे होकर मार्ग है। नगर पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत है और उत्तर से दक्षिण तक कम। इसका क्षेत्रफल १५० ली और नगर के भीतरी भाग की चहारदीवारी की हद लगभग ३० ली के घेरे मे है। सडको के किनारे-किनारे 'कनक' नामक वृक्ष लगे हुए हैं। इस वृक्ष के फूल बडे सुगधियुक्त और रङ्ग मे बडे मनोहर सोने के समान होते हैं।

राजभवन के उत्तरी फाटक के बाहर एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ पर देवदत्त और और राजा अजातशत्रु ने सलाह करके एक मतवाला हाथी तथागत

(1) जनरल कनिङ्घम साहब लिखते हैं, "कुशगारपुर" मगध की राजधानी थी और इसका नाम राजगृह था, इसको गिरिव्रज भी कहते हैं।

(2) फाहियान भी यही लिखता है कि पाच पहाडिया नगर को चहारदीवारी के समान घेरे हुए हैं।

भगवान को मारने के लिए छोड़ा था। परन्तु तथागत ने पांच सिंह अपनी ऊँगलियों के सिरो से उत्पन्न करके उसको परास्त कर दिया था। उस हाथी का स्वरूप अब भी उनके सामने उपस्थित है।

इस स्थान के पूर्वोत्तर मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहां शारिपुत्र की भेट अश्वजित् भिक्षु से हुई थी और भिक्षु ने धर्मोपदेश दिया था जिसके आश्रित होकर वह अरहट अवस्था को प्राप्त हुआ था। पहले शारिपुत्र गृहस्थ था; परन्तु बडा ही योग्य, शुद्ध चरित्र, और अपने समय का प्रतिष्ठित व्यक्ति था। अपने साथियों के साथ वह प्राचीन सिद्धान्तो को—जो उसको पहले से सिखाये गये थे—मनन किया करता था। एक दिन वह राजगृह नगर को जा रहा था। उसी समय अश्वजित् भिक्षु भी भिक्षा माँगने के लिये नगर में प्रवेश कर रहा था। शारिपुत्र ने उसको देखकर अपने साथी चेलो से कहा, "सामने मनुष्य आ रहा है वह कैसा तेजवान और शान्त है, यदि यह सिद्धावस्था को न पहुँच चुका होता तो कदापि इस प्रकार प्रशान्त स्वरूप न होता। आओ थोडा ठहर जायँ और उसको भी आने दें, जिसमें उसका हाल मालूम हो।" अश्वजित् अरहट अवस्था को प्राप्त हो चुका था, उसका मन अचंचल और मुख से धैर्य तथा अविचल पवित्रता का प्रकाश प्रसरित हो रहा था। जिस समय हाथ में धर्मदड लिये हुए वह धीरे-धीरे निकट पहुँचा, शारिपुत्र ने उससे पूछा, "हे महात्मा ! कहिए आप सुखी और प्रसन्न तो हैं ? कृपा करके मुझको यह बता दीजिये कि आपका गुरु कौन है और किस नियम का आप पालन करते हैं जिससे आप सन्तुष्ट और प्रसन्न दिखाई देते हैं" ?

अश्वजित् ने उसको उत्तर दिया, "क्या आपने नही सुना कि शुद्धोदन राजा के राजकुमार ने अपने पिता के चक्रवर्ती राज्य को परित्याग करके और छहो प्रकार की सृष्टि के लिए करुणा से प्रेरित होकर ६ वर्ष तक तपस्या की थी ? वह अब सम्बोधि-अवस्था को पहुँच गया है, और वही मेरा गुरु है। इस धर्म मे जन्म-मृत्यु की व्यवस्था का निरूपण है जिसका वर्णन करना कठिन है। जो बुद्ध है वही बुद्ध लोगो से इसकी थाह पा सकते हैं। मुझ सरीखे मूर्ख और अंधे मनुष्य किस प्रकार इसका वर्णन कर सकते है ? तो भी मैं बुद्ध-धर्म की प्रशंसा विषयक कुछ वाक्य तुमको सुनाता हूँ। शारिपुत्र उसको सुनकर अरहट-अवस्था का फल पा गया[1]।

इस स्थान के उत्तर मे थोड़ी दूर पर एक बडी गहरी खाई है जिसके निकट एक स्तूप बना हुआ है। यह वह स्थान है जहाँ पर श्रीगुप्त ने खाई मे अग्नि को छिपाकर और विषैले चावल देकर बुद्ध भगवान् को मार डालना चाहा था।

(1) उसने जो वाक्य कहा था 'फोशोकिङ्ग' नामक पुस्तक मे लिखा हुआ है।

उन दिनो विरोधियो मे श्रीगुप्त का वड़ा मान था। असत्य सिद्धान्तो के पालन करने मे वह कट्टर समझा जाता था। सब ब्रह्मचारियो ने उससे कहा, "देश के लोग गौतम की वडी प्रतिष्ठा करते है। उसके कारण हमारे शिष्यो का भरण-पोषण कठिन हो रहा है। तुम उसका अपने मकान मे भोजन करने के लिये निमन्त्रित करो और अपने द्वार के सामने एक वडी खाई वनाकर उसको अग्नि से भर दो तथा ऊपर से लकडी के तख्ते बिछाकर अग्नि को बन्द कर दो। इसके अतिरिक्त भोजन मे विष मिला दो। यदि वह अग्नि से वच जावेगा तो विप से मर जायगा।"

श्रीगुप्त ने सम्मति के अनुमार विष-मिश्रित भोजन तैयार किया। उस समय नगरनिवासी इस दुष्टता का समाचार पाकर तथागत भगवान के पास गये और श्री-गुप्त की गुप्त मन्त्रणा का वृत्तान्त निवेदन करके प्रार्थी हुये कि उस मकान मे आप न जाइए। भगवान् ने उत्तर दिया, "आप लोग दुखी न हों, तथागत का शरीर इन उपायों से क्लेशित नही हो सकता।" तथागत भगवान् निमन्त्रण स्वीकार करके उसके स्थान पर गये। जैसे ही उन्होने देहली पर पैर रक्खा कि खन्दक की आग पानी मे परिणित हो गई और उसके ऊपर कमल के फूल खिल आये।

श्रीगुप्त इस चमत्कार को देखकर लज्जित हो गया। उसको भय हो गया कि उसका मसूबा फलीभूत नही होगा। उसने अपने साथियो से कहला भेजा, "कि तथागत अपने प्रभाव-द्वारा अग्नि से तो बच गये परन्तु विष मिश्रित भोजन अभी रखा हुआ है। बुद्धदेव ने उन चावलो को खाकर और विशुद्ध धर्म का उपदेश देकर श्रीगुप्त को भी अपना शिष्य कर लिया जाय।

इस अग्नि वाली खाई के उत्तर-पूर्व की ओर नगर की एक मोड पर एक स्तूप है। यहाँ पर जीवक नामी किसी वैद्यराज ने बुद्धदेव के निमित्त एक-उपदेश-भवन वनवाया था जिसके चारो ओर उसने फल ,फूल वाले वृक्ष लगवा दिये थे। इसकी दीवार की नीवें और वृक्ष की जडो के चिन्ह अब तक वर्तमान हैं। तथागत भगवान् बहुधा इस स्थान पर आकर निवास किया करते थे। इस स्थान के बगल मे जीवक के निवास भवन का खडहर तथा एक प्राचीन कुँए का गर्त अब तक वर्तमान है।

राजभवन के पूर्वोत्तर मे लगभग १४ या १५ ली चलकर हम गृध्रकूट पहाड़ पर पहुँचे। उत्तरी पहाड के दक्षिणांश ढाल से मिला हुआ यह एक ऊँची और जन-शून्य चोटी के समान है जिसके ऊपर गिद्धो का निवास है। यह एक ऐसे ऊँचे शिखर की भाति विदित होता है कि जिसके ऊपर आकाश का नीला रङ्ग पड कर आकाश और पहाड का एक मिलवाँ रङ्ग बन जाता है।

तथागत भगवान् ने लगभग पचास वर्ष जो संसार के मार्ग-प्रदर्शन मे व्यय किये थे उनका अधिक भाग इसी स्थान पर व्यतीत हुआ था, तथा विशुद्ध धर्म को परिवर्द्धित स्वरूप इसी स्थान पर प्राप्त हुआ था[1]। विम्बसार राजा धर्म को श्रवण करने के लिये अपरिमित जनसमुदाय लेकर यहां आया था। लोग पहाड के पदतल से लेकर चोटी तक भर गये थे। उन्होने घाटियो को समतल और कगारो को धराशायी करके दस पर चौडी सीढियां बनाई थी जो पाँच या ६ लो तक चली गई थी। मार्ग के मध्य मे दो छोटे-छोटे स्तूप बने हुये हैं जिनमे से एक 'रथ का उतार' कहलाता है, क्योकि राजा इस स्थान से पैदल गया था, और दूसरा 'भीड की विदा' कहलाता है, क्योकि साधारण लोगो को राजा ने यहां से विदा कर दिया था—उनको अपने साथ नही ले गया था। इस पहाड की चोटी पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बी और उत्तर से दक्षिण की ओर चौड़ी है। पहाड़ के पश्चिमी भाग पर एक ढालू कगार के किनारे एक विहार ईंटो से बना हुआ है। यह ऊँच, विस्तृत और मनोहर है। इसका द्वार पूर्वाभिमुख है। इस स्थान पर तथागत भगवान् बहुधा ठहरा करते और धर्मोपदेश किया करते थे। यहाँ पर उनकी एक मूर्ति, उतनी ही ऊँची जितना ऊँचा उनका शरीर था और उसी ढग की जैसे कि वह उपदेश कर रहे हो, वर्तमान है।

विहार के पूर्व एक लम्बा सा पत्थर है जिस पर तथागत भगवान ने टहल टहल कर धर्मोपदेश दिया था। इसी के निकट चौदह या पन्द्रह फीट ऊँचा और तीस पग घेरे वाला एक बडा भारी पत्थर पडा हुआ है। इसी स्थान पर देवदत्त ने बुद्धदेव को मार डालने के लिए दूर से पत्थर फेक कर मारा था[2]।

---

(1) अन्तिम समय के अनेक बड़े-बडे सूत्रो के बारे मे कहा जाता है कि वे यही पर परिचित हुये थे। लोगो का यहां तक विश्वास है कि इस पहाड से और बुद्धदेव से आध्यात्मिक सम्बन्ध था। सम्भव है कि तथागत का अन्तिम समय सिद्धान्तो के विशद स्वरूप के प्रदर्शन मे व्यतीत हुआ हो और उनके इस कार्य का वही पहाड रङ्गस्थल रहा हो। परन्तु सूत्रो का अधिक भाग इस स्थान पर प्रकाशित हुआ हो यह सिद्ध नही है (देखो फाहियान अध्याय २६) गृध्रकूट शैल गिरि नामक एक ऊँची पहाड़ी का भाग है परन्तु किसी गुफा का पता वहां पर नही चला। (जनरल कनिंघम)।

(2) देवदत्त के पत्थर फेकने का वृतान्त फाहियान (अध्याय २६) में भी लिखा है तथा 'फोशोकिङ्ग और मैनुकल आफ बुदिज्म' आदि पुस्तको मे भी पाया जाता है परन्तु कुछ थोड़ा सा भेद है।

इसके दक्षिण की तरफ कगार के नीचे एक स्तूप है । इस स्थान पर -ने पूर्व काल मे 'सद्धर्म' पुण्डरीक सूत्र[1] को प्रकाशित किया था ।

विहार के दक्षिण मे एक पहाडी चट्टान के पास एक विशाल भवन का बनवाया हुआ है। इस भवन मे तथागत भगवान ने किसी समय -लगाई थी ।

इस भवन के उत्तर पश्चिम मे और इसके ठीक सामने एक बडा भारी विचित्र पत्थर है । इस स्थान पर आनन्द को मार राजा ने भयभीत कर दिया जिस समय महात्मा आनन्द इस स्थान पर समाधि मे मग्न हो रहे थे उसी मार राजा कृष्ण पक्ष की अर्द्ध निद्रा मे गृद्ध का स्वरूप धारण करके चट्टान आ बैठे और अपने पंखो को फडफड़ा कर और बडे शब्द से चीत्कार आनन्द को भयभीत करने लगा । आनन्द भयातुर होकर कर्तव्य विमूढ हो गये । समय तथागत भगवान् ने अपने अन्तः करण से उसकी दशा को जानकर ढाढस बधाने के लिए अपना हाथ बढाया । उन्होने पत्थर की दीवार को तोड और आनन्द के सिर पर हाथ रखकर बड़े प्रेम के साथ कहा, "आनन्द ! मार के इस बनावटी स्वरूप से भयभीत मत रहो । आनन्द इस आश्वासन से चैतन्य -गया और उसका चित्त ठिकाने तथा शरीर स्वस्थ हो गया ।

यद्यपि सैकडो वर्ष व्यतीत हो गये हैं तो भी पत्थर पर पक्षी के पदचिन्ह चट्टान मे छेद अब भी दिखाई देते हैं ।

विहार के पास कई एक पत्थर के भवन[2] हैं जहा पर शारिपुत्र तथा अन्य अरहट समाधि मे मग्न हुये थे । शारिपुत्र के भवन के सामने एक सूखा और जल कूप है जिसका गर्त अब तक वर्तमान है ।

विहार से उत्तर-पूर्व की ओर एक पहाडी झरने के मध्य मे एक बडा चौडा पत्थर है । यहां पर तथागत ने अपने काषाय वस्त्र को सुखाया था । के तन्तुओ के चिन्ह अब तक इस प्रकार वर्तमान हैं मानो चट्टान पर खोद गये हो ।

---

(1) फाहियान 'शुरङ्गम सूत्र' लिखता हैं और ह्वेनसाग सद्धर्म पुण्डरी सूत्र लिखता है । ये सूत्र बुद्धधर्म के अन्तिम ग्रन्थ हैं और इस स्थान पर विरचित हैं, क्योकि बुद्धदेव का अन्तिम धर्मोपदेश स्थल यह पहाड़ ही था ।

(2) कदाचित गुफाएं होगी । कनिंघम साहब इनको छोटी छोटी कोठरि समझते हैं जैसा कि इस वृत्तान्त से पुष्ट भी होता है ।

इसके पास एक चट्टान पर बुद्धदेव का पदचिह्न बना हुआ है जिसके चक्र की लकीरें यद्यपि कुछ-कुछ बिगड गई है तो भी स्पष्ट दिखलाई देती है।

उत्तरी पहाड़ की चोटी पर एक स्तूप है। इस स्थान से तथागत ने मगध नगर[1] का अवलोकन करके सात दिन तक धर्मोपदेश दिया था।

पहाडी नगर के उत्तरी द्वार के पश्चिम ओर एक पहाड विपुलगिरि[2] नामक है। देश की किंवदन्ती के आधार पर इस स्थान का वृत्तान्त इस प्रकार प्रसिद्ध है कि "प्राचीन समय मे इस पहाड की दक्षिणी-पश्चिमी ढाल के उत्तरी भाग मे गरम जल के पाँच सौ झरने थे। परन्तु आज-कल केवल दस के लगभग है जिनमे से भी कुछ गरम और शेष ठडे जल के हैं, अत्यन्त तप्त जल का एक भी नही"। इन झरनो का वास्तविक उद्गम जो भूमि के भीतर-भीतर बहते हुए इस स्थान पर आकर फूट निकले हैं, हिमालय पहाड के दक्षिण अनवतप्त[3] झील से है। जल बहुत मीठा और स्वच्छ है तथा स्वाद मे ठीक उसी झील के जल के समान है। धारायें (जो झील से चलती है) सख्या मे पाँच सौ है। ये भूमि के भीतर-भीतर अग्निगर्भ के निकट होकर बहती है और उसी अग्नि की ज्वाला से जल गरम हो जाता है। अनेक तप्त झरनो के मुख पर गढे हुए पत्थर रक्खे हुए है जो किसी समय सिंह के समान दिखाई पड़ते है और कभी श्वेत हाथी के मस्तक जैसे हो जाते हैं। कभी इनमे मोरीं बन जाती है जिसमे से पानी बहुत ऊँचा उछलने लगता है और नीचे रक्खे हुए पत्थर के बडे पात्रो मे एकत्रित होकर छोटे तडाग के समान दिखाई पडता है। सब देशो के और सब नगरो के लोग यहाँ पर स्नान करने के लिए आते है, जिनको कुछ रोग होता है वे बहुधा अच्छे भी हो जाते हैं। इन झरनो के दाहिनी और बॉये अनेक स्तूप और विहारो के खडहर पास-पास वर्तमान है। इन सब स्थानो मे गत चारो बुद्ध आते-जाते और उठते-बैठते रहे है जिनके

---

(1) कदाचित् इससे तात्पर्य मगध की राजधानी राजगृह से है।

(2) सेम्मुअल वील साहब चीनी शब्द 'पिपुलो' से 'विपुल' निश्चय करते है, जो मि० जुलियन के मत से नही मिला। परन्तु कनिंघम साहब इसका ठीक अपभ्रन्श 'वैभार' या 'वैभार' मानते हैं जैसा कि उन्होने राजगिरि के नक्शे मे वैभार को नगर के उत्तरी फाटक के पश्चिम मे लिखा है। यदि इसका अपभ्रन्श ठीक है तो यह ह्वेनसाग के मत से मिलता-जुलता है, विपरीत इसके ह्वेनसाग जिस प्रकार पिपुलो के दक्षिण पश्चिम ढाल पर तप्त झरने का होना लिखता है और जिस प्रकार कनिंघम साहब कहते हैं कि राजगृह के तप्त झरने वैभार पहाड के पूर्वी पदतल और विपुल के पश्चिमी पदतल पर पाये जाते है उससे तो यही सिद्ध होता है कि उच्चारण 'विपुल' ही है।

(3) इसको रावण-ह्रद भी कहते है।'

ऐसा करने के चिह्न अब भी है। ये स्थान पहाडो से परिवेष्टित और जल इत्यादि से परिपूरित हैं। पुण्यात्मा और ज्ञानी लोग यहाँ आकर निवास किया करते है तथा कितने ही ऐसे योगी है जो यहाँ पर शान्ति के साथ एकान्त-सेवन करते है।

तप्त झरनो के पश्चिम पत्थर का बना हुआ पिफल-भवन¹ है। तथागत भगवान् जिस समय ससार मे वर्तमान थे बहुधा इसमे रहा करते थे। गहरी गुफा जो इस भवन के पीछे है किसी असुर का निवासालय है। इसमे बहुत से समाधि लगाने वाले भिक्षु रहते है। प्राय हम लोग अद्भुत-अद्भुत स्वरूप जैसे नाग, साँप और सिंह—इसके भीतर से बाहर निकलते हुए देखा करते हैं। ये जन्तु जिन लोगो की दृष्टि मे पड जाते हैं उनके नेत्रो मे चकाचौध होने लगती है और ये लोग बेसुध हो जाते हैं। तो भी यह अद्भुत और पवित्र स्थान ऐसा है कि इसमे पुनीत महात्मा निवास करते है और यहाँ रहकर अपने भयदायक क्लेश और दु.खो से मुक्त हो जाते है।

थोडे दिन हुए एक पवित्र और विशुद्ध चरित्र भिक्षु हो गया है। उसका चित्त एकान्त और शान्त स्थान मे निवास करने के लिए उत्कठित हुआ इसलिए इस गुप्त भवन मे निवास करके उसने समाधि का आनन्द लेना चाहा। उसके किसी मित्र ने उसको ऐसा करने से रोकते हुए समझाया कि वहाँ पर मत जाओ, वहाँ तुमको अनेक कष्ट मिलेंगे और ऐसे-ऐसे विलक्षण दृश्य दिखाई पडे गे कि तुम्हारी मृत्यु अनिवार्य हो जायगी। ऐसे स्थान पर जहाँ निरन्तर मृत्यु का भय हो समाधि का होना सहज नही है। यदि तुमको इस बात का निश्चय भी हो कि वहाँ पर जाकर तुमको कोई अच्छा फल नही प्राप्त होगा तो भी तुमको उन घटनाओ का स्मरण कर लेना चाहिए जो पूर्व-काल मे वहाँ हो चुकी है।" भिक्षु ने उत्तर दिया, नही ऐसा नही है। मेरा विचार है कि मार देवता को परास्त करके बुद्ध-धर्म का फल प्राप्त करूँ। यदि यही भय है जो तुमने बतलाये है तो उनके नाम लेने की भी आवश्यकता नही, (अर्थात् वे कुछ बिगाड़ नही कर सकते)।" यह कह कर उसने अपना दण्ड उठा लिया और भवन की ओर प्रस्थानित हो गया। गुफा मे पहुँच कर उसने एक वेदी बनाई और रक्षा करने वाले

---

(1) इस भवन अथवा गुफा का उल्लेख फाहियान ने भी किया है, (अध्याय ३४) वह इसको नवीन नगर के दक्षिण और झरनो से ३०० पग पश्चिम मे निश्चय करता है। अतएव यह वैभार पडाड मे होगा। कनिंघम साहब का विचार है कि वैभार और पिपुलो शब्द मे भेद नही है। यह सम्भव है, परन्तु पिपोलो शब्द का अपभ्रन्श प्राय. 'पिप्पल' ही माना जाता है। वर्तमान समय की सोनभद्र गुफा ही यह गुफा समझी जाती है जिसको कनिंघम साहब ने सत्पर्णी गुफा निश्चय किया है। इस विषय की उलझन पर मि० फर्गुसन का विचार युक्तिसङ्गत और सन्तोषजनक है।

मन्त्रो का पाठ करने लगा। दस दिनो बाद ग्यारहवे दिन एक कुमारी गुफा से बाहर आई और भिक्षु से कहने लगी, "हे रङ्गीन वस्त्रधारी महात्मा ! आप बुद्ध-धर्म के नियम और अभिप्राय को भली-भाँति जानते है। आप ज्ञान को सम्पादन करके और समाधि को सिद्ध करके भी इस स्थान पर इसलिए निवास करते है कि आपको आध्यात्मिक शक्ति प्रबल और परिवर्द्धित हो जावे और आप जन-समुदाय के प्रसिद्ध पथ-प्रदर्शक हो जावे, परन्तु आपके इस कार्य से मुझको और मेरे साथियो को बडे भयानक भय का सामना करना पडता है। क्या प्राणियो को भयभीत और क्लेशित करना बुद्ध-धर्म के सिद्धान्तो के अनुकूल है ? भिक्षु ने उत्तर दिया, "मै महात्मा बुद्ध के उपदेशो का अनुसरण करके विशुद्ध जीवन का निर्वाह कर रहा हूँ। मैं केवल अपने सासारिक झझटो से पार पाने के लिए पहाडो और गुफाओ मे गुप्तरूप से वास कर रहा हूँ। परन्तु बिना सोचे विचारे आप मुझको दोषी बना रही है, बताइए मेरा अपराध क्या है ?" उसने उत्तर दिया, "हे महापुरुष ! जब आप अपने मन्त्रो का पाठ करते है उस समय मेरे घर भर मे अग्नि व्याप्त हो जाती है, यद्यपि इससे मेरा घर भस्म नही होता परन्तु मुझको और मेरे परिवार वालो को कष्ट बहुत होता है। मै प्रार्थना करती हूँ कि मेरे ऊपर कृपा कीजिए और अब अधिक अपना मन्त्रोच्चारण न कीजिए।"

भिक्षु ने उत्तर दिया, "मैं मन्त्रस्तुति-पाठ अपनी रक्षा के लिए करता हूँ न कि किसी प्राणी को हानि पहुचाने के निमित्त। प्राचीन काल मे एक साधु था जो पवित्र लाभ से लाभवान् होने के लिए और दुखी[1] प्राणियो को सहायता पहुँचाने के लिए इस स्थान पर निवास करके समाधि का अभ्यास कर रहा था। उस समय कुछ ऐसे अलौकिक दृश्य उसको दिखाई पडे कि वह भयभीत होकर मर ही गया। यह सब तुम लोगो के कर्म थे, बोलो तुम्हारे पास इसका क्या उत्तर है ?"

उसने उत्तर दिया, "पापो के भार से दबी होने के कारण वास्तव मे मै मति मन्द हूँ, परन्तु आज से मैं अपने मकान को बन्द करके इतना भाग ही अलग किये देती हूँ, इसमे आप निर्भय होकर निवास कीजिए। अब तो आप, हे महापुरुष ! अपने प्रभावशाली मन्त्रो का पाठ बन्द कर देगे ?'

इस निर्णय पर भिक्षु ने अपना मन्त्र-पाठ बन्द कर दिया और शान्ति के साथ समाधि का आनन्द लेने लगा। उस दिन से किसी प्रकार की बाधा उसको नही पहुँची।

विपुल पहाड की चोटी पर एक स्तूप उस स्थान मे है जहाँ प्राचीन काल में तथागत भगवान् ने धर्म की पुनरावृत्ति की थी। आज-कल बहुत से निर्ग्रन्थ लोग

(1) उन लोगो को सहायता पहुँचाने के लिए जो जन्म-मरण के अन्धकाराच्छन्न आवर्त मे पडे हुए है। जैसे प्रेत, राक्षस इत्यादि।

(जो नङ्गे रहते हैं) इस स्थान पर आते हैं और रात-दिन अविराम तपस्या किया करते हैं, तथा सवेरे से साँझ तक इस (स्तूप) की प्रदक्षिणा करके बड़ी शक्ति से पूजा करते हैं।

पहाड़ी नगर (गिरिव्रज) के उत्तरी फाटक से बाईं ओर पूर्व दिशा मे चल कर, दक्षिणी करार से दो या तीन ली उत्तर मे हम एक बड़े पाषाण भवन मे पहुँचे, जहाँ पर प्राचीन काल देवदत्त ने समाधि का अभ्यास किया था।

इस पाषाण-भवन के पूर्व थोड़ी दूर पर एक चिकने पत्थर के ऊपर रुधिर के से कुछ रङ्गीन धब्बे हैं। इसके निकट ही एक स्तूप बना हुआ है। इस स्थान पर किसी भिक्षु ने समाधि लगा करके अपने शरीर को जख्मी कर डाला था, और परम पद को प्राप्त किया था। प्राचीन काल मे एक भिक्षु था, जो अपने तन और मन को परिश्रम देकर समाधि के अभ्यास के लिए एकान्त सेवन करता था। उसको इस प्रकार तपस्या करते हुए वर्षों व्यतीत हो गये परन्तु परम फल की प्राप्ति न हुई। इस कारण वह खिन्नचित्त होकर बड़े पश्चाताप के साथ कहने लगा, शोक'! मे अरहट-अवस्था की सम्प्राप्ति से वञ्चित हूँ! ऐसी अवस्था मे इस शरीर के रखने से क्या लाभ जो पद-पद पर बन्धनो से जकड़ा हुआ है?" यह कह कर वह इस पत्थर पर चढ गया और अपने गले को काटने' लगा। इस कार्य के करते ही वह अरहट अवस्था को प्राप्त हो गया। वायु मे गमन करके अपने आध्यात्मिक चमत्कारो को प्रकट करते ही उसके शरीर मे अग्नि का प्रवेश हुआ जिससे वह निर्वाण को प्राप्त हो गया[1]। उसके श्रेष्ठ मन्तव्य की प्रतिष्ठा करके लोगो ने उसके स्मारक मे यह स्तूप बनवा दिया है। इस स्थान के पूर्व मे एक पथरीली चट्टान के ऊपर एक और स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर एक भिक्षु ने समाधि का अभ्यास करते हुए अपने को नीचे गिरा दिया था और परमपद को प्राप्त किया था। प्रचीन काल मे जिन दिनो बुद्धदेव जीवित थे, कोई एक भिक्षु था जो शान्ति के साथ पहाड़ी वन मे निवास करता हुआ अरहट-अवस्था को प्राप्त करने के लिए समाधि का अभ्यास किया करता था। बहुत काल तक वह बड़े जोश के साथ तपस्या करता रहा परन्तु फल कुछ भी न हुआ। रात-दिन अपने मन को वश मे करते हुए वह ध्यान धारणा मे व्यस्त रहता था था, किसी भी समय वह अपने शान्ति निकेतन से अलग नही होता था। तथागत भगवान उसको मुक्त होने के योग्य समझ कर शिष्य करने के अभिप्राय से उसके स्थान पर गये। पलमात्र मे वह[2] वेणुवन से उठकर पहाड़ के तल मे पहुँच गये और उसको

(1) यह वृत्तान्त फाहियान ने भी तीसरें अध्याय मे लिखा है।

(2) इस स्थान पर जो चीनी शब्द व्यवहृत हुआ है उसका अर्थ है उँगली चटकाना अथवा चुटकी बजाना। सेमुअल बील साहब ने उसका अनुवाद In a moment

पुकार कर बुलाया।

दूर से ईश्वरीय प्रतिभा का प्रकाश देखकर उस भिक्षु का चित्त आनन्द से ऐसा विह्वल हुआ कि वह लुढकता हुआ पहाड के नीचे आ गिरा। परन्तु अपने चित्त की शुद्धता और बुद्धोपदेश मे भक्तिपूर्वक विश्वास होने के कारण भूमि तक पहुँचाने से पूर्व ही वह अरहट-अवस्था को प्राप्त हो गया। बुद्ध भगवान् ने उसको उपदेश दिया, "सावधान होकर समय का शुभ उपयोग करो।" उसी क्षण वह वायुगामी होकर निर्वाण को प्राप्त हो गया। उसके विशुद्ध विश्वास को जाग्रत रखने के लिए लोगो ने इस स्मारक (स्तूप) को बनवा दिया है।

पहाडी नगर के उत्तरी फाटक से एक ली चलकर हम करण्डवेणुवन[1] मे पहुँचे जहाँ पर एक विहार की पथरीली नीवे और ईटो की दीवारे अब तक वर्तमान हैं। इसका द्वार पूर्व की ओर है। तथागत भगवान्, जब ससार मे थे, बहुधा इस स्थान पर निवास करके, मनुष्यो को त्राण देने के लिए, शुभ मार्ग प्रदर्शन करने के लिए, और उनको शिष्य करके सुगति देने के लिए धर्मोपदेश किया करते थे। इस स्थान पर तथागत भगवान् की प्रतिमा भी उनके डील के बराबर बनी हुई है।

प्राचीन काल मे इस नगर मे करण्ड नामक एक धनी गृहस्थ निवास करता था। विरोधी लोगो को विशाल वेणुवन दान देने के कारण उसकी बडी प्रसिद्धि थी। एक दिन तथागत भगवान् से उसकी भेट हो गई। उनके धर्मोपदेश को सुनकर उसको सत्य-धर्म का ज्ञान हो गया। उस समय इस स्थान पर विरोधियो के निवास करने से उसको बडा खेद हुआ। उसने कहा, "कैसे शोक की बात है कि देवता और मनुष्यो के नायक का स्थान इस वन मे नही है। उसकी इस धार्मिकता पर अन्तरिक्ष-वासी देवगण मर्माहत हो उठे। उन्होने विरोधियो को उसे वन से यह कह कर निकाल दिया कि 'गृहपति इस स्थान पर बुद्ध भगवान् के निमित्त विहार बनाने जाता है इसलिए तुम लोगो को शीघ्र निकल जाना चाहिए, अन्यथा सकट मे पड जाओगे।'

विरोधी इस बात पर सन्तप्तचित्त और निरुत्साह होकर वहाँ से चले गये और गृहपति ने इस विचार का निर्माण कराया। जब यह बनकर तैयार हो गया, वह स्वय बुद्धदेव को बुलाने गया और उन्होने उसकी इस भेट को स्वीकार किया।

किया है, परन्तु जुलियन साहब इस स्थान पर अनुवाद करते है "बुद्धदेव ने चुटकी बजाकर भिक्षु को बुलाया"।

(1) करण्ड या कलण्ड का वेणुवन। इसका विशेष वृत्तान्त फाहियान, जुलियन अर बरनफ साहब ने लिखा है।

करण्ड वेणुवन के पूर्व मे एक स्तूप राजा अजातशत्रु का वनवाया हुआ है। तथागत के निर्वाण प्राप्त करने पर राजाओ ने उनके शरीरावशेष को विभक्त कर लिया था। उस समय अजातशत्रु ने अपने भाग को लेकर वडी भक्ति के साथ इस स्तूप को वनवाया था। जिस समय अशोक राजा वौद्ध-धर्म पर विश्वासी हुआ उस समय उसने इस स्तूप का भी तोडकर शरीरावशेप निकाल लिया और उसके पलटे मे दूसरा नवीन स्तूप बनया किया था। इस स्थान पर विलक्षण आलोक सदा प्रसरित होता रहता है।

अजातशत्रु के स्तूप के पास एक और स्तूप है जिसमे आनन्द का अर्द्धशव सुरक्षित है। प्राचीन काल मे जिस समय यह महात्मा निर्वाण प्राप्त करने को हुआ उस समय मगध को छोडकर वह वैशाली नगर को गया। दोनो देश से नरेशो को सेना सधान करके युद्ध पर तत्पर देखकर, उस महापुरुष ने दयावश अपने शरीर को दो भागो मे विभक्त कर दिया। मगध-नरेश अपना भाग लेकर लौट आया और अपनी धार्मिक सेवा को सम्पादन करके इस प्रसिद्ध भूमि मे वडी प्रतिष्ठा के साथ इस स्तूप को वनवाया। इसके निकट वह स्थान है जहाँ पर बुद्धदेव आकर टहले थे।

यहाँ मे थोडी दूर पर एक स्तूप उस स्थान मे है जहाँ पर शारिपुत्र और मुद्गल पुत्र ने प्रावृट्-काल मे निवास किया था।

वेणुवन के दक्षिण-पश्चिम मे लगभग ५ या ६ ली पर दणिणी पहाड के उत्तर मे एक और विशाल वेणुवन है। इसके मध्य मे एक वृहत् पाषाण-भवन है[1]। इस स्थान पर तथागत भगवान् के निर्वाण के पश्चात् ९९९ महात्मा अरहटो को महाकाश्यप ने इकट्ठा करके त्रिपिट्क का उद्धार किया था। इसके सामने एक प्राचीन भवन का खँडहर है। जिस भवन का यह खँडहर है उसको राजा अजातशत्रु ने वडे-बडे अरहटो के निवास के लिए बनवाया था जो, धर्मपिट्क के निर्णय के लिए एकत्रित हुए थे।

एक दिन महाकाश्यप जङ्गल मे बैठे थे कि अकस्मात् उनके सामने बडा भारी प्रकाश फैल गया तथा उनको विदित हुआ कि भूमि विकम्पित हो रही है। उस समय उन्होने कहा, "यहाँ कैसा आकस्मिक परिवर्तन हो रहा है जिससे कि इस प्रकार का अद्भुत दृश्य दिखाई दे रहा है।" दिव्यदृष्टि से काम लेने पर उनको दिखाई पडा कि बुद्ध भगवान् दो वृक्षो के मध्य मे निर्वाण प्राप्त कर रहे है। इस पर उन्होने अपने चेलो को अपने साथ कुशीनगर चलने का आदेश किया। मार्ग मे उनकी भेट एक ब्राह्मण से हुई जिसके हाथ मे एक अलौकिक पुष्प था। काश्यप ने उससे पूछा, "तुम कहाँ से आते

(1) यही प्रसिद्ध सत्तपण्णी गुफा है जिसमे बौद्धो की प्रथम सभा हुई थी। दीपवश-ग्रन्थ मे लिखा है "मगध के गिरिव्रज (गिरव्रज़ या राजगृह) नगर की सतपण्णी गुफा मे सात मास तक प्रथम सभा हुई थी।"

हो ? क्या तुमको ज्ञात है कि इस समय हमारा महोपदेशक कहाँ है ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मै अभी-अभी कुशीनगर से आ रहा हूँ जहाँ पर मैंने आपके स्वामी को उसी क्षण निर्वाण प्राप्त करते हुए देखा था। बहुत से वैकुण्ठनिवासी उनको घेरे हुए पूजा कर रहे थे, यह पुष्प मैं वही से लाया हूँ।"

काश्यप ने इन शब्दो को सुनकर अपने शिष्यो से कहा, "ज्ञान के सूर्य की किरणें शान्त हो गई, ससार इस समय अधकार मे हो गया, हमारा योग्यतम मार्ग प्रदर्शक हमको छोडकर चल दिया, अब मनुष्यो को अवश्य दुख मे फँसना पडेगा।"

उस समय अपरिणामदर्शी भिक्षुओ ने बडे आनन्द के साथ एक दूसरे से कहा, "तथागत स्वर्गवासी हुए यह हमारे लिए बहुत अच्छा है क्योकि अब यदि हम उच्छृङ्खलता भी करे तो भी कोई हमको रोकने या बुरा भला कहने वाला नही है।"

इन बातो को सुनकर काश्यप को अत्यन्त दुख हुआ। उसने सकल्प किया कि धर्म के कोष (धर्मपिट्टक) को सग्रह करके उच्छृङ्खल पुरुषो को अवश्य दण्डित करना होगा। यह निश्चय करने के उपरान्त वह दोनो वृक्षो के निकट गया और बुद्धदेव का दर्शन-पूजन किया।

धर्मपति के ससार परित्याग कर देने पर देवता और मनुष्य अनाथ हो गये। इसके अतिरिक्त अरहट भी निर्वाण के विचार को धीरे-धीरे तोडने लगे। उस समय काश्यप को फिर यह विचार हुआ कि बुद्धदेव के उपदेशो की महत्ता स्थिर रखने के लिए धर्मपिट्टक का सग्रह करना जरूरी है। यह निश्चय करके वह सुमेरु पर्वत पर चढ गया और बडा भारी घण्टा बजाकर यह घोषित किया कि "राजगृह नगर मे एक धार्मिक सघ (सम्मेलन) होने वाला है इसलिए जो लोग अरहट-पद को प्राप्त हो चुके हैं वे बहुत शीघ्र वहाँ पर पहुँच जावे।"

इस घन्टे के शब्द के साथ-साथ काश्यप की आज्ञा सम्पूर्ण ससार मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गई और वे लोग जो आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न थे, इस आज्ञा के अनुसार सघ करने के निमित्त एकत्रित हो गये। उस समय काश्यप ने सभा को सम्बोधित करके कहा कि 'तथागत का स्वर्गवास होने से ससार शून्य हो गया, इस लिए बुद्ध के भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हम लोगो को धर्मपिट्टक का सग्रह अवश्य करना चाहिये। परन्तु इस महत् कार्य के सम्पादन के समय शान्ति और एकाग्र चित्त की बहुत आवश्यकता है। इतनी बडी भारी भीड मे यह कार्य कदापि नही हो सकता। इसलिये, जिन्होने त्रिविद्या को प्राप्त कर लिया है और जिनमे छहो अलौकिक शक्तियाँ वर्तमान है, जिन्होने धर्म के पालन करने मे कभी भूल नही की है और जिनकी विवेक शक्ति प्रबल है वही सर्वश्रेष्ठ महापुरुष यहाँ ठहर कर सभा की सहा-

यता करे। जो लोग विद्यार्थी अथवा साधारण विद्वान है उनको अपने घरो को पधारना चाहिये।"

इस बात पर ६६६ व्यक्ति रह गये, आनन्द को भी हटा दिया क्योकि वह अभी साधक-अवस्था ही मे था। महाकाश्यप ने उसको सम्वोधन करके कहा, 'तुम अभी दोषरहित नही हुए हो इसलिये तुमको इस पुनीत सभा मे भाग नही लेना चाहिये।" उसने उत्तर दिया अनेक वर्षों तक मैंने तथागत की सेवा की है। प्रत्येक सभा मे जो धर्म का निर्णय करने के लिये कभी सगठित हुई, मैं सम्मिलित होता रहा हूँ परन्तु इस समय उनके निर्वाण के पश्चात जो सभा आप करने जा रहे है उसमे से मैं निकाला जा रहा हूं। धर्माधिकारी का स्वर्गवास हो गया इसी सबब से मैं निराधार और असहाय हूँ। काश्यप ने उत्तर दिया, तुम इतने दुखी न हो, तुम वास्तव मे वुद्ध भगवान् के सेवक थे और इस सम्बन्ध मे तुमने बहुत कुछ सुना है, और जो कुछ सुना है उसके प्रेमी भी हो परन्तु फिर भी उन बन्धनो से, जो आत्मा को बन्धन मे डालते है, मुक्त नही हो।"

आनन्द विनीत बचनो को सम्भाषण करता वहाँ से चला गया और उस स्थान को प्राप्त करने लिये जो विद्या मे नही मिल सकता एक जङ्गल मे चला गया। उसने अपनी कामना सिद्ध करने के लिए अविराम परिश्रम किया परन्तु उसका फल कुछ नही हुआ अन्त मे व्यथित होकर उसने एक दिन तपस्या छोडकर विश्राम करना चाहा। उसका मस्तक तकिये तक पहुँचने भी नही पाया था कि उसको अरहट-अवस्था प्राप्त हो गई।

उस समय वह फिर सभा मे पहुँचा और द्वार को खटखटाकर अपने आगमन को प्रकट किया। उस समय काश्यप ने उससे पूछा और कहा, "क्या तुम सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त हो गये? यदि ऐसी बात है तो बिना द्वार खोले अपने आध्यात्मिक बल से भीतर चले आओ।" आनन्द इस आदेश के अनुसार कुन्जी लगाने के छेद के[1] द्वारा प्रवेश करके और सब महात्माओ अभिवादन करके बैठ गया।

इस समय वर्षावसान[2] के पन्द्रह दिन व्यतीत हो चुके थे। काश्यप ने उठ कर कहा, "कृपा करके मेरे निवेदन को सुनिए और उस पर विचार कीजिए। आनन्द से मेरी प्रार्थना है कि वह तथागत भगवान् के शब्दो को श्रवण करते रहे है इसलिए सङ्गीत करके सूत्रपिटक का सग्रह करें। उपाली से मेरी प्राथना है कि वह शिष्य-धर्म (विनय) भली भाँति समझते हैं इसलिए विनयपिटक का सग्रहीत करें।

(1) कही-कही यह भी लिखा है कि वह दीवार मे प्रवेश करके सभा मे पहुँचा था।

(2) ग्रीष्म-ऋतु के विश्राम को कहते हैं।

और मैं (काश्यप) अभिधर्म पिट्टक का संग्रह करूँगा। वर्षा-ऋतु के[1] तीन मास व्यातीत होने पर त्रिपिट्टक का संग्रह समाप्त हुआ। महाकाश्यप इस सभा के सभापति (स्थविर) थे इस कारण इसको 'स्थविर-सभा कहते है।

जहाँ पर महाकाश्यप ने सभा की थी उसके पश्चिमोत्तर मे एक स्तूप है। यह वह स्थान है जहाँ पर आनन्द सभा मे बैठने से वर्जित किये जाने पर चला आया था और एकान्त मे बैठकर अरहट के पद पर पहुँचा था। फिर यहाँ से जाकर सभा मे सम्मिलित हुआ था।

यहाँ से लगभग २० ली जाकर पश्चिम दिशा मे एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर एक बडी भारी सभा (महासघ) पुस्तको को संग्रह करने के निमित्त हुई थी। जो लोग काश्यप की सभा मे सम्मिलित न होने पाये थे वे सब साधक और अरहट, कोई एक लाख व्यक्ति, इस स्थान पर आकर एकत्रित हुए और कहा, "जब तथागत् भगवान् जीवित थे तब हम सब लोग एक स्वामी के अधीन थे, परन्तु अब समय पलट गया, धर्म के पति का स्वर्गवास हो गया इसलिए हम लोग भी बुद्धदेव क प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करेंगे और एक सभा करके पुस्तको का संग्रह करेंगे। इस बात पर सर्वसाधारण से लेकर बड़े-बडे धर्मधारी तक इस सभा मे आये। मूर्ख और बुद्धिमान दोनो ने समानरूप से एकत्रित होकर सूत्रपिट्टक, विनयपिट्टक, अभिधर्म-पिट्टक फुटकर पिट्टक ((खुद्दक निकाय[2]) और धारणीपिट्टक, इन पाँचो पिट्टको को सम्मानित किया। इस सभा मे सर्वसाधारण और महात्मा दोनो सम्मिलित थे, इस लिए इसका नाम वृहत्त सभा (महासघ) रक्खा गया।

वेणुवन विहार के उत्तर मे लगभग २०० पग पर हम करण्ड झील (करड-ह्रद) पर आये। तथागत जिन दिनो ससार मे थे प्राय. इस स्थान पर धर्मोपदेश दिया करते थे। इसका जल शुद्ध और स्वच्छ तथा अष्टगुण सम्पन्न था, परन्तु तथागत के निर्वाण प्राप्त करने के बाद से सूख कर नदारद हो गया।

करण्ड-ह्रद के पश्चिमोत्तर मे २ या ३ ली की दूरी पर एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। यह लगभग ६० फिट ऊँचा है, इसके पास एक पाषाण-स्तम्भ है जिस पर स्तूप के बनाने का विवरण अंकित है। यह कोई ५० फीट ऊँचा है और इसके सिर पर एक हाथी की मूर्ति है।

---

(1) विपरीत इसके प्रचलित यह है कि स्थविर-संस्था का जन्म-दिन वैशाली की द्वितीय सभा है।

(2) कदाचित् 'सन्निपातनिकाय' भी कहते है।

पाषाण-स्तम्भ के पूर्वोत्तर मे थोडी दूर पर हम राजगृह नगर[1] मे पहुँचे। इसके बाहरी भाग की चार दिवारी खोद डाली गई थी। अब इसका चिह्न भी अवशेप नही है। भीतरी भाग की चहारदिवारी यद्यपि दुर्दशाग्रस्त है तो भी उसका कुछ भाग लगभग २० ली के घेरे मे भूमि से कुछ ऊँचा वर्तमान है। बिम्बसार ने पहले अपनी राजधानी कुशी नगर मे बनाई थी। इस स्थान पर लोगो के मकानात पास पास बने होने के कारण सदा अग्नि-द्वारा भस्म हो जाते थे। जैसे ही एक मकान मे आग लगती थी कि पडोसी मकानो को आग से बचाना असम्भव हो जाता था, इस कारण सम्पूर्ण नगर भस्म हो जाता था। इस दुर्दशा के अधिक बढने पर लोग विकल हो उठे क्योकि उनका शान्ति के साथ घरो मे रहना कठिन हो गया। इस विषय मे उन्होने राजा से भी प्राथना की। राजा ने कहा, "मेरे ही पापो से लोग पीडित हो रहे है, इस विपत्ति मे बचाने के लिये मै कौन-सा पुण्य काम कर सकता हूँ?" मन्त्रियो ने उत्तर दिया, "महाराज! आपकी धर्मपरायण-सत्ता से राज्य भर मे शान्ति और सुख छाया हुआ है, आपके विशुद्ध शासन के कारण सब ओर उन्नति और प्रकाश का प्रसार हो रहा है। इसके लिये केवल समुचित ध्यान देने की ही आवश्यकता है, ऐसा करने से यह दुख दूर हो सकता है। कानून मे थोडी सी कठोरता कर दी जावे तो यह दुख भविष्य मे न पैदा हो। यदि कभी आग लग जावे तो उस समय उसके कारण का पता परिश्रम करके लगाया जावे फिर अपराधी को देश से बाहर करके शीत वन मे भेज दिया जावे, यही उसका दण्ड है। आजकल शीत वन वह स्थान है जहाँ पर मृत पुरुषो के शव भेजे जाते है। देश के लोग, इस स्थान मे जाने की कौन कहे, इसके निकट होकर निकलने मे भी आगा-पीछा करते है तथा इसको दुर्भाग्य-स्थल कहते है। इस भय से कि उस स्थान पर मुर्दो के समान निवास करना पडेगा लोग अधिक सावधानी से रहेगे और आग न लग जावे इसकी फिक्र रक्खेंगे।" राजा ने उत्तर दिया, "यह ठीक है, इस कानून की घोषणा करा दी जावे और लोग इसकी पाबन्दी करे।"

अब ऐसी घटना हुई कि इस आज्ञा के पश्चात् प्रथम राजा ही के भवन मे आग लगी। उस समय राजा ने अपने मन्त्रियो मे कहा, "मुझको देश परित्याग करना चाहिए क्योकि मैं कानून की रक्षा करना अपना धर्म समझता हूँ, इसलिए मैं स्वय जाता हूँ।" यह कह कर राजा ने अपने स्थान पर अपने बड़े पुत्र को शासक नियत कर दिया।

---

(1) यह वह स्थान है जिसको फाहियान नवीन नगर' के नाम से लिखता है। यह पहाड़ो के उत्तर मे था।

वैशाली-नरेश इस समाचार को सुन कर कि बिम्बसार राजा शीत-वन मे निवास करता है, अपनी सेना-संधान कर चढ दौडा और नगर को लूट लिया, क्योकि यहाँ पर उससे सामना करने की कोई तैयारी नही थी। सीमान्त-प्रदेश के नरेशो ने राजा का समाचार पाकर एक नगर बसाया[1] और चूँकि इसका प्रथम निवासी राजा ही हुआ था इस कारण इसका नाम राजगृह हुआ। वैशाली-नरेश से लूटे जाने पर मन्त्री और दूसरे लोग-बाग भी कुटुम्ब-समेत आ आकर इसी स्थान पर बस गये।

यह भी कहा जाता है कि अजातशत्रु राजा ने प्रथम इस नगर को वसाया था। उसके पीछे उसके उत्तराधिकारी ने, जब वह राज्यासन पर बैठा, इसको अपनी राजधानी बनाया। यह अशोक के समय तक बनी रही। अशोक ने इसको दान करके ब्राह्मणो को दे दिया और पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। यही कारण है कि यहाँ अन्य साधारण लोग नही दिखाई पडते—केवल ब्राह्मणो के ही हजारो परिवार बसे हुए है।

राजकीय[2] सीमा के दक्षिण-पश्चिम कोण पर दो छोटे-छोटे सङ्घाराम हैं। यहाँ पर आने-जाने वाले साधु (परिव्राजक) तथा और नवागत भी निवास करते है। इस स्थान पत भी बुद्ध-देव ने धर्मोपदेश दिया था। इसके पश्चिमोत्तर दिशा मे एक स्तूप है। इस स्थान पर पहले एक ग्राम था जिसमे 'ज्योतिक्ष' ग्रहपति का जन्म हुआ था।

नगर के दक्षिणी फाटक के बाहरी ग्राम मे सडक के बाई ओर एक स्तूप है। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने राहुल[3] को उपदेश देकर शिष्य किया था।

यहाँ से लगभग ३० ली उत्तर दिशा मे चल कर हम नालन्द[4] सङ्घाराम मे पहुँचे। देश के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि 'सङ्घाराम के दक्षिण मे एक आम्रवाटिका के मध्य मे एक तडाग है। इस तडाग का निवासी नाग 'नालन्द' कह-

---

(1) अर्थात् उस स्थान पर नगर वसाया जहाँ पर राजा निवास करता था। इस बात से यह भी प्रतीत होता है कि राजगृह का नवीन नगर उस स्थान पर वसाया गया था जहाँ पर प्राचीन नगर के मुर्दो के लिये श्मशान था।

(2) राजगृह नगर की भीतरी परिधि।

(3) यदि यह राहुल बुद्धदेव का पुत्र होता तो इसका वृत्तान्त कपिलवस्तु मे होना चाहिये था। इसलिये ऐसा विदित होता है कि यह कोई अन्य व्यक्ति है।

(4) कनिंघम साहब निश्चय करते हैं कि मौजा बडा गाँव, जो राजगृह से सात मील उत्तर है, वही प्राचीन नालन्द है।

लाता है। उस तडाग के निकट वाला सघाराम इसी कारण से नाग के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु वास्तविक बात यह है कि प्राचीन काल मे जिन दिनो तथागत भगवान् बोधिसत्व अवस्था का अभ्यास करते थे उन दिनो इसी स्थान पर रहते थे और एक बडे भारी देश के अधिपति थे। उन्होने इस स्थान पर अपनी राजधानी बनाई थी। करुणा के स्वरूप बोधिसत्व मनुष्यो को सुख पहुँचाने ही मे अपना सुख समझते थे इस कारण उनके पुण्य के स्मारक मे लोग उनको अप्रतिमदानी कहा करते थे और इसी कारण उस नाम के स्थिर रखने के लिए इस सघाराम का यह नामकरण हुआ। इस स्थान पर प्राचीन काल मे एक आम्र-वाटिका थी जिसको पाँच सौ व्यापारियो ने मिल कर दस कोटि स्वर्णमुद्रा मे मोल लेकर कर बुद्धदेव को समर्पण कर दिया था। बुद्धदेव ने तीन मास तक इस स्थान पर धर्म का उपदेश व्यापारियो तथा अन्य लोगो को किया था और वे लोग पुनीत पद को प्राप्त हुए थे। बुद्ध-निर्वाण के थोडे दिन बाद शक्रादित्य नामक एक नरेश इस देश मे हुआ जो बडे प्रेम से एक यान[2] की भक्ति और रत्नत्रयी[3] की उच्च कोटि की प्रतिष्ठा करता था। भविष्यद वाणी के द्वारा उत्तम स्थान प्राप्त करके उसने यह सघाराम बनवाया था। इसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि जब उसके हृदय मे सघाराम के बनवाने की लालसा हुई और उसने इस स्थान पर आकर कार्य आरम्भ किया उस समय भूमि खोदते हुए उसके हाथ से एक नाग जख्मी हो गया था। उस स्थान पर निर्ग्रंथ-सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी भी उस समय उपस्थित था। उसने यह घटना देख कर यह भविष्यद्वाणी की कि 'यह सर्वोत्तम स्थान है, यदि आप यहाँ पर सघाराम बनवायेंग तो 'यह अवश्य और अत्यन्त प्रसिद्ध होग।। सम्पूण भारतवर्ष के लिए पथ-प्रदशक होकर यह हजार वर्ष तक अमर बना रहेगा, अपने अध्ययन की अन्तिम सीमा प्राप्त करने के लिए सब प्रकार

---

(1) जहाँ तक विचार किया जाता है इस वाक्य मे नाग का नाम कही पर नही है इस कारण नालद शब्द से अभिप्राय न + अलम् + द = 'देने के लिए शेष नही है' अथवा 'दान के लिए यथेष्ट नही है' यही समझा जा सकता है।

(2) जुलियन साहब लिखते हैं कि 'एक यान' से तात्पर्य बुद्धदेव के रथ से है जो सप्त बहुमूल्य धातुओ मे बना हुआ था और जिसको एक ही श्वेत रङ्ग का बैल खीचता था। परन्तु मि० सेमुअल बील लिखते है कि 'बुद्ध-धर्म की अन्तिम पुस्तको मे 'एक यान' शब्द बुद्धदेव की प्रकृति का निदर्शन करने के लिए बहुधा आया है जिसको हम सबने अधिकृत कर लिया है और जिसमे हम सब प्राप्त होगे।

(3) त्रिरत्नानि—बुद्ध, धर्म और सघ।

के विद्यार्थी यहाँ आवेंगे, परन्तु अनेक रुधिर का भी वमन करेंगे क्योंकि नाग घायल हो गया है।'

उसका पुत्र राजा बुद्ध गुप्त, जो उसका उत्तराधिकारी हुआ था, अपने पिता के पूज्य कर्म को जारी रखने के लिए बराबर परिश्रम करता रहा-तथा इसके दक्षिण मे में उसने दूसरा सघाराम बनवाया।

राजा तथागत गुप्त भी अपने पूर्वजों के प्राचीन नियमो का पालन करने मे सदा परिश्रम करता रहा और उसने भी इसके पूर्व मे एक दूसरा सघाराम बनवाया।

बालादित्य राजा ने राज्याधिकारी होने पर पुर्वोत्तर दिशा मे एक सघाराम बनवाया। सघाराम के बन कर तैयार हो जाने पर उसने सब लोगो को सभा के निमित्त बुला भेजा। उस सभा मे प्रसिद्ध अप्रसिद्ध, महात्मा और सर्वसाधारण लोग बड़े आदर से निमन्त्रित किये गये थे, यहाँ तक कि दस हजार ली दूर तक के साधु आये थे। सब लोगो के आजाने पर, जब सब कोई विश्राम कर रहे थे, दो साधु और आये, उनको लोगो ने तीसरे खडवाले सिंहद्वार-भवन मे जाकर टिकाया। उनसे लोगो ने पूछा "राजा ने सभा के निमित्त सब प्रकार के लोगो को बुलाया था और सब लोग आ भी गये, परन्तु आप महानुभावो का आना किस प्रान्त से होता है जो इतनी देर हो गई?" उन्होने उत्तर दिया, "हम चीन देश मे आते हैं, हमारे गुरु जी रोगग्रस्त हो गये थे, उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के उपरान्त दूर देशस्थ राजा के निमंत्रण का प्रतिपालन कर सके, यही कारण हम लोगो के देर से आने का हुआ।"

इस बात को सुनकर सब लोग विस्मित हो गये और झट पट राजा को समाचार पहुँचाने के निमित्त दौड गये। राजा इस समाचार को सुनते ही उन महात्माओ की अभ्यर्थना के लिए स्वयं चल कर आया। परन्तु सिंहद्वार मे पहुँचने पर इस बात का पता न चला कि वे दोनो कहाँ चले गये। राजा इस घटना से बहुत दुखित हुआ, अपने धार्मिक विश्वास के कारण उसको इतनी अधिक वेदना हुई कि वह राज्य परित्याग करके साधु हो गया। इस दशा मे आने पर उसका दर्जा नीच कोटि के साधुओं मे रक्खा गया। किन्तु इस से उसका चित्त सदा सन्तप्त बना रहता था। उसने कहा, "जब मै राजा था तब प्रतिष्ठित पुरुषों मे सर्वोपरि माना जाता था, परन्तु सन्यास लेने पर मैं निम्नतम साधुओं मे गिना जाता हूँ।" यही बात उसने जाकर साधुओं मे भी कही जिस पर सघ ने यह मन्तव्य निर्धारित किया कि इन लोगों का दर्जा जो किसी

श्रेणी मे नही है उनके वय के अनुसार[1] माना जावे। केवल यही एक सघाराम ऐसा है जिसमे यह नियम प्रचलित है।

राजा का वज्र नामक पुत्र राज्याधिकारी हुआ जो धर्म का कट्टर विश्वासी था। इसने भी सघाराम के पश्चिम दिशा मे एक सघाराम बनवाया था।

इसके बाद मध्य भारत के एक नरेश ने भी इसके उत्तर मे एक सघाराम बनवाया था। इसके अतिरिक्त उसने सब सघारामो को भीतर डाल कर चारो ओर से एक चहारदिवारी भी बनवा दी थी जिसका एक ही फाटक था। जब तक यह स्थान पूरे तौर पर बन कर समाप्त न हो गया तब तक क्रमानुगत राजा लोग पत्थर के काम के अनेक प्रकार के कला-कौशल से इस स्थान को बराबर बनवाते ही रहे। राजा ने[2] कहा उस सघाराम के हाल मे, जिसको सर्वप्रथम राजा ने बनवाया था' मैं बुद्धदेव की एक मूर्ति स्थापित करूँगा और उनके निर्माणकर्त्ता की कृतज्ञता-स्वरूप प्रतिदिन चालीस साधुओ को भोजन दिया करूँगा। यहाँ के साधु जिनकी सख्या कई हजार है, बहुत योग्य और उच्च कोटि के बुद्धिमान् तथा विद्वान है। इन लोगो की आज कल बडी प्रसिद्धि है तथा सैकडो ऐसे भी है जिन्होने अपनी कीर्ति प्रभा का प्रकाश दूर-दूर के देशो तक पहुँचा दिया है। इन लोगो का चरित्र शुद्ध और निर्दोष है तथापि सामाजिक धर्म का प्रतिपालन बडी दूरदर्शिता के साथ करता हैं। इस सघाराम के नियम जिस प्रकार कठोर है उसी प्रकार साधु लोग भी उनको पालन करने के लिए बाध्य है। सम्पूर्ण भारतवर्ष भक्ति के इन लोगो का अनुसरण करता है। कोई दिन ऐसा नही जाता जिस दिन गूढ प्रश्न न पूछे जाते हो और उनका उत्तर न दिया जाता हो। सबेरे से शाम तक लोग वाद-विवाद मे व्यस्त रहते है। वृद्ध हो अथवा युवा, शास्त्रार्थ के समय सब मिलजुल कर एक दूसरे की सहायता करते है। जो लोग प्रश्नो का उत्तर त्रिपिटक के द्वारा नही दे सकते उनका इतना अधिक अनादर होता है कि मारे

---

(1) प्रचलित नियम यह था कि जो लोग जितने अधिक वर्ष के शिष्य होते थे उतना ही अधिक उनका पद गिना जाता था। परन्तु बालादित्य के सघाराम मे यह नियम किया गया कि जिन लोगो की जितनी अधिक आयु हो उतना ही अधिक उनका पद ऊँचा हो। चाहे वह तपस्या के द्वारा उस पद के योग्य न हो, जैसे राजा साधु होने पर भी उच्च पद का अधिकारी न था परन्तु सघाराम के नियमानुसार उसका दर्जा बढ गया।

(2) राजा का नाम नही लिखा है परन्तु अनुमान शिलादित्य के विषय मे किया जाता है।

लज्जा के फिर किसी को अपना मुँह नही दिखाते। इस कारण अन्य नगरो के विद्वान लोग जिनको शास्त्रार्थ मे शीघ्र प्रसिद्ध होने की इच्छा होती है झुंड के झुंड के यहाँ पर आकर अपने संदेहो का निराकरण करते हैं और अपने ज्ञान का प्रकाश बहुत दूर-दूर तक फैला देते हैं। कितने लोग झूठा स्वांग रचकर (कि नालन्दा के पढे हुए है) और इधर-उधर जाकर अपने को खूब पुजाते हैं। अगर दूसरे प्रान्तो के लोग शास्त्रार्थ करने की इच्छा से इस सङ्घाराम मे प्रवेश करना चाहे तो द्वारपाल उनसे कुछ कठिन-कठिन प्रश्न करना जिनको सुनकर ही कितने ही तो असमर्थ और निरुत्तर होकर लौट जाते हैं जो कोई इसमे प्रवेश करने की इच्छा रखता हो उसको उचित है कि नवीन और प्राचीन सब प्रकार की पुस्तको का बहुत मननपूर्वक अध्ययन करे। उन विद्यार्थियो की जो यहाँ पर नवागन होने हैं, और जिनको अपनी योग्यता का परिचय कठिन शास्त्रार्थ के द्वारा देना होता हैं, उत्तीर्ण संख्या दस मे ७ या ८ होती है। दो या तीन जो हीन योग्यता वाले निकलते है वे शास्त्रार्थ करने पर सिवा हास्यास्पद होने के और कुछ लाभ नही पाते। परन्तु योग्य और गम्भीर विद्वान उच्च कोटि के बुद्धिमान और पुण्ययान तथा प्रसिद्ध पुरुप- -जैसे धर्मपाल [१] और चन्द्रपाल (जिन्होने अपनी विद्वता से विवेकहीन और संसारी पुरुषो को जगा दिया था) गुणमति और स्थिरमर्ति [२] (जिनके श्रेष्ठ उप-देश की धारा अब भी दूर तक प्रवाहित है) प्रभामित्र [३] (अपनी सुस्पष्ट बाचन-शक्ति से) जिन मित्र (अपनी विशुद्ध वाचालता से) ज्ञानमित्र (अपने कथन और कर्म से) अपने कर्तव्य का पूर्ण परिचय दे चुके हैं। शीघ्र बुद्ध और शीलभद्र [४] तथा अन्यान्य योग्य व्यक्ति जिनका नाम अमर हो चुका है इस विद्यालय की कीर्ति के साथ अपनी कीर्ति को बढाते है।

ये सब प्रसिद्ध पुरुप, अपने विश्व-विख्यात पूर्वजो से ज्ञान-बल मे इतने अधिक बढ गये थे कि उनकी बाँधी हुई सीमा को भी पार कर गये थे। इनमे से प्रत्येक विद्वान्

---

(1) यह काँचीपुर का रहने वाला और 'शब्दविद्यासयुक्त शास्त्र' का रचयिता है।

(2) यह व्यक्ति आर्यअसङ्ग का शिष्य था।

(3) यह मध्यभारत का निवासी और जाति का क्षत्रिय था। यह सन ६२७ ई० मे चीन को गया था और ६३३ ई० मे ६६ वर्ष की आयु मे मृत्यु को प्राप्त हुआ।

(4) ह्वेनसांग का गुरु था। धर्मपाल, चन्द्रपाव, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचन्द्र' शीघ्रबुद्ध, शीलभद्र, इत्यादि का थोड़ा वर्णन मैक्समूलर साहव ने अपनी इंडिया नामक पुस्तक मे किया है।

ने कोई दस-दस पुस्तकें और टीकायें बनाई थी जो चारो ओर देश मे प्रचलित हुई तथा जो अपनी उत्तमता के कारण अब तक वैसी ही लब्धप्रतिष्ठ है।

सघाराम के चारो ओर सैकडो स्थानो मे पुनीत शरीरावशेष है, परन्तु विस्तार के भय से हम दो ही तीन का वर्णन करेंगे। सघाराम के पश्चिम दिशा मे थोडी दूर पर एक विहार है। यहाँ पर तथागत प्राचीन काल मे तीन मास तक रहे थे और देवताओ की भलाई के लिये पुनीत धर्म का प्रवाह बहाते रहे थे।

दक्षिण दिशा की ओर, लगभग १०० पग पर, एक छोटा स्तूप है। इस स्थान पर एक भिक्षु ने एक बहुत दूरस्थ देश से आकर बुद्ध भगवान् का दर्शन किया था। प्राचीन काल मे एक भिक्षु था जो बहुत दूर से भ्रमण करता हुआ इस स्थान पर पहुँचा। यहाँ पर आकर उसने देखा कि बुद्धदेव अपनी शिष्य-मण्डली मे विराजमान है। उनके दर्शन करते ही उसके हृदय मे भक्ति का सचार हो गया और वह भूमि पर लम्बायमान होकर दण्डवत् करने लगा। साथ ही इसके उसी समय उसने यह भी वर माँगा कि वह चक्रवर्ती राजा हो जावे। बुद्धदेव उसको देखकर अपने साथियो से कहने लगे, "यह भिक्षु अवश्य दया का पात्र है, इसके धार्मिक चरित्र की शक्ति अपार और गम्भीर तथा इसका विश्वास दृढ है। यदि इसने बुद्धधर्म का फल (अरहट होना) माँगा होता तो बहुत शीघ्र पा जाता परन्तु इस समय इसकी प्रबल याचना चक्रवर्ती होने की है, इसलिये यह प्रतिफल इसको अगले जन्मो मे प्राप्त होगा। उस स्थान से जहाँ पर उसने दण्डवत की है जितने किनके बालू के पृथ्वी के स्वर्णचक्र[1] तक है उतने ही चक्रवर्ती राजा[2] इसके पलटे मे होगे। परन्तु इसका चित्त सासारिक आनन्द मे फँस गया है इसलिये परम पद की प्राप्ति इससे अब बहुत दूर हो गई।

इसी स्तूप के दक्षिणी भाग मे अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की एक खड़ी मूर्ति है। कभी-कभी यह मूर्ति हाथ मे सुगन्ध-पात्र लिये हुये बुद्धदेव के विहार की ओर जाती हुई और उसकी परिक्रमा करती हुई दिखाई पडती है।

इस मूर्ति के दक्षिण मे एक स्तूप है जिसमे बुद्धदेव के तीन मास के कटे[3] हुए नख और बाल है। जिन लोगो के बच्चे रोगी[4] रहते है वे इस स्थान पर आकर और

---

(1) अर्थात् पृथ्वी का केन्द्र जहाँ पर स्वर्णचक्र है और जिसके ऊपर के वज्रासन पर बुद्धदेव बुद्धावस्था को प्राप्त हुये थे। बोधिवृक्ष का वर्णन देखिए।

(2) अर्थात् उतनी ही बार यह चक्रवर्ती राजा होगा।

(3) तीन महीने के भीतर जितनी बार और जितने नख-बाल बुद्धदेव के काटे गये थे।

(4) अथवा इसका अर्थ यह भी हो सकता है, "जो लोग अनेक सम्मिलित

भक्ति से प्रदक्षिणा करने पर अवश्य दुःख-मुक्त हो जाते हैं।

इसके पश्चिम में और दीवार के बाहर एक तडाग के किनारे एक स्तूप है। इस स्थान पर एक विरोधी ने हाथ में गौरैया पक्षी को लिये हुये बुद्धदेव से जन्म और मृत्यु के विषय मे प्रश्न किया था।

दीवार के भीतरी भाग मे दक्षिण-पूर्ण दिशा मे ५० पग की दूरी पर एक अद्भुत वृक्ष है जो आठ या नौ फीट ऊँचा है; परन्तु इसका तना दुफड़ा [1] है। तथागत भगवान ने अपने दन्तकाष्ठ (दतून) को दाँत साफ करने के उपरान्त इस स्थान पर फेंक दिया था। यही जम कर वृक्ष हो गई। सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये तब से न तो यह वृक्ष बढ़ता ही है और न घटता ही है।

इसके पूर्व मे एक बडा बिहार है जो लगभग २०० फीट ऊँचा है। यहाँ पर तथागत भगवान ने चार मास तक निवास करके अनेक प्रकार से विशुद्ध धर्म का निरूपण किया था।

इसके बाद, उत्तर दिशा मे १०० कदम पर एक विहार है जिसमे 'अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की प्रतिमा है। सच्चे भक्त, जो अपनी धार्मिक पूजा और भेट के लिये इस स्थान पर आते है, इस मूर्ति को एक ही स्थान पर स्थिर और एक ही दशा मे कभी नही पाते। इसका कोई नियत स्थान नही है। कभी यह द्वार के बगल मे खड़ी दिखाई पडती है और कभी किसी और स्थान पर। धार्मिक पुरुष, साधु और गृहस्थ सब प्रान्तों से झुण्ड के झुण्ड भेट-पूजा के लिएं इस स्थान पर आया करते है।

इस विहार के उत्तर में एक और विशाल विहार लगभग ३०० फीट ऊँचा है जो बालादित्य राजा का बनवाया हुआ है। इसकी सुन्दरता, विस्तार और इसके भीतर की बुद्धदेव की मूर्ति इत्यादि सब बातें ठीक वैसी ही है जैसी कि बोधि-वृक्ष के नीचे वाले विहार मे हैं[2]।

इसके पूर्वोत्तर मे एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ तथागत ने सात दिन तक

व्याधियों से पीडित होते है।" चीनी भाषा के शब्द 'यिङ्ग' का अर्थ "बच्चा" और 'बढा हुआ' भी हो सकता है।

(1) दाँत साफ करने के उपरान्त यह नियम है कि दातुन को दो भाग मे चीर डालते है, इसी से वृक्ष का तना दुफड़ा है।

(2) इस विशाल विहार की बाबत अनुमान है कि यह अमरदेव का बनवाया हुआ है। इसका पूरा पूरा हाल डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र की 'बुद्धगया' नामक पुस्तक मे देखो।

विशुद्ध धर्म का वर्णन किया था। उत्तर-पश्चिम दिशा मे एक स्थान है जहाँ पर गत चारो बुद्धो के आने-जाने और उठने-बैठने के चिह्न है।

इसके दक्षिण मे एक पीतल[1] का विहार शिलादित्य का बनवाया हुआ है। यद्यपि यह अभी पूरा बन नही चुका है तो भी, जैसा निश्चय किया गया है, बन कर तैयार होने पर १०० फीट के विस्तार मे होगा।

इसके पूर्व मे लगभग २०० कदम पर चहारदीवारी के बाहर बुद्धदेव की एक खड़ी मूर्ति ताँबे की बनी हुई है। इसकी ऊँचाई ८० फीट है, जिसके लिए—यदि किसी भवन मे रक्खी जाय तो—छः खड के बराबर ऊँचा मकान आवश्यक होगा। इसको प्राचीन काल मे राजा पूर्णवर्मा ने बनवाया था।

इस मूर्ति के उत्तर मे दो या तीन ली की दूरी पर ईंटो से बने हुए एक बिहार मे तारा बोधिसत्व की एक मूर्ति है। मूर्ति बहुत ऊँची और अद्भुत प्रतापशालिनी है। प्रत्येक वर्ष के प्रथम दिवस को यहाँ पर बहुत भेट आती है। निकटवर्ती राजा, मत्री लोग और बडे-बड़े धनी पुरुष हाथ मे रत्नजटित झडे और छत्र लिये आते हैं और सुगन्धित वस्तुएँ तथा उत्तम पुष्प आदि से पूजा करते हैं। यह धार्मिक सघर्ष लगातार सात दिन तक होता रहता है और अनेक प्रकार की धातु तथा पत्थर के वाद्य-यत्र वीणा बाँसुरी आदि सहित बजते रहते हैं।

दक्षिणी फाटक की ओर भीतरी भाग मे एक विशाल कूप है। प्राचीन काल मे एक दिन तथागत भगवान् के पास बहुत से व्यापारी प्यास से विकल होकर इस स्थान पर आये। बुद्धदेव ने उनको यह स्थान बता कर कहा, "इस स्थान पर तुमको जल मिलेगा।" उन व्यापारियो के मुखिया ने गाड़ी के धुरे से भूमि मे छेद कर दिया और उसी क्षण छेद मे से होकर जल को धारा फूट निकली। जल को पीकर और उपदेश को सुनकर वे लोग परमपद को प्राप्त हो गये।

सघाराम से दक्षिण-पश्चिम की ओर आठ या नौ ली चल कर हम कुलिक ग्राम मे पहुँचे। इसमे एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर मुद्गलपुत्र का जन्म हुआ था। गाँव के निकट ही एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ यह महात्मा निर्वाण को प्राप्त हुआ था। उसका शव इसी स्तूप मे रक्खा है। यह महात्मा ब्राह्मण वश का था और शारिपुत्र का उस समय से मित्र था जब वे दोनो निरे बालक ही थे। शारिपुत्र अपने सुस्पष्ट ज्ञान के लिए प्रसिद्ध था और मुद्गलपुत्र अपनी प्रतिभा और दूरदर्शिता के लिए। इन दोनो की विद्या और बुद्धि समान थी और गये दोनो उठते-बैठते सदा साथ ही रहते थे। उनके विचार और उनकी वासनायें आदि से अन्त तक बिलकुल

---

(1) कदाचित् पीतल के पत्र दीवारो मे जड़ दिये गये होगे।

मिलती थीं। वे दोनो सासारिक सुखों से घृणा करके सञ्जय[1] नामी महात्मा के
हुए और सन्यासी होकर संसार परित्यागी हो गये। एक दिन शारिपुत्र की
अश्वजित् अरहट से हो गई। उसके द्वारा पुनीत धर्म को सुनकर उसके ज्ञान
उन्मीलित हो गये। जो कुछ उसने सुना था वह सब बड़ी प्रसन्नता के साथ मुद्गल
को आकर सुनाया। इस तरह पर यह (मुद्गल पुत्र) धर्म को सुना और सुन कर
पद[2] को प्राप्त हुआ और अपने २५० शिष्यो को साथ लेकर उस स्थान पर गया
पर बुद्धदेव थे। उसको आता हुआ देखकर बुद्धदेव ने अपने शिष्यों से कहा कि 'वह
व्यक्ति आ रहा है, अपने आध्यात्मिक बल मे मेरे सब शिष्यों से बढ कर होगा।' बु
के निकट पहुँच कर उसने प्रार्थना की कि मैं भी विशुद्ध धर्म में दीक्षित करं अ
शिष्यों मे सम्मिलित किया जाऊँ। बुद्ध भगवान ने उत्तर दिया, "हे भिक्षु! मैं
मन्तब्य प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ, विशुद्ध धर्म का अभ्यास दत्तचित्त होकर
से तू दुःखो की सीमा को पार कर जायगा।" बुद्ध भगवान् के मुख से इन श
के निकलते ही उसके बाल गिर पड़े और उसके साधारण वस्त्र आपसे आप धार्मि
वस्त्रो मे परिणत हो गये। धार्म्मिक नियमो की पवित्रता का मनन करके और
वाह्यचरण को निर्दोष बना कर सात दिन मे उसके पातको का बधन छिन्न-भिन्न हो
और वह अरहट-अवस्था को प्राप्त हो कर अलौकिक शक्ति-सम्पन्न हो गया।

मुद्गलपुत्र के ग्राम के पूर्व मे ३ या ४ ली चल कर हम एक स्तूप तक पहुँ
इस स्थान पर बिम्बसार बुद्धदेव का दर्शन करने आया था। बुद्धावस्था को प्राप्त
तथागत भगवान् को विम्बसार राजा के निमंत्रण-पत्र से विदित हुआ कि मगध-निव
उनके दर्शनामृत के प्यासे है। इसलिए प्रातःकाल के समय अपने वस्त्रो को धारण
और अपने भिक्षापात्र को हाथ मे लिये हुए तथा दाहिने बायें १,००० शिष्यो
मण्डली सहित वे प्रस्थानित हुए। आगे और पीछे धर्म के जिज्ञासु सैकडो वृद्ध ब्रा
जिनके जूड़े बँधे हुए थे और जो रङ्गीन वस्त्र (चीवर) धारण किये हुए
चलते थे। इस तरह पर बडी भारी भीड़ को साथ लिये हुए बुद्धदेव राजगृह
में पहुँचे।

उस समय देवराज शक्र सिर पर बालो को बाँधे हुए और ऊपर से

---

(1) 'मैनुअल आफ बुद्धिजम' मे लिखा है कि 'उस समय राजगृह मे एक
परिव्राजक, जिसका नाम सञ्ज था, रहता था। उसके पास वे दोनो गये थे और
दिनों तक रहे थे।

धारण किये हुए 'मानव युवक' के समान स्वरूप बना कर इस भारी भीड़ मे मार्ग को प्रदर्शित करते हुए बुद्धदेव के आगे-आगे भूमि से चार अगुल ऊपर उठे हुए चले थे। इनके बाएँ हाथ मे सोने का एक घड़ा और दाहिने हाथ मे एक बहुमूल्य छड़ी थी। मगध-नरेश बिम्बसार इस समाचार को पाकर कि बुद्ध भगवान् आ रहे हैं अपने राज्य भर के सब गृहस्थ ब्राह्मण और सौदागरो को साथ लेकर, जिनकी सख्या एक लाख से भी अधिक थी और जो चारो ओर से उसे घेरे हुए उसके साथ थे, राजगृह से चलकर पुनीत सघ के दर्शनो को आया था।

जिस स्थान पर विम्बसार की भेट बुद्धदेव से हुई थी उसके दक्षिण-पूर्व लगभग २० ली चल कर हम कालपिनाक नगर मे पहुँचे। इस नगर में एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। यह वह स्थान है जहाँ पर महात्मा शारिपुत्र का जन्म हुआ था। इस स्थान का खडहर अब भी वर्तमान है। इसके पास ही एक स्तूप है जहाँ पर महात्मा का निर्वाण हुआ था। इस स्तूप मे महात्मा का शव समाधिस्थ है। यह भी उच्च वश का ब्राह्मण था। इसका पिता बड़ा विद्वान् और जटिल से जटिल प्रश्न को विचारपूर्वक निर्णय करने मे सिद्ध था। कोई भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ ऐसा नही था जिसका उसने साङ्गोपाङ्ग अध्ययन न किया हो। उसकी स्त्री को एक दिन स्वप्न हुआ जिसे उसने अपने पति को इस प्रकार सुनाया कि 'रात को सोते समय मैंने स्वप्न मे एक अद्भुत व्यक्ति को देखा जिसका शरीर कवच से आच्छादित था और जो हाथ मे वज्र लिये हुए पहाड़ो को तोड-फोड़ रहा था। परन्तु अन्त मे वह एक विशेष प्रकार के पहाड़ के पदतल मे खडा हो गया।' पति ने कहा, "यह स्वप्न बहुत ही उत्तम है, तुम्हारे गर्भ से एक बड़ा विद्वान् पुत्र उत्पन्न होगा, जिसकी प्रतिष्ठा सारे संसार मे होगी और जो सब विद्वानो के मत को और उनके निर्मित ग्रन्थो को छिन्न-भिन्न कर देगा और अन्त मे ज्ञानी होकर एक ऐसे महात्मा का शिष्य होगा जिसकी गणना मनुष्यो मे नही की जा सकती।"

कुछ दिन बाद उचित समय पर बालक का जन्म हुआ जिसके जन्मते ही वह स्त्री सहसा ज्ञानवती हो गई। उसकी भाषा और वाणी मे ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गई कि उसके शब्दो को कोई भी खडित नही कर सकता था। बालक की अवस्था आठ वर्ष की होते-होते कीर्ति चारो दिशाओ मे फैलने लगी। उसका आचरण स्वभावतः शुद्ध और शान्त और उसका चित्त दया तथा प्रेम से परिपूर्ण था। जो कुछ बाधायें उसको मार्ग मे पडी उन सबको तोड कर पूर्ण ज्ञान के प्राप्त करने मे वह बालक सलग्न हो गया। इसी समय मुद्गलपुत्र से इसकी मिताई हुई। ससार से विरक्त होकर और दूसरा कोई अवलम्ब न पाकर, मुद्गलपुत्र को साथ लिये हुए वह सञ्जय नामक विरोधी साधु

के स्थान पर गया और अमरत्व की प्राप्ति का साधन करने लगा। परन्तु इससे उसकी तृप्ति न हुई। उसने मुद्गलपुत्र से कहा, "यह साधन पूर्ण मुक्ति देने वाला नही है, हमको तो ऐसा मालूम होता है कि हमारे दुखो के जाल से भी यह हमको नही निकाल सकेगा। इसलिए हम लोगों को कोई दूसरा मार्गप्रदर्शक, जो सर्वश्रेष्ठ हो और जिसने 'मीठी ओस'[1] प्राप्त कर ली हो, ढूँढना चाहिए और उसके द्वारा उसका स्वाद सब लोगो के लिए सुलभ कर देना चाहिए।

इसी समय अश्वजित नामक महात्मा अरहट अपने हाथ मे भिक्षापात्र लिये हुए नगर मे भिक्षा माँगने जा रहा था। शारिपुत्र उसके प्रदीप्त मुख तथा शान्त और गम्भीर आचरण को देखकर समझ गया कि यह महात्मा है। उसने उसके पास जाकर पूछा, "महाशय! आपका गुरु कौन है"? उसने उत्तर दिया, "शाक्य-वशीय राजकुमार संसार से विरक्त और सन्यासी होकर बुद्धावस्था को प्राप्त हो गया है, वही महापुरुष मेरा गुरु है।" शारिपुत्र ने पूछा, "वे किस ज्ञान का उपदेश देते है? क्या मै भी उसको सुन सकता हूँ?" उसने उत्तर दिया, "मैं थोड़े ही दिनों से इस शिक्षा में प्रविष्ट हुआ हूँ इसलिए गूढ सिद्धान्तो का अभी मनन नही कर सका हूँ।" शारिपुत्र ने प्रार्थना की, "कृपा करके जो कुछ आपने सुना है उसी को सुनाइए।" तब अश्वजित् ने, जो कुछ उससे हो सका वर्णन किया, जिसको सुनकर शारिपुत्र उसी क्षण प्रथम पद को प्राप्त हो गया और अपने २५० साथियो के सहित बुद्धदेव के निवास-स्थल की तरफ चल दिया।

बुद्धदेव ने उसको दूर से देखकर अपने शिष्यो से कहा, "वह देखो एक व्यक्ति आ रहा है जो मेरे शिष्यों मे अपने अप्रतिम ज्ञान के लिए बहुत प्रसिद्ध होगा।" निकट पहुँच कर उसने अपना मस्तक बुद्धदेव के चरणों मे रख दिया और इस बात का प्रार्थी हुआ कि उसको भी बुद्धधर्म के प्रतिपालन करने की आज्ञा दी जावे। भगवान् ने उससे कहा, "स्वागत! हे भिक्षु! स्वागत!"

इन शब्दो को सुनकर वह नियमानुसार आचरण करने लगा। पन्द्रह दिन तक दीर्घनख[2] ब्राह्मण की कथा, तथा बुद्धदेव के अन्यान्य उपदेशो को सुनकर और उनको दृढ़तापूर्वक मनन करके वह अरहट पद को पहुँच गया। कुछ दिन पीछे जब बुद्धदेव ने अपने निर्वाण प्राप्त करने का इरादा आनन्द पर प्रकट किया और उसका समाचार सब ओर शिष्यो में फैल गया उस समय सब लोग दुखित हो गये। शारिपुत्र को तो यह

---

(1) अमृत।

(2) इस ब्राह्मण या ब्रह्मचारी का दीर्घनख 'परिव्राजक' परिप्रीच्छ नामक ग्रन्थ मे विशदरूप से वर्णन किया गया है।

समाचार दूना दुखदायक हुआ; वह बुद्धदेव के निर्वाण-दृश्य का विचार भी अन्तःकरण मे लाने मे समर्थ न हो सका, इसलिए उसने बुद्धदेव से प्रार्थना की कि प्रथम उसको प्राण-त्याग करने की आज्ञा दी जावे। भगवान ने उत्तर दिया, "तुम्ही अपने समय का साधन करो।"

सब शिष्यो से बिदा लेकर वह अपने जन्म स्थान को चला आया। उसके शिष्य श्रमणो ने चारो ओर नगरो और गाँवो मे इस समाचार को फैला दिया। इस समाचार को सुनकर अजातशत्रु अपनी प्रजासमेत आँधी के समान उठ दौड़ा और बादलो के समान उसके पास आकर जमा हो गया। शारिपुत्र ने विस्तार के साथ उसको धर्मोपदेश सुना कर बिदा किया। उसके दूसरे दिन अर्धरात्रि के समय अपने विशुद्ध विचारो और मन को अचचल करके वह 'अतक समाधि' मे लीन हुआ, तथा थोडी देर के उपरान्त उससे निवृत्त होकर स्वर्गगामी हो गया।

कालपिनाक नगर के दक्षिण-पूर्व मे चार या पाँच ली चलकर एक स्तूप उस स्थान पर है जहाँ शारिपुत्र निर्वाण को प्राप्त हुआ था। दूसरे प्रकार से यह भी कहा जाता है कि काश्यप बुद्ध के समय मे तीन कोटि महात्मा अरहट इस स्थान पर पूर्ण निर्वाणावस्था को प्राप्त हुये थे।

इस अन्तिम स्तूप के पूर्व मे लगभग ३० ली चलकर हम इन्द्रशैल गुहा[१] नामक पहाड पर पहुँचे। इसके कगारे और घाटियाँ तिमिराच्छन्न और निर्जन हैं। फूलदार वृक्ष जङ्गल के समान बहुत घने-घने उगे हुए हैं। इसका शिरोभाग दो ऊँची चोटियो मे विभक्त है जो नोक की तरह पर उठी हुई हैं। पश्चिमी चोटी के दक्षिणी भाग मे एक चट्टान के मध्य मे बडी और चौडी एक गुफा है[२]। इस स्थान पर किसी समय जब तथागत भगवान ठहरे हुये थे तब देवराज शक्र ने अपनी शङ्काओ को, जो ४२ थी, एक पत्थर पर लिखकर उनके विषय मे बुद्धदेव से समाधान चाहा था।

बुद्धदेव ने इनका समाधान किया था। इनकी मूर्तियाँ इस स्थान पर अब भी वर्तमान है। लोग आजकल इन प्राचीन तथा पुनीत मूर्तियो की नकल बनाने का प्रयत्न

---

(1) जिस पहाड़ी का वर्णन फाहियान ने अध्याय २८ मे किया है उसकी खोज करके जनरल कनिंघम ने निश्चय किया है कि वह इस पहाड़ी की पश्चिमी चोटी है। पहाडियो की उत्तरी श्रेणी, जो गया के निकट से पञ्चान नदी तक लगभग ३६ मील फैली चली गई है, दो असमान ऊँची चोटियो मे विभक्त हैं। इनमे से पश्चिम दिशावाली ऊँची चोटी 'गिरएक' नाम से प्रसिद्ध है, और यह वही चोटी है जिसका उल्लेख फाहियान ने किया है।

(2) इसको 'गिद्धद्वर' कहते हैं जो संस्कृत-शब्द 'गृहद्वार' का अपभ्रन्श है।

कर रहे हैं। जो लोग इस गुफा मे दर्शन-पूजन के लिए जाते है उनके हृदय मे एक ऐसा धार्मिक भाव उत्पन्न होता है कि जिससे वे भक्ति-विह्वल हो जाते है। पहाड़ के पिछले भाग पर चारों बुद्धो के उठने-बैठने आदि के चिह्न अब तक मौजूद है। पूर्वी चोटी के ऊपर एक सघाराम है जिसका साधारण वृत्तान्त यह है कि इसके निवासी साधु अर्द्धरात्रि मे यदि पश्चिमी चोटी की ओर निगाह दौडाते है तो उनको दिखाई पड़ता है कि जिस स्थान पर गुफा है वहाँ पर बुद्धदेव की प्रतिमा के समक्ष दीपक और मशालें जल रही हैं।

इन्द्रशैल गुहा पहाड की पूर्वी चोटी वाले सघाराम के सामने ही एक स्तूप 'हस'[1] नामक है। प्राचीनकाल मे इस सघाराम के साधु हीनयान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते थे, अर्थात वह हीनयान जिसके सिद्धान्त क्रमिक[2] कहलाते हैं। इसलिए उनके मत में तीन ही पवित्र वस्तुएँ खाद्य मानी गई थी और वे लोग इस नियम का बहुत दृढतापूर्वक पालन भी करते थे। कुछ दिन पीछे जब उन्ही तीन पवित्र खाद्य वस्तुओ पर भरोसा रखने का समय नही रह गया तब एक दिन एक भिक्षु ने इधर-उधर घूमते हुये देखा कि उसके सिर पर जङ्गली हंसो का एक झुण्ड हवा मे उड़ता हुआ चला जा रहा है। उसने हँसों से कहा, "आज सङ्घ के साधुओं के पास भोजन की यथेष्ट सामग्री नहीं है; हे महासत्व ! यह अवसर तुम्हारे लाभ उठाने योग्य है।" उसकी बात समाप्त भी न होने पाई थी कि एक हंस उडना छोडकर साधु के सामने आ गिरा और मर गया। भिक्षु यह हाल देखकर विस्मित हो गया। उसने अन्य साधुओ को भी बुला कर उसको दिखाया और सब हाल कहा, जिस पर वे लोग मुग्ध होकर कहने लगे, "बुद्ध भगवान ने अपना धर्म प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति को परिवर्द्धित करने और सब लोगो को मार्ग-

---

(1) जनरल कनिङ्घम साहब लिखते है कि "पूर्ववाली निचली चोटी के ऊपर ईंटो का एक मण्डप है जिसको लोग 'जरासध की बैठक' कहते है। इस भवन का खँडहर अब तक वर्तमान है और सम्भव है कि कदाचित् यह वही स्तूप हो जिसका वर्णन ह्वेनसांग करता है।" परन्तु वही जनरल साहब आगे चलकर लिखते हैं कि, "वैभार पहाडी के पूर्वोत्तर वाले ढाल पर गरम झरने के निकट एक खँडहर ८२ फीट के घेरे में पड़ा हुआ है जिसको लोग 'जरासंध का वैठका' कहते है।" समझ मे नही आता इन दोनो मे वास्तविक कौन है, कदाचित दोनों हो जैसा कि फर्गुसन और वर्गस साहब 'भारत की गुफाएँ और मन्दिर' नामक पुस्तक मे लिखते हैं कि 'इस नाम के दो स्थान हैं।' तो भी ह्वेनसांग के लिखने के अनुसार एक को स्तूप अवश्य मानना पड़ेगा और इस-लिए वैभार पहाड़ी वाले को 'जरासंध का वैठका' और इन्द्रशैल गुहा वाले को 'जरासंघ का वैठका' के स्थान पर स्तूप मान लेना युक्तिसङ्गत है।

(2) क्रमिक अर्थात् क्रमशः उन्नत होने वाले।

प्रदर्शन करने के लिए स्थापित किया है; हम लोग जो इस समय क्रमिक सिद्धान्तो का अनुसरण कर रहे है सो उचित नही है। महायान-सम्प्रदाय बहुत ठीक है, इसलिए हम लोगो को अब अपना प्राचीन नियम बदल देना चाहिए और पुनीत आज्ञाओ का पालन दत्तचित्त होकर करना चाहिये। वास्तव मे इस हस का नीचे गिरना हमारे लिये उत्तम उपदेश है, इसलिए हम लोगो को उचित है कि इसकी पुनीत कथा का वृत्तान्त भविष्य मे बहुत दिनो तक सजीव रखने का प्रबन्ध कर देवें।" इसलिए उन लोगो ने इस स्तूप को बनवाया ताकि जो दृश्य उन्होने देखा था वह भविष्य मे लुप्त न हो जावे। उस हस का शव इस स्तूप के भीतर रख दिया गया था।

इन्द्रशैल गुहा पहाड़ के पूर्वोत्तर मे १५० या १६० ली चलकर हम कपोतिक-सघाराम[1] में पहुँचे। यहाँ कोई २०० साधु हैं जो बुद्धधर्म के सर्वास्तिवाद सस्था के सिद्धान्तो का पालन करते हैं।

पूर्व दिशा मे अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप है। प्राचीनकाल मे बुद्ध भगवान ने इस स्थान पर निवास करके एक बड़ी सभा मे रात भर धर्मोपदेश किया था। उसी समय किसी चिड़ीमार ने पक्षियो को पकड़ने के लिए इस जङ्गल मे अपना जाल फैलाया। तमाम दिन व्यतीत हो गया परन्तु उसके हाथ कुछ न आया। इस पर उसने खिन्न होकर कहा कि 'मालूम होता है कि किसी के कारण आज का दिन मेरा बर्बाद गया।' इसलिए वह झुँझलाता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ पर बुद्धदेव थे और उनसे बडे कर्कश स्वर मे कहने लगा, "हे तथागत! तुम्हारे धर्मोपदेश के कारण आज तमाम दिन मेरा जाल खाली ही रहा। मेरे बच्चे और मेरी स्त्री घर पर भूखी हैं। बताओ किस तरह से मैं उनकी रक्षा करूँ।" तथागत ने उत्तर दिया, "तुम थोड़ी आग जलाओ मैं अभी कुछ न कुछ तुमको खाने के लिए देता हूँ।"

उसी समय तथागत भगवान ने एक बड़ा भारी पंडुखा[2] प्रकट कर दिया जो अग्नि मे गिर कर मर गया। चिड़ीमार उसको लेकर अपने स्त्री-बच्चो के पास गया और सबने उस पडुखे को खाया। इसके उपरान्त वह फिर बुद्धदेव के पास लौट आया। बुद्धदेव ने उस चिड़ीमार को शिष्य बनाने के लिए बहुत ही उत्तम उपदेश दिया जिसको सुनकर उस चिड़ीमार को अपने अपराधो पर पछतावा हुआ और इसके साथ ही उसका चित्त भी नवीन प्रकार का हो गया। उसने घर छोड दिया और ज्ञान का अभ्यास

---

(1) जनरल कनिङ्घम साहब पार्वती ग्राम को, जो गिरिएक के पूर्वोत्तर में १० मील पर है, कपोतिक-संघाराम निश्चय करते हैं। यदि ऐसा है तब तो ह्वेनसांग की लिखी दूरी ठीक न मानी जायगी और उसके स्थान पर ५० या ६० ली कहना पडेगा।

(2) पडुखा भी एक प्रकार का कबूतर है।

करके परम पद को प्राप्त हुआ। यही कारण है-कि इस संघाराम का नाम कपोतिक है।

इसके दक्षिण में दो या तीन ली चलकर हम एक निर्जन पहाडी[१] पर पहुँचे जो बहुत ऊँची और जङ्गलो से भरी हुई है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुष्प वृक्ष इसको आच्छादित किये हुये है और विशुद्ध जल के झरने इसके खोखलो में से प्रवाहित होते है। इस पहाड़ी पर अनेक विहार और पुनीत शव-समाधि (कबरें) विलक्षण कारीगरी के साथ बनी हुई है। विहार के मध्य मे अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की एक प्रतिमा है। यद्यपि इसका आकार छोटा है परन्तु इसका चमत्कार बहुत बड़ा है। इसके हाथ मे कमल का एक फूल और सिर पर बुद्धदेव की एक मूर्ति है।

यहाँ पर हजारों मनुष्यों की भीड़ बोधिसत्व के दर्शनो की इच्छा से नित्य-प्रति निराहार उपवास किया करती है, यहाँ तक कि सात दिन, चौदह दिन और कभी-कभी पूरे मास भर का व्रत करना पड़ता है। जिन लोगो मे भक्ति का आवेश प्रबल होता है वे सौन्दर्य-सम्पन्न, सर्वलक्षण-संयुक्त अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का दर्शन प्राप्त करते है। मूर्ति के मध्य भाग मे से बोधिसत्व प्रकट होकर बहुत मधुर शब्दों मे उनको उपदेश देते हैं।

प्राचीनकाल मे एक दिन सिंहल-प्रदेश के राजा ने बहुत तड़के अपना मुख दर्पण मे देखा परन्तु उनको वह तो दिखाई न पडा, उसके स्थान मे उन्होने देखा क्या कि जम्बूद्वीप के मगध-प्रदेश के एक ताल-वन के मध्य में एक छोटी पहाड़ी है जिसके ऊपर इस (अवलोकितेश्वर) बोधिसत्व को एक प्रतिमा है। राजा इस उपकारी मूर्ति का स्वरूप देखकर प्रेम-विह्वल हो गया और बड़े परिश्रम से उसकी खोज मे तत्पर हुआ। इस पहाड़ पर आकर उसने ठीक वैसी ही मूर्ति का दर्शन पाया जैसी कि उसने दर्पण में देखी थी[२]। उसने उस स्थान पर एक विहार बनवा कर भेट-पूजा से प्रतिष्ठित किया तथा और भी अन्य घटनाओ का, जो समय-समय पर इस स्थान पर हुई थी, अनुसधान करके विहारो और समाधिस्थलो को बनवाया। यहाँ पर बाजे-गाजे के साथ फूलो और सुगन्धित वस्तुओ से सदा पूजा होती है।

---

(1) कनिङ्घम साहब इस पहाडी को वही पहाडी मानते हैं जिसका वर्णन फाहियान ने 'निर्जन पहाड़ी' के नाम से किया है। परन्तु, विपरीत इसके, फर्गुसन साहब विहारवाली पहाड़ी को फाहियान वाली पहाडी और इस पहाड़ी को शेखपुर श्रेणी मानते है।

(2) पहाड़ी देवता के समान अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का वर्णन किया गया है। सेमुअल बील साहब का इस स्थान पर विचार है कि इस देवता की पूजा का कुछ सम्बन्ध लङ्का से भी है।

इस स्थान से दक्षिण-पूर्व की ओर ४० ली[1] चल कर हम एक निर्जन पहाड़ के ऊपर एक सघाराम मे पहुँचे जिसमे लगभग ५० साधु निवास करके हीनयान-सम्प्रदाय का अनुशीलन करते हैं। संघाराम के सामने एक विशाल स्तूप है जिसमे से अद्भुत दृश्य प्रकट होते रहते हैं। यहाँ पर बुद्धदेव ने ब्रह्मदेवादि के निमित्त सात दिन तक धर्मोपदेश दिया था। इसके पास गत तीनो बुद्धो के उठने-बैठने इत्यादि के चिह्न हैं। सङ्घाराम के पूर्वोत्तर मे लगभग ७० ली चलकर गङ्गा के दक्षिणी किनारे पर हम एक बडे गाँव मे पहुँचे जो अच्छी तरह सघन बसा हुआ है।[2] इसमे बहुत से देव-मन्दिर हैं जो सबके सब भली-भाँति सुसज्जित है।

इसके पास ही दक्षिण-पूर्व की दिशा मे एक विशाल स्तूप है। यहाँ पर बुद्धदेव ने एक रात्रि धर्मोपदेश किया था। यहाँ से पूर्व दिशा मे एक पहाड़ पर होकर और लगभग १०० ली चलकर हम 'लो इन्नो लो'[3] ग्राम के सङ्घाराम मे पहुँचे।

इसके सामने एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ उस स्थान पर है जहाँ बुद्धदेव ने तीन मास तक धर्मोपदेश किया था। इसके उत्तर मे दो या तीन ली पर कोई ३० ली के विस्तार मे एक तड़ाग है। वर्ष की चारो ऋतुओ मे चारा रङ्ग के कमलो मे से एक प्रकार का कमल इसमें प्रफुल्लित रहता है।

यहाँ से पूर्व दिशा मे चलकर हम एक विकट वन मे पहुँचे और वहाँ से लगभग २०० ली चलकर हम इलाग्नापोफाटो प्रदेश मे आ गये।

---

(1) जनरल कनिङ्घम साहब चालीस के स्थान पर चार ही ली मान कर वर्तमान समय के 'अफसर' स्थान पर इस विहार का होना निश्चय करते हैं।

(2) इसकी दूरी और दिशा इत्यादि से 'शेखपुर' निश्चय होता है।

(3) कनिङ्घम साहब इसको 'रज्जान' निश्चय करते हैं। 'आइने अकबरी' मे रोविन्नी लिखा है जो चीनी-भाषा से मिलता-जुलता है, जुलियन इसको कुछ सन्देह के साथ 'रोहिनील' निश्चय करता है।

दसवाँ अध्याय

इस अध्याय में इन १७ देशो का वर्णन है—(१) इलान्नापोफाटो (२) चेनपो (३) कइचुहोहखीली (४) पुन्नफटश्न (५) कियामोलुयो (६) सनमोटाचा (७) तानमोलिति (८) कइलोना सुफालाना (९) ऊच (१०) काङ्गउटओ (११) कइ लिङ्ग किया (१२) स्यावसलो (१३) अनतलो (१४) टोन-कइ-टसी-किया (१५) चुलोये (१६) टलो मिच आ (१७) मोलो क्युचअ।

इलान्नापोफाटो (हिरण्य-पर्वत[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल ३,००० ली और राजधानी का २० ली है। राजधानी गङ्गा के दक्षिणी तट पर बसी हुई है। यह देश समुचित रूप से जोता बोया जाता है और यहाँ की पैदावार भी अच्छी होती है। फूल और फल भी बहुत होते है। प्रकृति स्वभावतः कोमल और मनुष्यो का आचरण शुद्ध और ईमानदार है। कोई दस सङ्घाराम लगभग ४,००० साधुओ के सहित है, जिनमे से अधिकतर सम्मतीय सस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अनुसरण करते है। विविध प्रकार के विरोधियो के कोई २० देवमन्दिर है।

थोड़े दिन हुये तब से सीमान्त-प्रदेश के नरेश ने यहाँ के शासक को हटाकर राजधानी पर अधिकार कर लिया है। यह साधुसेवक है, इसने दो सङ्घाराम भी नगर मे बनवाये है, जिनमे से प्रत्येक मे लगभग १,००० साधु निवास करते है। ये दोनो सङ्घाराम सर्वास्तिवादिन-सस्था के हीनयान साम्प्रदायिक है।

---

(1) हिरण्य पर्वत का निश्चय जनरल कनिङ्घम साहब मोगिर पहाडी के साथ करते है। यह पहाडी (और राज्य, जिसका नामकरण इसी पर से है) अनादि काल से बहुत प्रसिद्ध है, क्योकि यहाँ से पहाडी और नदी के मध्य मे होकर स्थल-मार्ग और गङ्गा जी के द्वारा जल-मार्ग है। कहा जाता है कि इसका वास्तविक नाम 'कष्टहरण-पर्वत' है क्योकि गङ्गा जी का प्रसिद्ध घाट कष्टहरण यही पर है। इस घाट पर स्नान करने से मनुष्यो के शारीरिक और मानसिक दुख दूर हो जाते है। जनरल साहब निश्चय करते है कि 'हरण-पर्वत' नाम ह्वेनसांग के इलान्नापोफाटो शब्द का अपभ्रन्श है। यह पहाडी मुदगलगिरि भी कही जाती है, जिससे सम्भव है कि इसका सम्बन्ध मुदगलपुत्र और 'श्रुतविंशति कोटि' इत्यादि से भी हो।

राजधानी के निकट और गङ्गा के किनारे पर हिरण्य-पहाड है जिसमे से धुवाँ और भाप इतना अधिक निकला करता है जिससे सूर्य और चन्द्र छिप जाते हैं। प्राचीन काल से लेकर अब तक समय-समय पर ऋषि और महात्मा लोग यहाँ पर अपनी आत्माओ को शान्त करने के लिए आते रहते है। इस समय यहाँ पर इनका एक देव-मन्दिर भी है जिसमे वे अपने सनातन से प्रचलित नियमो का पालन करते है। प्राचीन काल मे यहाँ पर तथागत भगवान ने भी निवास करके देवताओ के निमित्त विशेष रूप से धर्म का निरूपण किया था।

राजधानी के दक्षिण मे एक स्तूप है। यहाँ पर तथागत भगवान ने तीन मास तक धर्मोपदेश किया था। इसके पास तीनो गत बुद्धो के बैठने-उठने इत्यादि के चिह्न हैं।

इस अन्तिम स्थान के पश्चिम मे पास ही एक स्तूप है। यह उस स्थान को प्रदर्शित करता है जहाँ पर श्रुतविंशति कोति भिक्षु का जन्म हुआ था[1]। प्राचीनकाल मे इस नगर मे एक गृहपति, जो धनाढ्य, प्रतिष्ठित और शक्ति सम्पन्न था, निवास करता था। अधिक अवस्था हो जाने पर उसको संपत्ति का उतराधिकारी उत्पन्न हुआ। इस प्रसन्नता मे जिसने जाकर उसको समाचार सुनाया था उसको उसने २०० लक्ष अशर्फियाँ पारितोषिक स्वरूप दी थी। इस कारण उसके पुत्र का नाम *'श्रुतविंशतिकोटि' रक्खा गया था। अपनी उत्पत्ति के समय से लेकर* जब तक वह सयाना नहो हो गया, उसने कभी अपना पैर जमीन पर नहीं रक्खा। इस सबब से उसके पैर मे एक फुट लम्बे, चमकदार, कोमल और पीले-पीले सोने के से रङ्ग के बाल निकल आये थे। वह अपने पुत्र का बड़ा-लाड़ चाव करता था और दुष्प्राप्य से दुष्प्राप्य सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ उसके लिए मँगवाया करता था। उसने अपने मकान से लेकर

---

(1) चीनी भाषा मे इसका अनुवाद Wen urh Pih yih होता है जिसका अर्थ 'दो सौ लक्ष श्रमण' होता है, परन्तु एक नोट से विदित होता है कि पहले इसका अनुवाद yih-urh (लक्षकर्ण) किया गया था। इस वृत्तान्त मे 'सोणकोलिविसी' का हाल है जो दक्षिण लोगो के लेखानुसार चम्पा मे रहता था, (देखो Sacred books of the east Vol. XVII, p 1) इसकी बाबत कहा जाता है कि इसके पास अस्सी गाड़ी सोना, अण्ठी (शलटवाहे हिरण्णम्) था। परन्तु, महावग्ग ग्रन्थ मे एक और सोण का जिक्र है जिसको कुटिकन्न कहते थे और जिसकी बाबत बुद्धघोष लिखता है कि उसके कानो का आभूषण (कुडल) एक कोटि का था इसीलिए उसका यह नाम हुआ। परन्तु राइस डेविड्स साहब इसका अर्थ कानो का नुकीला होना मानते हैं।

हिमालय पहाड़ तक बीच-बीच मे अनेक विश्राम-गृह बनवा रक्खे थे जिनमे उसके नौकरो का आवागमन बराबर बना रहता था। कैसी ही बहुमूल्य औषधि की आवश्यकता हो एक विश्राम-गृह का नौकर दूसरे विश्राम-गृह वाले के पास और दूसरा तीसरे के पास दौड़ जाता था, और इसी तरह पर दौड़ धूप करके बहुत ही कम समय मे उस वस्तु को ले आता था; यह घर ऐसा धनाढ्य था। जगतपूज्य भगवान् ने उसके इस पुत्र-स्नेह को देख कर उसके हृदय मे ज्ञान का अंकुर उत्पन्न करने के लिए मुद्गलपुत्र को आज्ञा दी कि वहां जाकर उसको उपदेश देवे। वह उसके द्वार तक तो आया परन्तु उससे भेंट कराने वाला कोई सहायक न पाकर वह कुछ विचार मे पड गया कि किस प्रकार उससे भेट करके अपना प्रभाव उस पर जमावे। इस गृहस्थ का परिवार सूर्योपासक था। नित्य प्रातःकाल सूर्योदय होने पर यह सूर्यदेव की उपासना किया करता था। मुद्गलपुत्र ने उसी समय को ठीक समझा, अतएव अपनी आध्यात्मिक शक्ति से सूर्यमंडल मे पहुँच कर और दर्शन देकर वह वहाँ से नीचे आकर उसके भवन के भीतरी भाग मे खड़ा हो गया। गृहपति के पुत्र ने उसको सूर्यदेव समझकर और बड़ी भक्ति से उसका पूजन करके अत्यन्त सुगंधित भोजन (चावल) भेट किया। चावलो मे इतनी अधिक सुगधि थी कि वह राजगृह तक पहुँच गई और उसको सूँघकर राजा बिम्बसार विस्मित हो गया। उसने दूतो को भेज कर द्वार-द्वार पर इस बात का पता लगाया कि यह सुगधि कहाँ से आती है? अन्त में उनको विदित हुआ कि यह सुगंधि 'वेणुवन-विहार' से आती है जहाँ पर अभी-अभी मुद्गलपुत्र उस गृहपति के स्थान से आया था। राजा ने यह बात सुनकर कि उस गृहस्थ के पुत्र के पास ऐसा अद्भुत भोजन है, उसको अपने दरबार मे बुला भेजा। गृहस्थ इस आज्ञा को पाकर विचारने लगा कि किस सुगम उपाय से चलना चाहिए। डोगी पर चलने से सम्भव है कि हवा और लहरों के वेग से कोई घटना हो जाय। इसी प्रकार रथ से भी भय है कि कदाचित् हाथियो के दौड धूप करने से कुछ चोट चपेट न आ जाय। अन्त में उसने अपने घर से लेकर राजगृह तक एक नहर बनवा कर उसे सरसों से भरवा दिया और चुपके से उस पर एक बडी सुन्दर नाव रख कर उसमे बैठ गया। उस नाव में रस्सियाँ बँधी हुई थी जिनको घसीटते हुए लोग ले चले, इस प्रकार वह राजगृह तक पहुँचा।[1]

राजगृह मे पहुँच कर पहले वह बुद्ध भगवान् को अभिवादन करने गया। भगवान् ने उसको समझाया कि बिम्बसार राजा ने तुमको तुम्हारे पैरो के बाल देखने

(1) महावग्ग ग्रन्थ में केवल इतना ही लिखा हुआ है कि 'सोण कोलिबिस,' को लोग पालने में चढा कर राजगृह तक ले गये।

के लिए बुलवाया है। चूँकि राजा को इनके देखने की इच्छा है इसलिए तुम भी वहाँ जाकर पल्थी मार कर और पैरो को ऊपर उठा कर बैठना। यदि तुम अपना पैर राजा की तरफ फैला दोगे तो देश के कानून के अनुसार प्राण दड पाओगे।[1]

वह गृहस्थपुत्र बुद्धदेव से इस प्रकार शिक्षा पाकर दरबार मे गया। लोग उसको राजभवन मे ले गये और राजा के सामने जाकर उपस्थित कर दिया। राजा ने उसके पैरो के बाल देखना चाहा जिस पर वह पल्थी लगाकर और पैरो को उपर उठा कर बैठ गया। राजा उसके इस आचरण को देखकर बहुत प्रसन्न हो गया। इसके उपरान्त वह गृहपति अपना अन्तिम अभिवादन करके वहाँ से चला आया और जहाँ पर बुद्धदेव थे वहाँ पर गया।

उस समय तथागत भगवान् दृष्टान्त दे देकर धर्मोपदेश कर रहे थे, जिसको सुनकर उसका चित्त मुग्ध हो गया। उसका अन्त.करण खुल गया और वह उसी समय शिष्य हो गया। अरहट-पद की प्राप्ति के लिए बहुत दृढतापूर्वक वह तपस्या करने लगा, उसकी तपस्या यह थी कि वह नीचे ऊपर दौड़ने लगा[2] और यहाँ तक दौडा कि उसके पैरो से रुधिर चूने लगा।

बुद्ध भगवान् ने उससे कहा, "हे प्यारे युवक! जब तुम गृहस्थाश्रम मे थे तब क्या तुम वीणा बजाते थे।" उसने उत्तर दिया, "हाँ, मैं बजाता था।" "अच्छा तब" बुद्धदेव ने कहा, "मैं उसी का दृष्टान्त देकर तुमको उपदेश करता हूँ। यदि उसके तार बहुत अधिक चढा दिये जावें तो उसका स्वर कभी नही बनेगा और यदि उतार दिये जावें तो झन्न-झन्न के अतिरिक्त और कोई आनन्द नही आवेगा। इसी प्रकार धार्मिक जीवन प्राप्त करने के लिए भी यही विचार रखना चाहिए। यदि अधिक कष्ट उठाया जायगा, तो शरीर थक कर चित्त चचल हो जायगा, और यदि बिलकुल आलस ही घेरेगा तो कांक्षा मन्द होकर चित्त निकम्मा हो जायगा।"

इस आदेश को पाकर वह बुद्धदेव की प्रदक्षिणा करने लगा और यो वह शीघ्र अरहट-पद को पहुँच गया।

---

(1) दक्षिणी लेखानुसार यह शिक्षा उसको उसके माता-पिता-द्वारा प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त अस्सी हजार सेवको को बुद्धदेव से भेट करना और सागत के अलौकिक कर्म इत्यादि का वर्णन यहाँ पर नही है।

(2) नीचे ऊपर दौडना—यह पूर्वकालिक बौद्धो की एक प्रकार की स्वाभाविक बात थी जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने स्थान-स्थान पर किया है। बुद्धदेव के इस कर्म का जिस स्थान पर वर्णन आया है ये सब स्थान तीर्थ माने गये है।

देश की पश्चिमी सीमा पर गङ्गा नदी के दक्षिण में हम एक निर्जन पहाड़ पर आये जिसकी दोनो चोटियाँ ऊँची उठी हुई है[1]। प्राचीन काल में तीन मास तक इस स्थान पर निवास करके बुद्धदेव ने वकुल यक्ष को शिष्य बनाया था[2]।

पहाड़ के दक्षिण-पूर्व कोण के नीचे एक बडा भारी पत्थर है जिसके ऊपर बुद्धदेव के बैठने से चिह्न बन गया है। यह चिह्न लगभग एक इच गहरा, पाँच फीट दो इच लम्बा और दो फीट एक इच चौडा है। यह पत्थर एक स्तूप के भीतर रक्खा हुआ है।

दक्षिण दिशा मे एक और छाप एक पत्थर पर है जिस पर बुद्धदेव ने अपनी कुण्डिका को रख दिया था। इस छाप की सूरत ठीक आठ पंखुड़ियो वाले पुष्प की सी है तथा एक इञ्च गहरी है।

इस स्थान के दक्षिण-पूर्व मे थोडी दूर पर वकुल यक्ष के पदचिह्न है। ये चिह्न लगभग एक फुट पाच इञ्च लम्वे और सात या आट इञ्च चौड़े है, और लगभग दो इञ्च गहरे हैं। यक्ष की इन छापो के पीछे छः सात फीट ऊँची ध्यानावस्था मे बैठी हुई बुद्धदेव की पाषाण-प्रतिमा है।

इसके पश्चिम मे थोडी दूर पर एक स्थान है जहा बुद्धदेव ने तपस्या की थी।

इस पहाड की चोटी पर यक्ष का निवास-भवन है। इसके उत्तर मे बुद्धदेव की पगछाप एक फुट आठ इञ्च लम्बी, कदाचित् छः इञ्च चौडी और आधा इञ्च गहरी है। इसके ऊपर एक स्तूप बना दिया गया है। प्राचीन काल मे वुद्धदेव ने यक्ष को परास्त करके उसको नरहिंसा करने और उनका मास खाने से मना कर दिया था। भक्ति-पूर्वक बुद्धधर्म को ग्रहण करने के फल से उसका जन्म स्वर्ग मे हुआ था।

इसके पश्चिम मे छः या सात तप्तकुड है जिनका जल बहुत गरम है[3]।

---

(1) कनिंघम इस पहाड़ का निश्चय 'महादेव' नामक पहाड़ी से करते है। जो मोगिर पहाड़ी के पूर्व दिशा मे है।

(2) वकुल अथवा वक्कुल बुद्धदेव के शिष्यो मे से एक शिष्य स्थवित नाम का था।

(3) थोड़े दिन हुए एक यात्री ने इनको देखकर १७ अगस्त सन् १८८२ ई० के पायनियर मे इनका वृत्तान्त लिखा है। अब भी ये इतने गरम है कि भाफ उठकर घाटी मे मेघो के समान भरी रहती है।

देश का दक्षिणी भाग पहाड़ी जङ्गलो से भरा हुआ है जिनमे बड़े-बड़े दीर्घकाय हाथी रहते हैं ।

इस राज्य को छोड़कर गङ्गा के नीचे दक्षिणी किनारे पर पूर्व दिशा मे गमन करते हुए लगभग ३०० ली चलकर हम 'चेनपो प्रदेश में पहुँचे ।

चेनपो (चम्पा[१])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली और राजधानी, जो गङ्गा के उत्तरी तट पर है, लगभग ४० ली के घेरे मे है । भूमि समतल और उपजाऊ है और समुचित रीति पर जोती बोई जाती है । प्रकृति कोमल और गरम है तथा मनुष्य धर्मिष्ठ और उनका व्यवहार सीधा और सच्चा है । बीसियो सघाराम है परन्तु सबके सब उजाड़ हैं । सब मिलाकर लगभग २०० साधु इनमे निवास करते है जो सबके सब हीनयान-सम्प्रदायी हैं । कोई २० देवमन्दिर है जिनमे अनेक विरोधी उपासना करते हैं । राजधानी की चहारदीवारी ईंटो से बनी हुई और खासी ऊँची है । यह दीवार बहुत ऊँची मेड बाँधकर बनाई गई है जिससे शत्रु के आक्रमण के समय बहुत रक्षा होती है । प्राचीन काल मे जब कल्प का आरम्भ हुआ था और जब संसार की उत्पत्ति हो रही थी उस समय मनुष्य जङ्गलो मे माद या गुफा बना कर निवास करते थे । उन लोगो को घरो मे निवास करने का ज्ञान नही था । इसके उपरान्त एक देवी भी अपने पूर्व कर्मानुसार उन लोगो मे रहने लगी । एक दिन वह जलक्रीड़ा कर रही थी कि उसी समय उसका समागम किसी देवता से हो गया जिससे गर्भवती होकर उसने चार पुत्र प्रसव किये जिन्होने जंम्पूद्वीप के शासन को आपस मे विभक्त कर लिया । प्रत्येक ने एक-एक प्रान्त पर अधिकार करके एक-एक राजधानी बसाई और नगरो तथा ग्रामो को बसा कर अपनी-अपनी सीमा का निर्णय कर लिया । उन्ही मे से एक के प्रदेश की यह नगर भी राजधानी था जो जम्बूद्वीप के सब नगरो मे अग्रगण्य माना जाता है ।

राजधानी के पूर्व मे गङ्गा के दक्षिणी तट पर लगभग १४० या १५० ली दूर एकान्त और निर्जन स्थान मे भूमि से अलग एक चट्टान है[२] यह चट्टान ऊँची, ढालू

---

(1) चम्पा और चम्पापुरी पुराणो मे अङ्ग देश की राजधानी लिखी गई है जो भागलपुर का प्रान्त है । मि० मारटीन लिखते हैं, "चम्पा-नगर और कर्णागढ भागलपुर के सन्निकट हैं ।

(2) कनिङ्घम साहब इस चट्टान का निश्चय करते है कि पत्थर घाट के सामने टापू के समान एक चट्टान नदी मे है जिसके ऊपर एक नुकीला मन्दिर बना हुआ है ।

और चारो ओर पानी से घिरी हुई हैं। चोटी पर एक देव मन्दिर है जिसमे से देवी चमत्कार तथा अद्भुत दृश्य दिखाई दिया करते है। चट्टान को तोड़ कर घर बनाये गये है और नहरें बनाकर सब ओर जल की सुविधा कर दी गई है। यहाँ पर अद्भुत अद्भुत वृक्ष, पुष्प-कानन, बड़ी चट्टानें, भयानक चोटियाँ आदि तपस्वी और ज्ञानी पुरुषो के लिए सुख की सामग्री हैं। जो लोग एक बार यहाँ पर आ जाते हैं फिर लौटने का नाम नही लेते।

देश की दक्षिणी सीमा वाले निर्जन वन मे हिंसक पशु और जङ्गली हाथी झुंड के झुंड घूमा करते हैं।

इस देश से लगभग ४०० ली पूर्व दिशा मे चलकर हम 'कइचु होह खीलो' राज्य मे पहुँचे।

'कइचुहोहखीलो' (कजूघिर या कजिघर[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग २,००० ली है। इसकी भूमि समतल तथा उपजाऊ है। यह समुचित रीति से जोती बोई जाती है जिससे अच्छी फसल उत्पन्न होती है। प्रकृति गरम और मनुष्यो के आचरण सादे हैं। यहाँ के लोग बुद्धिमान् विद्वान् और गुण ग्राहक हैं। कोई छः सात संघाराम ३०० साधुओ सहित, और कोई १० देवमन्दिर विविध विरोधियो से भरे हुए हैं।

गत कई शताब्दियों से यहाँ का राज्यवंश विनष्ट हो गया है इस कारण यहाँ का शासन निकटवर्ती राज्य के अधीन है और यही सबब है कि नगर और कसबे उजाड हो रहे हैं, लोग भाग-भाग कर गाँवो और खेडो मे बस रहे है। यहाँ की यह हालत देखकर शिलादित्य राजा ने, पूर्वी भारत मे भ्रमण करते समय इस स्थान पर एक राजभवन बनवाया और उसमे रह कर उसने अपने भिन्न-भिन्न राज्यो का प्रबंध किया था। यह भवन अस्थायी निवास के लिए डालो और पत्तियों से बनाया गया था इस कारण उसके प्रस्थान करते ही फूँक दिया गया था। देश की दक्षिणी सीमा पर अगणित जङ्गली हाथी हैं।

आगे चलकर वही साहब लिखते हैं कि 'स्वरूप और दूरी से कहाल गाँव की पहाडी जो भागलपुर (चम्पा) से २३ मील पर पूर्व दिशा मे है निश्चय होती है'।

(1) मारटीन साहब लिखते है कि महाभारत मे 'कजिघ, का नाम आया है जो पूर्वी भारत के लोगो का देश है। लंका वालो के यहा भी लिखा है कि जम्बूद्वीप के पूर्वी भाग में एक नगर 'कजंघेने नियङ्ग' मे नामक है। रेनेल साहब के नक्शे में भी कजेरी एक गाँव चम्पा से ठीक ९२ मील (४६०) ली पर लिखा हुआ है।

उत्तरी सीमा पर गङ्गा के निकट एक ऊँचा और विशाल मण्डप ईंटो और पत्थरो से बना हुआ है। इसका चबूतरा चौड़ा और ऊँचा है एव अनुपम कारीगरी के साथ बनाया गया है । मडप के चारो ओर अलग-अलग भवनो में महात्माओं, देवताओ, और बुद्धो की पत्थर की मनोहर मूर्तियां हैं।

इस देश से पूर्व की ओर गमन करके, और गङ्गा नदी पार करके लगभग ६०० ली चलने के उपरान्त हम पुन्नफटन्न राज्य मे पहुँचे।

पुन्नफटन्न (पुण्ड्रवर्धन[1])

इस राज का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली और राजधानी ा क्षेत्रफल ३० ली है। यह बहुत सघन बसी हुई है। तड़ाग, सुरम्य स्थान और पुष्पोद्यान स्थान-स्थान पर बने हुए हैं। भूमि समतल और चिकनी एव सब प्रकार की वस्तु उत्पन्न करने वाली है। पनसफल की बड़ी कदर है और होता भी अधिक है। इसका फल बहुत बड़ा कद्दू के समान होता है। पकने पर इसका रङ्ग कुछ पीलापन लिये लाल हो जाता है। तोड़ने पर इसके भीतर कबूतर के अडे के बराबर बीसो कोये निकलते है जिनको निचोड़ने से कुछ पीलापन लिये हुए लाल रङ्ग का रस निकलता है जो कि बड़ा स्वादिष्ट होता है। यह फल लटकने वाले फलो के समान बृक्ष की डालियो मे लटका रहता है, परन्तु कभी-कभी वृक्ष की जड़ मे भी उसी प्रकार फलता है जिस प्रकार 'फुलिङ्ग'[2] भूमि मे उत्पन्न होता है। प्रकृति कोमल और लोग विद्याव्यसनी

---

(1) प्रोफेसर विल्सन साहब लिखते हैं कि प्राचीन पुण्ड्र देश मे राजशाही, दीना-जपुर, रङ्गपुर, नदिया, वीरभूम, बर्दवान, मिदनापुर, जङ्गल महाल, रामगढ, पचित, पलमन, और कुछ भाग चुनार का सम्मिलित था। यह ईख (पुण्ड्) का देश है। पौण्ड-देशवासियो का नाम सस्कृत ग्रन्थो मे बहुधा आया है और पुण्ड्रवर्द्धन-इस देश का एक भाग है। मि० वेस्ट मकाट पुण्ड्रवर्द्धन का निश्चय रङ्गपुर से ३५ मील उत्तर पश्चिम दीनाजपुर मे वर्द्धन कुटी (या खेन्ताल) और पाँजर के जिलो और परगनो के साथ करते है और यह भी विचार प्रकट करते हैं कि गौड़ा से १८ मील उत्तर उत्तर-पूर्व और मालदा से ६ मील पूर्वोत्तर फिर्जूपुर या फिरूजाबाद, जिसका प्राचीन नाम पोण्डुवा अथवा पोरोवा था, पुण्ड्रवर्द्धन का अपभ्रन्श है। मि० फर्गुसन रङ्गपुर के निकट इसका होना निश्चय करते है। कनिंघम साहब ने राजधानी का स्थान वगरहा से ७ मील उत्तर और वर्द्धनकुटी से १२ मील दक्षिण मे करतोया के निकट यहाँ स्थानगढ निश्चय किया है।

(2) चीन देश का एक फल है जो भूमि मे उत्पन्न होता है।

हैं। कोई २० संघाराम लगभग ३,००० साधुओ सहित हैं जो हीन और महा दोनो यानों का अध्ययन करते हैं। कई सौ देवमन्दिर भी है जिनमे अनेक सम्प्रदाय के विरुद्ध धर्मावलम्बी उपासना करते है। अधिक संख्या निर्ग्रन्थ लोगों की ही है।

राजधानी के पश्चिम मे लगभग २० ली पर 'पोघिपओ[१]' सङ्घाराम है, जिसके आँगन चौड़े और हवादार तथा कमरे और मंडप ऊँचे-ऊँचे हैं। साधुओ की संख्या लगभग ७०० है। ये महायान सम्प्रदायानुसार आचरण रखते है। पूर्वी भारत के अनेक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध महात्माओ का यहां पर निवास है।

यहाँ से थोड़ी दूर पर एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने देवताओं के लाभार्थ तीन मास तक धर्मोपदेश किया था। व्रतोत्सव के समय पर इसके चारों तरफ एक बड़ा प्रकाश प्रस्फुटित होने लगता है।

इस स्तूप के निकट एक और भी स्थान हैं जहाँ पर गत चारो बुद्ध तपस्या करते रहे है। उनके पुनीत चिह्न अब तक वर्तमान है।

यहाँ से थोडी दूर पर एक विहार है जिसमें अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की मूर्ति है। इस मूर्ति के दैवी ज्ञान के सामने कोई भी बात गुप्त नही रह सकती और इसका आध्यात्मिक विचार बिलकुल सत्य ठहरता है, इसलिए दूर तथा निकटवासी लोग व्रत और प्रार्थना करके अनेक बातो मे दैवी आज्ञा प्राप्त किया करते है।

यहाँ से पूर्व दिशा मे लगभग ७०० ली चलकर और एक बड़ी नदी पार करके हम 'कियामोलुपो' प्रदेश मे पहुँचे।

कियामोलुपो (कामरूप[२])

कामरूप-प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग १०,००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल लगभग ३० ली है। भूमि यद्यपि निचली है परन्तु उपजाऊ और भली भाँति जोती बोई जाती है। यहाँ के लोग पनस और नारियल की खेती करते हैं। इनके वृक्ष

---

(1) जुलियन साहब इसको 'वाशिमा सङ्घाराम' शब्द मान कर अर्थ करते हैं कि वह सङ्घाराम जो अग्नि के समान प्रकाशित हो।

(2) कामरूप पुराणों में इसकी राजधानी का नाम 'प्राग्ज्योतिष' लिखा हुआ है) प्रदेश रङ्गपुर मे करतोया नदी से लेकर पूर्व दिशा में फैला चला गया है। इसमे मनीपुर, जयन्तीय, कछार, पश्चिमी आसाम, मैमनसिंह और सिल्हट (श्रीहट्ट) का कुछ भाग शामिल है। वर्तमान जिला ग्वालपारा से गौहाटी तक विस्तृत है।

यद्यपि असख्य है तो भी इनका बड़ा आदर और अच्छा दाम है। नगरो के चारो तरफ नदी का अथवा लबालब भरी हुई झीलो का जल प्रवाहित होता रहता है। प्रकृति कोमल और सह्य है तथा मनुष्य सादे और ईमानदार हे। लोगो का डील डौल छोटा और रङ्ग श्यामलता लिये हुए पीला है। इन लोगो की भाषा मध्यभारत से कुछ भिन्न है, और इनके स्वभाव मे जङ्गलीपन तथा क्रोध विशेष है। इन लोगो की धारणाशक्ति प्रबल है और विद्याभ्यास के लिए ये लोग सदा तत्पर रहते है। ये लोग देवताओ की पूजा और यज्ञ इत्यादिक करने वाले हैं। बुद्धधर्म पर इनका विश्वास बिलकुल नही है। बुद्धदेव के ससार मे पदार्पण करने के समय से लेकर अब तक एक भी सङ्घाराम साधुओ के निवास के लिए यहाँ पर नहीं बनाया गया है। जो बुद्ध-धर्म के विशुद्ध भक्त इस देश मे रहते भी है वे चुपचाप अपना पाठ इत्यादि कर लेते हैं, बस यही यहाँ का बुद्ध-धर्म है। लगभग १०० देव-मन्दिर और विभिन्न सम्प्रदाय वाले लाखो विरुद्ध धर्मावलम्बी हैं। वर्तमान नरेश नारायणदेव के प्राचीन वश का है तथा जाति का ब्राह्मण है। उसका नाम भास्कर वर्मा और पदवी 'कुमार' है। जब से इस वश ने राज्य-शासन को हाथ मे लिया है तब से अब तक एक हजार पीढी व्यतीत हो चुकी हैं। राजा विद्या व्यसनी और प्रजा उसका अनुकरण करने मे दत्तचित्त है। इस सबब से दूर-दूर देशो के श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुरुष इसके देश मे आकर विचरण किया करते हैं। यद्यपि बुद्धधर्म पर उसका विश्वास नही है तो भी विद्वान् श्रमणो का वह अच्छा सत्कार करता है। जब उसने इस समाचार को सुना कि एक श्रमण चीन देश से मगध के नालन्द सङ्घाराम मे केवल बुद्ध धर्म को पूर्ण रूप से अध्ययन करने के लिए इतनी दूर की यात्रा का कष्ट उठाकर आया है तब उसने उसको बुला भेजा। उसने तीन बार अपना दूत इसको (ह्वेनसाग को) बुलाने के लिए भेजा। परन्तु वह उसकी आज्ञा का पालन न कर सका। तब शीलभद्र शास्त्री ने उसको समझाया, "तुम्हारी इच्छा बुद्धदेव के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने की है इसलिए तुमको विशुद्ध धर्म का प्रचार करना चाहिए, यही तुम्हारा कर्तव्य है। तुमको यात्रा की दूरी का भय करना उचित नही है। कुमार राजा का वश स [illegible] से विरोधियो के सिद्धान्तो का भक्त रहा है, परन्तु इस समय वह श्रमण का दर्शनाभिलाषी हुआ है यह बात वास्तव मे बहुत उत्तम है। हमको तो इस बात से ऐसा विदित होता है कि वह अपना सिद्धान्त परिवर्तन कर देने वाला है, और दूसरो को लाभ पहुँचाने का पुण्य बटोरना चाहता है। तुम भी पहले अपने सुदृढ चित्त से इस बात का सकल्प कर चुके हो कि ससार की भलाई के लिए अकेले सब देशो मे भ्रमण करके धर्म का प्रचार करोगे, इस काम मे चाहे जान ही क्यो न देनी पड़े। इसलिए अपने देश को भूल

जाओ और मृत्यु से भेट करने के लिए तैयार रहो। चाहे नेकनामी हो या बदनामी, तुमको पवित्र सिद्धान्तों के प्रचार का द्वार खोलने के लिए परिश्रम करना ही चाहिए। और उन लोगों को सीधे मार्ग पर लाना ही चाहिए जो असत्य सिद्धान्तों से ठगे हुए है। दूसरो का विचार पहले और अपना विचार पीछे करो, कीर्ति की परवा छोडकर केवल धर्म का ध्यान रक्खो।"

इस बात का ह्वेनसांग से कुछ उत्तर न बन आया और वह दूतो के साथ राजा से मिलने चल दिया। कुमार राजा ने उसका स्वागत करके कहा, "यद्यपि मैं स्वय बुद्धिहीन हूँ तो भी मैं ज्ञानी विद्वानो का सदा से प्रेमी रहा हूँ, और इसीलिए आपकी कीर्ति का समाचार पाकर मैंने आपको दर्शन देने के लिए यहाँ पर पदार्पण करने का कष्ट दिया।"

उसने उत्तर दिया, "मैं थोड़ी बुद्धि का व्यक्ति हूँ, इसलिए मुझ को आश्चर्य है कि आपने मुझ दीन का नाम क्योकर सुना।"

कुमार राजा ने उत्तर दिया, "क्या खूब! धर्म की वासना और विद्या के प्रेम से अपने दुख सुख को भूलकर और अगणित विपदो की ओर कुछ ध्यान न देकर इतने दूरस्थ देश से यात्रा करके एक नवीन देश मे स्थान-स्थान पर भ्रमण करना ये सब बातें राजा के शासन ही से और उन देश के, जैसा कि कहा जाता है, बढे-चढे विद्या-व्यसन का ही फल है। इस समय भारत मे बहुत से लोग ऐसे निकलेंगे जो महाचीन प्रदेश के ट्सिन राजा की विजय के गीत गाते वाले होगे। मैंने इसको बहुत दिनो से सुन रक्खा है, और क्या यह सत्य है कि यही देश आपका प्रतिष्ठित जन्म स्थान है?"

उसने कहा, "हाँ ठीक है, उन गीतो मे मेरे ही देश के राजा का गुणगान किया गया है।"

राजा ने कहा, "मुझको कभी भी इसका विचार नही हुआ कि आप उस देश के निवासी है। मुझको वहाँ के धर्म और आचरण पर सदा से भक्ति रही है। बहुत समय हो गया जब से मेरी दृष्टि पूर्व की तरफ है, परन्तु मध्यवर्ती पहाडो और नदियों के बाधक होने से मैं स्वय जाकर उस देश का दर्शन न कर सका।"

उत्तर मे उसने कहा, "मेरे महाराजा के पवित्र गुण और पुण्य प्रभाव की कीर्ति बहुत दूर तक फैली हुई है। अन्य-अन्य देशो के लोग उसके द्वार पर सिर नवा-कर भक्ति प्रदर्शित करते है और अपने को उसका सेवक कहते है।"

कुमार राजा ने कहा, "यदि उसका राज्य इतना बडा है तो मेरे चित्त में उत्कट इच्छा उत्पन्न हो रही है कि उसके लिए कुछ सौगात भेजूँ, परन्तु इस समय शिलादित्य राजा 'काजूधिर' प्रदेश मे आया हुआ है और धर्म तथा ज्ञान की जड़ को

गहरा गाड़ने के लिए बहुत बड़ा दान किया चाहता है। सम्पूर्ण भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान् ब्राह्मण और श्रमण वहाँ पर एकत्रित होंगे। उसने मुझको भी बुला भेजा है इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप भी मेरे साथ चलिए।"

इस बात पर वे दोनो साथ-साथ प्रस्थानित हो गये।

इस देश का पूर्वी भाग पहाड़ियो से बँधा हुआ है इसलिए कोई बड़ा नगर इस तरफ नही है। यहाँ की सीमा पर चीन के दक्षिणी-पश्चिमी देश के जङ्गली लोग बसे हुए है। इन लोगो की रीति-रस्म इत्यादि 'मान' लोगो के समान है। पता लगाने पर विदित हुआ कि हम देश की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा पर, जिसको 'शुह' देश कहते हैं, दो मास का भ्रमण करके पहुँचे थे। बाधक नदियाँ और पहाड, दूषित वायु, विष वाष्प, प्राणनाशक सर्प और जहरीली वनस्पति आदि इस स्थान तक पहुँचने मे प्राण ही ले लेते हैं।

इस देश के दक्षिण-पूर्व मे जङ्गली हाथियों के झुंड बहुतायत से घूमा करते हैं इसलिए इस देश मे इनका प्रयोग युद्ध के समय विशेषरूप से होता है।

यहाँ से १२०० या १३०० ली दक्षिण को चलकर हम 'सनमोटाचा' प्रदेश को पहुँचे।

सनमोटाचा (समतल [1])

यह राज्य लगभग ३००० ली विस्तृत है तथा समुद्र के किनारे तक चला गया है। भूमि नीची और उपजाऊ है। राजधानी का क्षेत्रफल लगभग २० ली है। यह देश भली भाँति जोता बोया जाता है और अच्छी फसल उत्पन्न करता है। फूल और फल सब तरफ अच्छे होते है। प्रकृति कोमल और मनुष्यो का स्वभाव शुद्ध है। मनुष्य प्रकृतितः दृढ छोटे डील-डौल के और काली सूरत के होते हे। ये लोग विद्या के प्रेमी और उसके प्राप्त करने मे अच्छा परिश्रम करने वाले होते है सच्चे और झूँठे दोनो सिद्धान्तो के मानने वाले विद्वान् यहाँ पर हैं कोई २००० साधुओ सहित लगभग ३० संघाराम है जिनका सम्बन्ध स्थविर संस्था से है। कोई सौ देव-मन्दिर है जिनमे सब प्रकार के विरोधी उपासना करते है। दिगम्बर साधु, जिनको निर्ग्रन्थ कहते है, बहुत बड़ी संख्या मे पाये जाते हैं।

नगर के बाहर थोड़ी दूर पर एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। इस

---

(1) पूर्वी बङ्गाल, 'समोतट' अथवा 'समतट का अर्थ है 'किनारे का देश' अथवा 'समतल देश'—(देखो Lassen, Ind. Act., III, 681) वराहमिहिर ने मिथिला और उड़ीसा के साथ इसका भी नामोल्लेख किया है।

स्थान पर तथागत ने देवताओं के लाभार्थ सात दिन तक गुप्त और गूढतम धर्म का उपदेश किया था। इसके पास गत चारों बुद्धों के उठने-बैठने आदि के चिह्न हैं।

यहाँ से थोड़ी दूर पर एक संघाराम मे बुद्धदेव की हरे पत्थर की एक मूर्ति है। यह आठ फीट ऊँची है। इसकी बनावट बहुत स्पष्ट और सुन्दर है, तथा इसमे समय-समय पर आध्यात्मिक चमत्कार प्रदर्शित होते रहते है।

यहाँ से पूर्वोत्तर दिशा मे समुद्र के किनारे पर जाकर हम 'श्रीक्षेत्र[1]' नामक राज्य में पहुँचे।

इसके भी दक्षिण पूर्व में समुद्र के किनारे हम कामलङ्का देश मे पहुँचे जिसके पूर्व 'द्वारपति'[2] का राज्य और इसके भी पूर्व ईदानपुर देश तथा और भी इसके आगे, पूर्व-दिशा मे, 'महाचम्पा' देश है जो ठीक 'लिनइ' के समान है। इसके दक्षिण-पश्चिम मे 'यमनद्वीप[3] नामक देश है। ये छहों देश पहाड़ों और नदियों से इस प्रकार घिरे हुए हैं कि इन तक पहुँचना कठिन है[4], परन्तु इनकी सीमाओं, मनुष्यों का स्वभाव, देश का हाल व्योहार आदि बातो का पता लगाने से लग सकता है।

समतट से पश्चिम दिशा में लगभग ९०० ली चलकर हम 'तानमोलिति' देश में पहुँचे।

तानमोलिति (ताम्रलिप्ति[5])

इस राज्य का क्षेत्रफल १४०० या १५०० ली और राजधानी का क्षेत्रफल १० ली है। यह देश समुद्र के किनारे पर है। भूमि नीची और उपजाऊ तथा नियमानुसार बोई जोती जाती है, और फल फूल बहुतायत से होता है। प्रकृति गरम है तथा मनुष्यों

---

(1) 'श्रीक्षेत्र' अथवा 'थरेखेत्र' प्राचीन काल मे ब्रह्मावालों के राज्य का नाम था जिसकी इसी नाम की राजधानी 'प्रोम' के निकट इरावदी नदी के किनारे पर थी। परन्तु यह दक्षिण-पूर्व दिशा मे है, 'श्रीहट्ट' या 'सिलहट' के उत्तर-पूर्व मे समुद्र के किनारे तक नही है।

(2) सन्दोई जिले और कसबे का प्रथम नाम 'द्वारवती' है। परन्तु ब्रह्मा वालों के इतिहास मे इसका प्रयोग श्याम के लिये भी हुआ है (देखो Phayre, Hist. of Burma P. 32)

(3) यमनद्वीप को वायुपुराण में 'द्वीप' लिखा है।

(4) इन देशो में यात्री नही गया।

(5) ताम्रलिप्ति वर्तमान समय का तामलुक है जो सेलई के ठीक उस स्थान पर है जहाँ उसका हुगली के साथ सङ्गम होता है।

के आचरण मे चुस्ती और चालाकी तथा साहस और कठोरता है। विरोधी और बौद्ध दोनो का निवास है। कोई दस संघाराम, लगभग १००० सन्यासियों के सहित, और कोई पचास देवमन्दिर जिनमे अनेक मत के विरोधी मिल-जुल कर निवास करते हैं बने हुए हैं। इस देश की सीमा समुद्र-तट पर है जहाँ जल और थल परस्पर मिले हुए हैं। अद्भुत अद्भुत बहुमूल्य वस्तुएँ और रत्न इत्यादि यहाँ पर अधिकता से संग्रह किये जाते हैं, इस कारण निवासी विशेष धनाढ्य हैं।

नगर के पास एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है जिसके आसपास गत चारो बुद्धो के उठने-बैठने आदि के चिह्न है।

यहाँ से उत्तर-पश्चिम मे लगभग ७०० ली चलकर हम 'कइलोना सुफालना' प्रदेश मे पहुँचे।

कइलोना सुफालाना (कर्णसुवर्ण[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग १४०० या १५०० ली और राजधानी का लगभग २० ली है। यह बहुत घनी बसी हुई है और निवासी भी बहुत धनी हैं। भूमि नीची और चिकनी और भली भाँति जोती बोई जाती हैं; अनेक प्रकार के अगणित और मूल्यवान् पुष्प बहुतायत से होते है। प्रकृति उत्तम और मनुष्यो का आचरण शुद्ध और सभ्य है। ये लोग बड़े विद्या-प्रेमी है और परिश्रमपूर्वक उसके प्राप्त करने का प्रयत्न करते है। निवासियो मे विरोधी और बौद्ध दोनो हैं। कोई दस सघाराम २००० साधुओ सहित हे, जो सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान सम्प्रदाय के अनुगामी हैं। कोई ५० देवमन्दिर हैं, विरोधी असख्य हैं। इसके अतिरिक्त तीन संघाराम ऐसे भी हैं जो देवदत्त का अनुकरण[2] करके जमाया हुआ दूध (दही) ग्रहण नही करते।

राजधानी के पास रक्तविटि नामक एक सघाराम है। इसके कमरे सुप्रकाशित और बड़े-बडे हैं तथा खडबद्ध भवन बहुत ऊँचे हैं। इस स्थान मे देश भर के प्रसिद्ध पुरुष और प्रतिष्ठित विद्वान् इकट्ठा हुआ करते हैं। वे लोग उपदेशो के द्वारा एक दूसरे

---

(1) अगदेश का राजा कर्ण था जिसकी राजधानी भागलपुर के निकट कर्णगढ है (देखो M. Martin. E Inp Vol. II. pp- 31 38 f, 46, 50)

(2) देवदत्त भी महात्मा था परन्तु बुद्धदेव के सामने हीनप्रतिष्ठ होने के कारण उनका शत्रु हो गया था। उसके मत वालो मे एक यह भी नियम था कि वे जमाये हुए दूध को काम मे नही लाते थे। उसके शिष्य उसको बुद्धदेव के बराबर ही मानते थे। यह मत ४०० ई० तक चलता रहा था। इसकी कठिन तपस्याओ के अधिक वृत्तान्त के लिए (देखो Oldenbsrg, Buddha, pp. 160, 161)

की अधिकाधिक उन्नति करने और चरित्र के सुधारने का प्रयत्न करते है। पहले इस देश के निवासी बुद्ध पर विश्वास नही करते थे, उन्हीं दिनों एक विरोधी दक्षिण-भारत में निवास करता था जो अपने पेट पर ताम्रपत्र और सिर पर जलती हुई मशाल बाँध लेता था। वह व्यक्ति हाथ मे दण्ड लिये हुए लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ इस देश मे आया। उसने शास्त्राथ के लिए दुदुभी बजाकर यह घोषणा की कि जो विवाद करना चाहे वह आवे। उस समय एक आदमी ने उससे पूछा, "तुम्हारा शरीर और सिर विचित्र रूप से क्यो सुसज्जित है?" उसने कहा, "मेरा ज्ञान इतना बड़ा है कि मुझको भय है कि कही मेरा पेट फट न जावे, और क्योकि अन्धकार में पडे हुए मनुष्यो पर मुझको करुणा आती है, इसलिए यह प्रकाश मेरे सिर पर है।"

दस दिन तक कोई भी व्यक्ति उससे किसी प्रकार का प्रश्न करने नही आया। यद्यपि बड़े-बड़े विद्वान् और प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित व्यक्ति उस राज्य मे थे परन्तु उनमे से किसी ने भी उसके साथ शास्त्रार्थ न किया। तब राजा ने कहा, "शोक! मेरे राज्य में कितना अधिक अज्ञान फैला हुआ है कि कोई भी किसी प्रकार का कठिन प्रश्न इस नवागत से करने नही आया! यह देश के लिए बड़ी बदनामी की बात है। मै स्वयं प्रयत्न करूँगा और गूढतम सिद्धान्तो पर प्रश्न करूँगा।"

तब किसी ने निवेदन किया कि 'वन मे एक विचित्र व्यक्ति निवास करता है, वह अपने को श्रमण कहता है और अवश्य बड़ा विद्वान् है। इसको इस प्रकार गुप्त और निर्जन स्थान मे निवास करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। वह अपनी विद्वत्ता और तपस्या के बल के इस विधर्मी पुरुष को अवश्य पराजित कर देगा।

राजा इस बात को सुनकर श्रमण को बुलाने के लिए स्वयं गया। श्रमण ने उत्तर दिया, "मैं दक्षिण-भारत का निवासी हूँ, यात्रा करता हुआ नवागत के समान आकर यहाँ ठहर गया हूँ। मेरी योग्यता साधारण और तुच्छ है, कदाचित् यह बात आपको मालूम नही। तो भी मैं आपकी इच्छानुसार आऊँगा। यद्यपि मुझको अभी यह विदित नही हुआ है कि किस प्रकार का शास्त्राथ होगा, परन्तु यदि मे जीत गया तो आपको एक सघाराम बनवाना पडेगा और बुद्धदेव के धर्म को प्रकाशित और सम्मानित करने के लिए मेरे बधुओ को उस सघाराम मे निमंत्रित करना पडेगा।" राजा ने कहा "मुझको आपकी बात स्वीकार है, मै आपका सदा कृतज्ञ रहूँगा।"

शास्त्रार्थ के समय विरोधी के शब्दो को सुनकर श्रमण तुरन्त उनकी तह में पहुँच गया और उनका अर्थ समझ गया—किसी शब्द और किसी विषय मे उसको कुछ भी धोखा नही हुआ। विरोधी के कह चुकने पर उसने कई सौ शब्दों मे प्रत्येक प्रश्न का समाधान अलग अलग कर दिया। तदुपरान्त उसने अपनी

संख्या के कुछ सिद्धान्त पूछे। उनके उत्तर मे विरोधी घबड़ा गया, उसके शब्द गड़बड़ और भाषा सारहीन हो गई, यहाँ तक कि उसके ओंठ बन्द हो गये और वह कुछ भी उत्तर न दे सका'। इस तरह पर बदनामी के साथ मलीन मुख होकर वह चला गया।

राजा ने साधु की बड़ी भारी प्रतिष्ठा करके इस संघाराम को बनवाया। उस समय से इस देश में धर्म का प्रचार बढता ही गया।

संघाराम के पास थोड़ी दूर पर अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप है। तथागत भगवान् ने इस स्थान पर मनुष्यो को सुमार्ग पर लाने के लिए सात दिन तक विशद रूप से धर्मोपदेश किया था। इसके निकट ही एक विहार है जहाँ पर बुद्धदेव ने अपने विशुद्ध धर्म का उपदेश दिया था।

यहाँ से ७०० ली दक्षिण-पश्चिमाभिमुख गमन करते हुए हम 'ऊच' देश मे पहुँचे।

ऊच (उद्र[१])

इस राज्य का क्षेत्रफल ७००० ली और राजधानी[२] का लगभग २० ली है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है, अनाज बहुत अच्छा होता है, और फल की उपज सब कहीं से बढ कर है। यहाँ के अद्भुत अद्भुत वृक्ष और झाड़ियाँ एवं प्रसिद्ध पुष्पो के नाम देना जो यहाँ उत्पन्न होते हैं बहुत कठिन है। प्रकृति गरम, मनुष्य असभ्य, डीलडौल के ऊँचे और सूरत मे कुछ पीलापन लिए हुए काले होते हैं। इनकी भाषा और शब्दावली मध्यभारत मे भिन्न है। ये लोग विद्या से प्रेम करते हैं और उसके प्राप्त करने मे अटूट परिश्रम करते हैं। अधिकतर लोग बुद्ध धर्म के प्रेमी हैं, इसलिए कोई १०० संघाराम १०,००० साधुओं सहित हैं। ये साधु महायान सम्प्रदाय का अनुशीलन करते हैं। पचास देवमन्दिर भी हैं जिनमे सब प्रकार के विरोधी निवास करते हैं। स्तूप, जिनकी संख्या कोई दस होगा, उन उन स्थानो का पता देते हैं जहाँ पर बुद्धदेव ने धर्मोपदेश दिया था। ये सब अशोक राजा के बनवाये हुए हैं।

---

(1) 'उद्र' या 'ओद्र' उड़ीसा को कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'उत्कल' भी है। (देखो महाभारत, विष्णुपुराण)

(2) राजधानी का निश्चय प्राय वैतरणी के किनारे जजीपुर से किया जाता है। मि० फर्गुसन मिदनापुर को निश्चय करते हैं। इस पत्र मे उन्होने यात्री के भ्रमण का वृत्तान्त जो इस प्रान्त मे हुआ था बड़ी ही मनोरञ्जकता से लिखा है। वह लिखते हैं कि ह्वेनसांग की पहली यात्रा जब वह दक्षिण-भारत से आया था नालन्द से कामरूप को हुई थी। इसके पहले इतिहासज्ञों ने जो कुछ अटकल लगाकर लिखा था उसमे अनेक अशुद्धियो को दिखलाते हुए इन्होने उनको शुद्ध भी कर दिया है।

देश की दक्षिण पश्चिमी सीमा पर एक बड़े पहाड में एक संघाराम है जिसका नाम पुष्पगिरि है। यहाँ पर पत्थर का जो स्तूप है उसमें से आध्यात्मिक आश्चर्य-व्यापार बहुत अधिक प्रकट होते रहते है। व्रतोत्सव के दिन इसमे से प्रकाश फैलने लगता है इस कारण दूर तथा निकटवर्ती देशो के धार्मिक पुरुष यहाँ एकत्रित होते हैं और उत्तम-उत्तम मनोहर पुष्प और छत्र इत्यादि भेंट करते है। वे इनको पात्र के नीचे और शिखर के ऊपर सुई के समान छेद देते हैं। इसके उत्तर-पश्चिम पहाड़ के ऊपर[1] एक सङ्घाराम मे एक स्तूत है। इस स्तूप मे भी वही सब लीलाएँ प्रकट होती हैं जो ऊपर वाले मे वर्णन की गई है ये दोनो स्तूप देवताओ के बनवाये हुए है इसी कारण विलक्षण व्यापार से भरे हुए है।

देश की दक्षिण-पूर्वी सीमा पर समुद्र के किनारे 'चरित्र' नाम का एक नगर २० ली के घेरे मे है। इस स्थान से व्यापारी लोग व्यापार करने के निमित्त दूर देशों को जाते है और विदेशी लोग आते-जाते समय यहाँ पर ठहर जाते हैं। नगर की चहार-दीवारी दृढ और ऊँची है। यहाँ पर सब प्रकार की दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तु मिल जाती है।

नगर के बाहर पाँच सङ्घाराम एक के पीछे एक बने चले गये हैं। इनके खडवद्ध भवन बहुत ऊँचे बने है और महात्मा पुरुषों की खुदी हुई मूर्तियो से बड़ी सुन्दरता के साथ सुसज्जित है।

यहाँ से २०,००० ली जाने पर सिंहलदेश मिलता है। वहाँ से यदि स्वच्छ और शान्त निशा में देखा जाय तो इतनी दूर होने पर भी बुद्धदन्त स्तूप के बहुमूल्य रत्न आदि ऐसे चमकते हुए दिखाई पडते है जैसे गगनमंडल मे मशाले जल रही हों।

यहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग १२०० ली एक घने जङ्गल मे चल कर हम 'काङ्गउटओ' देश मे पहुँचे।

काङ्गउटओ (कोन्योध)

इस राज्य का क्षेत्रफल १००० ली और राजधानी का २० ली है। यह खाडी के किनारे है। यहाँ का पहाडी सिलसिला ऊँचा और चोटीवाला है। भूमि नीची है—

(1) कनिंघम साहब इन दोनो पहाड़ियो को उदयगिरि और खण्ड गिरि निश्चय करते हैं जिसमे अनेक गुफाएँ और बौद्ध लोगो के लेख पाये गये है। ये पहाडियाँ कटक से २० मील दक्षिण मे और भुवनेश्वर के मन्दिर समूह के पश्चिम मे ५ मील पर हैं।

तराई है। यह भली-भाँति जोती बोई जाती है, और उपजाऊ है। प्रकृति गरम और मनुष्य साहसी और कुशल हैं। वे ऊँचे डील डौल के[1], काले स्वरूप के और मैले हैं। इन लोगो मे कोमलता तो थोडी ही है परन्तु ईमानदारी उचित मात्रा मे है। इनकी लिखावट के अक्षर ठीक वही है जो मध्यभारत के हैं, परन्तु उनकी भाषा और उच्चारण का तरीका भिन्न है। ये लोग विरोधियो की शिक्षा पर बड़ी भक्ति रखते हैं; बुद्धधर्म पर विश्वास नही करते। कोई एक सौ देवमन्दिर और लगभग १०,००० विरोधी अनेक मत और जाति के है।

राज्य भर मे कोई बीस कसवे है जो पहाड़ पर बसे हुए और समुद्र के बिलकुल निकट हैं[2]। नगर सुदृढ और ऊँचे है और सिपाही लोग वीर और साहसी है जिससे निकटवर्ती सूबो पर इनका अधिकार आतक-पूर्वक है और कोई भी इनका मुकाबला नही कर सकता, समुद्र के किनारे होने के कारण इस देश मे वहुमूल्य और दुष्प्राप्य वस्तुओ की भरमार है। यहाँ के लोग वाणिज्य व्यवसाय मे कौडी और मोती का व्यवहार करते है। कुछ हरापन लिये हुए नीले रङ्ग के बडे-बडे हाथी इसी देश से बाहर जाते है। यहा के लोग हाथियो को अपने रथो मे भी जोतते है और वहुत दूर तक की यात्रा कर आते है।

यहा से दक्षिण-पश्चिम को चलकर हम एक बड़े भारी निर्जन वन मे पहुँचे

---

(1) कनिंघम साहब इस स्थान को 'गजम' खयाल करते है, परन्तु 'गजम' शब्द की असलियत क्या है यह नही मालूम। ह्वेनसांग को मगधदेश मे लौट कर जाने पर विदित हुआ कि हर्षवर्द्धन राजा कुछ ही पहले 'गजम'-नरेश पर चढाई करके और विजयी होकर लौटा है। कनिंघम साहब का विचार है कि गजम उन दिनो उड़ीसा मे सम्मिलित था। मि० फर्गुसन खोर्धगर मानते हैं जो भुवनेश्वर के निकट और मिदनापुर से ठीक १७०, मील दक्षिण-पश्चम है और इस बात को असम्भव बतलाते है कि मूल पुस्तक मे दो समुद्र और खाडी के समान चिलका झील के विषय मे भूल हो गई है। उनका विचार है कि ह्वेनसांग खण्डगिरि और उदयगिरि की गुफाओ को देखने के लिए इस स्थान पर ठहरा था (J. B A. S. lic cit)

(2) "हैकिआव (hai kian) वाक्य का ठीक अर्थ दो समुद्रो की सधि" उचित नही है, इसका अर्थ तो यह मालूम होता है कि "पहाड के निकट बसे हुए कसबे जिनका सम्बन्ध समुद्र के तट से हो" जैसे दक्षिण अमरीका के पश्चिमी किनारे पर पहाड़ी के पदतल मे कसवे बसे हुए है, और जहाज के ठहरने वाले बन्दरो से मिले हुए हैं।

जिसके ऊँचे ऊँचे वृक्ष सूर्य की आड किये हुए आकाश से बातें करते थे। कोई १४०० या १५०० ली चलकर हम 'कइ लिङ्ग किया' देश को पहुँचे।

कइ लिङ्ग किया (कलिङ्ग[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल ५००० ली और इसकी राजधानी का लगभग २० ली है। यह उचित रीति पर जोती-बोई जाती है और अच्छी उपजाऊ है। फल और फूल बहुत अधिक होते है। जङ्गल झाडी सैकडों कोस तक लगातार चले गये है। यहाँ पर भी कुछ हरापन लिये हुए नीले हाथी उत्पन्न होते हैं जो निकटवर्ती सूबो मे बड़े दाम मे बिकते है। यहाँ की प्रकृति आग के समान गरम है। मनुष्यो का स्वभाव उग्र और क्रोधी है। यद्यपि ये उदण्ड और असभ्य है। परन्तु अपने वचन का पालन करने वाले और विश्वसनीय है। यद्यपि ये लोग धीरे-धीरे और अटक-अटक कर बोलते है परन्तु इनका उच्चारण सुस्पष्ट और शुद्ध होता है तो भी ये दोनो बातें, (अर्थात् शब्द और स्वर) मध्यभारत से नितान्त पृथक् हैं। बहुत थोड़े लोग बुद्ध-धर्म पर विश्वास करते है। अधिकतम लोग विरुद्ध धर्मावलम्बी ही है, कोई दस सङ्घाराम ५०० सन्यासियो के सहित हैं जो स्थविर संस्थानुसार महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं। कोई १०० देवमन्दिर हैं जिनमे अनेक मत के अगणित विरोधी उपासना करते हैं। सबसे अधिक संख्या निर्ग्रन्थी लोगो की है।

प्राचीन काल मे कलिङ्ग-देश बहुत घना बसा हुआ था, इस कारण मार्ग मे चलते समय लोगो के कन्धे से कन्धे घिसते थे और रथो के पहियो के धुरे एक दूसरे से रगड खाते थे। उन्ही दिनो एक महात्मा ऋषि भी, जिसको पाँचो अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हो चुकी थी, एक ऊँचे करार पर निवास करता हुआ अपनी पवित्रता का प्रति-पालन कर रहा था। परन्तु किसी कारण विशेष से उसकी अद्भुत शक्ति का क्रमशः ह्रास हो चला और लज्जित होकर उसने देववासियो को शाप दे दिया, जिससे वृद्ध

---

(1) कनिंघम साहब कहते है कि कलिङ्ग देश की सीमा दक्षिण पश्चिम मे गोदावरी नदी से आगे और उत्तर-पश्चिम मे गौलिया नदी से, जो इन्द्रवती नदी की शाखा है, आगे नही हो सकती। इसका मुख्य नगर कदाचित् राजमहेन्द्री था जहाँ पर चालुक्य लोगो ने राजधानी बनाई थी। या तो यह स्थान या समुद्र के तटवाला 'कोरिङ्ग' मूल पुस्तक मे दी हुई दूरी इत्यादि से ठीक मिलता है, परन्तु यदि हम मि० फर्गुसन की राय मान लें कि कोन्योध की राजधानी कटक के निकट थी, और सात ली का एक मील माने, तो हमको कलिङ्ग की राजधानी 'विजयनगर' के निकट माननी पड़ेगी।

और युवा, मूर्ख और विद्वान्—सबके सब समान रूप से मरने लगे, यहाँ तक कि सम्पूर्ण जनपद का नाश हो गया।

इसके बहुत वर्ष बाद अब प्रवासी लोगो के द्वारा देश की आबादी धीरे-धीरे कुछ बढ चली है तो भी जनसख्या उतनी नही हुई है और यही कारण है कि इन दिनो बहुत थोडे लोग यहाँ पर निवास करते हैं।

राजधानी के दक्षिण मे थोड़ी दूर पर कोई सौ फीट ऊँचा अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप है। इसके पास गत चारो बुद्धो के उठने-बैठने इत्यादि के चिह्न हैं।

इस देश की उत्तरी सीमा के निकट एक बड़ा पहाड़[1] है जिसके करार के ऊपर एक पत्थर का स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा बना हुआ है। इस स्थान पर, कल्प के आरम्भ काल मे जब मनुष्यो की आयु अपरिमित होती थी, कोई प्रत्येक बुद्ध[2] निर्वाण को प्राप्त हुआ था।

यहाँ से पश्चिमोत्तर दिशा मे जङ्गलो और पहाड़ो मे होते हुए लगभग १,८०० चलकर हम 'कियावसलो' देश मे पहुँचे।

कियावसलो (कोसल[3])

इस राज्य का क्षेत्रफल ५,००० ली है। इसकी सीमाएँ चारो ओर पहाडो, चट्टानो और जङ्गलो से घिरी हुई है जो लगातार एक के बाद एक चले गये है। राजधानी[4] का क्षेत्रफल ४० ली है भूमि उत्तम, उपजाऊ और अच्छी फसल पैदा-

---

(1) कदाचित् 'महेन्द्रगिरि'।

(2) प्रत्येक बुद्ध उसको कहते हैं जो 'केवल अपने लिए' बुद्धावस्था को प्राप्त हुआ हो, अर्थात् जो दूसरो को उपदेश देकर अथवा सुमार्ग पर लाकर ज्ञानी न बना सके।

(3) श्रावस्ती अथवा अयोध्या का भू भाग भी 'कोशल' या 'कोसल' कहा जाता है। उससे इसका पार्थक्य जानने के लिये देखो विष्णु पुराण और Lesson I. A, Vol 1 P. 160, Vol IV, P 702. यह प्रान्त उडीसा के दक्षिण-पश्चिम मे है जहाँ पर महानदी और गोदावरी की उर्द्ध्व भाग की सहायक नदियाँ बहती है।

(4) इस देश की राजधानी का ठीक निश्चय नही होता। कनिंघम साहब प्राचीन कोसल बरार और गोंडवाना के सूबे को समझते है, तथा राजधानी निश्चय चाँदा (जो राजमहेन्द्री से २९० मील उत्तर पश्चिम दिशा मे एक नगर है), नागपुर, अमरावती और इलिचपुर मे से किसी एक के साथ करते हैं। परन्तु अन्तिम तीनो स्थान कलिङ्ग की राजधानी से बहुत दूर है। यदि हम पाँच ली का एक मील मान लें तो नागपुर या अमरावती की दूरी राजमहेन्द्री से १,८०० या १,९०० ली, जैसा ह्वेन-

करने वाली है। नगर और ग्राम परस्पर मिले जुले हैं और आबादी घनी है। मनुष्य ऊँचे डील और काले रङ्ग के होते हैं। ये कठोर स्वभाव के दुराचरी वीर और क्रोधी हैं। विधर्मी और बौद्ध दोनो यहाँ पर है जो उच्च कोटि के बुद्धिमान् और विद्याध्ययन मे परिश्रमी है। राजा जाति का क्षत्रिय और बुध-धर्म को बड़ा मान देता है। उसके गुण और प्रेम आदि की बड़ी प्रशसा है। कोई सौ सघाराम और दस हजार से कुछ ही कम साधु हैं जो सबके सब महायान-सम्प्रदाय का अनुशीलन करते हैं। कोई बीस देवमन्दिर अनेक मत के विरोधियो से भरे हुए हैं।

नगर के दक्षिण मे थोड़ी दूर पर एक सघाराम है जिसकी बगल मे एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है इस स्थान पर प्राचीन काल मे तथागत भगवान् ने अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय देकर और बडी भारी सभा करके विरोधियो को परास्त किया था। इसके उपरान्त नागार्जुन बोधिसत्व संघाराम मे रहा था। उस समय के नरेश का नाम 'सद्वह' था। वह नागार्जुन की बडी प्रतिष्ठा करता था और नागार्जुन की रक्षा के लिए उसने एक शरीर-रक्षक नियत कर दिया था।

एक दिन लंका-निवासी देव बोधिसत्व शास्त्रार्थ के निमित्त उसके पास आया। द्वार पर पहूँचकर उसने द्वारपाल से कहा, "मेरे आने की सूचना कृपा करके नागार्जुन तक पहुँचा दो।" द्वारपाल ने जाकर नागार्जुन से निवेदन किया। नागार्जुन ने उसकी प्रतिष्ठा करके एक पात्र मे जल भर दिया और एक शिष्य को आज्ञा दी कि इसको लेकर देव के पास जाओ। देव जल को देखकर चुप हो गया, फिर एक सुई निकाल कर उसमे डाल दी। शिष्य सन्देहान्वित और उद्विग्न होकर उस पात्र को लिये हुए लौट आया। नागार्जुन ने पूछा, "उसने क्या कहा ?" शिष्य ने कहा, "उसने उत्तर तो कुछ नही दिया, देखते ही चुप हो गया, परन्तु एक सुई जल में डाल दी है।"

नागार्जुन ने कहा, "क्या बुद्धि है! कौन इस आदमी की चाह न करेगा ? कर्तव्य के जानने के लिए यह भगवान् की ओर से कृपा हुई है, और छोटे साधु के वास्ते सूक्ष्म सिद्धान्तो को हृदयङ्गम करने के लिए अच्छा अवसर है। यदि यह ऐसे ही ज्ञान से भरा है तब तो अवश्य भीतर बुलाने के योग्य है।" चेले ने पूछा, "उसने कहा क्या ? क्या उत्कृष्ट उत्तर चुप हो जाना ही है ?" नागार्जुन कहने लगा, "यह जल उसी स्वरूप

सांग लिखता है, हो सकती है। फर्गुसन अमरावती मे साधुओ के आने जाने और ठहरने आदि का अच्छा वर्णन करता है। कदाचित् इसका अभिप्राय कोशल से हो। मि० फर्गुसन छः ली का एक मील मान कर वैरगढ़ या भाण्डक नगर से प्राचीन टीह को राजधानी का स्थान निश्चय करते हैं। अधिक झुकाव उनका वैरागढ़ पर है जिसके विषय मे इन्होंने एक लेख I. R. A. S. N. S. VOI. VI, P. 260, में लिखा है।

का है जैसे कि पात्र मे यह है और जो वस्तु इसके भीतर है उसी के अनुसार इसकी मलिनता औ' निर्मलता है, परन्तु उसने इसकी निर्मलता और ग्राहकता को मेरा ज्ञान जो मैंने अध्ययन करके प्राप्त किया है समझा और इसके भीतर सुई छोड़कर उसने यह दिखलाया कि वह मेरे ज्ञान को छेद सकता है। जाओ इस अद्भुत व्यक्ति को इसी क्षण यहाँ ले आओ।"

इन दिनो नागार्जुन का स्वरूप वहुत ही देदीप्यमान और प्रभावोत्पादक हो रहा था, जिसको देखकर शास्त्रार्थ करने वाले आपसे आप भयभीत होकर चरणो पर सिर धर देते थे। देव भी उसके विशुद्ध चरित्र का वृत्तान्त वहुत दिनो से जानता था और उससे अध्ययन करके उसका शिष्य होना चाहता था, परन्तु इस समय जैसे ही वह उसके सामने पहुँचा उसका चित्त भयाकुल हो उठा और वह घवडा गया। भवन मे पहुँच कर न तो उसको उचित रीति से बैठने ही का ज्ञान रहा और न शुद्ध शब्द बोलने ही का परन्तु दिन ढलते-ढलते उसका शब्दोच्चारण कुछ स्पष्ट और ऊँचा हो चला। उस समय नागार्जुन ने कहा, "आपकी विद्वत्ता दुनिया भर से वढी हुई है और आपकी कीर्ति सव प्राचीन महात्माओ से अधिक प्रकाशित है। मैं बुड्ढा और अशक्त व्यक्ति होने पर भी ऐसे विद्वान् और प्रसिद्ध पुरुष से भेट करके, जो वास्तव मे सचाई का प्रचार करने, धर्म की मशाल को निर्विघ्न रूप से प्रज्वलित करने और धार्मिक सिद्धान्तो को पर्विद्धित करने के लिए है, बहुत सुखी हुआ। वास्तव मे आप ही इस उच्चासन पर बैठ कर अज्ञानान्धकार का नाश करने और उत्तम सिद्धान्तो को प्रकाश करने योग्य है।"

इन शब्दो को सुनकर देव के हृदय मे कुछ अहंकार का समावेश हो गया और अपने ज्ञान के खजाने को खोलने के लिए वाटिका मे टहल-टहल कर उत्तम और चुने-चुने वाक्य स्मरण करने लगा। कुछ देर बाद अपनी शकाओ को उपस्थित करने के लिए उसने सिर उठाया परन्तु जैसे ही उसकी दृष्टि नागार्जुन पर पडी, उसका मुख वन्द हो गया। तव वह वडी नम्रता के साथ अपने स्थान से उठ कर शिक्षा का प्रार्थी हुआ।

नागार्जुन ने उत्तर दिया, "बैठ जाओ मैं तुमको सबसे वढकर सत्य और उन सर्वोत्तम सिद्धान्तो को वताऊँगा जिनका धर्मेश्वर ने स्वयं उपदेश दिया था।" देव ने उसको साष्टाङ्ग प्रणाम करके वड़ी नम्रता से निवेदन किया, "मैं सदा आपकी शिक्षा श्रवण करने के लिए तत्पर हूँ।"

नागार्जुन बोधिसत्व ओषधियाँ वनाने मे बड़ा दक्ष था। वह ऐसी दवा बनाता था कि जिसके सेवन करने से मनुष्य की सैकडो वर्ष की आयु हो जाती थी। यहाँ तक कि तन और मन किसी भी अग मे किसी भी प्रकार की वलहीनता नही रह सकती थी।

सद्वह राजा ने भी उसकी इस गुप्त औषधि का सेवन किया था जिससे उसकी भी आयु कई सौ वर्ष की हो गई थी। राजा के एक छोटा लडका था जिसने एक दिन अपनी माता से पूछा, "मैं कब राज्य सिंहासन पर बैठूंगा।" उसकी माता ने उत्तर दिया, "मुझको तो अभी तक कुछ विदित नही होता। तुम्हारा पिता इस समय तक कई सौ वर्ष का हो चुका, उसके न मालूम कितने बेटे और पोते बुड्ढे हो होकर मर गये। यह सब नागार्जुन की विद्या और सच्ची औषधि बनाने के ज्ञान का प्रभाव है। जिस दिन बोधिसत्व मरेगा उसी दिन राजा भी खिन्नचित्त हो जायगा। इस समय नागार्जुन का ज्ञान बहुत विशेष और अधिक विस्तृत है, उसका प्रेम और करुणाभाव बहुत गूढ है, वह लोगो की भलाई के लिए अपने शरीर और प्राण को भी दे सकता है। इसलिए तुम उसके पास जाओ और जब तुम्हारी उससे भेंट हो तब उसका सिर उससे माँग लो। यदि तुम इसमे कृतकार्य हो सकोगे तो अवश्य अपने मनोरथ को पहुँचोगे।"

राजा का पुत्र अपनी माता के वचनानुसार सङ्घाराम के द्वार पर गया। द्वारपाल इसको देखते ही भयभीत होकर भाग गया जिससे यह उसी क्षण भीतर पहुँच गया। नागार्जुन बोधिसत्व उस समय ऊपर नीचे टहल टहल कर पाठ कर रहा था। राजकुमार को देखकर खड़ा हो गया और पूछा, "यह सध्या का समय है, ऐसे समय मे तुम इतनी शीघ्रता के साथ साधु के भवन मे क्यो आये हो? क्या कोई घटना हो गई है या तुम किसी कष्ट से भयभीत हो उठे हो जो ऐसे समय मे यहाँ दौडे आये हो?"

उसने उत्तर दिया, 'मैं अपनी माता से शास्त्र के कुछ शब्द और महात्माओ के उन चरित्रो को जिन्होने ससार का परित्याग कर दिया था पढ रहा था। उस समय मैंने कहा, 'सब प्राणियो का जीवन बहुमूल्य है, और पुस्तको मे भी, जहाँ पर ऐसे प्राण समर्पण के उदाहरण लिखे हुए हैं, इस बात पर अधिक जोर भी नही दिया गया है कि जो कोई किसी से माँगे उसके लिए वह प्राण परित्याग कर दे'। मेरी पूज्य माता ने उत्तर दिया, 'नहीं, ऐसा नही है। इस देश के 'सुगत' लोगो ने और प्राचीन तीनों कालो के तथागतो ने, जिस समय वे ससार मे थे और अपने अभीष्ट की प्राप्ति मे दत्तचित्त थे, किस प्रकार परम पद को प्राप्त किया? उन्होने सन्तोष और परिश्रम-पूर्वक आज्ञाओं का पालन करके बुद्ध-मार्ग को प्राप्त किया था। उन्होने अपने शरीर को जङ्गली पशुओ के भक्षण के निमित्त दे दिया था और अपना मांस काट काट कर एक कबूतर को बचा दिया था। इसी प्रकार राजा चन्द्रप्रभा ने अपना सिर एक ब्राह्मण को और मैत्रीबाल ने अपने रुधिर से एक भूखे यक्ष को भोजन कराके सन्तुष्ट कर दिया था। इस प्रकार का दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है, परन्तु पूर्वकालिक महात्माओ के

चरित्रो का अन्वेषण करने से कोई भी ऐसा समय न मिलेगा जब ऐसे ऐसे उदाहरण न पाये जा सकते हो। इस समय भी नागार्जुन बोधिसत्व उसी प्रकार के उच्च सिद्धान्तो का प्रतिपालन कर रहा है।' अब मैं अपनी बात कहता हूँ कि मुझको एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो मेरी भलाई के लिए अपना सिर समर्पण कर सके, मुझको इसी ढूँढ खोज मे बहुत वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु अब तक मेरी इच्छा पूर्ण नही हुई। यदि मैं बलपूर्वक ऐसा करना चाहता और किसी मनुष्य का वध कर डालता तो इसमे अधिक पाप और उसका परिणाम भयङ्कर होता। किसी निरपराध बच्चे का प्राण लेने से मेरे चरित्र मे कलंक और मेरी कीर्ति मे अवश्य बट्टा लग जाता। परन्तु आप परिश्रम-पूर्वक पुनीत मार्ग का अवलम्बन ऐसी रीति से कर रहे है कि कुछ ही समय मे वृद्धावस्था को प्राप्त हो जायँगे। आपका प्रेम और आपकी परोपकार-वृत्ति प्राणी मात्र के लिए सुलभ है, आप अपने जीवन को पानी का बबूला और अपने शरीर को तृणावत समझते हैं। आपसे यदि मैं प्रार्थना करूँ तो मेरी कामना अवश्य पूरी हो।"

नागार्जुन ने कहा, "तुमने जो तारतम्य मिलाया है और तुम्हारे जो शब्द है वें बिलकुल ठीक है। मैं पुनीत बुद्ध-पद की प्राप्ति का प्रयत्न कर रहा हूँ। मैंने पढा है कि बुद्ध सब वस्तुओ को परित्याग कर देने में समर्थ है, वह शरीर को बबूले और प्रतिध्वनि के समान समझकर, आत्मा को चार स्वरूपों का आश्रित और ६ हों मार्गो मे आवागमन करने वाला जानते हैं। मेरी यही प्रतिज्ञा सदा से रही है कि मैं प्राणी-मात्र की कामना से विमुख नही हो सकता। परन्तु राजकुमार की इच्छा पूर्ण करने मे एक कठिनाई है, और वह यह कि यदि मैं अपना प्राण परित्याग कर दूंगा तो राजा भी अवश्य मर जायगा। इसको अच्छी तरह विचार लो कि उस समय उसकी कौन रक्षा कर सकेगा?"

नागार्जुन उस समय अस्थिर-मन होकर; अपना प्राण विसर्जन करने के लिए किसी वस्तु की खोज मे इधर-उधर फिरने लगा। उसको नरकुल (सरकडा) की एक सूखी पत्ती मिल गई जिससे उसने अपने सिर को इस प्रकार उतार कर फेंक दिया मानो तलवार ही से काट लिया हो।

यह हाल देखकर वह (राजकुमार) वहाँ से भागा और जल्दी जल्दी अपने घर पहुँच गया। द्वारपालो ने जाकर जो कुछ हुआ सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक राजा से कह सुनाया, जिसको सुनकर वह इतना विकल हुआ कि मर ही गया।

लगभग ३०० ली दक्षिण-पश्चिम को चलकर हम ब्रह्मगिरि नामक पहाड़ पर पहुँचे। इस पहाड की सुनसान चोटी सबसे ऊँची है और अपने दृढ करार के साथ, एक ठोस चट्टान के ढेर के समान, बिना किसी घाटी के बीच मे पड़े हुए ऊँची उठी चली गई

है। इस स्थान पर सद्वह राजा ने नागार्जुन बोधिसत्व के लिए चट्टान खोद कर उसके भीतरी मध्य भाग मे एक संघाराम बनवाया था[1]। इसमे जाने के लिए कोई १० ली की दूरी से एक सुरङ्ग कर बन्द मार्ग बनाया गया था। चट्टान के नीचे खड़े होने से पहाड़ी खुदी हुई पाई जाती है और लम्बे लम्बे बरामदो की छतें स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। इसके ऊँचे ऊँचे कँगूरे और खंडबद्ध भवन पाँच खंड तक पहुँचे हुए है। प्रत्येक खंड मे चार कमरे और विहार परस्पर मिले हुए है। प्रत्येक विहार मे बुद्धदेव की एक मूर्ति सोने की बनी हुई है जो उनके डील के बराबर बड़ी कारीगरी के साथ बनाई गई है और बड़ी विलक्षण रीति से सजी हुई है, सम्पूर्ण आभूषण सोने और रत्नों के है। ऊँची चोटी से छोटे छोटे झरनों के समान जलधारायें प्रवाहित हैं। ये भिन्न-भिन्न खण्डों मे होती हुई बरामदों के चारो तरफ होकर बह जाती हैं। स्थान-स्थान पर बने हुए छिद्रों से भीतरी भाग मे प्रकाश पहुँचता है।

जब पहले-पहिल सद्वह राजा ने इस सघाराम को खुदवाना प्रारम्भ किया उस समय खोदते खोदते सब मनुष्य थक गये और उसका खजाना खाली हो गया। अपने काम को अधूरा देखकर उसका अन्त.करण दुखी हो गया। तब नागार्जुन ने राजा से पूछा, "क्या कारण है जो तुम्हारा मुख इतना उदास हो रहा है! "राजा ने उत्तर दिया, "मैंने एक ऐसा बड़ा काम करना चाहा था कि जो बहुत पुण्य का काम था, और सर्वोपरि कहे जाने के योग्य था। मेरा यह काम उस समय तक स्थिर रह सकता था जब तब तक मैत्रेय भगवान् ससार मे पदार्पण करते, परन्तु उसके समाप्त होने से पहले ही जो कुछ साधन था वह सब समाप्त हो गया। इसीलिए मैं विकलता के साथ नित्यप्रति उसके पूर्ण होने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मेरा चित्त इस समय बहुत दुखी है।"

नागार्जुन ने उत्तर दिया, "इस प्रकार दुखी मत हो; उच्च कक्षा का धार्मिक विषय कामना के अनुसार अवश्य पूरा होता है। इसमे विकलता नही हो सकती इसलिए तुम्हारा मनोरथ निस्सदेह पूर्ण हो जायगा। अपने भवन को लौट चलो, तुम्हारी प्रसन्नता का ठिकाना न रहेगा। कल सवेरे सैर के लिए बाहर निकल जाना और जङ्गली स्थानो मे घूम फिर कर मेरे पास लौट आना, और उस समय मुझसे अपने भवन

---

(1) जो कुछ वृत्तान्त इस भवन का ह्वेनसांग ने लिखा है ठीक वही फाहियान ने भी लिखा है। परन्तु इन दोनो मे से किसी ने भी स्वयं इस स्थान को नही देखा है। यह स्थान फाहियान से पहले ही विनष्ट हो चुका था। जो कुछ हाल लिखा गया है वह नागार्जुन के समय [प्रथम शताब्दी] के इतिहास का सार-मात्र है।

के विषय मे बातचीत करना।" राजा यह आदेश पाकर और उनका अभिवादन करके लौट गया।

नागार्जुन बोधिसत्व ने सब बड़े बडे पत्थरो को अपनी बढिया से बढिया औषधियो के क्वाथ से भिगोकर सोना कर दिया। राजा ने जाकर जिस समय उस सोने को देखा चित्त और मुख परस्पर एक दूसरे को बधाई देने लगा। लौटते समय यह नागार्जुन के पास गया और कहने लगा, "आज जिस समय मैं सैर कर रहा था उस समय जङ्गल मे दैवी कृपा से मैंने सोने के ढेर देखे।" नागार्जुन ने उत्तर दिया, "यह देवताओ की माया नही है बल्कि तुम्हारा सच्चा विश्वास है जिससे तुमको इतना सोना मिल गया। इसलिए इसको अपनी वतमान आवश्यकता मे खर्च करो और अपने विशुद्ध कार्य को पूर्णता पर पहुँचाओ।" राजा ने आज्ञानुसार ही किया। उसका कार्य समाप्त भी हो गया, तो भी उसके पास बहुत कुछ बच गया। इसलिए उसने पांचो खण्डो मे से प्रत्येक खड मैं सोने की बडी-बडी चार मूर्तियाँ बनवाकर स्थापित कर दी। फिर भी जो बचत रही उससे उसने अपने सब खजानो की आवश्यकता को पूरा किया।

इसके उपरान्त उसने उसमे निवास करने और वहाँ रह कर पूजा-पाठ करने के लिए १,००० साधुओ को निमन्त्रित किया। नागार्जुन बोधिसत्व ने सम्पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थो को, जिनको शाक्य बुद्ध ने स्वय प्रकट किया था, और बोधिसत्व लोगो की सब प्रकार की सगृहीत पुस्तको को तथा अन्यान्य सस्थाओ की विविध पुस्तको को उस स्थान पर एकत्रित कर दिया। पहले खड मे (सबसे ऊँची) केवल बुद्धदेव की मूर्तियाँ, सूत्र और शास्त्र रक्खे गये और सबसे निचले खड मे ब्राह्मण लोगो का निवास नियत किया गया तथा उनकी आवश्यकतानुसार सब प्रकार की वस्तुएँ रख दी गई। बीच के शेष तीन खडो मे बौद्ध साधु और उसके शिष्य लोगो का वास था। प्राचीन इतिहास से पता लगता है कि जिस समय सद्वह राजा इस कार्य को समाप्त कर चुका उस समय हिसाब लगाने से विदित हुआ कि मजदूर लोगो के खर्च मे अकेला नमक ही सात करोड़ अशर्फियो का पड़ा था। कुछ दिनो बाद बौद्ध साधु और ब्राह्मणो मे झगडा हो गया, बौद्ध लोग फैसला कराने के लिए राजा के पास गये। ब्राह्मणो ने यह सोच कर कि ये बौद्ध साधु केवल शाब्दिक विवाद मे ही लड पडे है आपस मे सलाह की और ताक लगाये रहे। मौका पाने पर इन नीच लोगो ने सङ्घाराम को ही नष्ट कर डाला और उसको ऐसा बन्द कर दिया कि उसमे साधुओ के जाने का मार्ग ही न रहा।

उस समय से कोई भी बौद्ध साधु उसमे नही ठहर सका है। पहाड की गुफाओ को दूर से देखने पर, यह कहा जा सकता है कि उसमे जाने का मार्ग ढूंढ लेना असम्भव

है। यदि किसी ब्राह्मण के घर मे कोई बीमार हो जाता है और उसको वैद्य की आवश्यकता होती है तो वे लोग उस वैद्य के नेत्र बाँध कर उसे भीतर ले जाते और बाहर लाते है, जिसमे वह मार्ग न जान सके।

यहाँ से दक्षिण दिशा मे एक घने जङ्गल मे जाकर और कोई ६०० ली चलकर हम 'अनतलो' देश मे पहुँचे।

'अनतलो' (अन्ध्र)

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ३,००० ली और राजधानी का २० ली है। इसका नाम पइङ्गकइलो[1] (विङ्गिल) है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है तथा नियमपूर्वक जोती बोई जाने से अच्छी पैदावार होती है। प्रकृति गरम और मनुष्य क्रूर और साहसी है। वाक्य-विन्यास और भाषा मध्य-भारत से भिन्न है परन्तु अक्षर करीब करीब वही है। कोई २० सङ्घाराम ३,००० साधुओ सहित, और कोई ३० देव-मन्दिर अगणित विरोधियो सहित है।

विङ्गिला (?) से थोड़ी दूर पर एक सङ्घाराम है जिसके सबसे ऊँचे शिखर और बरामदे खुदी हुई तथा बड़ी सुन्दर चित्रकारी से सुसज्जित किये गये है। यहाँ पर बुद्ध-देव की एक प्रतिमा है जिसका पुनीत स्वरूप बढिया से बढिया कारीगरी को प्रदर्शित कर रहा है। इस सङ्घाराम के सामने एक पाषाण-स्तूप कई सौ फीट ऊँचा है। ये दोनों पवित्र स्थान अचल[2] अरहट के बनवाये हुए हैं।

अरहट के सङ्घाराम के दक्षिण-पश्चिम मे थोडी दूर पर एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने प्राचीन काल में धर्मोपदेश करके और अपनी आध्यात्मिक शक्ति को प्रदर्शित करके असंख्य व्यक्तियों को शिष्य किया था।

अचल के संघाराम के दक्षिण-पश्चिम में लगभग २० ली चलकर हम एक शून्य पहाड़ पर पहुँचे जिसके ऊपर एक पाषाण-स्तूप है। इस स्थान पर जिन बोधिसत्व ने

---

(1) कदाचित् यह वेङ्गी का प्राचीन नाम है जो गोदावरी और कृष्णा इन दोनो नदियो के मध्य में तथा इलर झील के उत्तर-पश्चिम में है, और जो अन्ध्रदेश के अन्तर्गत है। इसके आस-पास मन्दिर तथा और भी डीह टीले पाये जाते है।

(2) अरहट के नाम का अनुवाद जो चीनी-भाषा मे हुआ है उसका अर्थ है "वह जो काम करता है।" ऐसी अवस्था में शुद्ध शब्द 'आचार' माना जायगा, परन्तु अजन्टा की गुफा मे एक लेख है जिसमें 'अचल' लिखा हुआ है।

'न्यायद्वार तारक-शास्त्र' अथवा 'हेतुविद्या-शास्त्र' को निर्मित किया था[1]। बुद्धदेव के ससार परित्याग करने के पीछे इस बोधिसत्व ने धार्मिक वस्त्र धारण करके सिद्धान्तो को प्राप्त किया था। इसका ज्ञान और इसकी भावना बड़ी जबर्दस्त थी। इसका शक्तिशाली ज्ञान-सिन्धु अथाह था ससार आश्रयहीन हो रहा था। इसलिए करुणावश इसने पुनीत सिद्धान्तो के प्रचार की इच्छा करके 'हेतुविद्या-शास्त्र' को पढा था, परन्तु इसके शब्द ऐसे कठिन और इसकी युक्तियाँ ऐसी प्रबल थी कि जिनको अपने अध्ययन-काल मे समझ लेना और कठिनता को दूर कर देना विद्यार्थियो के लिए असम्भव ही था। इसलिए यह निर्जन पहाड़ मे चला गया और ध्यान-धारणा के बल से कठिन खोज मे लगा कि जिसमे इस शास्त्र की एक ऐसी उपयोगी टीका बन जावे जो इसकी कठिनाइयो, गुप्त सिद्धान्तो और उलझे हुए वाक्यो को सरल कर सके। उस समय पहाड़ और घाटियाँ विकम्पित होकर गरज उठी, वाष्प और बादलो के स्वरूप और के और हो गये, तथा पहाड की आत्मा ने बोधिसत्व को कई सौ फीट ऊँचे पर ले जाकर वे शब्द कहे, "प्राचीन काल मे जगदीश्वर अपने दयापूर्ण हृदय से मनुष्यो को सुमार्ग पर लाने के निमित्त 'हेतुविद्या-शास्त्र' का उपदेश किया था[2] और इसके विशुद्ध और अत्यन्त गूढ शब्दो और सच्ची युक्तियो का समुचित रीति से निरूपण किया था। परन्तु तथागत भगवान् के निर्वाण प्राप्त करने के पीछे इसके महत्वपूर्ण सिद्धान्त लुप्त हो चले थे। किन्तु अब 'जिन बोधिसत्व' जिसकी तपस्या और बुद्धि अपार है, इस पुनीत ग्रन्थ को आदि से अन्त तक मनन करके वह उपाय कर देगा जिससे हेतुविद्या-शास्त्र अपने प्रभाव को वर्तमान काल मे भी फैला सकेगा।"

इसके उपरान्त 'जिन बोधिसत्व' ने अन्धाराच्छन्न स्थानो को आलोकित करने के लिये अपने आलोक को फैलाया। इस पर देश के राजा ने उसके ज्ञान को देखकर और इस बात का सन्देह करके कि कदाचित् यह व्यक्ति वज्रसमाधि को प्राप्त नही हुआ है, बड़ी भक्ति और नम्रता से प्रार्थना की कि आप उस पद को प्राप्त कीजिए जिसमे

---

(1) इस स्थान पर गड़बड है। मूल पुस्तक मे केवल 'इन-मिङ्ग-लन' लिखा है जो कुछ सन्देह के साथ 'हेतुविद्याशास्त्र' समझा जा सकता है, परन्तु जुलियन साहब अपनी पुस्तक के शुद्धाशुद्ध-पत्र पृष्ठ ५६८ मे मूल को शुद्ध करते हुए शुद्ध वाक्य 'इन मिङ्ग-चिङ्ग-ली-मेन-लन' अर्थात् 'न्यायद्वार तारक-शास्त्र' मानते है। सम्भव है यह ऐसा ही हो, परन्तु 'वनिउ नतजिओ' साहब ने 'जिन' की पुस्तको की जो सूची बनाई है उसमे यह नाम नही है।

(2) इसका यह अर्थ आवश्यक होता नही कि बुद्धदेव ने 'हेतुविद्या-शास्त्र' का निर्माण किया, पर च यह प्राचीन है।

फिर जन्म न हो।[1]

जिन ने उत्तर दिया, "मैंने विशुद्ध सूत्रों की व्याख्या करने के लिये समाधि का अभ्यास किया है; मेरा अन्तःकरण केवल पूर्णज्ञान (सम्यक् समाधि) को चाहता है, और उस वस्तु की इच्छा नही करता जिससे पुनर्जन्म न हो।"

राजा ने कहा, "जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होने के लिये सब महात्मा प्रयत्न करते हैं। तीनों लोकों के बन्धन से अपने को अलग कर लेना और त्रिविद्या के ज्ञान में गोता मारना, इससे बढकर उद्देश्य और क्या हो सकता है? मेरी प्रार्थना है कि आप भी इसको शीघ्र प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए।"

राजा की प्रार्थना को स्वीकार करके जिन बोधिसत्व को भी उस पुनीत पद पर पहुँचने की इच्छा हुई 'जो विद्या से बरी कर देता है'[2]।

उस समय 'मजुश्री बोधिसत्व' उसके इरादे को जानकर और खिन्न होकर इस इच्छा से उसके पास आया कि उसको इसी क्षण सावधान करके वास्तविक कार्य की ओर लगा दे। उसने कहा, "शोक की बात है कि अपने अपने शुभ उद्देश्य को परित्याग करके केवल अपने लाभ की ओर ध्यान दिया, और संसार की रक्षा का परमोत्तम सिद्धान्त परित्याग करके संकीर्ण पथ का आश्रय लिया। यदि आप वास्तव मे लाभ पहुँचाना चाहते हैं तो आपको उचित है कि 'मैत्रेय बोधिसत्व' के नियमों को सुस्पष्ट करके उनका प्रचार कीजिए। इसके द्वारा आप शिष्यो को सुशिक्षित और सुमार्गी बना कर बहुत बडा लाभ पहुँचा सकते है।

'जिन बोधिसत्व' ने महात्मा को प्रणाम करके बड़ी भक्ति के साथ उसके इन वचनों को स्वीकार कर लिया। फिर पूर्णरूप से अध्ययन करके हेतुविद्या-शास्त्र के सिद्धान्तो का मनन किया। उस समय उसको फिर वही भय उत्पन्न हो गया कि विद्यार्थी इसके सूक्ष्म सिद्धान्तो को नही समझ सकेंगे और वे इसके पढने से जी चुरावेंगे, इसलिए उसने 'हेतुविद्याशास्त्र'[3] के बड़े-बड़े सिद्धान्तों और गूढ शब्दो को उदाहरण सहित सुस्पष्ट करके सुगम कर दिया। इसके उपरान्त उसने योग के सिद्धान्तो को प्रकाशित किया।

यहाँ से निर्जन वन मे होते हुए दक्षिण दिशा मे लगभग १,००० ली चलकर हम 'टोन-कइ-टसी-किया' देश में पहुँचे।

---

(1) अर्थात् अरहट-पद।

(2) यह वाक्य भी अरहट-अवस्था का सूचक है।

(3) यह नाम भ्रमपूर्ण है; कदाचित् यहाँ पर 'न्याय-द्वार-तारक-शास्त्र' से मतलब है। परन्तु यह भी पता चलता है कि यह ग्रन्थ नागार्जुन का रचा हुआ है।

टोन-कइ-टसी-कि-१ (धनकटक)[1]

यह देश विस्तार मे लगभग ६,००० ली है और राजधानी[2] का क्षेत्रफल लगभग ४० ली है। भूमि उत्तम और उपजाऊ तथा अच्छे प्रकार बोई जाती है जिससे उपज बहुत अच्छी होती है। देश मे जङ्गल बहुत है और कसबे बहुत आबाद नही है। प्रकृति गरम है, मनुष्यो का स्वरूप कुछ पीलापन लिये हुए काला और उनका स्वभाव क्रूर और साहसी है। यहाँ के लोग विद्याध्ययन पर अधिक ध्यान देते हैं। सङ्घाराम बहुत हैं परन्तु अधिकतर उजाड़ और निर्जन है। इनमे से केवल बीस के लगभग सङ्घाराम उत्तम दशा मे है जिनमे १,००० साधु निवास करते हैं। ये सब महायान-सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का अध्ययन करते हैं। कोई १०० देव-मन्दिर भी हैं। इनमे उपासना करनेवाले भिन्न भिन्न मतावलम्बी विरोधी लोग सख्या मे अनगिनती है।

राजधानी के पूर्व मे एक पहाड़ के किनारे पर पूर्वशिला नामक एक सङ्घाराम है और नगर के पश्चिम मे पहाड़ की तरफ 'अवरशिला' नामक दूसरा सङ्घाराम है[3]। इनको किसी प्राचीन नरेश ने बुद्धदेव के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के अभिप्राय से बनवाया था।

---

(1) इसको महाअन्ध्र-प्रदेश भी कहते हैं। जुलियन साहब 'धनकचेक' कहते है और पाली-भाषा के ये लेख नासिक और अमरावती मे पाये गये है। उनमे 'धनकटक' लिखा हुआ है जिसका सस्कृत स्वरूप 'धन्यकटक' या धान्यकटक होगा। एक लेख सन् १३६१ ई० का मिला है जिसमे 'धान्यवतीपुर' लिखा है। इन सबसे 'धन्यकटक' अमरावती के निकटवाला 'धरणीकोट' निश्चय होता है

(2) एक रिपोर्ट से जो जे ए. सी बोसवेल साहब की ओर से गवर्नमेंट के पास गई थी, और कुछ फोटो चित्रो से जो कैप्टन रास टामसन साहब के पास थे, मि० फर्गुसन निश्चय करते है कि 'बेजवाडा' स्थान ही ह्वेनसांग कथित नगरी है।

(3) 'अपरशिला' अथवा पश्चिमी टीला, फर्गुसन साहब इसको अमरावती-स्तूप निश्चय करते है। यह स्तूप अमरावती के दक्षिण और बेजवाडा से १७ मील पश्चिम मे है। इसके अतिरिक्त गन्टूर से भी २० मील उत्तर+उत्तर-पश्चिम मे है। इस स्थान की प्राचीन गढी का नाम 'धरणीकोट' है, जो कदाचित् किसी समय सम्पूर्ण जिले का नाम था और जो अमरावती से ठीक एक मील पर पश्चिम दिशा मे है। यह प्रसिद्ध स्तूप पहले-पहले सन् १७९६ ई० मे राजा वेङ्कटाद्री नेडू के सेवक के द्वारा

उसने घाटियों को खुदवा कर और पहाडी चट्टानो को तोड़कर इस सङ्घाराम में जाने के लिए सड़क बनवा दी थी। सङ्घाराम के भीतर शिखरदार भवन बने हुए थे और बरामदे लम्बे तथा ऊँचे ऊँचे कोठरियाँ बहुत चौडी बनाई गई थी। साथ ही इसके, अनेक गुफाएँ भी थी। वह स्थान दैवी-शक्ति से सुरक्षित था, बड़े बड़े महात्मा और विद्वान् पुरुष यात्रा करते हुए इस स्थान पर आकर विश्राम किया करते थे; बुद्ध भगवान् को निर्वाण प्राप्त होने के पश्चात् एक हजार वर्ष तक यहाँ का यह नियम रहा कि प्रत्येक वर्ष एक हजार गृहस्थ और साधु इस स्थान पर आकर विश्राम का उपभोग करते थे। विश्राम-काल के समाप्त होने पर वे सबके सब अरहट-अवस्था को प्राप्त होकर और वायु पर चढकर आकाश-द्वारा उड जाते थे। हजार वर्ष तक साधु और गृहस्थ मिल जुलकर रहते रहे, परन्तु आज कल सौ वर्ष से यहाँ कोई भी निवास नही कर सका है। क्योकि पहाड की आत्मा अपना स्वरूप बदल कर कभी भेडियों की शकल मे और कभी बन्दर की सूरत मे आकर लोगो को भयभीत कर देती है। इस सबब से स्थान उजाड़ और जङ्गल सरीखा हो रहा है, कोई भी साधु इसमें नही रहता।

नगर के दक्षिण मे [1] कुछ दूर पर एक बडी पहाडी गुफा है। इस स्थान पर 'भाव विवेक' शास्त्री असुर के भवन में निवास करके मैत्रेय बोधिसत्व के उस समय के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है जब वह पूर्ण बुद्ध होकर पधारेंगे। यह विद्वान् शास्त्री अपनी सुन्दर विद्वता और विस्तृत ज्ञान के लिए बहुत प्रसिद्ध था। बाहर से तो यह

खोजा गया था। इसको कर्नल मैकञ्जी साहब ने भी अपने अमले के सहित सन् १७९७ ई० मे देखा था। इसके अधिक भाग को राजा ने ध्वंस करके दिया और इसमे के गढ़े हुए संगमरमर से सन् १८१६ ई० तक अपनी इमारतें बनवाई थी। सन् १८१६ ई० मे इसको मैकञ्जी साहब ने फिर देखा और इसकी कुछ खुदाई भी कराई। सन् १८३५ ई० में फिर खुदाई हुई और सन् १८४० ई० मे सर अलटर इलियट ने खोद कर इसका पूर्वी फाटक ढूँढ निकाला। इसकी खुदाई के लिए मि० सेवेल ने मई सन् १८७७ मे फिर रिपोर्ट की और डाक्टर जेम्स बरगस ने सन् १८८२-८३ मे इसको फिर खोदा, एक शिलालेख से, जिसको स्तूप के पत्थरो मे से बरगस साहब ने ढूँढा था, विदित होता है कि यदि अधिक पहले न भी सिद्ध हो तो भी अमरावती-स्तूप दूसरी शताब्दी मे या तो बन चुका था अथवा बन रहा था।

(1) फर्गुसन साहब की रिपोर्ट से पता चलता है कि कसबे (अर्थात् बेजवाडा) के दक्षिण में एक अद्भुत और निर्जन चट्टान है जिसके अगल-बगल बहुत सी चट्टानी गुफा आदि के ध्वंसावशेष पाये जाते हैं।

केपिल का शिष्य था परन्तु अभ्यन्तर से नागार्जुन की विद्वता को धारण किये हुए था। इस समाचार को सुनकर कि मगध-निवासी धर्मपाल धर्म का उपदेश वहुत दूर-दूर तक कर रहा है और हजारो शिष्य वना चुका है, इसके चित्त मे उससे शास्त्रार्थ करने की इच्छा हुई। अपने धर्म-दण्ड को लिये हुये जिस समय यह यात्रा करता हुआ पाटलिपुत्र को आया उस समय इसको पता लगा कि धर्मपाल बोधिसत्व बोधिवृक्ष के निकट निवास करता है। उस समय विद्वान शास्त्री ने अपने शिष्य को यह आज्ञा दी, "बोधिवृक्ष के निकट जहाँ पर धर्मपाल वोधिसत्व रहता है तुम जाओ और उससे मेरा नाम लेकर कहो कि "हे वोधिसत्व धर्मपाल! आप बुद्ध के सिद्धान्तो का बहुत दूर-दूर तक प्रचार कर रहे है और मूर्खो को आज्ञा और शिक्षा देकर ज्ञानी बनाते है, आपके शिष्य बडी भक्ति के साथ आपकी प्रतिष्ठा बहुत दिनो से कर रहे हैं, परन्तु आपके मन्तव्य और भूतकालिक ज्ञान का कोई उत्तम फल अब तक दिखाई नही पडा है इसलिये उपासना और बोधिवृक्ष का दर्शन सब व्यर्थ हो गया। पहले अ ने मन्तव्य को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कर लीजिए उसके बाद देवता और मनुष्यों को चेला बनाने की फिक्र कीजिएगा।"

धर्मपाल वोधिसत्व ने कहला भेजा, "मनुष्यो का जीवन परछाई और शरीर पानी के बबूले के समान है। इसलिये मेरा सम्पूर्ण दिन तपस्या मे बीतता है, मेरे पास वाद-विवाद के लिये समय नही है। शास्त्रार्थ नही होगा आप लौट जाइए।"

विद्वान शास्त्री अपने देश को लौट कर एक निर्जन स्थान मे विचार करने लगा कि "जब तक मैत्रेय बुद्धावस्था को न प्राप्त हो जावें मेरी शङ्काओ का समाधान कौन कर सकता है? इसके उपरान्त अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की मूर्ति के सामने भोजन

(1) सेम्युअल वील साहब की राय है इन वाक्यो से विदित होता है कि भाव-विवेक नागार्जुन के रङ्ग मे रङ्गें होने ही से, यद्यपि वह कपिल का अनुगामी था, अव-लोकितेश्वर की भक्ति करता था। जिस प्रकार सद्वह राजा ने नागार्जुन के लिये ब्रह्मा (दुर्गा) सङ्घाराम पहाड खोद कर वनवाया था। उसी प्रकार इससे भी यही विदित होता है कि नागार्जुन के उपदेश का मुख्य स्वरूप दुर्गा की उपासना था। अथवा यो कहिये कि बुद्ध-धर्म और पहाड़ी देवी देवताओ की उपासना का सम्मिश्रण नागार्जुन के समय से और उसके प्रभाव से प्रचलित हो चला था।" 'हृदयधारिणी सूत्र' वहुत प्रसिद्ध है इसका अनुवाद सन् १८७५ ई० मे रायल एशियाटिक सुसाइटी के मुखपत्र पृष्ठ २७ मे छप चुका है। इसके अतिरिक्त Bendall Catalogne of MSS. etc p 177 and 1485 भी देखो। सेम्युअल वील साहब का अनुमान है कि महायान-सम्प्रदाय के सस्थापक नागार्जुन ही के द्वारा इस सूत्र की रचना हुई है।

और जल को परित्याग करके 'हृदयधारिणी' का पाठ करने लगा [1]। तीन वर्ष व्यतीत होने पर बहुत मनोहर स्वरूप धारण किये हुये अवलोकितेश्वर बोधिसत्व प्रकट हुए और भाव-विवेक से पूछा, "तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?" उसने उत्तर दिया, "जब तक मैत्रेय का आगमन न होवे मेरा शरीर भी नाश न हो।" अवलोकितेश्वर बोधिसत्व ने कहा, "मनुष्य का जीवन आकस्मिक घटनाओं का विषय है, संसार परछाई अथवा बुद्बुद के समान है, इसलिये तुमको इस बात की उच्च कामना करनी चाहिये कि तुम्हारा जन्म तुषित स्वर्ग मे हो और उस स्थान पर अन्त तक रहकर आमने सामने उनका दर्शन-पूजन किया करो [1]।

विद्वान् शास्त्री ने उत्तर दिया, "मेरा विचार निश्चित है। मेरा मन बदल नही सकता।" बोधिसत्व ने कहा, "यदि ऐसा ही है तो तुम 'धनकटक' देश को जाओ, वहाँ पर नगर के दक्षिण मे एक पहाड की गुफा मे एक 'वज्रपाणि देवता रहता है; उस स्थान पर, 'वज्रपाणि-धारिणी' का पाठ करने से तुम अपने अभीष्ट को प्राप्त होगे।

इस आज्ञा के अनुसार भावविवेक उस स्थान पर चला गया और 'धारिणी' का पाठ करने लगा। तीन वर्ष के उपरान्त देवता ने कहा, "तुम्हारी क्या कामना है ? किसलिये इतनी बड़ी तपस्या कर रहे हो ?" विद्वान शास्त्री ने उत्तर दिया, "मै यह चाहता हूँ कि मैत्रेय के आने तक मेरा शरीर अमर बना रहे। अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की आज्ञानुसार मे इस स्थान पर अपने मनोरथ की पूर्ति के निमित्त आया हूँ। क्या यह बात आपकी शक्ति के आश्रित है ?"

देवता ने उस समय उसको एक मंत्र बतलाया और कहा, "इस पहाड मे एक असुर का भवन है, यदि तुम मेरे बताये अनुसार प्रार्थना करोगे (अर्थात् मन्त्र जपोगे) तो द्वार खुल जायगा और तुम उसमें निवास करके मैत्रेय के आगमन की प्रतीक्षा आराम के साथ कर सकोगे।" शास्त्री ने कहा, "यह ठीक है परन्तु उस अंधकारपूर्ण भवन मे बन्द रह कर मैं किस प्रकार जान सकूँगा या देख सकूँगा कि बुद्धदेव प्रकट हुए है ?" वज्रपाणि ने उत्तर दिया, "मैत्रेय भगवान् के संसार में आने पर मैं तुमको सूचना दे दूँगा।" भावविवेक शास्त्री उसकी आज्ञानुसार उस मन्त्र के जप मे संलग्न हो गया। तीन वर्ष तक बराबर स्थिरचित्त होकर जपने के उपरान्त उसने चट्टानी गुफा को खटखटाया। उस समय उस विशाल और गुप्त गुफा का द्वार खुल गया। उसी समय

(1) सच्चे बौद्ध का यही मनोरथ रहता है कि मरने के उपरान्त उसका जन्म मैत्रेय के स्वर्ग में हो, ताकि उनके सिद्धान्तों को सुनकर और उनकी शिक्षाओं के अनुसार चलकर वह निर्वाण को प्राप्त होवे यह सिद्धान्त उन लोगों के सिद्धान्त के विपरीत है जो यह मानते हैं कि स्वर्ग पश्चिम मे है।

एक बड़ी भारी भीड़ उसके सामने प्रकट हो गई जिसके फेर मे पड़कर वह लौटने का मार्ग भूल गया। 'भावविवेक ने द्वार को पार करके उस जनसमुदाय से कहा, "बहुत वर्षों तक इस अभिप्राय से कि मैत्रेय का दर्शन प्राप्त करू मैं पूजा उपासना करता रहा हूँ जिसका फल यह हुआ कि एक देवता की सहायता से, जिसको धन्यवाद है, मेरा सकल्प सफल होता दिखाई देता है। चलो सब लोग इस गुफा के भीतर चलें और यहाँ रहकर बुद्धदेव के अवतीर्ण होने की प्रतीक्षा करें।"

वे सब लोग इन शब्दो को सुनकर विवेकशून्य हो गये और द्वार मे पैर रखने से भयभीत होते हुए कहने लगे, "यह सर्पों की गुफा है, यदि इसमे जायँगे तो हम सब मर जायँगे।" "भावविवेक' ने उनको फिर समझाया। तीसरी बार के समझाने मे केवल छः व्यक्ति उसके साथ प्रवेश करने के लिए सहमत हुए। 'भावविवेक' आगे बढा और सब लोग उसके प्रवेश पर दृष्टि जमाये हुए उसके पीछे पीछे चले। सब लोगो के भीतर आजाने पर द्वार बन्द हो गया और वे लोग जिन्होंने उसकी बात पर ध्यान नही दिया था जहाँ के तहाँ रह गये।

यहाँ से दक्षिण पश्चिम मे लगभग १,००० ली चलकर हम 'चुलीये' राज्य मे पहुँचे।

'चुलीये' (चुल्य अथवा चोल)

चुल्य (चोल) का क्षेत्रफल २,४०० या २,५०० ली और राजधानी का क्षेत्रफल लगभग १० ली है। यह वीरान और जङ्गली देश है, दलदल और जङ्गल बराबर फैले चले गये है। आबादी थोड़ी और डाकुओ के झुड के झुंड दिन दहाडे घूमा करते है। प्रकृति गरम और मनुष्य क्रूर और दुराचारी है। इन लोगो के स्वभाव मे निर्दयीपन कूट कूट कर भरा हुआ है। ये लोग विरुद्ध-धर्मावलम्बी हैं। जो दशा सङ्घारामो की है वही साधुओ की भी है, सबके सब बर्बाद और मलीन है। कोई दस देव-मन्दिर और बहुत से निर्ग्रंथ लोग हैं।

नगर के दक्षिण-पूर्व थोड़ी दूर पर एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर प्राचीनकाल मे तथागत भगवान् ने देवता और मनुष्यो की रक्षा के लिए अपने आध्यात्मिक चमत्कार को प्रदर्शित करते हुए विशुद्ध धर्म का उपदेश करके विरोधियो को परास्त किया था।

नगर के पश्चिम मे थोड़ी दूर पर एक प्राचीन सङ्घाराम है। इस स्थान पर एक अरहट के साथ देव बोधिसत्व का शास्त्रार्थ हुआ था। देव बोधिसत्व को विदित हुआ था कि इस सङ्घाराम मे उत्तर नामक अरहट निवास करता है जिसको छहो

अलौकिक शक्तियाँ (षडभिज्ञायें) और अष्ट विमोक्षादि [मुक्ति का साधन] प्राप्त हैं। इसलिए उसके आचरण और नियम इत्यादि को जाँचने के लिए बहुत दूर चलकर वह इस स्थान पर आया और संघाराम मे पहुँच कर एक रात्रि रहने के लिए अरहट से स्थान का प्रार्थी हुआ। उस समय स्थान मे जहाँ पर अहरट रहता था केवल एक ही विछौना था जिस पर अरहट सोता था, इसके अतिरिक्त और कोई चटाई इत्यादि नही थी इसलिये उसने भूमि पर कुश बिछाकर बोधिसत्व से बैठने के लिए प्रार्थना की। उसके बैठ जाने पर अरहट समाधि में मग्न हो गया जिससे उसकी निवृत्ति आधी रात पीछे हुई। उस समय देव अपनी शङ्काओ को उपस्थित करके वडी नम्रतापूर्वक उत्तर का प्रार्थी हुआ। अरहट ने प्रत्येक कठिनाई को अलग-अलग करके समझा दिया। देव ने वहुत वारीकी से उसके शब्दो को लेकर उत्तर प्रत्युत्तर किया, यहाँ तक कि सातवी वार के प्रश्न मे अरहट का मुख वन्द हो गया और वह निरुत्तर हो गया। उस समय अपनी दैवी शक्ति का गुप्त रीति से प्रयोग करके वह 'तुषित' स्वर्ग मे गया और मैत्रेय से उन प्रश्नो को पूछा। मैत्रेय ने उनका उचित उत्तर वतलाकर यह भी वतला दिया कि "वह प्रसिद्ध महात्मा देव है जिसने कल्पो तक धर्माचरण किया है, और भद्र कल्प के मध्य मे बुद्धावस्था को प्राप्त हो जावेगा। तुम इस वात को नही जानते हो[1]। तुमको उचित है कि इसको वहुत वड़ी प्रतिष्ठा के साथ पूजा करो।"

थोडी देर मे वह अपने आसन पर लौट आया और फिर स्पष्ट रीति से व्याख्या करने लगा। इस समय की भाषा और व्यवस्था बहुत ही शुद्ध थी, जिसको सुनकर देव ने कहा, "यह तो व्याख्या मैत्रेय बोधिसत्व के पुनीत ज्ञान से आविर्भूत हुई है। हे महापुरुष तुममे यह सामर्थ्य नही है कि ऐसा विशुद्ध उत्तर तलाश कर सको।" इस वात को स्वीकार करते हुये कि वास्तव मे यह तथागत ही की कृपा है वह अरहट अपने आसन से उठा और देव के चरणो मे गिर कर उनकी स्तुति-पूजा करने लगा।

यहाँ से दक्षिण दिशा मे चलकर और एक जङ्गल मे पहुँच कर लगभग १,४०० या १,५०० ली की दूरी पर हम 'टलोपिच आ' देश में पहुँचे।

टलो पिच आ (द्रविड)

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ६,००० ली है। देश की राजधानी का नाम काञ्चीपुर[2] और इसका क्षेत्रफल लगभग ३० ली है। भूमि उपजाऊ और नियमानुसार

(1) अथवा क्या तुम इस वात को नही जानते हो ?

(2) यह अवश्य काञ्जीवरम् है। सेम्युअल वील साहव लिखते हैं कि जुलियन साहब का यह लिखना कि "किनची समुद्र के वन्दर पर बसा हुआ है" ठीक नही है। वास्तविक वात यह है कि "किनची" नगर भारत के दक्षिणी समुद्र का मुख है और

जोती बोई जाने के कारण उत्तम फसल उत्पन्न करती है। यहाँ फल फूल भी बहुत होते है तथा मूल्यवान रत्न इत्यादि भी होते है। प्रकृति गरम और मनुष्य साहसी हैं। सचाई और ईमानदारी की बातो मे इनको बहुत प्रसन्नता होती है और विद्या की अत्यन्त अधिक प्रतिष्ठा करते है। इनकी भाषा और इनके अक्षर मध्य भारत वालो से थोडे ही भिन्न है। कई सौ सङ्घाराम और दस हजार साधु है जो सबके सब स्थविर-सस्था के महायान-सम्प्रदायी हैं। कोई अस्सी देवमन्दिर और असख्य विरोधी है जिनको निर्ग्रन्थी कहते है। तथागत भगवान ने प्राचीनकाल मे, जब वे ससार मे थे, इस देश मे बहुत अधिक निवास किया था। जहाँ-जहाँ पर इस देश मे उनका धर्मोपदेश हुआ था और लोग शिष्य किये गये थे, वहाँ-वहाँ सब पुनीत स्थानो मे अशोक राजा ने उनके स्मारक स्तूप बनवा दिये हैं। काञ्चीपुर नगर धर्मपाल बोधिसत्व का जन्म-स्थान है। वह इस देश के प्रधान मन्त्री का बड़ा पुत्र था। बचपन ही से चातुरी के चिह्न उसमे प्रकट होने लगे थे और ज्यो-ज्यो उसकी अवस्था बढती गई बढते ही गये। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तब राजा और रानी ने कृपा करके उसको विवाह के लिये निमन्त्रण दिया। उसका चित्त पहले ही से दुखी हो रहा था इसलिये उस दिन और भी दुखी हुआ। सध्या के समय वह बुद्धदेव की एक प्रतिमा के सामने जाकर बैठ गया और बड़ी अधीनता से प्रार्थना करने लगा। उसके सत्य विश्वास पर दया करके देवताओ ने उसको उठाकर बहुत दूर पहुँचा दिया जहाँ उसका ढूंढने से भी पता नही लग सकता था। इस स्थान से कई सौ ली चलकर वह एक पहाड़ी सघाराम मे पहुँचा और उसके भीतर बुद्ध प्रतिमा वाली कोठरी मे जाकर बैठ गया। कुछ देर पीछे एक साधु ने आकर उस कोठरी का द्वार खोला और इसको भीतर बैठा देखकर उसको इसके ऊपर चोर होने का सन्देह हुआ। उसने इसके आने का कारण इत्यादि पूछा जिस पर बोधिसत्व ने अपना सब भेद कह सुनाया और उसका शिष्य होने के लिये उससे प्रार्थना की। सब साधु लोग इस आश्चर्यजनक घटना को सुनकर विस्मित हो गये और बडे प्रेम से उसकी प्रार्थना को स्वीकार करके उसको उन लोगो ने शिष्य कर लिया। राजा ने चारो तरफ उसकी खोज के लिये मनुष्य दौड़ाये और जब उसको यह मालूम हुआ कि बोधिसत्व ससार का परित्याग करके बहुत दूर देश मे चला गया है, और उसको देवताओ ने ले जाकर वहाँ पहुँचा दिया है, तब तो उसके ऊपर उसकी भक्ति दूनी हो गई और सदा के लिये वह उसका गुणग्राहक हो गया। धर्मपाल साधुओ के से वस्त्र धारण करने के समय

यहाँ से सिंहल तक तीन दिन का जल-मार्ग है" इसका अर्थ यह है कि काञ्जीवरम् नगर केन्द्र था जहाँ से यात्री लङ्का को जाते थे।

से स्थिरचित्त होकर सदा ही विद्याध्ययन करता रहा। इसकी उत्तम प्रतिष्ठा आदि का वर्णन पहले आ चुका है।

नगर के दक्षिण मे थोड़ी दूर पर एक बडा सङ्घाराम है जिसमे एक ही प्रकार के विद्वान्, बुद्धिमान और प्रसिद्ध पुरुष निवास करते हैं। एक स्तूप भी कोई १०० फीट ऊँचा अशोक का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर प्राचीनकाल मे निवास करके तथागत भगवान ने धर्मोपदेश द्वारा विरोधियों को पराजित और देवता तथा मनुष्यो को शिष्य किया था।

यहाँ से ३००० ली के लगभग दक्षिण दिशा मे जाकर हम 'मोलो क्युचअ' प्रदेश मे पहुँचे।

'मोलो क्युचअ' (मालकूट[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ५,००० ली और राजधानी का ४० ली है। यहाँ नमक बहुत होता है इस कारण अन्य पार्थिव वस्तुओ की उपज अच्छी नही है।

---

(1) दूरी (३,००० ली) जो काञ्जीवरम् के दक्षिण मे लिखी गई है, बहुत अधिक है। ह्वेनसाग ने जिन स्थानो का फासला सुन सुनाकर लिखा है वे सब विश्वास योग्य नही है, जैसे—उडीसा देश के 'चरित्र' स्थान से लङ्का तक का फासला बीस हजार ली ठीक नही है। यात्री की यात्रा का यह स्थल कठिनाइयों से भरा है। इस पुस्तक में Rymble 'hing' प्रयुक्त किया गया है जिससे विदित होता है कि यात्री मालकूट राज्य मे स्वय गया था। परन्तु 'Hwui-lih' पुस्तक से विदित होता है कि उसने केवल इस देश का नाम ही सुना था, वह गया नही था। उसका इरादा काञ्जीवरम् से सवार होकर लङ्का जाने का था। उसने साधुओ के मुख से जो इस देश से आये थे, यह सुना कि यहाँ का राजा 'वनमुगलान' मर गया और देश मे अकाल है। मि० फर्गुसन नेलोर को चोल की राजधानी मानकर (इस स्थान पर यह भी प्रकट कर देना उचित है कि इस देश की बाबत जो Symble काम मे लाये गये हैं वे Hwui-lih और Si-yu-ki दोनो पुस्तको मे उसी प्रकार समान है जिस प्रकार ह्वेनसाग की जीवनी का शब्द Djourya जिसको जुलियन ने प्रयोग किया है Si-yu-ki Tchoulya के समान है) Kinchipulo को नागपट्टनम् मानते है और इस प्रकार Hwui-lih के लेख से जो यह कठिनता उत्पन्न होती थी कि 'किंची' लङ्का के जलमार्ग मे समुद्रतट पर है, वे दूर हो जाती हैं और नेलोर से १,५०० या १,६०० ली को दूरी भी निकल आती है। परन्तु इससे तो और भी कठिनता बढ गई। अलावा इसके काञ्चीपुर काञ्जीवरम् ही ठीक निश्चय होता है ऐसा न माना जाय यह असम्भव है। M. V- de St. Martin हुइली (Hwui-lih) ग्रन्थ पर विश्वास करके यही मानते है कि ह्वेनसाग

निकटवर्ती टापुओ से सब प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ एकत्रित करके इसी स्थान पर लाई और ठीक ठीक की जाती है। प्रकृति बहुत गरम है और मनुष्यो का स्वरूप काला है। इन लोगो के स्वभाव मे क्रोध और दृढता विशेष है। कुछ लोग सत्य सिद्धातो के पालन करने वाले हैं, अधिकतर विरुद्ध धर्मावलम्बी है। ये लोग पढने-लिखने की विशेष परवाह नही करते बल्कि पूर्णरूप से व्यापार ही मे लगे रहते हैं। इस देश मे अनेक सङ्घाराम थे परन्तु आजकल सब बर्वाद है केवल दीवारें मात्र अवशेष है, अनुयायी भी बहुत थोडे है। कई सौ देव-मन्दिर और असख्य विरोधी है, जिनमे अधिकतर निग्रन्थी लोग है।

इस नगर से उत्तर दिशा मे थोड़ी दूर पर एक प्राचीन सङ्घाराम है जिसके कमरे इत्यादि सब घास फूँस से जङ्गल हो रहे है, केवल दीवारें अवशेष है। इस सङ्घाराम को अशोक के भाई महेन्द्र ने बनवाया था।

इसके पूर्व मे एक स्तूप है जिसका निचला भाग भूमि मे धँस गया है, केवल शिखर मात्र बाकी है। इसको अशोक राजा ने बनवाया था। इस स्थान पर प्राचीन-काल मे तथागत ने उपदेश करके और अपने आध्यात्मिक चमत्कार को प्रदर्शित करके असख्य पुरुषो को शिष्य किया था। इसी घटना का स्मारक स्वरूप यह स्तूप बनाया गया था। बहुत वर्षों तक इसमे से आश्चर्य व्यापारो का प्रादुर्भाव होता रहा है, और कभी-कभी लोगो की कामनायें भी पूरी होती रही है।

इस देश के दक्षिण मे समुद्र के किनारे तक मलयाचल[1] है जो अपनी ऊँची

काञ्चीपुर से आगे दक्षिण मे नही गया। परन्तु विपरीत इसके Dr. Burnel की राय है कि ह्वेनसाग मालकूट से काञ्चीपुर को लौट आया था। यह निश्चय है कि कोङ्कण जाने के लिये वह द्रविड़ से प्रस्थानित हुआ था इसलिये यह सिद्ध है कि वह दक्षिण मे किञ्ची से आगे नही गया। ऐसी अवस्था मे मलकूट, मलय पहाड़ और पोनरक का जो वृत्तान्त उसने दिया है वह सुना सुनाया है। मलकूट के विषय मे डा० बर्नल सिद्ध करते है कि यह राज्य कावेरी नदी के डेल्टा मे थोडा बहुत सम्मिलित था। इससे तो यह मानना पडेगा कि राजधानी कुम्भकोणम् अथवा आयूर के सन्निकट किसी स्थान पर थी, परन्तु ह्वेनसाग ने जो ३,००० ली लिखा है उसका हिसाब किस प्रकार किया जावे। काञ्जीवरम् से इस स्थान तक की दूरी १५० मील है जो अधिक से अधिक १,००० ली हो सकती है। डा० बरनल मलयकुरस मानकर यह कहते हैं कि कुम्भकोणम् का यही नाम सातवी शताब्दी मे प्रचलित था। चीनी सम्पादक नोट देता है कि मलकूट चि-मो-लो भी कहा जाता था।

(1) यह पहाड़ समुद्र के किनारे पर है इसलिए या तो यह मलाबारघाट होगा

चोटियो और कगारो, तथा गहरी घाटियो और वेगगामी पहाडी झरनो के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर श्वेत चन्दन और चन्दनेव[1] वृक्षो की बहुतायत है। इन दोनो प्रकार के वृक्षो में कुछ भी भेद नही है। इनका भेद केवल गरमी के दिनो मे किसी पहाड़ी के ऊपर जाने से और दूर से देखने से मालूम हो सकता है। चन्दन के पेड मे प्राकृतिक शीतलता होने के कारण उन दिनो सर्प लिपटे रहते है, बस यही पहचान है। उन्ही दिनो लोगो ने उन वृक्षो को जिनमे सर्प लिपटे होते है तीरो से बेध देते है और शीत-काल मे जब सर्प चले जाते हैं तब उन वाणविद्ध वृक्षो को खोज खोजकर काट लेते है। उस वृक्ष का जिसमें से कर्पूर निकलता है, तना देवदारु वृक्ष के समान होता है, परन्तु पत्ती, फूल और फल मे भेद है। जिस समय वृक्ष काटा जाता है और गीला होता है उस समय इसमे कुछ भी सुगंध नही होती, परन्तु जैसे ही जैसे इसकी लकड़ी सूखती जाती है वैसे ही वह चिटकती जाती है और वत्तियाँ सी जमती जाती है जिनका स्वरूप अभ्रक के समान और रङ्ग वर्फ का सा होता है। चीनी-भाषा मे इसको 'लाङ्गनाव हिआङ्ग' (जिसका अर्थ 'सर्प के दिमाग की सुगधि है') कहते है।

मलयागिरि के पूर्व पोतलक पहाड़ है। इस पहाड के दर्रे बड़े भयानक है। इसके कगारे और घाटियाँ ऊँची नीची है। पहाड की चोटी पर एक झील है जिसका जल दर्पण के समान निर्मल है। एक विवर मे से एक बडी नदी बहती है जो कोई बीस फेरो मे पहाड को लपेटती हुई दक्षिणी समुद्र मे जाकर मिल गई है झील के निकट ही देवता-ओ की चट्टानी गुफा है। इस स्थान पर अवलोकितेश्वर किसी स्थान से किसी स्थान को आते जाते हुए विश्राम किया करते हैं। जिन लोगो को बोधिसत्व के दर्शनो की इच्छा होती है वही लोग अपनी जान की परवाह न करके पहाड पर चढते है। मार्ग मे जल बाँधते हुए भय और कष्टो का सामना करते हुए बहुत ही थोडे से साहसी पुरुष ऐसे

और या कोयमबटूर के दक्षिणी घाट होगे। पुराणो मे भी इसका नाम 'मलय' लिखा हुआ है 'मलयो' शब्द लका के एक पहाडी जिले का भी नाम है जिसका केन्द्र-स्थान राम का पर्वत है कुछ भी हो, यदि समुद्र का निकटवर्ती 'मलय' जिला मलकूट-राज्य का एक भाग था तो यह राज्य कदापि कावेरी के डेल्टा के अन्तर्गत नही हो सकता वल्कि दक्षिणी समुद्र के तट तक फैला हुआ होना चाहिए। इस स्थान पर सेमुअल वील साहव यह भी लिखते हैं कि This would explain the alternative name of Chi-mo-lo (Numai) परन्तु इसका स्पष्टीकरण आपने ठीक तौर पर नही किया। 'मलय' शब्द का अर्थ 'पहाडी देश' है।

(1) वह वृक्ष जो चन्दन के समान होता है।

होते हैं जो चोटी तक पहुँचते है इसके अतिरिक्त उन लोगो के भी, जो पहाड के नीचे ह रह कर बहुत भक्ति के साथ प्रार्थना करते हैं और दर्शनो के अभिलाषी होते हैं; सामने कभी भी अवलेकितेश्वर ईश्वर देव के स्वरूप मे और कभी भी योगी (पाशुपत) के स्वरूपो मे प्रकट होकर लाभदायक शब्दो मे उपदेश देते है जिनको सुनकर वे लोग अपनी कामना के अनुसार वांच्छित फल को प्राप्त करते हैं।

इस पहाड से उत्तर-पूर्व मे समुद्र के किनारे पर[१] एक नगर है[२] जहाँ से लोग दक्षिण-सागर और लङ्का को जाते है। इसी बन्दर से जहाज पर सवार होकर और दक्षिण पूर्व मे यात्रा करते हुए लगभग ३,००० ली की दूरी पर हम सिंहल देश मे आये।

---

(1) इस स्थान पर "समुद्रीय विभाग" ऐसा भी अर्थ हो सकता है। अर्थात् वह स्थान जहाँ पर समुद्र पूर्वी और पश्चिमी भागो मे विभाजित हो जाता है।

(2) यहां पर किसी नगर का नाम नही लिखा हुआ है केवल यही लिखा है कि वह स्थान जहाँ से लोग लका को जाते है। मि० जुलियन ने अपनी ओर से कुछ शब्द को घुसेड़ दिया है जिससे डाक्टर वरनल तथा अन्य लोग धोखा खा गये हैं। जुलियम साहब ने लिख दिया कि "मलकुट से उत्तर-पूर्व दिशा मे जाने से सवुद्र के किनारे एक नगर (चरित्रपुर) मिलता है।" इसी बात को लेकर डाक्टर वर्नल ने बहुत कुछ जहापोह के साथ कावेरी पट्टनम् को चरित्रपुर मान लिया परन्तु मूल पुस्तक मे चरित्रपुर का नाम भी नही है इस कारण डाक्टर साहब का जो कुछ विचार इस स्थान के विषय मे हुआ है वह मूल पुस्तक के विरुद्ध है। विपरीत इसके, इट्सङ्ग (I-tsing) साहब लिखते है कि क्वेदा (Quedah) से पश्चिम की ओर तीस दिन की यात्रा करके 'नागवदन' को पहुँचते है जहाँ से लका के लिए दो दिन का मार्ग इससे अनुमान होता है कि कदाचित् वह नगर जिसका नाम ह्वेनसांग ने नही लिखा है नागपट्टनम (नागवदन) हो।

ग्यारहवाँ अध्याय

इस अध्याय में इन तेईस राज्यों का वर्णन है—(१) सान्ता वियान्का (२) कान्न गिननपुलो (३) मोहा लन ब (४) पोनुकउने पो (५) मोलपो (६) ओचवली (७) न-ड न-अ (८) पन्नन्पी (९) ओनन टांपुलो (१०) गुल च ब (११) बियो चे लो (१२) उशेवनना (१३) निकिटो (१४) मोहो शोफालोपुलो (१५) सिण्डु (१६) मुलो तन प उदू (१७) पोपाटो (१८) ओटिन पओ निलो (१९) लननोलो (२०) पोलस्ते (२१) पिटो शिलो (२२) थोपलन (२३) फलन।

से सम्मान करते है उसी प्रकार उनके सम्पादन करने मे भी लगे रहते है। इस देश का वास्तविक नाम रत्नद्वीप[१] है, क्योकि बहुमूल्य रत्नादि यहाँ पर पाये जाते है। पहले इस स्थान पर दुष्टात्माओ[२] का निवास था।

प्राचीन काल मे भारत के दक्षिणी प्रान्त मे एक राजा था जिसकी कन्या की सगाई निकटवर्ती देश मे हो चुकी थी। किसी शुभ लग्न मे अपनी ससुराल मे जाकर और सब लोगो से भेट मुलाकात करके वह अपने पिता के यहाँ लौटी आरही थी कि मार्ग मे एक सिंह से उसकी भेट हो गई। जितने रक्षक आदि थे सब भयभीत होकर और उसको अकेली छोड़कर भागे। वह बेचारी अकेली रथ पर पड़ी हुई मृत्यु का आसरा देखने लगी। सिंहराज उस अबला को अपनी पीठ पर लाद कर पहाड़ की निर्जन घाटी मे ले गया[३] और हरिणो को मार कर तथा समयानुसार फलो को लाकर उसका पालन करने लगा। कुछ समय के उपरान्त उस स्त्री से एक लड़की और एक लड़के का जन्म हुआ। सूरत शकल मे वे लोग मनुष्यो ही के समान थे परन्तु स्वभाव इनका घोर जङ्गली पशुओ के तुल्य था।

कुछ दिनो मे जवान हो जाने पर वह लड़का इतना अधिक शक्तिशाली हुआ कि कोई भी बनैला पशु उससे नही जीत पाता था। जिस समय वह मनुष्यत्व को प्राप्त

---

(1) नवी शताब्दी मे अरब लोग भी इसको जवाहिरात का टापू (रत्नद्वीप) कहते थे। जावावालो मे बहुमूल्य पत्थरो का नाम 'सेल' है, और इसी लिए कुछ लोगो का विचार है कि इसी शब्द से 'सैलन' अथवा सीलोन की उत्पत्ति हुई है। अस्तु, जो कुछ हो, यह द्वीप बहुत प्राचीन है और इनका नाम रत्नद्वीप है।

(2) इस स्थान पर ह्वेनसांग ने जिस प्रकार के शब्द लिखे है उनके भाव से यही झलक निकलती है कि रत्नादि से भरपूर होने के कारण यहाँ पर दुष्टात्माओ (भूत प्रेत आदि) का निवास था। यहाँ के राक्षस रामायण-द्वारा प्रसिद्ध ही हैं।

(3) कदाचित् यह स्त्री-हरण समुद्री चढाई के समय मे हुआ था। अर्थात् कुछ उत्तरी जातियो ने भारतसिंह नाम से आक्रमण किया था। देखो Fo-sho, V. 1788 तीन घटनायें जो परस्पर उलझी पुलझी अथवा कदाचित् सम्मिलित है और जो भारतवर्ष मे बुद्धदेव के समय मे हुई थीं—(१) पश्चिमोत्तर भारत पर व्रिज्जी लोगो की चढाई (२) उड़ीसा मे यवनो का आक्रमण, (३) लङ्का मे विजय की चढाई और लड़ाई। इन तीनो घटनाओ का समान सम्बन्ध हो सकता है। व्रिज्जी लोगो की पश्चिमोत्तर भाग पर चढाई होने से, मध्यवर्ती जातियाँ उड़ीसा पर, और उड़ीसा से कुछ लोग नवीन विजय के लिए समुद्रतट तक पहुँचे। ठीक इसी प्रकार की घटनायें कुछ शताब्दी पीछे पश्चिम मे भी हुई थी।

हुआ[1] उसमे मनुष्यो का सा ज्ञान भी आ गया और उसने अपनी माता से पूछा, "मेरा पिता जङ्गली पशु है और माता मनुष्य-जातीय है, ऐसी दशा मे मैं क्या कहा जाऊँगा ? एक बात और भी आश्चर्य की है कि तुम दोनो जाति-भेद से बिलकुल अलग हो, तुम्हारा समागम किस प्रकार हुआ ?" उस समय माता ने सम्पूर्ण वृत्तान्त अपने पुत्र से कह सुनाया। उसके पुत्र ने उत्तर मे कहा, "मनुष्य और पशु स्वभावतः भिन्न-जातीय हैं इसलिए हमको शीघ्र भाग चलना चाहिए"। माता ने कहा, "मैं तो कभी की भाग गई होती परन्तु इसका कोई उपाय मेरे पास न था"। उस दिन से पुत्र इस कठिनाई से निकलने के लिए उस समय सदा घर ही पर रहता था जब कि उसका पिता सिंह, बाहर घूमने चला जाता था। एक दिन जब सिंह बाहर गया हुआ था इसने मौका ठीक समझ कर अपनी माता और बहिन को एक गाँव मे ले आया। उस समय माता ने कहा। "तुम दोनो को उचित है कि पुरानी बात को गुप्त ही रक्खो, यदि लोग सिंह के साथ हम लोगो के सम्बन्ध का हाल जान जावेंगे तो हमारा बडा तिरस्कार करेंगे।"

इस प्रकार समझा कर वह स्त्री उनके साथ अपने पिता के गाँव में पहुँची, परन्तु उसके परिवार के सब लोग बहुत पहले से ही मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे, कोई भी शेष न था। गाँव मे पहुँचने पर लोगो ने पूछा, "तुम लोग किस देश से आते हो ?" उत्तर दिया, "मैं इसी देश की रहने वाली हूँ, बहुत अद्भुत अद्भुत और नवीन देशो मे भ्रमण करते हुए हम माता पुत्र फिर अपने देश मे आये हैं।"

गाँव के लोगो ने उन पर दया और प्रेम करके आवश्यक भोजनादि से उनका सत्कार किया। इधर सिंह राजा अपने स्थान पर आया और वहाँ पर किसी को न पाकर पुत्र और कन्या के प्रेम मे विकल होकर पागल हो गया। पहाडों और घाटियो मे ढूँढते हुए नगर और ग्रामो मे भी दौडने लगा। मारे व्याकुलता और दुख के वह चारो ओर चिल्लाता फिरता और क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्यो क्या सम्पूर्ण प्राणी-मात्र का संहार करता था। यहाँ तक कि नगरनिवासी उसको पकडने और मार डालने पर कटिबद्ध हुए। वे शख और दुदुभी वजाते हुए, धनुष-वाण और भाले लेकर उनके झुड के झुंड दौड पडे परन्तु उन सबको भयतीत होकर भागते ही बना। राजा ने, मनुष्यो की साहसहीनता का प्रमाण पाकर शिकारियो को उसके फाँसने की आज्ञा दी। वह स्वय भी चतुरङ्गिणी सेना, जिसकी संख्या दस हजार थी, लेकर जङ्गल और झाड़ियो को नष्ट करता हुआ पहाड़ो और घाटियो को (उसकी खोज में) रोदने

(1) अर्थात् जब उसकी अवस्था २० साल की हुई।

लगा। परन्तु सिंह की भयानक गरज सुनकर कोई भी मनुष्य नही ठहर सका, सबके सब भयाकुल होकर भाग खडे हुए।

इस प्रकार विफल होने पर राजा ने फिर घोषणा की कि जो कोई इस सिंह को पकड कर अथवा मार कर देश को इस विपत्ति से बचा देगा उसको बडी भारी प्रतिष्ठा के साथ भरपूर इनाम दिया जावेगा।

सिंहपुत्र ने इस घोषणा को सुनकर अपनी माता से कहा, "मैं भूख और शीत से बहुत कष्ट पाता हूँ इसलिए मैं अवश्य राजा की आज्ञा का पालन करूँगा। मुझको कदाचित इसी उपाय से समुचित धन मिल जावे।"

माता ने कहा, "तुमको इस प्रकार का विचार नही करना चाहिए, क्योकि यद्यपि वह पशु है तो भी तुम्हारा पिता है। क्या आवश्यकता की पूर्ति के लिए हमको अधम बनना उचित है? कह बात युक्ति और न्यायसङ्गत नही है इसलिए तुमको नीच और हिंसक विचार त्याग देना चाहिए।"

पुत्र ने उत्तर दिया, 'मनुष्य और पशु प्रकृति से ही भिन्न है, ऐसी अवस्था मे स्वत्व के विचार को क्यो स्थान देना चाहिए? इसलिए ऐसी धारणा मेरे मार्ग मे बाधक न होनी चाहिए।" यह कह कर और एक छुरी को अपनी आस्तीन मे छिपा कर राजाज्ञा की पूर्ति के लिए वह प्रस्थानित हो गया। इस समाचार को पाकर एक हजार पैदल और दस हजार अश्वारोही उसके साथ हो लिये। सिंह वन मे छिपा हुआ पडा था, किसी की भी हिम्मत उस तक जाने की नही पडती थी। पुत्र उसकी तरफ बढा और पिता, पुत्रप्रेम मे विह्वल होकर प्यार के साथ भूमि को कुरेदता हुआ उसकी ओर उठ दौडा क्योकि उसकी जो कुछ पुरानी घृणा थी सब जाती रही थी, पुत्र ने उसको निकट पाकर अपनी छुरी उसकी अँतडियो मे घुसेड दी परन्तु वह अब भी अपने क्रोध को भुलाये हुए उसके साथ प्रेम ही करता रहा। यहाँ तक कि उसका पेट फट गया और वह तडप तड़प कर[1] मर गया।

राजा ने उससे पूछा, "हे विलक्षण व्यापार साधन करने वाले! आप कौन है? एक ओर तो इनाम के लोभ मे फँसा हुआ और दूसरी ओर इस भय से कि यदि कोई बात छिपा डालूंगा तो दण्डित होगा, उसने आदि से अन्त तक का सब हाल रत्ती रत्ती कह सुनाया। राजा ने कहा, "हे नीच! जब तूने अपने बाप को मार डाला, तब उन लोगो के साथ तू क्या न कर बैठेगा जिनसे तेरा कुछ भी सम्बन्ध नही है? तूने मेरी

(1) अजन्ता की गुफाओ के चित्रो से, जिनका का वणन Mrs. Speir's Life in Ancient India, pp 300 मे आया है, सिंह और विजय की कथा का आभास प्रकट होता है।

प्रजा को एक ऐसे पशु से बचाया है जिसका दमन करना कठिन था, और जिसका क्रोध सहज ही में विकराल हो सकता था इसलिए तेरी योग्यता वास्तव मे अनुपम है; परन्तु अपने ही पिता को मारना यह महापाप है। इसलिए मैं तुम्हारे उपकार का पुरस्कार तो दूँगा, परन्तु साथ ही तुमको भी मेरा देश छोड देना होगा, यही तुम्हारे अपराध का दण्ड है। ऐसा करने से देश का कानून भी भङ्ग न होगा और मेरा वचन भी वना रहेगा।

यह कह कर उसने दो नावें सब प्रकार के भोजन आदि की सामग्री से सुसज्जित कराईं। माता को तो देश ही मे रहने दिया और सब प्रकार की आवश्यक वस्तुओ से उसका सत्कार किया परन्तु पुत्र और कन्या को अलग अलग नावो मे बैठा कर लहरो और तूफान को सौंप दिया। वह नाव जिस पर पुत्र था समुद्र मे वहती वहती रत्नद्वीप मे पहुँची। इस देश मे रत्नो की बहुतायत देखकर वह उत्तर पडा और यही वस गया।

इसके पश्चात् व्यापारी लोग रत्नो की खोज मे बहुतायत के साथ इस टापू मे आने लगे। पुत्र उनमे से मुखिया मुखिया व्यापारियो को मार कर और उनके स्त्री बच्चो को छीन कर अपना समुदाय बढाने लगा। इन सबके पुत्र-पौत्रादि होने से और भी सख्या बढ गई। तब सबने मिल कर राजा और मन्त्री बनाकर सब लोगो की जाति आदि का निर्णय कर दिया। उन लोगो ने नगर और कसबे बसा कर सम्पूर्ण देश पर अपना अधिकार जमाया। इन लोगो का पूर्व पुरुष सिह का पकडने वाला था इस कारण इस देश का नाम (उसी के नाम के अनुसार) सिहल हुआ[1]।

वह नाव जिसमे लड़की थी समुद्र मे लहराती हुई ईरान पहुँची जहाँ पर पश्चिमी दैत्यो का निवास था। उन्होने उस स्त्री से समागम करके स्त्री संतति नाम की एक जाति को उत्पन्न किया, इसी कारण से इस देश का नाम अब तक 'पश्चिमी-स्त्रियाँ' प्रसिद्ध है।

सिहल-वासियो का डीलडौल छोटा और उनका रङ्ग काला होता है। उनकी ठोढी चौडी और मस्तक ऊँचा होता है। प्रकृति से ही यहाँ के लोग भयानक और क्रोधी होते हैं। कोई भी क्रूरता का काम हो इनको करते हुए तनिक भी आगा पीछा नही होता। यह सब इनका स्वभाव सिहवशीय होने के कारण है। इनकी सारी कथा यही है कि ये लोग बडे बहादुर और साहसी होते हैं।

बुद्धधर्म के इतिहास से पता चलता है कि रत्नद्वीप के लौहनगर मे राक्षसी स्त्रि-

---

(1) क्या 'सिहल' का अर्थ 'सिह पकड़ना' अथवा 'ल' का अर्थ 'पकड़ना' है? द्वीपवंश में सिह के पुत्र "विजय" का नाम लिखा है।

याँ रहती थी। इस नगर के टीले पर दो झंडे गडे हुए थे जिनसे शकुन अशकुन का पता लगता था, अर्थात् जो कुछ घटना होने वाली होती थी उसका निदर्शन ये झंडे उस समय कर देते थे जिस समय सौदागर लोग टापू के निकट आते थे। शुभ शकुन देखकर वे राक्षसियाँ मनोहर स्वरूप धारण करके सुन्दर सुन्दर पुष्प और सुगधित वस्तुएँ लिये गाती बजाती उन लोगो से मिलने जाती थी और बडे प्रेम से उनको लौहनगर मे बुला लाती थी। इसके उपरान्त सब प्रकार के आमोद-प्रमोद से सन्तुष्ट करते हुए उन लोगो को लोहे के कारागार मे बन्द कर देती थी। और उनके विश्राम काल मे पहुँच कर उनको भक्षण कर लेती थी।

उन दिनो एक बड़ा भारी व्यापारी जिसका नाम सिह था जम्बूद्वीप मे रहा करता था। उसके पुत्र का नाम सिहल था। पिता के वृद्ध हो जाने पर यही (सिहल) अपने परिवार का मुखिया हुआ। एक दिन यह अपने ५०० साथी व्यापारियो को लिये र नो की खोज मे आँधी-तूफान और समुद्र की तुङ्ग-तरङ्गो का कष्ट उठाता हुआ रत्न-द्वीप मे पहुँचा।

राक्षसियाँ शुभ शकुन देखकर सुगधित पुष्प और अन्य वस्तुएँ लेकर गाती-बजाती हुई उन लोगो के निकट गई और अपने लौहनगर मे ले आई। सिहल का सम्बन्ध राक्षसी रानी के साथ हुआ तथा दूसरे व्यापाअियो ने भी शेष राक्षसियो मे से एक एक अपने लिए छाँट ली। यथासमय इन सबसे एक एक पुत्र उत्पन्न हो जाने पर वे राक्षसियाँ अपने अपने सहवासियो से असन्तुष्ट हो गई और उन सबको लोहे के कारागार मे बन्द करके नवीन व्यापारियो को वरण करने की चिन्ता करने लगी।

उसी समय सिहल को रात्रि मे एक ऐसा स्वप्न हुआ जिसके दुष्परिणाम का विचार करके वह विकल हो उठा और इस आपदा से बचने का विचार करता हुआ लौहकारागार तक पहुँचा। वहाँ उसको ऐसे वेदनात्मक शब्द सुनाई पडे जिनसे उनकी विकलता और भी बढ गई। वह एक बडे भारी वृक्ष पर चढ गया और उन आर्तनाद करने वाले पुरुषो से पूछा, ' हे दुखी पुरुषो! तुम कौन हो और क्यो इस प्रकार चिल्ला रहे हो ?" उन लोगो ने उत्तर दिया' "क्या तुमको अब भी नही मालूम हुआ ? वे स्त्रियाँ जो इस देश मे निवास करती हैं राक्षसी हैं। पहले उन्होने हमको गाते-बजाते हुए लाकर नगर मे रक्खा, परन्तु जब तुम आये तब हमको इस कैदखाने मे बन्द कर दिया और अब नित्य आकर वे हमारा मास खाती है। इस समय हम लोग आधे खा डाले गये है। तुम्हारी भी बारी शीघ्र आने वाली है।"

सिहल मे पूछा, "कोई ऐसी तदबीर है जिससे हम इस विपद से बच सकें ?" उन्होने उत्तर दिवा,"हम लोगो ने सुना है कि समुद्र के किनारे कोई घोड़ा रहता है जो देवताओ के समान हैं, और जो कोई उससे पूर्ण भक्ति के साथ प्रार्थना करता है

उसको वह अपनी पीठ पर चढाकर समुद्र के पार पहुँचा देता है[1] ।"

सिहल इसको सुनकर अपने साथियो के पास पहुँचा और चुपचाप सब कथा कहकर उन लोगों के साथ समुद्र के तट पर आया। उन लोगो की उत्कट प्रार्थना से प्रसन्न होकर वह घोडा प्रकट हुआ और उनसे कहने लगा, "तुम सब लोग मेरे रोएँदार शरीर को पकड लो। मैं तुम सबको भयानक मार्ग से निकाल कर समुद्र के पार पहुँचा दूँगा और तुम्हारे सुन्दर भवन् जम्बूद्वीप तक पहुँचा आऊँगा। शर्त यही है कि पीछे फिर कर न देखना।"

व्यापारी लोग उसकी आज्ञानुसार करने को तत्पर हो गये। उन लोगो ने घोड़े के बाल पकड़ लिये। वह भी उन सबको लिये हुए आकाश मे चढकर मेघो को नाँघता हुआ समुद्र के उस पार पहुँच गया।

राक्षसियो को जिस समय यह अवगत हुआ कि उनके पति भाग गये तो वे बड़े अचम्भे मे आकर एक दूसरी से पूछने लगी कि सबके सब कहाँ गये। फिर अपने अपने बच्चो को लिये हुए इधर-उधर घूम-घूम कर ढूंढने लगी। उस समय उनको विदित हुआ कि वे लोग अभी किनारे के पार गये है, इसलिए सबकी सब उडती हुई उनके पीछे दौडी। एक घन्टा भी न बीतने पाया था कि उन्होने उन लोगो को देख लिया, और एक आँख से आँसू और दूसरी आँख से प्रसन्नता प्रदर्शित करती हुई उनके निकट पहुँची। और अपने शोक को दबाकर कहा, "जब पहले-पहल हमारी भेट तुम लोगो से हुई थी तब हमने अपना अहोभाग्य माना था। हमने तुम लोगो को ले जाकर अपने भवन मे रक्खा और बहुत दिनो तक प्रेम-पूर्वक और सब प्रकार से तुम्हारी सेवा की। परन्तु उसके पलटे मे तुम लोगो ने हमको वियोग देकर अपनी स्त्री और सन्तति को अनाथ कर दिया। इस प्रकार का कष्ट जो हम भुगत रही है कोई भी सहन करने मे समर्थ नही हो सकता। हमारी प्रार्थना है कि अब अधिक वियोग-दुःख हमको न दीजिए और हमारे साथ नगर को लौट चलिए।"

परन्तु व्यापारी लोगो के चित्त मे लौटने की इच्छा न हुई। राक्षसियाँ, यह देखकर कि हमारे वचनो का कुछ प्रभाव नही हुआ, बड़े हाव-भाव से उन लोगो पर माया फैलाने लगी, और ऐसा कुछ ढङ्ग प्रदर्शित किया कि व्यापारी लोग कामासक्त हो गये, और इस वजह से इन लोगो की जो कुछ प्रतिज्ञा थी वह जाती रही। यहाँ तक कि कुछ देर बाद उन राक्षसियो के साथ चलने तक के लिए उद्यत हो गये। स्त्रियाँ

(1) 'अभिनिष्कार मनसूत्र' मे घोडे को केशी लिखा है कदाचित् इस घोडे से तात्पर्य प्राकृतिक परिवर्तन से है, जिसकी शुभ सहायता से व्यापारी लोग यात्रा करते है। अवलोकितेश्वर भी प्रायः 'सफेद घोड़े' के नाम से सम्बोधन किया जाता है।

परस्पर बधाई देकर और प्रसन्नता के साथ अपने अपने पुरुषो के गलबाही डालकर साथ लिये हुए चली गई ।

परन्तु सिंहल की बुद्धि इस समय भी स्थिर रही । उसके विचार मे लेशमात्र भी अन्तर नही आया इसलिए वह समुद्र को पार करके भावी विपत्ति से बच गया ।

केवल राक्षसी रानी के अकेली लौट आने पर दूसरी स्त्रियो ने उसको फटकारा । उन्होने कहा, "तुम अवश्य बुद्धि और चातुरी से रहित हो, तभी तो तुम्हारे पति ने तुमको छोड़ दिया है । तुम्हारी ऐसी मूर्ख और अयोग्य स्त्री को इस देश मे मुँह न दिखाना चाहिए ।" इस बात को सुनकर राक्षसी रानी अपने पुत्र को लेकर उड़ती हुई सिंहल के पीछे दौडी । उसने निकट पहुँच कर सब प्रकार का प्रेम, हावभाव और कटाक्ष प्रदर्शित किया परन्तु सिंहल ने अपने मुख से कुछ मत्रो का उच्चारण करने के उपरान्त हाथ मे तलवार लेकर घुमाते हुए कहा, "तू राक्षसी है और मैं मनुष्य हूँ, मनुष्यो और राक्षसो की जाति मे बडा भेद है, इन दोनो मे एकता नही हो सकती, यदि तुम और अधिक प्रार्थना करके मुझको कष्ट दोगी तो मैं तुम्हारा प्राण ले लूंगा ।"

राक्षसी रानी यह सोच कर कि अधिक वादानुवाद करना व्यर्थ है, वायु मे चढ कर वहाँ से अन्तर्धान हो गई और सिंहल के घर पर पहुँच कर उसके पिता से कहा, "मैं एक राजा की पुत्री हूँ और अमुक देश की रहने वाली हूँ । सिंहल ने मुझको अपनी स्त्री बना लिया था और उसके द्वारा मेरे गर्भ से एक पुत्र भी उत्पन्न हो चुका है । रत्न और अन्य वस्तु लेकर हम अपने स्वामी के देश को लौट रहे थे कि जहाज तूफान के फेर मे पड़कर समुद्र मे डूब गया, केवल मैं, मेरा बच्चा और सिंहल यही तीन व्यक्ति बच गये । बहुत सी नदियाँ और पहाडो को पार करने के कारण दुःख और भूख इत्यादि से विकल होने कारण एक दिन मेरे मुख से कुछ कटु शब्द निकल गये जिनसे मेरा पति रुष्ट हो गया । उसने मेरा साथ छोड दिया और इतना अधिक कोप प्रकट किया कि मानो वह कोई राक्षस हो[1] । यदि मैं अपने देश को लौटने का प्रयत्न करती, तो वह दूर बहुत था, यदि मैं वही ठहर जाती, तो एक बेजाने देश मे अकेली मारी मारी फिरती और ठोकरे खाती चाहे मैं ठहर जाती और चाहे लौट जाती मेरी रक्षा कही नही थी । इसी लिए मैंने आपके चरणो मे आकर सब हाल निवेदन करने का साहस किया है ।

सिंह ने कहा, "यदि तुम्हारा कहना सत्य है तो तुमने बहुत उचित किया ।" इसके उपरान्त वह उसके मकान मे रहने लगी । कुछ दिनो के बाद सिंहल भी आया ।

---

(1) अथवा, यह भी अर्थ हो सकता है कि "जैसे मैं कोई राक्षसी हूँ ।" जुलियन साहब ने यही अनुवाद किया है ।

उसके पिता ने उससे पूछा, "यह क्या बात है कि तुमने धन रत्नादि को सब कुछ समझा और अपनी स्त्री बच्चे को कुछ नही ?" सिंहल ने उत्तर दिया, "यह राक्षसी है।" इसके उपरान्त उसने आदि से अन्त तक सम्पूर्ण इतिहास अपने माता-पिता से कह सुनाया। सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर उसके सम्बन्धी लोग भी रुष्ट हो गये और उस राक्षसी को अपने घर से खदेड़ दिया। राक्षसी ने जाकर राजा से अपना दुखडा रो सुनाया जिस पर राजा ने सिंहल को दण्ड देना चाहा, परन्तु सिंहल ने समझाया, 'राक्षसियो को माया खूब आती है, ये वडी धोखेबाज होती हैं।"

परन्तु राजा ने उसके वचनों को असत्य समझ कर और मन ही मन उसके स्वरूप पर मोहित होकर सिहल से कहा, "चूँकि तुमने निश्चित रूप से इस स्त्री का परित्याग कर दिया है इसलिए मैं इसको अपने महल मे रखकर इसकी रक्षा करूँगा।" सिंहल ने उत्तर दिया, मुझको भय है कि यह आपको अवश्य हानि पहुँचावेगी, क्योकि राक्षस लोग केवल मांस और रुधिर ही के भक्षण-पान करने वाले होते है।"

परन्तु राजा ने सिंहल की बात सुनी अनसुनी कर दी और उसी क्षण उसको अपनी स्त्री बना लिया। उसी दिन अर्द्धनिशा मे वह उडकर रत्नद्वीप मे पहूँची और अपनी ५०० राक्षसियों को लेकर फिर लौट आई। राजा के भवन मे पहुँच कर उन लोगो ने अपने कारण-मन्त्र का प्रयोग करके सब जीवधारियो को मार डाला और उनके मास तथा रक्त को भरपेट भक्षण पान करके जो कुछ बच रहा उसको भी उठा ले गई और अपने देश रत्नद्वीप को लौट गई।

दूसरे दिन सवेरे सब मन्त्री लोग राजा के द्वार पर आकर इकट्ठा हो गये परन्तु उन लोगों ने फाटक को बन्द पाया। उस फाटक को खोलने मे वे लोग असमर्थ थे। थोड़ी देर तक राह देखने और पुकारापुकारी करने पर भी भीतर से किसी व्यक्ति का शब्द न सुनकर उन लोगो ने फाटक को तोड़ डाला और भीतर घुस गये। महल मे पहुँच कर उन लोगो ने एक भी जीवित प्राणी नही पाया, पाया क्या केवल खाई खुतरी हड्डियाँ। कर्मचारी लोग आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह तकने लगे और व्याकुलता से जोर जोर से विलाप करने लगे। वे लोग इस दुर्घटना का कुछ भी कारण न समझ सके। अन्त मे सिंहल ने आकर आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया तब जाकर उन लोगो को पता लगा कि यह दुर्दशा क्योकर हुई।

इस समय मन्त्रियो, भिन्न भिन्न कर्मचारियों, और वृद्ध पुरुषों को यह चिन्ता हुई कि अब राजसिंहासन पर किसे बिठलाया जाय। सब लोग सिंहल ही की ओर देखने लगे क्योंकि उन सबमे यही सबसे अधिक ज्ञानी और धार्मिक था। उन लोगो ने परस्पर सलाह करके कहा, "राजा का चुनना सहज काम नही है; उसका तपस्वी और

ज्ञानी होना जितना आवश्यक है उतना ही दूरदर्शी होना भी उचित है। यदि वह धर्मात्मा और ज्ञानी नही है तो उसकी कीर्ति न होगी। यदि उसमे दूरदर्शिता नही है तो वह राज्य-सम्बन्धी कार्यो को सुचारु रूप से किस प्रकार कर सकेगा ? इस समय सिंहल ही ऐसा व्यक्ति मालूम होता है। उसको स्वप्न मे ही सम्पूर्ण विपत्ति का आभास मिल गया था और अपने तप से वह देवस्वरूप अश्व का दर्शन कर सका था। उसने राजा से भक्तिपूर्वक सब बात निवेदन भी कर दी थी। यह केवल उसकी बुद्धिमत्ता ही का फल है कि वह बच गया। इसलिए उसी को राजा बनाना चाहिए।"

इस सम्मति को सुनकर लोगो ने उसके राजा बनाये जाने पर प्रसन्नता प्रकट की। यद्यपि सिंहल की इच्छा इस पद को स्वीकार करने की नही थी परन्तु अस्वीकार भी नही कर सका। सब प्रकार के राज-कर्मचारियो के मध्य मे उपस्थित होकर उसने सबका अभिवादन किया और राज-भार को स्वीकार किया। राज्यासन पर बैठ कर और प्राचीन कुप्रथाओ को हटा कर उसने योग्य और उत्तम व्यक्तियो का सत्कार किया तथा निम्नलिखित घोषणा से सबको सूचित किया.—"मेरे पुराने व्यापारी मित्र राक्षसियो के देश मे है, वे लोग जीवित हे अथवा मृत यह मैं नही कह सकता परन्तु वै लोग चाहे जैसी अवस्था मे हो मै अवश्य उनको विपत्ति के जाल से बचाने का प्रयत्न करूँगा। हमारी सेना सुसज्जित हो। दुर्भाग्य-ग्रसितो की सहायता करना और उनके दु.खो को दूर करना, राजा का उसी प्रकार धर्म है जिस प्रकार बहुमूल्य रत्नादि से खजाने को बढना राज्य की भलाई करना है।"

इस आज्ञा पर उसकी फौज तैयार हो गई और जहाजो पर चढ कर रत्नद्वीप की ओर प्रस्थानित हो गई। उस समय लौहनगर के शिखर पर का अशुभ-सूचक झडा फडफड़ाने लगा[1]।

राक्षसियाँ उसको देखकर भयविचलित हो गई और मोहिनी रूप धारण करती हुई उन लोगो को फुसलाने फाँसने के लिए प्रस्थानित हुई। परन्तु राजा उनके झूठे फन्दो को भली भाँति जानता था इसलिए उसने अपने वीरो को आज्ञा दे दी कि अपने अपने मन्त्रो को उच्चारण करते हुक युद्ध-कौशल की प्रदर्शित करो। यह दशा देखकर राक्षसियाँ भाग खडी हुई और जल्दी से कुछ तो समुद्र के पहाड़ी टापुओ मे भाग गई और कुछ समुद्र ही मे डूब कर मर गई। सेना ने उनके लौहनगर को ध्वस कर दिया और लौहकारागार को तोड़ कर व्यापारियो को छुड़ाने के साथ ही रत्नादि का बहुत बडा खजाना उठा लिया। फिर बहुत से लोगो को बुलाकर और इस देश मे बसाकर

---

(1) इससे विदित होता है कि 'अशुभसूचक झंडा' राक्षसियो को भय की सूचना देने वाला था।

रत्नद्वीप को अपनी राजधानी बनाया। उस समय से यहा पर बहुत से नगर बस गये और इस जगह की दशा सुधर गई। राजा के नामानुसार इस देश का प्राचीन नाम वदल फर सिंहल हो गया। यह नाम जातको मे भी, जिनको शाक्य तथागत ने प्रकट किया था, लिखा हुआ पाया जाता है।

सिंहल-राज्य पहले अशुद्ध धर्म मे लिप्त था परन्तु बुद्धदेव के निर्वाण के सौ वर्ष बाद अशोक के छोटे भाई महेन्द्र ने, जिसने सासारिक वासनाओ को परित्याग कर दिया था और ६ हो आध्यात्मिक शक्तियो तथा मुक्ति के अष्ट साधनो को अवगत करने के साथ ही साथ स्थानो मे शीघ्रता से जा पहुँचने की भी शक्ति को प्राप्त कर लिया था, इस देश मे आकर सत्य-धर्म के ज्ञान और विशुद्ध सिद्धान्तो का प्रचार किया। इस समय लोगो मे विश्वास की मात्रा बढी। और कोई १०० संघाराम जिनमे २०,००० साधु निवास कर सकते थे बन गये। ये लोग बुद्धदेव के धर्मोपदेश का विशेष रूप से अनुसरण करते थे और स्थविर-धर्म के महायान-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। दो सौ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात्[१] कुछ ऐसा वादा-विवाद बढा कि एक सम्प्रदाय के दो भेद हो गये। पुरानो का नाम 'महाविहारवासी'[२] पड गया, जो महायान-सम्प्रदाय की प्रतिपक्षता ग्रहण करके हीनयान-सम्प्रदायी हो गये, और दूसरे का नाम 'अभयगिरिवासी'[३] हुआ जिन्होने दोनो यानो का अध्ययन करके त्रिपिटक का प्रचार बढाया। साधु लोग सदाचार के नियमो का अवलम्बन करके अपने ज्ञान-ध्यान के बढाने मे बहुत प्रसिद्ध थे।

---

(1) अर्थात् ऐसा मालूम होता है कि लंका (Geylon) मे बुद्धधर्म के प्रचलित होने के २०० वर्ष पश्चात् यह बात हुई। यदि यह बात है तो यह समय ईसा से ७५ वर्ष पूर्व मानना पडेगा क्योकि उसी समय मे लंका मे त्रिपिटक का अनुवाद हुआ था। इस वाक्य से कि "त्रिपिटक का प्रचार बढाया" यह बात परिपुष्ट भी होती है।

(2) यह संस्था महाविहार साधुओ के सिद्धान्तानुसार धर्माचरण करती थी। यह महाविहार अनुराधपुर राजधानी से ७ ली दक्षिण दिशा मे था। इसको ईसा से २५० वर्ष पूर्व 'देवनम्पियतिस्स' ने निर्माण किया था (देखो फाहियान ३९ और दीपवंस १९) ओल्डनबर्ग साहब दीपवंस की भूमिका में इस इमारत-सम्बन्धी कथा का कुछ उल्लेख भी करते हैं। इस विहार के विषय मे बील साहब का नोट जो फाहियान की पुस्तक पृष्ट १५९ मे उन्होंने लिखा है देखने-योग्य है।

(3) अभयगिरि विहार का कुछ वृत्तान्त जानने के लिए देखो दीपवंस १९ और बील साहब की फाहियान-नामक पुस्तक पृ० १५१ नोट १। कदाचित् यह वही विहार है जिसमे बुद्धदेव के दन्तावशेष का दर्शन फाहियान को कराया गया था।

उनका विशुद्ध शान्त और प्रभावशाली आचरण भविष्य के लिए उदाहरण-स्वरूप माना जाता था।

राजमहल के पास एक विहार है जिसमे बुद्धदेव का दांत है। यह विहार कई सौ फीट ऊँचा तथा दुष्प्राप्य रत्नो से सुशोभित और सुसज्जित है। विहार के ऊपर एक सीधी छड लगी हुई है जिसके सिरे पर पद्मराज रत्न जड़ा हुआ है। इस रत्न मे से ऐसा स्वच्छ प्रकाश रातदिन निकाला करता है जो बहुत दूर से देखने पर एक चमकदार नक्षत्र के समान प्रतीत होता है। प्रत्येक दिन मे तीन बार राजा स्वय आकर बुद्धदन्त को सुगधित जल से स्नान कराता है और कभी कभी स्वच्छता के लिए सुगधित वस्तुओ के बुरादे से मजन भी कराता है। चाहे स्नान कराना हो अथवा धूपदीप करना हो प्रत्येक उपचार के अवसर पर बहुमूल्य रत्नो का प्रयोघ बहुतायत से किया जाता है।

सिंहल देश, जिसका प्राचीन नाम सिह का राज्य है, 'शोक-रहित राज्य'[१] के नाम से भी पुकारा जाता है। सब बातो मे यह ठीक दक्षिणी भारत के समान है। यह देश बहुमूल्य रत्नो के लिए प्रसिद्ध है इस कारण इसको लाग रत्नद्वीप भी कहते है। प्राचीन काल मे एक समय बुद्धदेव ने सिंहल नामक एक मायावी स्वरूप धारण किया था। उस समय साधुओ और मनुष्यो ने उनकी प्रतिष्टा करके उनको इस देश का राजा बनाया था इसलिए भी इसका नाम सिहल हुआ। बुद्धदेव ने अपनी प्रबल आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग करके लौहनगर को ध्वस्त और राक्षसियो को परास्त कर दिया था तथा दुखी और दरिद्र पुरुषो को शरण मे लेकर नगर और ग्रामो को बसा कर इस भूमि को शिष्यो के निवास से पवित्र बना दिया था। विशुद्ध धर्म के प्रचार के निमित्त उन्होने अपना एक दाँत भी इस देश को प्रदान किया था जो वज्र के समान कठोर और हजारो वष तक के लिए अक्षय है। इसमे से कभी कभ। प्रकाश भी प्रस्फुटित होता है जो आकाश स्थित नक्षत्र अथवा चन्द्र के समान होता है। यहाँ तक कि कभी कभी सूर्य की समकक्षता को भी पहुँच जाता है। यह रात ही मे प्रकाशिक होता है। जो लोग इस दाँत की शरण मे आकर उपवास और प्रार्थना आदि करते हैं उनको उनके अभीष्ट का उत्तर आकाशवाणी द्वारा मिल जाता है। देश मे यदि अकाल महामारी अथवा कोई दुख फैल जावे और दृढतापूर्वक प्रार्थना की जावे तो कुछ ऐसे अलौकिक चमत्कार प्रकट हो जाते हैं जिनसे उस क्लेश का नाश हो जाता है। यद्यपि इसका प्राचीन नाम सिंहल है परन्तु इसको आजकल 'सिलनगिरि'[२] भी कहते है।

(1) कदाचित् 'शोक-रहित' शब्द से रामायण की अशोकवाटिका से मतलब है।

(2) इससे स्पष्ट है कि भारत मे पुर्तगालवालो के आने के पूर्व ही सिंहल का नाम सिलन (Ceylon) प्रसिद्ध हो गया था।

राजा के भवन के निकट ही बुद्धदन्त विहार है जो सब प्रकार के रत्नो से आभूषित और सूर्य के समान प्रकाशित है। उसको देखने से नेत्र झिलमिला जाते है। इस अवशेष की पूजा प्रत्येक नरेश के समय मे भक्ति पूर्वक होती चली आई है परन्तु वर्तमान राजा कट्टर विरोधी है, और बुद्ध धर्म की प्रतिष्ठा नही करता है यह चोलवशी है और इसका नाम अली फन्नइर्ह (अलिबुनर ?) है। यह बडा ही निर्दय और जालिम है तथा जितने कुछ अच्छे कार्य है .बका विरोधी है। परन्तु देश के लोग अब भी बुद्धदेव के दाँत की भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठा करते हैं।

बुद्धद त विहार के निकट ही एक और छोटा सा विहार है। यह भी सब प्रकार के बहुमूल्य रत्नो से सुसज्जित है। इसके भीतर बुद्धदेव की स्वर्णमूर्ति है। इसको किसी प्राचीन नरेश ने बुद्धदेव के डील के बराबर बनवाया था और बहुमूल्य रत्नो के उष्णीष (पगड़ी) से सुभूषित करा दिया था।

कालन्तर मे एक चोर को इस स्थान के बहुमूल्य रत्नो के चुरा लेने की इच्छा हुई, परन्तु इसके दोनो द्वारो और सभामण्डपो पर कठिन पहरा रहता था इसलिए उसने यह मसूबा किया कि सुरङ्ग खोद कर विहार के भीतर पहुँचे और रत्नो को चुरा लेवे उसने ऐसा ही किया भी, परन्तु जैसे ही रत्नो मे उसने हाथ लगाना चाहा कि मूर्ति ऊपर उठ गई और इतनी अधिक ऊँची हुई कि उसका हाथ वहाँ तक न पहुँच सका। उस समय उसने अपने प्रयत्न को विफल पाकर बडे शोक के साथ कहा, "प्राचीन काल मे जब तथागत बोधिसत्व धर्म का अभ्यास कर रहे थे उस समय उनका हृदय बड़ा उदार था। उनकी प्रतिज्ञा थी कि चारो प्रकार की सृष्टि पर दया करके वह प्रत्येक वस्तु-द्वारा उनका पालन-पोषण करेगे। अपने देश और ग्राम के लिए ही उनका जीवन था। परन्तु इस समय उनकी स्थानापन्न मूर्ति बहुमूल्य रत्नो के देने मे भी सकोच करती है। इस समय की दशा पर ध्यान देने से तो यही मालूम होता है कि उनके शब्द, जिनसे उनके पुरातन चरित्र का पता चलता है, ठीक नही है।" इन शब्दो को सुनते ही मूर्ति ने अपना सिर झुका दिया कि वह रत्नो को उतार लेवे। चोर उन रत्नो को लेकर बेचने के लिए व्यापारियो के पास ले गया। वे लोग उनको देखते ही चिल्ला उठे कि "इन रत्नो को तो हमारे प्राचीन नरेश ने बुद्धदेव की स्वर्णमूर्त्ति की पगड़ी मे लगवाया था तुमने इनको कहाँ पाया जो लुक्का चोरी बेचने आये हो?" यह कह कर वे लोग उसको पकड कर राजा के पास ले गये और सब वृत्तान्त निवेदन किया। राजा ने भी उससे यही प्रश्न किया कि तूने इन रत्नों को किससे पाया। चोर ने उत्तर दिया, "ये रत्न स्वय बुद्धदेव ने मुझको दिये है, मैं चोर नहीं हूँ।" राजा को उसकी बात पर विश्वास न हुआ इसलिए उसने एक दूत को आज्ञा दी कि बहुत शीघ्र जाकर इस

बात का पता लगाओ कि सत्य क्या है। विहार मे आकर उसने देखा कि मूर्ति का सिर अब भी झुका हुआ है। राजा इस चमत्कार को देखकर अन्त.करण से दृढ भक्त और प्रेमी हो गया। उसने चोर को दड से मुक्त कर दिया और रत्नो को उससे पुनः खरीद कर मूर्ति के सिर को सुसज्जित कर दिया। चूंकि उस अवसर पर मूर्ति का सिर झुक गया था इस कारण वह अब तक वैसा ही है।

राजमहल के एक तरफ एक बड़ा भारी रसोई-घर है जिसमे आठ हजार साधुओ के लिए नित्य भोजन बनाया जाता है। भोजन के नियत समय पर साधु लोग अपना-अपना पात्र लिये हुए इस स्थान पर आते हैं और भोजन को ग्रहण करके फिर अपने-अपने स्थान को लौट जाते है।[1] जिस समय से बुद्धदेव के सिद्धान्तो का प्रचार इस देश मे हुआ है उसी समय से राजा की ओर से यह पुण्य क्षेत्र स्थापित है। उत्तराधिकारी लोग इसको सचालित करते रहे है जिससे यह अब तक, हमारे समय तक भी चला जा रहा है। परन्तु गत दस वर्षों से देश मे ऐसी कुछ उथल-पुथल मची हुई है कि जिससे इस उपकारी कार्य की व्यवस्था ठीक नही है।

देश के समुद्री तट पर खाडी मे बहुमूल्य रत्न और मोती आदि पाये जाते है। राजा स्वय धार्मिक कृत्यो के निमित्त उस स्थान पर जाता है, उस समय देवता लोग उसको बहुमूल्य और दुष्प्राप्य रत्न आदि प्रसाद मे देते हैं। राजधानी के निवासी भी इसी अभिप्राय से इस स्थान पर आकर देवताओ को स्मरण करते हैं, परन्तु सब लोगो का लाभ उनके धार्मिक पुण्य के अनुसार जुदा-जुदा होता है। इन लोगो को जो कुछ मोती प्राप्त होते है उनके परिमाण के अनुसार कर भी देना पडता है।

देश के दक्षिण-पूर्व के कोने पर एक पहाड 'लंका'[2] नामक है। इसकी ऊँची ऊँची चोटियो और गम्भीर घाटियो पर देवताओ का निवास है, जो बराबर वहाँ आते जाते रहते हैं। इस स्थान पर तथागत भगवान् ने प्राचीन काल मे 'लिङ्ग किया किङ्ग'[3] (लङ्कासूत्र या लङ्कावतर) का निर्माण किया था।

---

(1) फाहियान ने भी इस क्षेत्र का वृत्तान्त लिखा है।

(2) लका को किसी स्थान पर नगर और कभी कभी पहाड़ लिखा गया है तथा सम्पूर्ण टापू के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त इसको सिंहल से भिन्न मानकर उज्जयिनी से जाती हुई मध्य रेखा पर निश्चय किया है। रामायण मे पहाड की तीन चोटियाँ (त्रिकूट) लिखी गई हैं और उसको रावण का निवास स्थान लिखा है।

(3) 'लकावतार सूत्र' अथवा सद्धर्म 'लकावतार सूत्र' अन्तिम कालिक ग्रन्थ है

इस देश से कई हजार ली दक्षिण दिशा मे समुद्र की ओर जाकर हम 'नरकिर' टापू में पहुँचे । इस द्वीप के निवासी छोटे कद के लगभग ३ फीट ऊँचे होते है । इन लोगो का बाकी शरीर तो मनुष्यो ही के समान होता है केवल मुख मे पक्षियो के समान चोच होती है । ये लोग खेती बारी नही करते, केवल नारियल पर रहते है ।

इस टापू से कई हजार ली पश्चिम दिशा मे चलकर और समुद्र को नाँघने पर एक निर्जन टापू की पूर्वी पहाडी पर बुद्धदेव की एक पाषाण-मूर्ति मिलती है जो लगभग १०० फीट ऊँची है । यह मूर्ति पूर्वाभिमूख, बैठी हुई अवस्था मे है । इसके उष्णीष (पगडी) मे एक रत्न है जिसका नाम चन्द्रकान्त है । जिस समय चन्द्रमा घटने लगता है उस समय इसमे से जल की धारा पहाड के पास और कगारो की नालियो मे बहने लगती है ।

किसी समय मे कुछ व्यापारियो का झुड तूफान के कारण आंधी पानी से विकल होकर बडे कष्ट से इस जन शून्य टापू मे पहुँचा । समुद्र का पानी खारी होने के कारण

तथा इसका विषय वहुत गुप्त है । इसमे अन्त:करण-सम्बन्धी विशेषकर आत्मा-सम्बन्धी सब बातें है । इस सूत्र के चीनी भाषा मे तीन अनुवाद पाये जाते है । (देखो इस सूची को १७६ वाली पुस्तक "Entering Lanka sutra" प्राय. वैष्णवो के सिद्धान्तो से मिलती-जुलती है । बुद्धधर्म, जो दक्षिण भारत से चीन मे सन् ५२६ ई० मे गया था, इसी सूत्रानुसार था, अतएव इस समय से पहले ही इस सूत्र की रचना हुई होगी । सर्वप्रथम अनुवाद सन् ४४३ ई० मे चीनी-भाषा मे हुआ था परन्तु यह अधूरा है । दूसरा सन् ५१३ ई० का और तीसरा सन् ७०० ई० का है। स्पेस हार्डी साहब ने Manual of Buddhism नामक पुस्तक पृ० ३५६ मे निम्न लिखित अवतरण (Csoma Korosi) ग्रन्थ से लेकर लिखा है । "द्वितीय ग्रन्थ अथवा सूत्र जिसका नाम 'आर्य लकावतार महायानसूत्र' है सस्कृत भाषा मे है, यह प्रतिष्ठित ग्रन्थ लंकायात्रा के समय मे लिखा गया था । बुद्धदेव बहुत से साधुओ बोधिसत्वो के सहित समुद्र के किनारे मलयगिरि की चोटी पर निवास करते थे उस समय लंकाधिपति की प्रार्थना पर इसकी रचना हुई थी।"हागसन सापब लिखते है कि लकासूत्र नेपाल मे चतुर्थ धर्म समझा जाता है, "इसमे ३,००० श्लोक है और यह लिखा हुआ है कि लका का राजा रावण मलयगिरि पर जाकर और श'क्यसिंह से पूर्वकालिका बुद्धो का वृतान्त सुन कर वोद्धधनन को प्राप्त हुआ था ।" इस वृत्तान्त मे सेमुएल वील साहब का विचार है कि कदाचित् योतारक पहाड, जिसका वर्णन दसवे अध्याय के अन्त मे आया है, वही लंकागिरि है ।

वे लोग बहुत दिनो तक प्यास के मारे विकल होते रहे। परन्तु पूर्णिमा के दिन, जिस समय पूर्णचन्द्र प्रकाशित था, मूर्ति के सिर पर से पानी टपक चला, जिसको पीकर उन लोगो की जान मे जान आई। उस समय तो उन लोगो को यही विश्वास हुआ था कि यह सब मूर्ति की करामात है और इसलिए आन्तरिक भक्ति के साथ उनका विचार हुआ कि कुछ दिन इस टापू मे निवास करके पूजा-उपासना करें। परन्तु कुछ दिनो के बाद जब चन्द्रमा अदृश्य हो गया तब कुछ भी जल प्रवाहित न हुआ। इस बात पर मुखिया व्यापारी ने कहा, 'यह बात नही है कि यह जल केवल हमारे ऊपर कृपा करने के निमित्त प्रवाहित होता है। मैंने सुना है कि एक प्रकार का ऐसा मोती होता है जो चन्द्रमा का प्यारा होता है, जिस समय उस पर चन्द्रमा की पूर्ण किरणे पडती है उस समय आप ही आप उसमे से जल प्रवाहित होने लगता है। इसलिए मेरे विचार मे मूर्ति के सिर पर जो रत्न है वह कदाचित् इसी प्रकार का है।" यह कह कर इस बात का पता लगाने के लिए वे लोग पहाड़ पर चढ गये। उन्ही लोगो ने मूर्ति के शिरो-भूषण मे चन्द्रकान्तमणि को देखा था और उन्ही लोगो के मुख से सुनकर लोगो को पीछे से यह वृत्तान्त मालूम हुआ।

इस देश से पश्चिम म कई हजार ली समुद्र पार करके हम एक ऐसे टापू मे पहुँचे जो ,महारत्न द्वीप' था अर्थात् वह बहुमूल्य रत्नो के लिए प्रसिद्ध था। इसमे देवताओ के अतिरिक्त और कुछ आबादी नही है। सूनसान दिशा मे दूर से देखने पर यहाँ के पहाड़ और घाटियाँ चमकती हुई दिखाई पड़ती है। सबसे बडे आश्चर्य की बात यह है कि व्यापारी लोग यहाँ पर आकर भी खाली ही हाथ लौट जाते है।

द्राविड़ देश को छोडकर[1] और उत्तर दिशा मे यात्रा करके हम एक निर्जन वन मे पहुँचे। इस स्थान मे जितने ग्राम और नगर मिलते है सबके सब उजाड है। इस मार्ग से यात्रा करने वालो को डाकुओ के हाथ से बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। लोग इनके हाथो से जख्मी भी हो जाते है और इनके द्वारा पकड़ भी लिये जाते है। लगभग २,००० ली चलकर हम 'काङ्कनिनपुलो' पहुँचे।

काङ्किननपुलो (कोकणपुर)

इस राज्य का क्षेत्रफल ५,००० ली और राजधानी का ३० ली है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है। यह भलीभाँति जोती बोई जाती है और अच्छी फसल उत्पन्न करती

(1) इसी वाक्य से विदित होता है, जैसा कि अध्याय ११ के प्रारम्भ मे नोट देकर लिखा गया है, कि यात्री सिंहल को स्वयं नही गया था, और इसी लिए अनुमान होता है कि यहाँ तक उसने जो कुछ लिखा है सुन सुनाकर लिखा है।

है। प्रकृति गरम और मनुष्यो का स्वभाव जोशीला और फुर्तीला है। इन लोगो का स्वरूप काला और आचरण क्रूर और असभ्य है। परन्तु ये लोग विद्या से प्रेम तथा ज्ञान और धर्म की प्रतिष्ठा भी करते है। कोई १०० सङ्घाराम और लगभग दस हजार साधु हीन और महा दोनो यानो का पालन करने वाले हैं। देवताओ की भी उपासना अधिकता से होती है, कई सौ देवमन्दिर हैं जिनमे अनेक सम्प्रदाय के विरोधी पूजा उपासना करते है।

राजभवन के निकट ही एक विशाल सङ्घाराम है जिसमे कोई ३०० साधु निवास करते हैं; ये सबके सब बहुत योग्य है। इस सङ्घाराम मे एक विहार सौ फीट से भी अधिक ऊँचा है। इसके भीतर राजकुमार सर्वार्थसिद्धि का एक मुकुट दो फीट से कुछ ही कम ऊँचा और बहुमूल्य रत्नो से जटित रक्खा हुआ है। यह मुकुट रत्न-जटित डिब्बे के भीतर बन्द है। व्रतोत्सव के समय यह निकाला जाता है और एक ऊँचे सिंहासन पर रख दिया जाता है। लोग सुगधियो और पुष्पो से इसकी पूजा करते हैं। उस दिन इसमे से बडा भारी प्र ाश फैलने लगता है।

नगर के पास एक बडा भारी सङ्घाराम है जिसमे एक विहार लगभग ५० फीट ऊँचा बना हुआ है। इसके भीतर मैत्रेय बोधिसत्व की एक मूर्ति चन्दन की बनी हुई है जो लगभग दस फीट ऊँची है। इसमे से भी व्रतोत्सव के दिन आलोक निकलने लगता है। यह मूर्ति श्रुतविंशति कोटि अरहट[1] की कारीगरी है।

नगर के उत्तर मे थोडी दूर पर लगभग ३० ली के घेरे मे तालवृक्षो का वन है। इस वृक्ष के पत्ते लम्बे चौडे और रङ्ग मे चमकीले होते है। ये भारत के सब देशो मे लिखने के काम आते है। जङ्गल के भीतर एक स्तूप है जहाँ पर गत चारो बुद्ध आते जाते और उठते बैठते रहे है, जिसके चिह्न अब तक वर्तमान है। इसके अतिरिक्त एक और स्तूप मे श्रुतविंशति कोटि अरहट का शव भी है।

नगर के पूर्व मे थोडी दूर पर एक स्तूप है जिसका निचला भाग भूमि मे धस गया है, तो भी अभी यह ३० फीट ऊँचा बच रहा है। प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि इसके भीतर बुद्धदेव का कुछ अवशेष है और धार्मिक दिन पर इसमे से अद्भुत प्रकाश फैलता है। प्राचीनकाल मे तथागत भगवान् ने इस स्थान पर उपदेश करके और अपनी अद्भुत शक्ति को प्रकाशित करके अगणित पुरुषो को शिष्य बनाया था।

नगर के दक्षिण पश्चिम मे थोडी दूर पर लगभग १०० फीट ऊँचा एक स्तूप है

(1) इसका वर्णन दसवें अध्याय मे आया है, परन्तु इस स्थान पर कदाचित् 'सोणकुटिकन्न' से तात्पर्य है जो दक्षिण-भारत मे रहता था और कात्यायन का शिष्य था,

जो अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर श्रुतविंशति कोटि अरहट ने बड़ी विलक्षण शक्ति का परिचय देकर बहुत से लोगो को बौद्ध बनाया था। इसके पास ही एक सङ्घाराम है जिसकी इस समय केवल नीव ही अवशेष है। यह ऊपर लिखे अरहट का बनवाया हुआ था।

यहाँ से पश्चिमोत्तर दिशा मे गमन करके हम एक विकट वन मे पहुँचे जहाँ पर वनैले पशु और लुटेरो के झुड यात्रियो को बड़ी हानि पहुँचाते है। इस प्रकार चौबीस पचीम सौ ली चलकर हम 'मोहोलचअ' देश मे पहुँचे।

मोहोलचअ (महाराष्ट्र[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल ५,००० ली है। राजधानी[2] के पश्चिम मे एक बड़ी भारी नदी बहती है और लगभग ३० ली के घेरे मे है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है तथा समुचित रीति पर जोती बोई जाने के कारण उत्तम फसल उत्पन्न करने वाली है। प्रकृति गरम और मनुष्यो का आचरण सादा और ईमानदार है। यहाँ के लोगो का डील ऊँचा, शरीर सुदृढ, तथा स्वभाव वीरता-पूर्ण है। अपने उपकारी के प्रति जिस प्रकार ये लोग कृतज्ञता प्रकट करना जानते है उसी प्रकार शत्रु को पीडित करना भी खूब जानते हैं। अपने अपमान का बदला लेने मे ये लोग जीवन की परवा नही करते। और यदि दुखी पुरुष इनसे सहायता का प्रार्थी होवे तो उसके दुख-निवारण के लिए बहुत शीघ्र सर्वस्व तक दे देने को तैयार हो जाते है। जिस समय इनको किसी से बदला लेना होता है उस समय ये लोग प्रथम अपने शत्रु को सूचना दे देते है, और जब शत्रु लोग अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित हो जाते हैं तब उन पर अपने बरछो से हमला करते है। लडाई मे यदि एक पक्ष पराजित होकर भाग खडा होता है तो भी दूसरे पक्षवाले उसका पीछा करते हैं परन्तु उस व्यक्ति को नही मारते जो भूमि मे पडा होता है (अथवा जो हार मान कर शरण मे आ जाता है।) यदि फौज का कोई सरदार हार मान लेता है

---

(1) मराठो का देश।

(2) इस राजधानी के विषय मे बहुत से सन्देह हैं। M V de मार्टिन साहब इसका नाम देवगिरि अथवा दौलताबाद कहते है परन्तु यह नदी के तट पर नही है। कनिंघम साहब 'कल्यान' अथवा 'कल्यानी' नाम बताते हैं जिसके पश्चिम कैलासा नदी बहती है। परन्तु यह भड़ोच के—पूर्व की जगह पर—दक्षिण मे होना चाहिए। मि० फर्गुसन, टोक, फुल थम्ब अथवा पैतन निश्चय करते है, परन्तु कोकणपुर से उत्तर-पश्चिम इनकी दूरी ४०० मील होनी चाहिए परन्तु यह दूरी हमको तापती अथवा गिरना नदी के निकट ले जाती है।

तो उसको भी ये लोग नही मारते वरञ्ज उसको स्त्रियो की सी पोशाक पहना कर देश से निकाल देते है जिससे वह स्वय लज्जित होकर प्राण त्याग कर देता है। कई सौ योद्धा देश मे ऐसे है जो हर समय लडने-भिड़ने ही मे लगे रहते है। इन लोगो मे से एक एक व्यक्ति हाथ मे बरछा लेकर और मदिरा से मतवाला होकर दस दस हजार मनुष्यो को मैदान मे ललकार सकता है। ये वीर लोग चाहे जिसे मार डाले, देश के नियमानुसार इनके लिए कुछ दड नही है। जिस समय और जिस स्थान को इनमे से कोई भी जाता है, उसके आगे आगे डका बजता चलता है। इसके अतिरिक्त कई सौ हाथी भी इन लोगो के साथ होते है जो मदिरा पीकर सदा मतवाले बने रहते है, इनका शत्रु कैसा ही वीर से वीर और कितनी ही अधिक सेनावाला हो, इनके सामने नही ठहर सकता। जिस समय ये लोग अपनी नाग-मण्डली सहित उस पर टूट पड़ते है तो पल-मात्र मे उसको ध्वस्त करके यमपुर का मार्ग दिखा देते है।

इस प्रकार के वीर, और हाथियो की सत्ता रखने के कारण देश का राजा अपने निकटवर्ती नरेशो को कुछ भी नही गिनता। वह जाति का क्षत्रिय और उसका नाम पुलकेषी है। इसके विचार और न्याय की बडी प्रसिद्धि है तथा इसके लोकोपकारी कार्यो की प्रशसा बहुत दूर-दूर तक फैली हुई है। प्रजा भी इसकी आज्ञाओ का प्रसन्नता-पूर्वक पालन करती है। वर्तमान काल मे शिलादित्य राजा ने अपनी सेना-द्वारा पूर्व के सिरे से पश्चिम के सिरे तक को सब जातियो को परास्त करके अधीन कर लिया है, परन्तु यही एक देश ऐसा है जो उसके वश मे नही आसका है। उसने सम्पूर्ण भारत की सेना और प्रसिद्ध प्रसिद्ध सेनानियो को साथ लेकर, और स्वय सबका नायक बनकर इस देश के लोगो पर चढाई की थी परन्तु यहाँ से उसे विफलमनोरथ ही लौटना पडा था। यहाँ उसका कुछ कावू न चला।

इतनी बात से पता लगता है कि यहाँ के लोग कैसे वीर है। ये लोग विद्याप्रेमी है और विरोधी तथा बौद्ध दोनो के सिद्धान्तो का अध्ययन करते हैं। देश भर मे कोई सौ सङ्घाराम और लगभग ५,००० साधु है जो हीन और महा दोनो यानो का अनुसरण करते हें। कोई सौ देवमन्दिर भी है जिनमे अनेक मतावलम्वी बहुसख्यक विरोधी उपासना आदि करते हैं।

राजधानी के भीतर और बाहर पाँच स्तूप उन स्थानो पर हैं जहाँ गत चारो बुद्ध आकर उठते बैठते रहे है। ये सब स्तूप अशोक राजा के बनवाये हुए हैं। इनके अतिरिक्त ईंट और पत्थर के और भी कितने ही स्तूप है। इन सवकी गिनती करना कठिन है।

नगर के दक्षिण मे थोडी दूर पर एक सङ्घाराम है जिसमें अवलोकितेश्वर

बोधिसत्व की एक प्रतिमा पत्थर की है। अपनी चमत्कार शक्ति के लिए इस मूर्ति की बडी ख्याति है। बहुत से लोग जो गुप्तरूप से इसकी स्तुति करते है अवश्य अपनी कामना को पाते है।

देश की पूर्वी सीमा पर एक बडा पहाड है जिसकी चोटियाँ ऊँची है और जिसमे दूर तक चट्टानें फैली चली गई है, तथा खुरखुरे करार भी है। इस पहाड मे एक अँधेरी घाटी के भीतर एक सघाराम है। इसके ऊँचे ऊँचे कमरे और बगली रास्ते चट्टानो मे होकर गये है। इस भवन के खड पर खड पीछे की ओर चट्टान और सामने की ओर घाटी देकर बनाये गये है[1]।

यह सघाराम आचार[2] अरहट का बनवाया हुआ है। यह अरहट पश्चिमी भारत का निवासी था। जिस समय इसकी माता का देहान्त हुआ तो इसको इस बात की खोज लगाने की चिन्ता हुई कि माता का पुनर्जन्म अब किस स्वरूप मे होता है। उसको मालूम हुआ कि माता का जन्म स्त्री-स्वरूप मे इस देश मे हुआ है, इसलिए उसको बौद्धधर्म से दीक्षित करने के लिए वह इस देश मे आया। भिक्षा माँगने के लिए एक ग्राम मे पहुँच कर वह उसी मकान के द्वार पर पहुँचा जिसमे उसकी माता का जन्म हुआ था। एक छोटी कन्या उसको देने के लिए भोजन लेकर बाहर आई परन्तु उसी समय उसके स्तनो से दूध निकल कर टपकने लगा। घरवाले यह अद्भुत घटना देखकर बहुत चिन्तित हो गये। उन्होने इसको बहुत अशुभ समझा, परन्तु अरहट ने उन लोगो को समझा कर सम्पूर्ण कथा कह सुनाई जिसको सुनकर वह लडकी परम पद 'अरहट पद' को प्राप्त हो गई। अरहट ने उस स्त्री के प्रति, जिसने उसको उत्पन्न करके पालन किया था, कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिये अथवा उसके उत्तम उपकारो का बदला देने के लिए इस सघाराम को बनवाया था। बडा विहार लगभग १०० फीट ऊँचा है जिसके मध्य मे बुद्धदेव की मूर्ति लगभग ७० फीट ऊँची पत्थर की स्थापित है। इसके ऊपर

---

(1) यह वृत्तान्त वास्तव मे प्रसिद्ध अजन्ता की गुफा के विषय मे है जो इन्ध्या-दरी पहाडी मे चट्टानो को काटकर और निजन घाटी से घेर कर बनाई गई है।

(2) चैत्य गुफावाले लेख न० २६ मे, जो अजन्ता की गुफा मे है, यह लिखा है "स्थविर अचल सन्यासी ने जो धार्मिक और कृतज्ञ महात्मा था और जिसकी सब कामनायें सफल हो चुकी थी, महात्माओ के निवास के लिए इस शैलगृह का निर्माण कराया।" अरहट का नाम स्पष्ट है परन्तु चीनी भाषा मे नाम का अनुवादित शब्द Sohing 'सोहिङ्ग', है जिसका अर्थ 'करने वाला' अथवा 'कर्त्ता' है। इसलिए सेमुएल बील साहब ने, इसी अर्थ का बोधक और 'अचल' शब्द से मिलता-जुलता 'आचार' शब्द निश्चय किया है।

एक छत्र सात खंड का बना हुआ है जो बिना किसी आश्रय के ऊपर उठा हुआ है। प्रत्येक छत्र के मध्य मे तीन फीट का अन्तर है। पुरानी कथा के अनुसार यह प्रसिद्ध है कि ये छत्र अरहट के माहात्म्य से थँभे हुए हैं। कोई कहता है कि यह उसका चमत्कार है और कोई जादू का जोर बतलाता है, परन्तु इस विलक्षणता का कारण क्या है यह ठीक ठीक विदित नही होता। बिहार के चारो ओर की दीवारो पर अनेक प्रकार के चित्र बने हुए है जो बुद्धदेव की उस अवस्था के सूचक है जब वह बोधित्सव धर्म का अभ्यास करते थे। भाग्यशाली होने के वे शुभ शकुन जो उनकी बुद्धावस्था प्राप्त करने के समय हुए थे, और उनके अनेक आध्यत्मिक चमत्कार जो निर्वाण के समय तक प्रकट हुए थे, वे भी दिखलाये गये है। ये सब चित्र बहुत ठीक और बड़े ही सुन्दर बने हुए है। सघाराम के फाटक के बाहर उत्तर और दक्षिण अथवा दाहिने और बाएँ दोनो तरफ दो हाथी[1] पथर के बने हुए है। किंवदन्ती है कि कभी कभी ये दोनो हाथी इस जोर से चिंघाड उठते है कि भूमि विकम्पित हो उठती है। प्राचीन काल मे जिन बोधित्सव बहुधा इस सघाराम मे आकर निवास किया करते थे।

यहाँ से लगभग १,००० ली पश्चिम मे चलकर और नर्मदा नदी पार करके हम 'पोलुकइचोपो' (भरूकछेव, वेरीगज अथवा भरोच) राज्य मे पहुँचे।

पोलुकइचोपो (भरूकछ[2])

इस राज्य का क्षेत्रफल २,४०० या २५०० ली और इसकी राजधानी का क्षेत्र-फल लगभग २० ली है। भूमि नमक से गर्भित है वृक्ष और झाड़ियाँ बहुत कम हैं। यहाँ के लोग नमक के लिए समुद्र के जल को आग पर जलाते है। इन लोगो की जो कुछ आमदनी है वह केवल समुद्र से हैं। प्रकृति गरम और वायु सदा आँधी के समान चला करती है। मनुष्यो का स्वभाव हठी और सौम्यतारहित है। ये लोग विद्याध्ययन नही करते तथा विरोधी और बौद्ध दोनो धर्मों के मानने वाले है। कोई दस संघाराम लगभग ३०० साधुओ सहित है। वे साधु स्थवीर-सस्था के महायान-सम्प्रदायानुयायी है। कोई दस देवमन्दर भी है जिनमे अनेक मत विरोधी पूजा-उपासना करते है।

यहाँ से उत्तर-पश्चिम लगभग २,००० ली चलकर हम 'मोलपो' देश मे पहुँचे।

---

(1) यहाँ पर कदाचित् उन दोनो हाथियो से अभिप्राय है जो सघाराम के सामने चट्टान पर बने हुए है और जो इस समय कठिनता से पहचाने जाते है।

(2) जुनार वाले पाली भाषा से लेख मे भरोच को भरूकछ लिखा है और भृगुकच्छ अथवा भृगुक्षेत्र लिखा है, और महात्मा भृगुऋषि का निवासस्थान बताया जाता है। भरोच के भार्गव ब्राह्मण उसी महात्मा भृग के वंशज बताये जाते हैं।

मोलपो (मालवा)

यह राज्य लगभग ६,००० ली और राजधानी लगभग ३० ली के क्षेत्रफल मे है। इसके पूर्व और दक्षिण मे माही नदी प्रवाहित है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है तथा फसलें अच्छी होती हैं। झाडियाँ ओर वृक्ष बहुत तथा हरे भरे है। फूल और फल वहुतायत से उत्पन्न होते हैं। विशेष कर गेहूँ की फसल के लिए यहाँ की भूमि बहुत उपयुक्त है। यहाँ के लोग पूरी ओर सत्तू (भुने हुए अन्न का आटा) अधिक खाते हे। मनुष्यो का स्वभाव धार्मिक और जिज्ञासु है' तथा बुद्धिमत्ता के लिए ये लोग बहुत प्रसिद्ध है इनकी भाषा मनोहर और सुस्पष्ट तथा इनकी विद्वत्ता विशुद्ध और परिपूर्ण है।

भारत के दो ही देश विद्वता के लिए अधिक प्रसिद्ध है, दक्षिण-पश्चिम मे मालवा और उत्तर-पूर्व मे मगध। इस देश मे लोग धर्म और सदाचार की ओर विशेष लक्ष्य रखते हैं। ये लोग स्वभाव से ही बुद्धिमान् और विद्याव्यसनी है तथा जिस प्रकार विरुद्ध मत का अनुकरण करने वाले लोग है उसी प्रकार सत्यधर्म के भी अनुयायी अनेक हैं और सब लोग परस्पर मिल जुलकर निवास करते हैं। कोई १०० सघाराम हैं जिनमे २,००० साधु निवास करते हैं। ये लोग सम्मतीय सस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अनुगमन करते हैं। सब प्रकार के कोई १०० देव-मन्दिर हैं। विरोधियो की सख्या अगणित है। इनमे पाशुपत ही अधिक है।

इस देश के इतिहास से विदित होता है कि आज से साठ वर्ष पूर्व इस देश मे शिलादित्य नामक राजा हो गया है। यह व्यक्ति बड़ा ही विद्वान् और बुद्धिमान् था। विशुद्ध शास्त्रीय ज्ञान के लिए इसकी बड़ी ख्याति थी। यह जिस प्रकार चारो प्रकार की सृष्टि की रक्षा और पालन करता था। उसी प्रकार तीनो कोषो[1] का भी आन्तरिक भक्त था। जन्म समय से लेकर मरण पर्यन्त उसके मुख पर कभी भी क्रोध की झलक दिखाई न पडी और न उसके हाथ से कभी किसी प्राणी को कुछ कष्ट ही पहुँचा। यहाँ तक कि घोडो और हाथियो तक को जल छान कर पिलाया जाता था, ताकि पानी के भीतर के किसी जन्तु को कुछ क्लेश न पहुँचे। उसके प्रेम और उसकी दया का यह हाल था। उसके पचास वर्ष से अधिक के शासनकाल मे जङ्गली पशु तक मनुष्यो के मित्र हो गये थे, कोई भी आदमी न उनको मार सकता था और न किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा सकता था। अपने भवन के निकट ही उसने एक बिहार बनवाया था जिसके बनाने मे कारीगरो की सम्पूर्ण वुद्धि खर्च हो गई थी, तथा सब प्रकार की वस्तुओ से वह सजाया गया था। इसमे ससाराधिपति सातो बुद्ध देवो की प्रतिमायें स्थापित

(1) बुद्ध, धर्म और सग।

की गई थी। प्रत्येक वर्ष वह 'मोक्ष महापरिषद्' नाम की सभा एकत्रित करता था जिसमे चारो दिशाओ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध महात्मा बुलाये जाते थे। उन लोगो को धार्मिक दान के स्वरूप मे चारो प्रकार की वस्तुएँ और उनके धार्मिक कृत्यो मे काम आने योग्य तीनों प्रकार के वस्त्र भी राजा प्रदान करता था। इसके अतिरिक्त वहुमूल्य सप्त धातु और अद्भुत प्रकार के रत्न आदि भी वह उनको देता था। यह पुण्य कार्य उस समय से लेकर अव तक बिना रोक-टोक चला जाता है।

राजधानी के उत्तर-पश्चिम लगभग २०० ली चलकर हम ब्राह्मणो के एक नगर मे आये। इसके एक तरफ एक खोखली खाई है जिसमे हर ऋतु मे जल की धारा प्रवाहित होती रहती है, और यद्यपि इसमे सदा पानी आया करता है तो भी ऐसा कभी नही होता कि जल की बहुतायत हो जावे। इसके एक तरफ एक स्तूप है। देश के प्राचीन इतिहास से विदित होता है कि प्राचीन काल मे एक ब्राह्मण वडा घमण्डी था। वह इस खदक मे गिर कर सजीव नरक को चला गया था। प्राचीन काल मे इस नगर मे एक ऐसा ब्राह्मण रहता था जो अपने ज्ञान और विद्या के वल से उस समय के सम्पूर्ण प्रतिष्ठित पुरुषो मे श्रेष्ठ समझा जाता था। उसने विरोधी और बौद्ध दोनो के गूढ से गूढ और गुप्त से गुप्त सिद्धान्तों का पूर्ण रीति से मनन किया था। इसके अतिरिक्त, ज्योतिष-सम्वन्धी ज्ञान भी उसका वहुत वढा चढा था। वह हर एक वात ऐसे जान लेता था मानो वह उसके हाथ ही मे हो। जैसे विद्वत्ता के लिए उसकी कीर्ति थी उसी प्रकार उसका आचरण भी सराहनीय था। क्या राजा और क्या प्रजा, सभी लोग समान रीति से उसका आदर करते थे। उसके कोई १,००० शिष्य भी थे जो उसके आचरण और विद्वत्ता की प्रशसा चारो दिशाओ मे फैलाने रहते थे। वह स्वयं भी अपनी प्रशसा इस प्रकार किया करता था, "मैं पुनीत सिद्धान्तो का प्रचार करने और मनुष्यो को सन्मार्ग दिखाने के लिए ससार मे आया हूँ। जितने प्राचीन महात्मा हो चुके है, अथवा जो लोग ज्ञानावस्था को पहुँचे है, वे सव मेरे सामने कुछ भी नही है। महेश्वरदेव वासुदेव, नारायणदेव, बुद्ध लोकनाथ आदि जिनकी सारे संसार मे पूजा होती है और जिनके सिद्धान्तो का लोग अनुकरण करते हैं, तथा जिनकी प्रतिमाओ की लोग पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं उन सवसे मैं विशेष कर्मपरायण हूँ, इसीलिए मेरी कीर्ति सव मनुष्यो से अधिक है। फिर क्यो उन लोगो की ऐसी प्रतिष्ठा होनी चाहिए ? क्योंकि उन्होने कोई विलक्षण कार्य तो किया नही है।"

ऐसे ही विचारो मे पड़कर उसने महेश्वरदेव, वासुदेव, नारायणदेव, बुद्धलोकनाथ की मूर्तियां लाल चन्दन की बनवा कर अपनी कुरसी मे पायों के समान जड़वा दी और यह आज्ञा दे दी कि जहां कही वह जाय यह कुर्सी भी उसके साथ जाय। यह उसके गर्व और आत्मश्लाघा का अच्छा प्रमाण था।

उन्ही दिनो पश्चिमी भारत मे एक भिक्षु-भद्ररुचि नामक था। उसने भी पूर्णरीति से हेतुविद्या-शास्त्र और अन्यान्य ग्रन्थो का अध्ययन परिश्रम और मननपूर्वक कर लिया था। उसकी भी बडी प्रतिष्ठा थी और उसके भी आचरण की सुगधि चारो दिशाओ में महक उठी थी। वह अपने प्रारब्ध पर विश्वास कर पूर्णतया सन्तुष्ट था—ससार मे उसको किसी वस्तु की इच्छा न थी। इस ब्राह्मण का हाल सुनकर उसको बडा खेद हुआ। उसने लम्बी साँस लेकर कहा, "हा शोक ! कैसे शोक की बात है। इस समय कोई श्रेष्ठ पुरुष नही है और इसी लिए यह मूर्ख-विद्वान् इस प्रकार का कार्य करके अधर्म को बटोर रहा है।"

यह कह कर उसने अपना दण्ड उठा लिया और बहुत दूर से यात्रा करता हुआ इस देश मे आया। उसके चित्त मे जो वासना घर किये हुए थी उससे पीडित होकर वह राजा के पास गया। राजा ने उसके फटे मैले वस्त्र देखकर उसकी कुछ भी प्रतिष्ठा नही की, तो भी उसकी उच्चाकांक्षा पर ध्यान देने से, उसको विवश होकर उसका आदर करना पडा और इसी लिए शास्त्रार्थ का प्रबध करके उसने ब्राह्मण को बुला भेजा। ब्राह्मण ने इस समाचार पर मुसकराते हुए कहा, "यह कैसा आदमी है जिसको अपने चित्त मे ऐसा विचार लाने का साहस हुआ ?"

उसके शिष्य तथा कई हजार अन्य श्रोता लोग सभा-भवन के आगे-पीछे दाहिने-बाएँ शास्त्रार्थ सुनने के लिए आकर जमा हो गये। भद्ररुचि अपने प्राचीन और फटे वस्त्रो को धारण करके और भूमि पर घास फूस बिछा कर बैठ गया, परन्तु ब्राह्मण उसी कुरसी पर, जो वह अपने साथ लाया था, बैठकर सत्यधर्म को बुरा और विरोधियो के सिद्धान्तो की प्रशशा करने लगा।

भिक्षु ने स्पष्ट रूप से धारा बाँधकर उसकी सब युक्तियो को घेर लिया, यहाँ तक कि कुछ देर के उपरान्त ब्राह्मण दब गया और उसने अपनी हार स्वीकार कर ली।

राजा ने कहा, "बहुत दिन तक तुम्हारी झूठी प्रतिष्ठा होती रही, तुम्हारे झूठ का प्रभाव जिस प्रकार राजा पर था उसी प्रकार जनसमुदाय को भी धोखा खाना पडा। हमारे यहाँ की पुरानी प्रथा है कि जो कोई शास्त्रार्थ मे परास्त हो जाता है उसको प्राण-दण्ड दिया जाता है।" यह कह कर उसने आज्ञा दी कि लोहे का तख्ता गरम किया जाय और उस पर यह बैठाया जाय। ब्राह्मण इस आज्ञा से भयभीत होकर उसके चरणो पर गिर पडा और क्षमा का प्रार्थी हुआ।

उस समय भद्ररुचि ब्राह्मण पर दया करके राजा के पास आकर कहने लगा, "महाराज ! आपके पुण्य का प्रसार बहुत दूर तक हो रहा है, आपकी कीर्ति दिगन्त-व्यापिनी है। कृपा करके आप अपने पुण्य को और भी अधिक परिवर्द्धित करने के लिए

इस आदमी को प्राणदान दीजिए और अपने चित्त मे दया को स्थान दीजिए'' । तब राजा ने यह आज्ञा दी कि यह व्यक्ति गधे पर सवार कराके सब ग्रामो और नगरो मे घुमाया जाय ।

ब्राह्मण अपनी हार से इतना अधिक पीडित हो गया था कि उसके मुख से रुधिर बहने लगा । भिक्षु उसकी इस दशा का समाचार पाकर उसको आश्वासन देने के लिए उसके पास गया और कहने लगा, "आपकी विद्वत्ता बहुत बढी-चढी है, आपने पुनीत और अपुनीत दोनो सिद्धान्तो का मनन किया है, आपकी कीर्ति सब ओर है, अब रही प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा अथवा हार जीत—सो यह तो हुआ ही करती है । और, अन्त मे कीर्ति है ही कौन वस्तु ?" ब्राह्मण उसके शब्द सुनकर क्रुद्ध हो गया और भिक्षु को गालियाँ देने लगा । उसने महायान-सम्प्रदाय को लपेटते हुए पूर्वकालिक पुनीत पुरुषों तक को अपशब्दो से अपमानित कर दिया । परन्तु उसके शब्द समाप्त होने भी न पाये थे कि भूमि फट गई और वह सजीव उसके भीतर चला गया । यही कारण है कि उसका चिह्न खाई मे अब तक वर्तमान है ।

यहाँ से दक्षिण-पश्चिम चलकर हम समुद्र की खाडी पर पहुँचे और वहाँ से २,८०० या २,५०० लो उत्तर-पश्चिम दिशा मे जाकर ओ-च-अली राज्य मे गये ।

ओचअली (अटाली)[2]

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ६,००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल लगभग २० ली है । आबादी घनी और रत्न तथा बहुमूल्य धातुएँ यहाँ पर बहुत पाई जाती है । भूमि की भी पैदावार आवश्यकतानुसार यथेप्ट होती है तो भी वाणिज्य लोगो का मुख्य व्यवसाय है । भूमि लोनही और रेतीली है । फूल-फल की उपज अधिक

(1) इस स्थान के वाक्य का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है कि 'यहाँ से दक्षिण पश्चिम दिशा मे चलकर हम दो समुद्रो के सङ्गम पर पहुँचे ।' परन्तु इस स्थान पर जो शब्द है उनका अर्थ सङ्गम और खाडी दोनो होता है । सेमुअल वील साहब ने खाडी (bay) ही लिखा है । कदाचित् यह कच्छ की खाडी होगी । हुइली ने इस खाडी का नाम नही लिखा है, बल्कि ब्राह्मणो के नगर से यात्री को सीधा ओ-च-अ-ली को पहुँचाया है ।

(2) ओ-च-अ-ली का स्थान कदाचित् कच्छ से दूर उत्तर दिशा मे था । और शायद 'उछ' या 'वहावलपुर' माना जा सकता है । मुलतान के निकट एक कसबा अटारी नामक है, परन्तु यह समझ मे नही आता कि वहाँ पर यात्री क्यो गया था । कनिंघम साहब ब्राह्मणो के एक नगर को, जिस पर सिकन्दर का अधिकार हो गया था, यह स्थान निश्चय करते हैं ।

नही होती। इस देश मे हुट्सियन (hutsıan) वृक्ष बहुत होते है। इस वृक्ष की पत्तियाँ Sz'chuen (एक प्रकार की मिर्च) वृक्ष के समान होती है। यहाँ पर हिन्नलू सुगधि वृक्ष (hıun-lu) भी उत्पन्न होता है जिसकी पत्तियाँ थैङ्गली (thang-lı) वृक्ष के समान होती हैं। प्रकृति गरम है, और आँधी तथा गर्द गुब्बार की बहुतायत रहती है। लोगो का स्वभाव मृदुल और शुद्ध है। ये लोग सम्पत्ति का आदर और धर्म का अनादर करते हैं। यहाँ के लोगो की भाषा, अक्षर, सूरत-शकल और चलन-व्यवहार इत्यादि मालवा देशवालो के समान है। अधिकतर लोगो की श्रद्धा धार्मिक कृत्यो पर नही है, जो कुछ धार्मिक लोग है भी वे स्वर्गीय देवी देवताओ की उपासना करते हैं। इन लोगो के मन्दिरो की सख्या कई हजार है जिनमे भिन्न-भिन्न मतावलम्बी उपस्थित हुआ करते है।

मालवा-देश से उत्तर-पश्चिम लगभग ३०० ली चल कर हम क-ई-च-अ [कच्छ] देश मे पहुँचे।

क-ई-च-अ[1] (कच्छ)

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ३,००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। आबादी घनी और लोग सम्पत्तिशाली हैं। यहाँ का नरेश स्वाधीन नही है वरच मालवा के अधीन है। प्रकृति, भूमि की उपज और मनुष्यो का चलन-व्यवहार आदि दोनो देशो का अभिन्न है। कोई दस सघाराम और लगभग १,००० साधु है जो हीन और महा दोनो सम्प्रदायो का अनुगमन करते है। कितने ही देवमन्दिर भी है जिनमे विरोधियो की सख्या खूब है।

यहाँ से उत्तर दिशा मे लगभग १000 ली चल कर हम फ-ल-पी मे पहुँचे।

फ-ल-पी (वलभी)[2]

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ६,000 ली और राजधानी का क्षेत्रफल लगभग

---

(1) सेमुअल वील साहब क-ई-च-अ को कच्छ निश्चय करते हैं क्योकि हुइली साहब मालवा से इस स्थान तक की तीन दिन की यात्रा बतलाते है जो ह्वेनसाग के दिये हुए ३०० ली के बराबर माना जा सकता है। कनिंघम साहब इस दूरी को १,३०० ली, जो धार और खेडा के मध्य की दूरी है, निश्चय करते है। खेडा गुजरात मे एक वडा नगर है जो अहमदाबाद और खम्बात के मध्य मे स्थित है। खेडा शब्द चीनी-भाषा के क-ई-च अ शब्द से मिलता-जुलता भी है। परन्तु यह नगर है देश नही, इसके अतिरिक्त दूरी का भी मिलान नही होता इसी लिए सेमुअल वील साहब ने वैसा निश्चय किया है।

(2) ह्वेनसाग और हुइली दोनो कच्छ से वलभी (फ-ल-पी) को उत्तर दिशा

३० ली है। भूमि की दशा, प्रकृति और लोगो का चलन-व्यवहार आदि मालवा-राज्य के समान है। आबादी बहुत घनी और निवासी धनी और सुखी है। कोई सौ परिवार तो ऐसे धनशाली है कि जिनके पास एक करोड़ से अधिक द्रव्य है। दुष्प्राप्य और बहु-मूल्य वस्तुएँ दूर दूर के देशो से अधिकता के साथ लाकर इस देश मे इकट्ठी की जाती है। कोई सौ सघाराम है जिनमे लगभग ६,००० साधु निवास करते है। इन लोगो मे से अधिकतर समातीय सस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अनुसरण करते है।[१] कई सौ देवमन्दिर भी है जिनमे अनेक मतावलम्बी विरोधी उपासना करते है।

जिन दिनो तथागत भगवान् जीवित थे, वे बहुधा इस देश मे यात्रा किया करते थे। इस कारण अशोक ने उन सब स्थानो मे जहाँ जहाँ पर वह ठहरे अथवा गये थे, स्मारक या स्तूप बनवा दिये है। इन स्थानो मे अनेक ऐसे भी है जहाँ पर गत चारो बुद्ध उठते बैठते अथवा धर्मोपदेश करते रहे है। वर्तमान नरेश जाति का क्षत्री और मालवा के शिलादित्य राजा का भतीजा तथा कान्यकुब्ज के वर्तमान नरेश शिलादित्य का दामाद है। इसका नाम ध्रुवपट[२] है। यह नरेश बहुत ही फुर्तीले स्वभाव का है। इसका ज्ञान और राज्य-प्रबन्ध साधारण है। बहुत थोडे समय से रत्नत्रयी की ओर

मे लिखते है परन्तु वास्तव मे होना दक्षिण दिशा मे चाहिए। उत्तर मानने से ह्वेन-सांग की फ-ल-पी (वलभी) का पता नही चलता। चीनी-भाषा की मूल पुस्तक के एक नोट से विदित होता है कि वलभी उत्तरी लारा लोगो की राजधानी थी।

(1) वलभी के नरेश गुहसेन का एक ताम्रपत्र मिला है जिसमे लिखा है—"मैं अपने पूर्वजो के और स्वय अपने पुण्य को इस जन्म और जन्मान्तार मे सुरक्षित रखने के लिए यह दानपत्र उन शाक्य भिक्षुओ के निमित्त लिखता हूँ जो अठारह निकायवाले होगे, और सब दिशाओ मे भ्रमण करते हुए डुड्डा के महाविहार मे पधारे है।" यह, डुड्डा, ध्रुवसेन (प्रथम) की बहिन की पुत्री और वलभी-राज्य के सस्थापक भट्टारक की दौहित्री थी। गुहसेन के दूसरे ताम्रपत्र पर इस प्रकार दान है। दूर देशस्थ अठारह निकाय के महन्त और भट्टारक के भवन के निकट महात्मा मिम्मा के बनवाये हुए आभ्यन्तरिक विहार के निवासी राजस्थानीय शूर लोगो के प्रति दान किया गया।" इन दोनो ताम्रपत्रो मे अठारह निकाय का उल्लेख हीनयान-सिद्धान्तो का सूचक है।

(2) डाक्टर बुलर कहते है कि यह राजा शिलादित्य [छठा] था जिसका उप-नाम ध्रूभट था। डाक्टर साहब ध्रूभट शब्द ध्रुवभट का अपभ्रश समझते है। इस राजा का एक दानपत्र संवत् ४४७ का मिला है कनिंघम साहब की भी यही राय है परन्तु वर्गस साहब इसको ध्रुवसेन द्वितीय मानते है। इस वलभी-नरेश का एक दानपत्र सम्वत् ३१० का मिला है। नरेश ढेरभट था जो ध्रुवसेन (द्वितीय) का भाई था।

इसका चित्त आकृष्ट हुआ है। यह प्रत्येक वर्ष एक बड़ी भारी सभा सगठित करता है और सात दिन तक बराबर बहुमूल्य रत्न, उत्तम भोजन, तीनो प्रकार के वस्त्र, और औषधियाँ अथवा उनका मुल्य तथा सातो प्रकार के रत्नो से बनी हुई बहुमूल्य वस्तुएँ साधुओ को दान करता है। यह सब दान करके वह फिर भी उन सब वस्तुओ को दो बार द्रव्य देकर खरीद कर लेता है। यह व्यक्ति पुण्य की प्रतिष्ठा और शुभ कार्यो का आदर अच्छी तरह पर करता है, तथा जो लोग ज्ञानी महात्मा होते है उनकी अच्छी सेवा करने वाला है। जो बडे-बडे महात्मा साधु दूर देशो से आते है उनका आदर सत्कार बहुत विशेष रूप से किया जाता है।

नगर से थोडी दूर पर एक सघाराम है जिसको आचार[1] नाम के अरहट ने बनवाया था। इस स्थान पर गुणमति और स्थिरमति[2] महात्मओ ने यात्रा करते हुए आकर कुछ दिन तक निवास किया था, और ऐसे उत्तम ग्रन्थो का निर्माण किया था जो सदा के लिए प्रसिद्ध हो गये।

यहाँ से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग ७०० ली चल कर हम 'ओननटोपुलो' मे पहुँचे।

ओननटोपुलो (अनन्दपुर)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग २,००० ली और राजधानी का लगभग २० ली है। आवादी घनी और निवासी धनी है। यहाँ का कोई मुख्य राजा नही है, देश मालवा के अधीन है। यहाँ की पैदावार, प्रकृति, साहित्य और कानून इत्यादि वैसे ही है जैसे मालवा के है। कोई दस सघाराम है जिनमे १,००० से कुछ कम साधु निवास करते है और सम्मतीय सस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं। बीस पच्चीस देवमन्दिर भी हैं जिनमे भिन्न भिन्न विधर्मी उपासना आदि किया करते है।

वलभी से ५०० ली के लगभग पश्चिम दिशा मे जाकर हम सुलचअ देश मे पहुँचे।

---

(1) वलभी के धारसेन (द्वितीय) के दानपत्र से भी जिसमे सस्थापक का नाम 'अथर्य' लिखा हुआ है। इस बात की पुष्टि होती है। जुलियन साहब इस शब्द को 'आचार्य्य' मानते है।

(2) स्थिरमति स्थविर वसुवन्धु का प्रसिद्ध शिष्य था जिसने अपने गुरु की पुस्तको पर टीकायें लिखी थी। धारसेन प्रथम के दानपत्र मे लिखा है कि आचार्य महन्त स्थिरमति ने श्री वप्पपाद नाम का विहार वलभी मे बनवाया था। गुणमति भी वसुवन्धु का शिष्य था। वसुमित्र भी इसका प्रसिद्ध शिष्य था जिसने वसुबन्धु के 'अभिधर्म कोप' की टीका लिखी थी।

सुलचअ (सुराट्र[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल ४,००० ली और राजधानी का ३० ली है। मुख्य नगर की पश्चिमी सीमा पर माही नदी बहती है। आबादी घनी और अनेक परिवार विशेष धनशाली है। देश वबभी के आश्रित है। भूमि मे निमक बहुत है, फल और फूल कम होते है। यद्यपि प्रकृति कोमल रहती है परन्तु कभी कभी आँधी के झोखे भी आ जाते है। मनुष्यो का स्वभाव आलसो और व्यवहार तुच्छ तथा निकृष्ट है। यहाँ के लोग विद्या से प्रेम नही करते तथा विरुद्ध और बौद्ध दोनो धर्मो के मानने वाले है। इस राज्य भर मे कोई ५० सघाराम है जिनमे स्थविर सस्थानुकूल महायान-सम्प्रदायानुयायी कोई ३,००० साधु निवास करते है। लगभग १०० देवमन्दिर भी है जिन पर अनेक प्रकार के मतावलम्बियो का अधिकार है। क्योकि यह देश पश्चिमी समुद्र के निकट है इस-लिए सब मनुष्यो की जीविका समुद्र से ही चलती है। लोग वाणिज्य व्यापार मे अधिक सलग्न रहते है।

नगर से थोड़ी दूर पर एक पहाड यूह चेन टो (उजन्ता) नामक[2] है जिस पर पीछे की ओर एक सघाराम बना हुआ है। इसकी कोठरियाँ आदि अधिकतर पहाड़ खोद कर बनाई गई है। यह पहाड़ घने और जङ्गली वृक्षो से आच्छादित तथा इसमे सब ओर झरने प्रवाहित है। यहाँ पर महात्मा और विद्वान् पुरुष विचरण किया करते ह तथा आध्यामिक शक्ति-सम्पन्न बडे बडे ऋषि आकर एकत्रित हुआ करते और विश्राम किया करते है।

वलभी वेश से १,८०० ली के लगभग उत्तर दिशा ते चल कर हम कियोचेलो राज्य मे पहुँचे।

---

(1) सुराष्ट्र या सुराठ अथवा सौराठ। चूँकि यह राज्य गुजरात-प्रान्त मे था इस कारण यह समझ मे नही आता है कि माही नदी इसकी राजधानी के पश्चिम ओर क्यो कर थी। होनी तो पूर्व दिशा मे चाहिए। इस स्थान की यात्रा का वर्णन कदाचित् असावधानी से लिखा गया है और इसका कारण कदाचित् वही है जैसा कि फर्गुसन साहब लिखते है, कि सिन्धु नदी पार करके अटक स्थान मे यात्री के असली कागज पत्र खो गये थे और इसलिए जो कुछ लिखा गया वह याददास्त या नोटो के सहारे लिखा गया।

(2) काठियावाढ मे जूनागड के निकट गिरनार का प्राकृत-नाम उजन्ता है जिसका सस्कृत स्वरूप उज्जयन्त होता है। लैसन साहब की भूल है जो इसको अजन्ता उसका निकटवर्ती स्थान खयाल करते है यह बाइसवे जिन नेमिनाथ और उर्जयत का स्थान हैं। इसको रैवत भी कहते है।

कियोचेलो (गुर्जर[1])

इस राजधानी का क्षेत्रफल लगभग ५,००० ली और राजधानी, जिसका नाम पि-लो-मो-लो[2] है, लगभग ३० ली के घेरे मे है। भूमि की उपज और मनुष्यो का चलन-व्यवहार सुराष्ट्रवालो से बहुत मिलता-जुलता है। आबादी घनी तथा निवासी धनी और सब प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न है। अधिकतर लोग अन्य धर्मावलम्बी हैं, केवल थोडे से ऐसे है जो बुद्धधर्म का मनन करते है। केवल एक सघाराम है जिसमे लगभग १०० सन्यासी है। सबके सब सर्वास्तिवाद सस्था के हीनयान-सम्प्रदायी है। पचासो देवमन्दिर है जिनमे अनेक विरोधी उपासना करते हैं। राजा जाति का क्षत्री है। इसकी अवस्था २० साल की उसकी भक्ति बहुत है तथा योग्य महात्माओ की बडी प्रतिष्ठा करता है।

यहाँ से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग २,८०० ली चल कर हम उशेयनना देश मे पहुँचे।

उशेयनना (उज्जयनी)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ६,००० ली और राजधानी का लगभग ३० ली है। पैदावार तथा मनुष्यो का स्वभाव इत्यादि ठीक सुराट्र देश के समान है। आबादी घनी और जनसमुदाय सम्पत्ति शाली है। कोई पचासो सघाराम हैं जो सबके सब उजाड है। केवल दो चार ऐसे हैं जिनकी अवस्था सुधारी हुई है। कोई ३०० साधु हैं जो हीन और महा दोनो यानो का अध्ययन करते है। पचासो देवमन्दिर भी है जिनमे अनेक प्रकार के विरोधियो का निवास है। राजा जाति का ब्राह्मण और अन्य धर्मावलम्बियो के शास्त्रो मे भली भाँति दक्ष है, सत्य धर्म का भक्त नही है।

नगर से थोडी दूर पर एक स्तूप है। इस स्थान पर अशोक राजा ने नर्क बनाया था।

यहाँ से १,००० ली के लगभग उत्तर-पूर्व मे जाकर हम चिकिटो राज्य मे पहुँचे।

---

(1) प्रो० भाण्डारकर की राय है कि नासिक के पुलुमाईव ले लेख मे और गिरनार के रुद्रदमन के लेख मे जिस 'कुकुर' जिले का नाम आया है वही कियोचेली है परन्तु चीनी लेख इसके प्रतिकूल हैं। शुद्धतया यह गुर्जर ही है और वर्तमान काल के राजपूताना और मालवा के दक्षिण भाख मे जहाँ तक गुजराती भाषा का प्रचार है यह स्थान माना गया है। राजतरङ्गिणी ५—१४५)।

(2) राजपूतना का वाल मेर नामक स्थान जहाँ से काठियावाड की अनेक जातियो के जाने का पता लगता है।

चिकिटो

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली और राजधानी का १५ या १६ ली है। यहाँ की भूमि उत्तम उपज के लिए सुप्रसिद्ध है और योग्यतापूर्वक जोती बोई जाने के कारण अच्छी फसल उत्पन्न करती है। विशेषकर सेम और जौ अच्छा पैदा होता है। फूल और फल की भी बहुतायत रहती है। प्रकृति कोमल और मनुष्य स्वभावतः पुण्यात्मा और बुद्धिमान् हैं। अधिकतर लोग विरुद्ध धर्मावलम्बी है, कुछ थोडे से लोग बुद्ध-धर्म को भी मानते है। सङ्घाराम तो बीसो है पर उनमे बहुत थोड़े साधु है। कोई दस देवमन्दिर हैं जिनके उपासको की सख्या अगणित है। राजा जाति का ब्राह्मण और (तीनो) बहुमूल्य वस्तुओ का कट्टर भक्त है। जो लोग ज्ञान और तप मे प्रसिद्ध होते हैं उनकी अच्छी प्रतिष्ठा करता है। अगणित विद्वान् पुरुष सुदूर देशो से बहुधा यहाँ आया करते है।

यहाँ से लगभग ९०० ली उत्तर दिशा मे चल कर हम 'मोही शीफा लोपुलो, राज्य मे पहुँचे।

मोही शीफालोपुलो (महेश्वरपुर)

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ३,००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल लगभग ३० ली है। भूमि की उपज और लोगो का आचरण उज्जयनी वालो के समान है। विरोधियो के सिद्धान्तों की यहाँ पर बडी प्रतिष्ठा है, बुद्ध-धर्म की कुछ पूछ नही। पचासो देव-मन्दिर है और साधु अधिकतर पाशुपत है। राजा जाति का ब्राह्मण है, बुद्ध-सिद्धान्तो पर उसका कुछ भी विश्वास नही है।

यहाँ से पीछे लौट कर गुर्जरदेश और गुर्जरदेश से उत्तर दिशा मे बीहड रेगिस्तान और भयकर मार्गो से होते हुए सिण्टु नदी पार करके हम सिण्टु देश मे पहुँचे।

सिराटु (सिन्ध)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ७,००० ली और राजधानी जिसका नाम 'पइशेनय-ओपुलो'[1] है, लगभग ३० ली के घेरे मे है। देश की भूमि अन्नादि की उत्पत्ति के लिए उपयुक्त है तथा गेहूँ, बाजरा आदि अच्छा पैदा होता। सोना, चाँदी और ताँबा भी बहुत होता है। इस देश मे बैल, भेड, ऊँट, खच्चर आदि पशुओ के पालने का भी अच्छा सुभीता है। ऊँट छोटे छोटे और एक ही कूबरवाले होते है। यहाँ लाल रङ्ग का

(1) जुलियन साहब इसको विचवपुर निश्चय करते हैं और रेनाड साहब बरमपुर अथवा वल्मपुर और मीनगर निश्चय करते है।

नमक बहुत होता है। इसके अतिरिक्त सफेद, स्याह और चट्टानी नमक भी होता है। यह दूर तथा निकटवर्ती अनेक देशो मे दवा के काम आता है। मनुष्य, स्वभाव से कठोर होने पर भी सच्चे और ईमानदार बहुत है। लोगो मे लड़ाई-झगड़ा और वैर विरोध बहुधा बना रहता है। बुद्ध-धर्म पर विश्वास होने पर भी विद्या का अध्ययन किसी भलाई के लिए नही किया जाता। कई सौ सङ्घाराम है जिनमे दस हजार से अधिक साधु निवास करते है। ये सब सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदायी हैं। ये बडे आलसी और भोग-विलास मे लिप्त रहने वाले है। जिन लोगो को पवित्र महात्माओ के समान जीवन व्यतीत करने और तपस्या करने की अभिरुचि होती है वे सुदूरवर्ती पहाड़ो और जङ्गलो मे जाकर एकान्तवास करते है। वहाँ पर पुनीत फल प्राप्त करने के अभिप्राय से वे लोग रात-दिन उत्कट परिश्रम करते रहते हैं। कोई ३० देवमन्दिर है जिनमे अनेक विरोधी उपासना किया करते है।

राजा जाति का शूद्र है और स्यभावत. सच्चा, ईमानदार और बुद्ध-धर्म का मानने वाला है।

तथागत भगवान् ने अपने जीवन-काल मे बहुधा इस देश मे फेरा किया है, इस लिए अशोक ने उन सब पुनीत स्थानो मे जहाँ पर उनके पदार्पण करने के चिह्न पाये गये थे, बीसो स्तूप बनवा दिये हे। उपगुप्त महात्मा भी अनेक बार इस देश मे भ्रमण करके धर्म का उपदेश और मनुष्यो को सन्मार्ग का प्रदर्शन करता रहा है। जहाँ जहाँ पर इस महात्मा ने विश्राम किया था अथवा कुछ चिह्न छोड़ा था उन सब स्थानो मे सङ्घाराम अथवा स्तूप बनवा दिये गये है। इस प्रकार की इमारते प्रत्येक स्थान मे वर्तमान हैं जिनका केवल सक्षिप्त वृत्तान्त हम दे सकते हैं।

सिन्धु नदी के किनारे निचली भूमि और तराई के मैदान मे कई लक्ष परिवार निवास करते ह। ये लोग बडे ही निर्दय और क्रोधी स्वभाव के होते है। इनका काम केवल मार-काट, लोहू-लुहान करना ही है। ये पशुओ को पालते है और उन्ही के द्वारा जीविका चलाते है। इन सबका कोई स्वामी नही है, और चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, धनी हो अथवा निर्धन, सब अपने सिर को मुडाए रहते हैं और भिक्षुओ के समान काषाय वस्त्र धारण करते हैं। इनका यह ठाठ दिखावा-मात्र है, वास्तव मे इनका सब काम ससारी पुरुषो के समान ही होता है। ये लोग हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी और महा-यान के विरोधी हैं।

प्राचीन कथानक से पता चलता है कि पूर्वकाल मे ये लोग बड़ी क्रूर प्रकृति के थे। जो कुछ इनका कार्य होता था सब दुष्टता और कठोरता से भरा होता था। उसी समय मे कोई अरहट भी था जो इन लोगो की विवेकशून्यता पर द्रवित होकर और

इनको शिष्य बनाने के अभिप्राय से आकाश मे गमन करता हुआ इस देश मे उतरा। उसकी अद्भुत शक्ति और अनुपम क्षमता को देखकर लोग उसके भक्त हो गये। उसने धीरे-धीरे शिक्षा देकर सबको सत्य सिद्धान्तो का अनुगामी बना दिया। सब लोगो ने प्रसन्नता-पूर्वक उसके उपदेश को अङ्गीकार करके भक्तिपूर्वक इस बात की प्रार्थना की कि आप कृपा करके धार्मिक जीवन व्यतीत करने के नियम बतला दीजिए। अरहट ने इस बात को जान कर कि लोगो के चित्त मे धर्मभाव का उदय हो चला है रत्नत्रयी का उपदेश देकर उनकी क्रूर वृत्ति को शान्त कर दिया। सब लोगो ने हिंसा को परित्याग करके अपने सिरो को मुँडा डाला और भिक्षुओ के समान काषाय वस्त्र धारण करके सत्य सिद्धान्तो का अनुशीलन भक्तिपूर्वक करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय से लेकर अब तक अनेक पीढियाँ व्यतीत हो गई है तथा समय के हेर फेर से लोगो का धार्मिक प्रेम निर्बल हो गया है, तो भी रीति-रिवाज सब प्राचीन काल के समान ही बनी हुई है। यद्यपि ये लोग धार्मिक वस्त्र पहनते है परन्तु जीवन और आचरण मे कुछ भी पवित्रता नही है। इन लोगो के बेटे और पोते बिलकुल ससारी लोगो के समान है, धार्मिक कृत्यो की कुछ परवाह नही करते।

यहाँ से लगभग ९०० ली पूर्व दिशा मे चलकर और सिन्धु नदी पार करके तथा उसके पूर्वी किनारे जाकर हम 'मुलो सन प उ लू' राज्य मे पहुँचे।

मुलो सन प उ लू (मूलस्थानपुर)[1]

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल ३० ली है। यह नगर अच्छी तरह बसा हुआ है और यहाँ के निवासी सम्पत्तिशाली है। यह देश चेक-राज्य के अधीन है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है। प्रकृति कोमल और सह्य तथा मनुष्यो का आचरण सच्चा और सीधा है ये लोग विद्या से प्रेम और ज्ञान की प्रतिष्ठा करते है। अधिकतर लोग भूत प्रेतो की पूजा और यज्ञ आदि करते हैं; बहुत थोडे लोग बुद्धधर्म के अनुयायी है। कोई दस सङ्घाराम है जो अधिकतर उजाड़ है। बहुत थोड़े से साधु है जो अध्ययन तो करते हैं परन्तु किसी उत्तमता की कामना से नही। कोई आठ देवमन्दिर हैं जिनमे अनेक जाति के उपासक निवास करते है। यहाँ पर एक मन्दिर सूर्य देवता का है जो असंख्य धन-व्यय करके बनाया और सँवारा गया है। सूर्य देवता की मूर्ति सोने को बनाई गई है और अलभ्य रत्नों से मुसज्जित है। इसका दैवी चमत्कार बहुत सूक्ष्म रूप से प्रकटित होता है जिसका वृत्तान्त सब लोगो पर भली भाँति विदित है। यहाँ पर स्त्रियाँ ही गाती बजाती हैं, दीपक जलाती है और सुगन्ध पुष्प इत्यादि से

(1) मूलस्थानपुर अथवा मुलतान देखो

पूजा-अर्चा करती है। यह प्रथा बहुत पहले से चली आई है। सम्पूर्ण भारत के राजा और बडे बडे लोग बहुधा इस स्थान की यात्रा करके रत्न आदि बहुमूल्य पदार्थ भेट चढाते है। यहाँ पर एक पुण्यशाला भी बनी हुई है जिसमे रोगी और दरिद्र पुरुषो की सहायता और सुख के लिए खाद्य, पेय और ओषधि इत्यादि सब प्रकार के पदार्थो का सग्रह रहता है। सब देशो के लोग अपनी पूजा-प्रार्थना के लिए यहाँ आया करते है। इन लोगो की सख्या सदा कई हजार के ऊपर रहती है। मन्दिर के चारो ओर सुन्दर तडाग और पुष्पोद्यान बने हुए हैं जहाँ पर हर एक आदमी बिना रोक-टोक घूम फिर सकता है।

यहाँ से लगभग ७०० ली पूर्वोत्तर दिशा मे चलकर हम 'पोफाटो' प्रदेश मे पहुँचे।

पोफाटो (पर्वत)[1]

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ५,००० ली और इसकी राजधानी का लगभग २० ली है। इसकी आबादी घनी है और चेक-देश का इस पर अधिकार है। यहाँ पर धान अच्छा पैदा होता है तथा यहाँ की भूमि सेम और गेहूँ पैदा करने के लिए भी उपयुक्त है। प्रकृति कोमल और मनुष्य सच्चे और इमानदार है। यहाँ के लोगो मे स्वभाव से ही चुस्ती चालाकी और फुर्तीलापन होता है। भाषा इनकी साधारण है। ये लोग अपने साहित्य और कविता मे बडे निपुण होते हैं। विरोधी और बौद्ध दोनो बराबर हैं। कोई दस सङ्घाराम और लगभग १,००० साधु है जो हीन और महा दोनो यानो का अध्ययन करते हैं। कोई चार स्तूप अशोक राजा के बनवाये हुए है। भिन्न भिन्न विरोधियो के कोई २० देवमन्दिर भी हैं।

मुख्य नगर के बगल मे एक बड़ा सङ्घाराम है जिसमे लगभग १०० साधु निवास करते हैं। ये लोग महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते है। इसी स्थान पर जिनपुत्र शास्त्री ने 'योगाचार्यभूमिशास्त्रकारिका' नामक ग्रथ को बनाया था[2]। भद्ररुचि और गुणप्रभ नामक शास्त्रियो ने भी इसी स्थान पर धार्मिक जीवन को अङ्गीकार किया था। यह बडा सङ्घाराम अग्निकोप से बर्बाद हो गया है, और इसलिए आज-कल बहुत कुछ उजाड पडा है।

---

(1) पाणिनि ने भी तक्षशिलादि के साथ पञ्जाब मे 'पर्वत' नामक देश का उल्लेख किया है।

(2) जिनपुत्र का यह ग्रथ, मैत्रेय के 'योगाचार्यभूमिशास्त्र' नामक ग्रन्थ की टीका है। मूल और टीका इन दोनो ग्रन्थो का अनुवाद चीनी-भाषा मे ह्वेनसांग ने किया था।

सिंध देश से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग १, ५०० अथवा १,६०० ली चल कर हम 'ओ-टिन-प-ओ-चिलो' नामक राज्य मे आये ।

ओ-टिन-प-ओ-चिलो (अत्य नबकेल)

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ५,००० ली और मुख्य नगर का नाम 'खिट्सी शिधालो' है जिसका क्षेत्रफल लगभग १० ली है । यह सिन्धु नदी के किनारे से लेकर समुद्र के तट तक फैला है । लोगो के निवास भवन बहुत मनोहर बने हुए है तथा सब प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओ से भरे पूरे है । थोडे दिनो से यहाँ का कोई शासक नही है बल्कि यह सिन्ध देश के अधिकार मे है । भूमि नीची और तर तथा नमक से भरी हुई है । झाडी जङ्गल इस देश मे बहुत है इस कारण भूमि का अधिक भाग यो हो पड़ा हुआ है । जो कुछ थोडो सी भूमि जोती बोई जाती है उसमे कई प्रकार का अनाज उत्पन्न होता है, विशेषकर मटर और गेहूँ बहुत अच्छा पैदा होता है । प्रकृति कुछ शीतल तथा आँधी तूफान का विशेष जोर रहता है । बैल, भेड, ऊँट, गधे आदि पशुओ के पोषण के लिए यह देश बहुत उपयुक्त है । मनुष्यो का स्वभाव दुष्टता और चालाकी से भरा हुआ है । इन लोगो को विद्या से प्रेम नही है । इनकी भाषा और मध्यभारत की भाषा मे बहुत थोडा भेद है । जो लोग सच्चे और ईमानदार हैं उनका, उपासना के तीनो पूज्य अङ्गो से विशेष प्रेम है । कोई अस्सी सङ्घाराम है जिनमे लगभग ५,००० साधु है । ये लोग सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अनुगमन करते है । कोई दस देवमन्दिर है जो अधिकतर विरोधियो के पाशुपत सम्प्रदाय के अधिकार मे है । राजधानी मे एक मन्दिर महेश्वदेव का है । यह बहुमूल्य पत्थरो से बनाया गया है तथा देवता की मूर्ति अत्यात्मिक चमत्कारो से परिपूर्ण है । पाशुपत साधु इस मन्दिर में निवास करते है । प्राचीन काल मे बहुधा तथागत भगवान् इस देश मे आते रहे है और मनुष्यों को धर्मोपदेश करके शिष्य बनाते और सन्मार्ग पर लाकर लाभ पहुँचाते रहे हैं । इस कारण छः स्थानो पर, जहाँ पुनीत चरित्रो का चिह्न मिला था, अशोक ने स्तूप बनवा दिये है ।

यहाँ से कुछ कम २००० ली चलकर हम 'लङ्गकीलो' देश मे पहुँचे ।

लङ्गकीलो (लङ्गल[1])

यह देश कई हजार ली के घेरे मे है । राजधानी का क्षेत्रफल ३० ली है । इसका

(1) कनिंघम साहब इस देश को 'लाकोरिआन' अथवा 'लकूर' अनुमान करते है । यह किसी प्राचीन बडी नगरी का नाम है जिसके डीह और खँडहर खोजदार और

नाम 'सुनुलीची फालो' (सुनूरीश्वर ?) है [1]। भूमि अच्छी और उपजाऊ होने स फसलें उत्तम होती हैं। प्रकृति और लोगो का चलन व्यवहार 'ओटिनप ओचिलो, वालो के समान है। आबादी घनी है। यहाँ पर बहुमूल्य पत्थर और रत्नो की बहुतायत है। यह देश समुद्र तट तक फैला हुआ है और पश्चिमी स्त्रियो वाले राज्य के मार्ग मे पड़ता है। इसका कोई मुख्य शासक नही है। सब लोग अपने अपने कार्यो मे स्वाधीन हैं, परन्तु फारस की सत्ता मे हैं। अक्षर प्राय· वही हैं जो भारत मे प्रचलित हैं। भाषा मे कुछ थोड़ा सा अन्तर है। विरोधी और बौद्ध परस्पर मिले-जुले निवास करते हैं। कोई सौ सङ्घाराम और कदाचित् ६,००० साधु हैं जो हीन और महा दोनो यानो का अध्य न करते है। कई सौ देवमन्दिर भी हैं। विरोधी सम्प्रदायो मे हाशुपत लोगो का बाहुल्य है। नगर मे एक मन्दिर महेश्वरदेव का है। जिसकी बनावट और सजावट बहुत अच्छी है। पाशुपत लोग यहाँ अपनी धार्मिक उपासना किया करते हैं।

यहाँ से उत्तर-पश्चिम को चलकर हम 'पोल-से' राज्य मे पहुँचे।

(पोलस्के फारस [2])

इस राज्य का क्षेत्रफल बहुत है। इसके मुख्य नगर का नाम 'सुलस टाङ्गन' (सुरस्थान) है जिसका क्षेत्रफल लगभग ४० ली है। यहाँ पर घाटियाँ बहुत है इस कारण प्रकृित के स्वरूप मे भेद है, तो भी साधारण रीति से देश गरम है। यहाँ पानी खीचकर खेतो कीसिंचाई की जाती है। लोग धनी और सम्पत्ति शाली हैं। इस देश मे सोना, चाँदी, ताँबा, स्फटिक, बहुमूल्य मोती तथा अन्यान्य कीमती चीजे अच्छी होती है। यहाँ के कारीगर महीन रेशमी वस्त्र, ऊनी कपड़े और दरी इत्यादि अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाते हैं। यहाँ ऊँट और घोडे भी होते है। व्यवसाय वाणिज्य मे चाँदी के बडे बडे सिक्के प्रचलित है। यहाँ के लोग स्वभाव से दुष्ट और झगड़ालू हैं, इन लोगो के चलन व्यवहार मे न तो सभ्यता ही की झलक पाई जाती है और न न्याय ही की। इस देश की लिखावट और भाषा दूसरे देशो से भिन्न है। ये लोग विद्या कि परवाह नही करते वरच पूर्ण रूप से शिल्प ही की ओर दत्तचित्त रहते हैं। जो कुछ यहाँ के लोग उद्यम करते हैं उसकी निकटवर्ती देशो मे बडी कदर होती है। इनकी विवाह-सम्बन्धी रीति मे किसी प्रकार का विवेक और विचार नही किया जाता। मर जाने

किलात के बीच मे पाये गये हैं, और जो कच्छ के कोटेसर से लगभग २००० ली उत्तर-पश्चिम में है।

(1) कनिंघम साहब इसको 'सम्भुरीश्वर' खयाल करते है।

(2) यह देश भारत के अन्तर्गत नही है यात्री ने स्वय इसको नही देखा, सुनी सुनाई बातो के आधार पर यहाँ का हाल लिखा है।

पर लोगो के शव बहुधा फेंक दिये जाते है। डील डौल इनका ऊँचा होता है और ये बालो को ऊपर की ओर बाँध कर नगे सिर रहते है। इनके वस्त्र, रेशम, ऊन, नमदा और रेशमी बेलबूटेदार होते है। प्रत्येक परिवार को प्रति व्यक्ति पर चार रुपया टैक्स देना पडता है। देवताओ के मन्दिर बहुत है। विरोधी लोग दिनव (टनयो[1]) की अधिक पूजा करते है। कोई दो या तीन सघाराम हैं जिनमे कई सौ साधु सर्वास्ति-वाद-सस्था के (हीनयान-सम्प्रदायी) है। इस देश के राजा के भवन मे शाक्य बुद्ध का पात्र[2] है।

देश की पूर्वी सीमा पर होमो (आरमस ?) नगर है। नगर का भीतरी भाग विशेष बडा भी है परन्तु बाहरी चहारदीवारी का घेरा लगभग ६० ली है। लोग जो इस नगर मे रहते हैं सबके सब बहुत धनी है। इस देश की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर फोलिन राज्य[3] है जहाँ की भूमि, चलन व्यवहार और रीति-रस्म बिलकुल फारस देश के सामन है, परन्तु लोगो का स्वरूप और उनकी भाषा मे अन्तर है। इन लोगो के पास भी बहुमूल्य रत्न बहुत है और ये भी बड़े अमीर है। फोलिन के दक्षिण-पश्चिम, समुद्र के एक टापू मे, पश्चिमी स्त्रियो का राज्य है। यहाँ पर केवल स्त्रियाँ है, कोई भी पुरुष नही है। इन लोगो के पास रत्न बहुत है जिनका ये फोलिन वालो से अदला-बदला करती है। इसलिए फोलिन नरेश कुछ दिन के लिए कुछ पुरुष इनके साथ रहने के लिए भेज देता है। यदि नर बच्चा उत्पन्न हो तो वह इस देश मे नही रहने पाता।

'ओटिन पओचिलो' राज्य छोडकर और लगभग ७०० ली उत्तर मे चल कर हम 'पिटौशिलो' देश मे पहुँचे।

पिटोशिलो (पिता शिला)

यह लगभग ३,००० ली के घेर मे है और राजधानी का क्षेत्र लगभग २० ली है। आबादी घनी है। यहाँ का कोई मुख्य शासक नही है वरच देश पर सिन्ध वालो का अधिकार है। भूमि नमकीन और बलुई है। तेज तथा ठढी हवा बहुधा चला करती है।

---

(1) जुलियन साहब इस शब्द को सदिग्ध रूप से दिनभ, दिनव अथवा दिनप निश्चय करते है। कदाचित् दिनप (ति) का, जिसका अर्थ 'सूर्य' है, बिगडा हुआ स्वरूप मानना समुचित होगा।

(2) बुद्धपात्र के फिरने का वृत्तान्त देखो फाहियान की पुस्तक अ० ३९। इससे पता लगता है ह्वेएन साग के समय मे बुद्ध-धर्म फारस मे पहुँच चुका था और वहाँ पर दो तीन संघाराम भी बन गये थे, परन्तु प्रचार केवल हीनयान-सम्प्रदाय का था इससे कदाचित् यह अनुमान हो सकता है कि उस समय तक कुछ ही दिन इस धर्म को वहाँ पहुँचे हुए थे।

(3) फोलिन प्रायः बाइजेटाइन-राज्य Byzantine Empire समझा जाता है।

मटर और गेहूँ उत्पन्न होता है। फूल और फल की बहुलता नही है। मनुष्य भयानक और कुटिल हैं। इनकी मध्य भारत की भाषा मे बहुत थोड़ा अन्तर है यद्यपि विद्या से इन लोगो का प्रेम नही है तो भी जो कुछ ज्ञान इन लोगो को है उस पर ये दृढ विश्वा- रखते है। लगभग ३,००० साधुओ सहित कोई पचास संघाराम हैं जो सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते है। कोई बीस देवमन्दिर है जिनमे पाशुपत-सम्प्रदायी साधु उपासना किया करते है।

नगर के उत्तर मे १५ या १६ ली चलकर एक बडे जङ्गल मे एक स्तूप है जो कि कई सौ फीट ऊँचा है। यह अशोक का बनवाया हुआ है। इसके भीतर का शरीरावशेष मे से समय समय पर प्रकाश निकला करता है। इस स्थान पर प्राचीन काल मे तथागत भगवान् ऋषि के समान निवास करते थे और राजा की निर्दयता के शिकार हुए थे।

यहाँ से थोड़ी दूर पर पूर्व दिशा मे एक प्राचीन संघाराम है जिसको महात्मा कात्यायन अरहट ने बनवाया था। इसके पास ही चारो बुद्धो के तपस्या के निमित्त उठने बैठने रहने के सब चिह्न हैं। लोगो ने यहाँ पर स्तूप बनवा दिया है।

यहाँ से ३०० ली उत्तर-पूर्व को चलकर हम 'ओफनच' देश मे पहुँचे।

अ।फनच (अवन्द ?)

इस राज्य का क्षेत्रफल २,४०० या २,५०० ली है और राजधानी का लगभग २० ली है। यहाँ का कोई मुख्य शासक नही है वरन्‌ सिन्धवालो का अधिकार है। भूमि अनाज इत्यादि की उपज के लिए बहुत उपयुक्त है। गेहूँ और मटर बहुत होता है, परन्तु फल फूल की पैदावार अधिक नही होती। जङ्गल बहुत कम है। ठढक और आँधी आदि का जोर रहता है। मनुष्य दुष्ट और भयानक हैं। भाषा सीधी पर असुद्ध है। यहाँ के लोग विद्या से प्रेम नही करते, परन्तु रत्नत्रयी के पूरे और सच्चे भक्त होते है। कोई २० संघाराम २,००० साधुओ सहित हैं जिनमे से अधिकतर सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं। कोई पाँच देवमन्दिर है जिनमे पाशुपत लोगो का अधिकार है।

नगर के उत्तर-पूर्व को ओर थोड़ी दूर पर बाँस के एक बडे जङ्गल मे एक संघाराम है जो अधिकतर बरबाद है। यहाँ पर तथागत ने भिक्षुओ को जूता पहनने की आज्ञा दी थी। इसके पास एक स्तूप अशोक का बनवाया हुआ है। यद्यपि इसका निचला भाग भूमि मे धँस गया है तो भी जो कुछ शेष है वह कई सौ फीट ऊँचा है।

(1) जूता पहनने की आज्ञा के विषय मे कुछ लेख महावर्ग मे भी है इस वृत्तान्त से अवन्क का मिलान अवन्ती से किया जाता है।

इस स्तूप के पास एक विहार के भीतर बुद्धदेव की एक बडी मूर्ति नीले पत्थर की है। पुनीत दिनो मे (व्रतोत्सव पर) इसमे से दैवी चमत्कार प्रकाशित होता है।

दक्षिण मे ८०० कदम पर एक जङ्गल के भीतर एक स्तूप है जिसको अशोक ने बनवाया था। इस स्थान पर किसी समय तथागत आकर तीन वस्त्रो को ओढ लिया था। दूसरे दिन सबेरे भिक्षुओ को कई रुई इत्यादि से भरकर वस्त्र पहनने की आज्ञा दी थी। इस जङ्गल मे एक स्थान है जहाँ तथागत तपस्या के लिए टहरे थे। और भी बहुत स्तूप एक दूसरे के आमने सामने बने हुए है जहाँ पर गत चारो बुद्ध बैठे थे। इस स्तूप मे बुद्धदेव के नख और बाल है। पुनीत दिनो मे इनमे से अद्भुत प्रकाश प्रस्फुटित होता है।

यहाँ से लगभग ६०० ली उत्तर-पूर्व मे चलकर हम फलन देश मे पहुँचे।

फलन (वरन)

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली और मुख्य नगर का लगभग २० ली है। आबादी घनी और देश पर कपिशवालो का अधिकार है। देश के मुख्य भाग मे पहाड और जङ्गल अधिक हैं। भूमि नियमित रीति से जोती बोई जाती है। आबो-हवा कुछ शीतल है। मनुष्य दुष्ट और असभ्य हैं। ये लोग अपनी धुन के बड़े पक्के हैं परन्तु इनकी इच्छायें निकृष्ट ही होती हैं। इनकी भाषा कुछ कुछ मध्य भारत से मिलती-जुलती है कुछ लोग बुद्धधर्म पर विश्वास करते है और कुछ नही करते। यहाँ के लोग साहित्य अथवा गुण का आदर नही करते। कोई दस संघाराम है परन्तु सब तबाह हैं। कोई ३०० साधु हैं जो महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते है। कोई पाँच देवमन्दिर है जिन पर विशेषतया पाशुपत लोगो का अधिकार है।

नगर के दक्षिण मे थोड़ी दूर पर एक प्राचीन संघाराम है। यहाँ पर तथागत भगवान् ने अपने सिद्धान्तो की उत्तमता और उनसे होने वाले लाभो का वर्णन करके श्रोताओ के हृदय-पटल को खोल दिया था। इसके पास गत चारो बुद्धो के, तपस्या के उठने बैठने के चिह्न बने हुए है। इस देश की पश्चिमी सीमा पर 'किकियाङ्गन' राज्य है। लोगो की भिन्न भिन्न जातियाँ है, ये पहाड़ों और घाटियो मे रहते हैं। इनका कोई मुख्य शासक नही है। ये लोग भेड और घोड़े बहुत पालते हैं। यहाँ के घोडे बड़े डील-डौलवाले होते हैं। निकटवर्ती देशो मे ऐसे घोड़े बहुत कम होते है इसलिए वहाँ ये बडे दामो पर बिकते हैं।

इस देश को छोडकर उत्तर-पश्चिम मे बड़े बडे पहाड़ो और चौड़ी घाटियो को नाँघ कर, बहुत से छोटे छोटे नगरों मे होते हुए लगभग २,००० ली चलकर हमने भारत की सीमा का परित्याग किया और 'साउकूट' देश में पहुँचे।

बारहवाँ अध्याय

(बाईस देशो का वृत्तान्त—(१) सुकुच (२) फोर्ल शिसट अङ्गन (३) अण्ट लोपो (४) कओह सिटो (५) ह्वोह (६) मङ्गकिन (७) ओलिनि (८) हो लोहू (९) किलिसिमो (१०) पोलिहो (११) हिमोटलो (१२) पोटो चङ्गन (१३) इन पोकिन (१४) वियलङ्गन (१५) टमो सिटैटी (१६) शिकइनी (१७) चङ्गमी (१८) कइपअनटो (१९) उश (२०) कइश। (२१) चोवियू किया (२२) (कयू सटन)

सुकुच (साउकूट[1])

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ७,००० ली और राजधानी, जिसका नाम होसिन (गजन) है, लगभग ३० ली के घेरे मे है। एक और भी राजधानी है जिसका नाम होसल है[2], उसका भी क्षेत्रफल लगभग ३० ली है। ये दोनो स्थान प्रकृति से ही बहुत दृढ और सुरक्षित है। पहाड़ और घाटियाँ बराबर एक के बाद एक चली गई हैं, बीच बीच मे खेती के योग्य मैदान हैं। भूमि समयानुसार जोती-बोई और काटी जाती है। शीत ऋतु का गेहूँ बहुत अच्छा पैदा होता है। वृक्ष और झाड़ियाँ मनोहर और अनेक प्रकार की है जिनमे फल-फूल की बहुतायत रहती है। भूमि केशर और हिङ्गवयू[3] के उत्पन्न करने के लिए बहुत उपयुक्त है। यह अन्तिम वस्तु लोमइनटू[4] नामक घाटी मे बहुत उत्पन्न होती है।

होसलो नगर मे एक झरना है जिसका जल अनेक शाखाओ मे विभक्त है, लोग

---

(1) साउकुट देश के वृत्तान्त के लिए देखो जिल्द १ अ० १। कनिंघम साहब इसको 'अरचोसिया' निश्चय करते है।

(2) मारटीन साहब ने 'होसिन' को गजनी और 'होसल' को हजारा निश्चय किया था, परन्तु कनिंघम साहब की राय यह है कि यह नाम जिले के नाम समान आया है और चङ्गेजखाँ के समय से अधिक प्राचीन नही है। इसलिए वह इस शब्द को हेल्मण्ड के किनारेवाला 'गुजरिस्तान' मानते है जो टोलमी (Ptolemy) का 'ओजोल' है।

(3) समझ मे नही आया यह क्या वस्तु है।

(4) रामेनद्व ? (Jullen)

इस जल को सिंचाई के काम मे अधिक लाते हैं। प्रकृति शीत प्रधान है; बर्फ और पाले का सदा अधिकार रहता है। मनुष्य स्वभाव से ही ओछे दिल के और दुष्ट होते है, चालाकी और दगाबाजी इनका साधारण काम है। वे विद्या और कारीगरी मे प्रेम करते है तथा जादू-मंत्र मे बड़ी दक्षता प्रदर्शित करते है परन्तु इनका उद्देश उच्च कोटि का नही होता।

न मालूम कितने शब्दो का पाठ ये लोग नित्य प्रति किया करते हैं। इनकी भाषा और लिखावट अन्य देशो से भिन्न है। व्यर्थ की बकवाद करने मे ये प्रसिद्ध हैं। जो कुछ ये कहते हैं उसमे सचाई का अंश बिलकुल नही होता, अथवा बहुत थोड़ा होता है। यद्यपि यहाँ के लोग सैकडो भूत प्रेतो को पूजते है तो भी रत्नत्रयी की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। यहाँ पर कई सौ संघाराम हैं। जिनमे लगभग १,००० साधु है जो महायान सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं। यहाँ का शासक सच्चा और धर्मिष्ठ है तथा अनेकानेक पीढी से राज्याधिकारी चला आया है। धार्मिक कामो मे खूब परिश्रम करता है, सुशिक्षित है, और विद्या का प्रेमी है। यहाँ कोई दस स्तूप अशोक के बनाये हुए हैं और बीसो देवमन्दिर भी है जिनमे अनेक जाति के लोग उपासना करते हैं।

विरोधियो मे तीर्थक लोगो की संख्या अधिक है। ये लोग क्षुण देवता को की विशेष उपासना करते है। पूर्वकाल मे यह देवता कपिश के अरुण नामक पहाड़ मे यहाँ पर आया था और इस राज्य के दक्षिणी भाग मे सुनगिरि पर स्थित हुआ था। यह देवता जैसा ही कठिन है वैसा ही भला भी है। जिस प्रकार क्रुद्ध होकर लोगो को हानि पहुँचानेवाला है उसी प्रकार विश्वास के साथ उपासना करनेवाले का कामना भी पूरी करता है। इसलिए दूर तथा निकटवर्ती लोग उसकी बड़ी भक्ति करते हैं। बडे और छोटे सब लोग उसका भय मानते हैं। इस देश के तथा अन्य देशो के राजा बडे आदमी तथा साधारण लोग प्रत्येक आनन्दोत्सव पर, जिसका कोई समय नियत नही है, इस स्थान पर आते है, और सोना चांदी तथा अन्यान्य बहुमूल्य वस्तुयें भेट करते हैं जिनमे भेड़ें, घोडे इत्यादि अनेक प्रकार के पालतू पशु भी होते हैं। जो कुछ चढावा होता है उसमे सचाई और विश्वास की पूर्ण झलक होती है। और यद्यपि यहाँ की भूमि सोना चांदी से ढकी रहती है और घाटियाँ भेडो और घोड़ो से भरी रहती हैं तो भी किसी व्यक्ति को उनके छूने तक का लोभ नहीं हो सकता। इन वस्तुओ को अत्यन्त पुनीत समझ कर लोग इनसे सदा बचे रहते हैं। विरोधी (तीर्थक) अपने मन को वशीभूत करके और तन को नष्ट करके बड़ी तपस्या करते है, जिस पर प्रसन्न होकर देवता उनको कुछ मंत्र बता देते हैं। उन मंत्रो के प्रयोग से वे लोग बीमारी को हटा सकते हैं और रोगियो को चङ्गा कर सकते हैं।

यहाँ से लगभग ५०० ली उत्तर दिशा मे चल कर हम 'फोलीशिसट अङ्गन' देश मे पहुँचे ।

'फोलीशिसट अङ्गन' (पर्शुस्थान या वर्दस्थान[1] ?)

यह राज्य लगभग २,००० ली पूर्व से पश्चिम और १,००० ली उत्तर से दक्षिण की ओर है । राजधानी जिसका नाम उपिन (हुपिआन) है २० ली के घेरे मे है । भूमि और मनुष्यो का आचरण ठीक सुकुचवालो के समान है, केवल भाषा मे अन्तर है, प्रकृति शीतप्रधान है । बर्फ बहुत पड़ती है । निवासी स्वभाव से ही दुष्ट और झगड़ालू है । राजा जाति का तुर्क है । लोग उपासना के तीनो बहुमूल्य पदार्थो पर दृढ विश्वास रखते है । राजा विद्या की प्रतिष्ठा और विद्वानो का सत्कार खूब करता है ।

इस राज्य के पूर्वोत्तर पहाडो और नदियो को पार करके तथा कपिश देश की सीमा के कितने ही छोटे छोटे नगरो मे होते हुए हम एक बडे पहाडी दर्रे तक आये जिसका नाम पो लो सिन (वर सेन)[1] है और जो हिमालय पहाड़ का भाग है । यह पहाड़ी दर्रा बहुत ऊँचा है, इसके करारे जङ्गली और भयानक, रास्ता पेचीदा, और गुफाएँ अनेक है । यात्रा करनेवाले को यदि कभी गहरी घाटी मे जाना पडता है तो कभी ऊँची चोटी पर चढना पडता है जो बर्फ से ढकी होती है । यहाँ की बर्फ गहरी गरमी मे भी नही गलती । इस बर्फ पर बडी सावधानी से पैर जमा जमा कर चलना पडता है, और तीन दिन के उपरान्त दर्रे के सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँचना होता है । यहाँ की बर्फीली हवा अत्यन्त ठन्ढी और बहुत जोरदार होती है जिससे बर्फ के ढोके लुढक लुढक कर घाटी मे भर जाते है । इस मार्ग से जानेवाले यात्री को किसी स्थान पर विश्राम करने का साहस नही हो सकता । चक्कर काट कर उडने वाले पक्षी भी इस स्थान पर नही ठहर सकते, वरञ्च सर्राटा बाँधे हुए निकल जाते है और फिर नीचे जाकर उडते है । जम्बूद्वीप भर मे यही सबसे ऊँची चोटी है । इसके ऊपर कोई भी वृक्ष नही दिखाई पडता केवल चट्टानो के सिलसिले जङ्गली वृक्षो के समान चले गये है ।

और तीन दिन चलकर हम दर्रे से नीचे उतरे और 'अण्ट लोपो' मे आये ।

---

(1) पाणिनि भी पर्शुस्थान का उल्लेख करते है । पर्शु लोग लड़ाकू जाति के थे जो इस प्रान्त मे निवास करते थे (५–३–११७) (बृहत्संहिता १४–१८) वेबर साहब अफगानिस्तान की जातियो मे पराची लोगो का उल्लेख करते है ।

(2) हिन्दूकुश पहाड़ का यह दर्रा कदाचित् उड साहब कथित 'खबक दर्रा है । यह १३,०००फीट ऊँचा है ।

अराट लोपी (अन्दर आब)

तुहोलो देश का प्राचीन स्थान यही है। यह देश लगभग ३,००० ली के घेरे मे और राजधानी १४ या १५ ली के घेरे मे है। यहाँ का कोई मुख्य शासक नही है, तुर्क लोगो का अधिकार है। पहाड और पहाड़ियाँ जजीर के समान बहुत दूर तक चली गई है जिनके मध्य मे घाटियाँ है। जोतने-बोने योग्य भूमि बहुत कम है। जलवायु बडी ही कष्टदायक है। आँधी और वर्फ के कारण यद्यपि वड़ी सरदी और तकलीफ रहती है तो भी जुताई-बोआई और पैदावार देश मे अच्छी होती है। फूल और फल भी बहुत होते है। मनुष्य दुष्ट और कठोर है। साधारण लोग असम्बद्ध मार्गी है, उनको सच झूठ का ज्ञान नही है। लोग विद्या से प्रेम नही करते केवल भूत-प्रेतो की पूजा करते हैं। बहुत थोडे लोग बुद्धधर्म पर विश्वास करते है। कोई तीन सघाराम और थोडे से साधु है जो महासघिक सस्था के सिद्धान्तो का अनुकरण करते है। अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप भी है।

यहाँ से उत्तर-पश्चिम को चलकर हम एक घाटी मे पहुँचे, फिर एक पहाडी दर्रे के किनारे किनारे कुछ छोटे छोटे गाँवो मैं होकर और लगभग ४०० ली चलकर हम 'कओह सिटो' पहुँचे।

कओह सिटो (खोस्त)

यह भी तुलोहो देश की प्राचीन भूमि है। इसका क्षेत्रफल ३,००० ली और राजधानी का लगभग १० ली है। इसका कोई मुख्य शासक नही है, वरच तुर्क लोगो का अधिकार है। यह भी पहाडी देश है और इसमे भी वहुत सी घाटियाँ है इस कारण यहाँ की भी वायु वर्फीली तथा शीतप्रधान है। यहाँ अनाज बहुत उत्पन्न होता है और फूल-फल की भी बहुतायत रहती है। मनुष्य भयानक और दुखदायी है। इन लोगो के लिए कोई कानून नही है। कोई तीन सघाराम और बहुत थोडे साधु है।

यहाँ से उत्तर-पश्चिम मे पहाडो को नाँघते और घाटियो को पार करते हुए, कुछ नगरो मे होकर लगभग ३००० ली के उपरान्त हम ह्वोह नामक देश पहुँचे।

ह्वोह (कुन्दुज)

यह देश भी तुहोलो की प्राचीन भूमि है। इसका क्षेत्रफल लगभग ३,००० ली और मुख्य नगर का १० ली है। यहाँ कोई मुख्य शासक नही है, देश पर तुर्को का अधिकार है। भूमि समथल और अच्छी तरह पर जोती बोई जाती है, जिससे अनाज इत्यादि वहुत उत्पन्न होता है। वृक्ष और झाडियाँ बहुत है, फल-फूल की वहुतायत रहती है। प्रकृति कोमल और सह्य है। मनुष्यो का आचरण शुद्ध और शान्त है, परन्तु

स्वभाव मे चुस्ती और चालाकी बसी हुई है। ऊनी वस्त्र पहनने की अधिक चाल है। बहुत से लोग रत्नत्रयी की उपासना करते है, थोडे से भूत-प्रेतो को भी पूजते है। कोई दस संघाराम और कई सौ साधु है जो हीन और महा दोनो यानो का अध्ययन और अनुशीलन करते है। राजा जाति का तुर्क है। लौहफाटक[1] के दक्षिण वाले छोटे छोटे राज्यो पर इसी नरेश का अधिकार है। इसलिए इसका निवास सदा इस एक ही नगर मे नही रहता, बल्कि यह पक्षियो के समान एक स्थान से दूसरे स्थान मे घूमा फिरा करता है।

यहाँ से पूर्व दिशा मे चलकर हम सङ्गलिङ्ग पहाडो मे पहुँचे। ये पहाड जम्बूद्वीप के मध्य मे स्थित है। इनकी दक्षिणी हद पर हिमालय पहाड है। उत्तर मे इसका विस्तार गरम समुद्र (टेमर्टू झील) और "सहस्रधारा" तक, पश्चिम मे ह्वोह राज्य तक और पूर्व मे उच (ओच) राज्य तक है। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक का विस्तार प्राय. बराबर ही है। यह कई हजार ली है। इन पहाडो मे कई सौ ऊँची-ऊँची चोटियाँ और अँधेरी घाटियाँ है। पहाड का ऊँचा भाग बर्फ के चट्टानो और पाले के कारण भयानक है। ठन्डी हवा प्रबल वेग से चलती है। यहाँ की भूमि मे पियाज बहुत उत्पन्न होता है या तो इसलिए और या इसलिए कि इन पहाडो की चोटियाँ नीले हरे रङ्ग की है इसका नाम सङ्गलिङ्ग है।

यहाँ से लगभग १०० ली पूर्व दिशा मे चलकर हम 'मङ्गकिन' राज्य मे पहुँचे।

मङ्गकिन (मुञ्जन)

यह तुहोलो देश का प्राचीन अधिकृत देश है। इसका क्षेत्रफल लगभग ४०० ली और मुख्य नगर का १५ या १६ ली है। भूमि और मनुष्यो का आचरण अधिकतर ह्वोह देश वालो के समान है। कोई मुख्य शासक नही है। तुर्क लोगो का अधिकार है। यहाँ से उत्तर दिशा मे चलकर हम 'ओलिनि' देश को पहुँचे।

ओलिनि (अह्वेङ्ग)

यह देश भी तुहोलो का प्राचीन प्रान्त है। तथा अक्सस नदी के दोनो किनारो पर फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल लगभग ३०० ली और मुख्य नगर का १४ या १५ ली है। यहाँ की भूमि और मनुष्यो का चलन-व्यवहार इत्यादि ह्वोह देश से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

यहाँ से पूर्व दिशा मे चलकर हम 'होलोहू' पहुँचे।

---

(1) लौहफाटक के वृत्तान्त के लिए देखो भाग १ अध्याय १ पृ० २२, २३

होलोहू (रघ)

यह देश तुहोलो का प्राचीन भाग है। उत्तर मे इसकी हद अक्सस नदी है। यह लगभग २०० ली क्षेत्रफल मे है। मुख्य नगर का क्षेत्रफल १४ या १५ ली है। भूमि की उपज और मनुष्यो का चलन-व्यवहार ह्वोह देश से बहुत मिलता-जुलता है।

मङ्गकिन देश से पूर्व मे ऊँचे ऊँचे पहाडी दर्रो मे चल कर और गहरी घाटियो मे घुसते और अनेक नगरो और जिलो मे होते हुए लगभग ३०० ली चलकर हम 'किलिसिमो' देश मे पहुँचे।

किलिसिमो (खरिश्म अथवा किश्म)

यह देश तुहोलो का प्राचीन भाग है। पूर्व से पश्चिम तक १,००० ली और उत्तर से दक्षिण तक ३०० ली के बीच मे विस्तीर्ण है। राजधानी का क्षेत्रफल १५ या १६ ली है। भूमि और मनुष्यो का चलन-व्यवहार ठीक मङ्गकिन के समान है, केवल ये लोग क्रोधी अधिक है।

उत्तर-पूर्व मे चलकर हम 'पोलिहो' राज्य मे पहुँचे।

पोलिहो (वोलर)

यह देश तुहोलो का प्राचीन भाग है। पूर्व से पश्चिम तक यह लगभग १०० ली और उत्तर से दक्षिण तक लगभग ३०० ली है। मुख्य नगर का क्षेत्रफल २० ली है। भूमि की उपज और लोगो का चलन-व्यवहार इत्यादि किलिसिमो के समान है।

किलिसिमो के पूर्व पहाड़ो और घाटियो को नाँघकर लगभग ३०० ली जाने के उपरान्त हम 'हिमोतलो' देश मे पहुँचे।

ह्मिोतल (हिमतल)

यह देश तुहोलो देश का प्राचीन भाग है। इसका क्षेत्रफल ३०० ली है। इसमे पहाड़ और घाटियाँ बहुत है। भूमि उत्तम और उपजाऊ तथा अन्नादि की उत्पत्ति के योग्य है। यहाँ पर शीत ऋतु मे गेहूँ बहुत उत्पन्न होता है। सब प्रकार के वृक्ष भी यहाँ होते है तथा सब प्रकार के फला की बहुतायत रहती है। प्रकृति शीतल और मनुष्यो का आचरण दुष्टता और चालाकी से भरा हुआ है। सत्य और असत्य मे क्या भेद है यह लोग नही जानते। इनकी सूरत भद्दी होती है और उससे कमीनापन टपकता है। यहाँ के लोगो का चलन व्यवहार, सभ्यता का स्वरूप, इनके ऊनी, रेशमी और नमदे के वस्त्र आदि सब बाते तुर्क लोगो के समान है। यहाँ की स्त्रियाँ अपने शिरो वस्त्र के ऊपर लगभग ३ फीट ऊँचा लकड़ी का एक सीग लगा लेती है जिसके अगले भाग मे दो शाखें होती है जो उसके पति के माता-पिता की सूचक होती हैं। ऊपरी सीग पिता का सूचक

और निचला सीग माता का सूचक होता है। इनमे से जिसका प्रथम देहान्त होता है उसी का सूचक एक सीग उतार दिया जाता है। दोनो के न रहने पर फिर यह शिरो-भूषण धारण नही किया जाता।

इस देश का प्रथम नरेश शाक्यवशीय[1] था। यह वडा वीर और निर्भय था। सङ्गलिङ्ग पहाड के पश्चिम वाले लोग अधिकतर उसकी सत्ता के अधीन थे। सीमा पर के लोग तुर्क लोगो के सन्निकट थे इसलिए उनकी रीति-रस्म निकृष्ट हो गई थी, और उनकी चढाइयो से पीड़ित होकर लोग अपनी सीमा पर रहने वालो की सहायता किया करने थे। इस कारण इस राज्य के निवासी भिन्न भिन्न जिलो मे विभक्त थे। वीसो सुदृढ नगर वना दिये गये थे जिनका अलग-अलग एक एक शासक था। लोग नमदे के बने हुए खेमो मे रहा करते थे और घूमने फिरने वाले लोगो खानावदोशो के समान जीवन व्यतीत करते थे।

इस राज्य के पश्चिम मे 'किलिसिमो' देश है। यहाँ से २०० ली चल कर हम 'पोटो चङ्गन' देश मे पहुँचे।

पोटो चङ्गन (वदख्शाँ)

यह देश भी तुहोलो देश का प्राचीन भाग है। इसका क्षेत्रफल लगभग २,००० ली और राजधानी, जो पहाडी ढाल पर बसी हुई है, ६ या ७ ली के घेरे मे है। यह देश भी पहाडो और घाटियो से छिन्न-भिन्न है। सब ओर बालू और पत्थर फैले हुए है। भूमि मे मटर और गेहूँ उत्पन्न होता है। अगूर, आडू और बेर आदि की भी अच्छी उपज होती है। प्रकृति अत्यन्त शीतल है। मनुष्य चालाक और दुष्ट हैं। इन लोगो की रीतियाँ तसम्बद्ध है। लोगो को लिखने-पढने अथवा शिल्प का ज्ञान नही है। इनकी सूरत कमीनी और भद्दी है। अधिकतर ऊनी वस्त्र पहिनने का चलन है। कोई तीन या चार सङ्घाराम है जिनके अनुयायी बहुत थोड़े हैं। राजा धर्मिष्ठ और न्यायी है, उपासना के तीनो पुनीत अङ्गो की बड़ी भक्ति करता है।

यहाँ से दक्षिण-पूर्व जाकर, पहाडो और घाटियो को पार करके, लगभग २०० ली चलने के बाद हम 'इनपोकिन' देश को पहुँचे।

इनपोकिन (यमगान)

यह देश तुहोलो देश का भाग है। इसका क्षेत्रफल लगभग १,००० ली और राजधानी का लगभग १० ली है। देश मे पहाडो और घाटियो की एक लकीर सी चली

(1) कदाचित् यह उन्ही वीरो मे से कोई हो जो कपिलवस्तु से निकाल दिये गये थे।

गई है जिससे जोतने बोने योग्य भूमि की कमी है। भूमि की उपज, प्रकृति, और मनुष्यों के चलन-व्यहार आदि मे पोटोचङ्ग देश से कुछ थोडा ही भेद है। भाषा के स्वरूप में भी बहुत थोडा अन्तर है। राजा स्वभावतः क्रूर और कुटिल है, उसको सत्य असत्य का कुछ भी ज्ञान नही है।

यहाँ से दक्षिण-पूर्व मे पहाड़ो और घाटियो को पार करते हुए, पतले और कष्टदायक मार्ग से, लगभग ३०० ली चल कर हम 'क्यूलङ्गन' देश को आये।

'कियूलङ्गन' (कुरन)

यह देश तुहोलो का एक प्राचीन भाग है। इसका क्षेत्रफल लगभग २,००० ली है। भूमि की उपज, पहाड और घाटियाँ प्रकृति और ऋतुएँ आदि इनपोकिन राज्य के समान है। इन लोगो की रीति-रस्मो का कोई नियम नही है। ये स्वभाव से क्रूर और धूर्त हैं। अधिकतर लोग धर्म की सेवा नही करते, बहुत थोड़े लोग है जो बुद्धधर्म पर विश्वास करते है। मनुष्यो का रूप भद्दा और वेडौल है। ऊनी वस्त्र का अधिक व्यवहार होता है। यहाँ पर एक पहाडी गुफा है जिसमे से बहुत सा सोना निकलता है। लोग पत्थरो को तोड़ तोड़ कर सोना निकालते है। यहाँ पर सङ्घाराम बहुत कम हैं और साधु तो कदाजित् ही कोई हो। राजा धर्मिष्ठ और सरलहृदय का व्यक्ति है। वह उपासना के तीनो पुनीत अङ्गो की वड़ी भक्ति करता है।

यहाँ से पूर्वोत्तर मे एक पहाड़ पर चढकर और घाटियो को पार करते हुए, भयानक और ढालू मार्ग से लगभग ५०० ली चल कर हम 'टमोसिटौइटी' राज्य मे चहुँचे।

टमोसिटैइटी (तमस्थिति ?)

यह देश दो पहाडो के मध्य मे है और तुहोलो का एक प्राचीन भाग है। पूर्व से पश्चिम तक इसका विस्तार १,५०० या १,६०० ली और उत्तर से दक्षिण तक ४ या ५ ली है। इसका सबसे पतला भाग एक ली से अधिक नही है। यह अक्सस नदी के किनारे उसके बहाव की ओर फैला चला गया है, तथा यह भी ऊँची-नीची पहाडियो से छितर बितर है। पत्थर और बालू चारो ओर भूमि पर फैली हुई है। हवा बर्फीली सर्द और वडे जोर से चलती है। यद्यपि लोग भूमि को जोतते बोते है तो भी गेहूँ और अरहर बहुत थोडी पैदा होती है। वृक्ष थोड़े है परन्तु फल और फूल बहुत होते हैं। यहाँ पर घोड़े बहुत पाले जाते है। ये यद्यपि छोटे कद के होते हैं परन्तु बहुत दूर तक चले जाने पर भी थकते बहुत कम है। मनुष्यो के चलन व्यवहार मे प्रतिष्ठा का लिहाज

बिलकुल नही है। लोग क्रोधी और कुटिल प्रकृति के है, और सूरतें भद्दी और कमीनी है। ऊनी वस्त्र पहनने की चाल है। इन लोगो की आँखें नीले रङ्ग की हैं इस सबब से इन लोगो का दूसरे देश वालो से पार्थक्य स्पष्ट प्रतीत होता है। कोई दस सङ्घाराम हैं जिनमे बहुत थोडे साधु निवास करते है।

राजधानी का नाम ह्वानट आटो है। इसके मध्य मे इसी देश के किसी प्राचीन नरेश का बनवाया हुआ एक सङ्घाराम है। यह सङ्घाराम पहाड़ के पार्श्व खोद कर और घाटियाँ पाट कर बनाया गया है। इस देश के प्राचीन नरेश बुद्धदेव के भक्त नही थे। वे विरोधियो के समान देवताओ के लिए यज्ञ आदि किया करते थे, परन्तु इधर कई शताब्दियो से सत्य-धर्म की शक्ति का प्रचार हो गया है। प्रारम्भ मे राजा का पुत्र, जो उसको अत्यन्त प्यारा था, बीमार हो गया। सब प्रकार की उत्तमोत्तम औषधियो और उपायो के होने पर भी उसको कुछ लाभ न हुआ। राजा अत्यन्त दुखित होकर अपने देवता के मन्दिर मे पूजा करने और बच्चे के आरोग्य होने की तदवीर जानने के लिए गया। मन्दिर के प्रधान पुजारी ने देवता की ओर से उत्तर दिया, "तुम्हारा पुत्र अवश्य अच्छा हो जायगा, तुम अपने चित्त मे धैर्य रक्खो।" राजा इन शब्दो को सुनकर बहुत प्रसन्न हो गया और मकान की ओर चल दिया। मार्ग मे उसकी भेट एक श्रमण से हुई जिसका रूप प्रभावशाली और चेहरा तेज से देदीप्यमान हो रहा था। उसके स्वरूप और वस्त्र पर विस्मित होकर राजा ने उससे पूछा, "आपका आगमन कहाँ से होता है और किधर जाने का विचार है?" श्रमण पुनीतपद (अरहट) को प्राप्त हो चुका था और बुद्धधर्म के प्रचार का इच्छुक था, इसी लिए उसने अपना ढङ्ग और स्वरूप इस प्रकार का तेजोमय बना रक्खा था, उत्तर मे उसने कहा, "मैं तथागत का शिष्य हूँ और भिक्षु कहलाता हूँ।" राजा जो बहुत चिन्तित हो रहा था एक-दम से पूछ बैठा कि 'मेरा पुत्र अत्यन्त पीडित है, मैं नही जान सकता कि इस समय वह जीता है या मर गया (क्या वह अच्छा हो जायगा?') श्रमण ने उत्तर दिया, "आप चाहे तो आपके मरे हुए पुरखे भी जी उठें, परन्तु आपके पुत्र का बचना कठिन है।" राजा ने उत्तर दिया, "मुझको एक दैवी शक्ति ने विश्वास दिलाया है कि वह नही मरेगा और श्रमण कहता है कि वह मर जायगा, इन दोनो धर्माचार्यों मे से किसकी बात पर विश्वास किया जाय यह जानना कठिन है।" भवन मे आकर उसको विदित हुआ कि उसका प्यारा पुत्र मर चुका है। उसके शव को छिपा कर और बिना अन्तिम सस्कार किये हुए, उसने फिर जाकर मन्दिर के पुजारी के पुत्र के आरोग्य के विषय मे पूछा। उत्तर मे उसने कहा, "वह नही मरेगा, वह अवश्य अच्छा हो जायगा।" राजा ने क्रुद्ध होकर उसको पकड़ लिया और अच्छी तरह से बाँध कर बड़ी डाँट फटकार के साथ कहा, "तुम लोग बडे

धोखेबाज हो, तुम स्वाँग तो धर्मिष्ट होने का बनाते हो परन्तु परले सिरे के झूठे हो। मेरा पुत्र तो मर गया और तुम कहते हो कि वह अवश्य अच्छा हो जायगा। यह झूठ सहन नही हो सकता, इसलिए मन्दिर का पुजारी मार डाला जायगा और मन्दिर खोद डाला जायगा।" यह कह कर उसने पुजारी को मार डाला और मूर्ति को लेकर अक्सस नदी मे फेक दिया। लौटने पर उसकी भेट फिर श्रमण से हुई। उसको देखते ही वह गद्‌गद हो गया और भक्तिपूर्वक डण्डवत् करके उसने निवेदन किया, "असत्य सिद्धान्तो के अनुसार मैं असत्य मार्ग का पथिक हूँ, और यद्यपि मैं बहुत दिनो से इसी भ्रम चक्र मे पडा हुआ हूँ परन्तु अब परिवर्तन का समय आगया। मेरी प्रार्थना है कि कृपा करके आप मेरे भवन को अपने पदार्पण से पुनीत कर दीजिए। श्रमण उसके निमन्त्रण को स्वीकार करके उसके साथ गया। मृतक संस्कार समाप्त हो जाने पर राजा ने श्रमण से कहा, "संसार की दशा चिन्तनीय है, मृत्यु और जन्म की धारा बराबर चला करती है, मेरा पुत्र बीमार था, मैंने इस बात को जानना चाहा कि वह मेरे पास रहेगा या मुझसे अलग हो जायगा। झूठे लोगो ने कहा वह अवश्य अच्छा हो जायगा परन्तु आपने जो शब्द उच्चारण किये थे वे ठीक हुए क्योकि बे झूठे नही थे। इसलिए आप जो धर्म के नियम सिखायेंगे वे अवश्य आदरणीय होगे। मैंने बहुत धोखा खाया, अब कृपा करके मुझको अङ्गीकार कीजिए और अपना शिष्य बनाइए।" इसके अतिरिक्त उसने श्रमण से एक सङ्घाराम बनाने की भी प्रार्थना की, और उसकी शिक्षा के अनुसार उसने इस सङ्घामाम को बनवाया। उस समय से अब तक बुद्ध-धर्म की उन्नति ही इस देश मे होती आई है।

प्राचीन सङ्घाराम के मध्य मे एक विहार भी इसी अरहट का बनवाया हुआ है। विहार के भीतर बुद्धदेव की एक पाषाण-प्रतिमा है जिसके ऊपर मुलम्मा किया हुआ ताँबे का पत्र चढा है और जो बहुमूल्य रत्नो से आभूषित है। जिस समय लोग इस मूर्ति की प्रदक्षिणा करने लगते हैं उस समय वह पत्र भी घूमने लगता है और उनके ठहरने पर रुक जाता है। पुराने लोगो का कहना है कि पवित्र मनुष्य की प्रार्थना के अनुसार ही यह चमत्कार दिखाई देता है। कुछ लोग कहते है कि कोई गुप्त यन्त्र ही इसका कारण है। परन्तु ठोस पत्थर की दीवारो का निरीक्षण करने और लोगों के कहने के अनुसार जाँच-पडताल करने पर भी इस बात का जानना कठिन है कि इसमे क्या भेद है।

इस देश को छोड़कर और उत्तर की ओर एक बड़े पहाड़ को पार करके हम 'शिकइनी' देश मे पहुँचे।

शिकइनी (शिखनान)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग २,००० ली और मुख्य नगर का ५ या ६ ली है। पहाड़ और घाटियाँ श्रेणीबद्ध वर्तमान है। बालू और पत्थर भूमि पर छिटके हुए हैं। मटर और गेहूँ बहुत होता है परन्तु चावल थोड़ा। वृक्ष कम हैं, और फल-फूल भी विशेष नही होते। प्रकृति बर्फीली शीत है। मनुष्य भयानक और वीर है। किसी की जान ले लेना अथवा लूट मार करना इनके लिए कुछ बात ही नही। शुद्धाचरण और न्याय से ये लोग बिलकुल अनजान है, ये सत्यासत्य मे भेद नही समझते। इस आमरण से भविष्य मे इनको क्या सुख दुख होगा इसके विषय मे ये भटके हुए है। इनको कुछ भय है तो केवल वर्तमान कालिक दु.खो का। इनके स्वरूप और अङ्ग अङ्ग से कमीनापन झलकता है। इनके वस्त्र ऊन अथवा चमडे के होते हैं। इनकी लिखावट तुर्क लोगो के समान है परन्तु भाषा भिन्न है।

टमोसिटैटी[1] राज्य के दक्षिण मे एक बड़े पहाड़ के किनारे चलकर हम 'शङ्गमी' देश को आये।

शङ्गमी (शाम्भी ?)

इस देश[2] का क्षेत्रफल लगभग २,५०० या २,६०० ली है। यह देश पहाड़ो और घाटियो से छिन्न भिन्न है। पहाड़ियो की ऊँचाई समान नही है। सब प्रकार का अनाज बोया जाता है परन्तु मटर और गेहूँ बहुत होता है। अगूर भी बहुत उत्पन्न होता है। पीले रङ्ग का संखिया भी इस देश मे मिलता है। लोग पहाड़ी काट कर और पत्थरो को तोड कर इसको निकालते हैं। पहाडी देवता बड़े दुष्ट और निर्दय है, वह राज्य को तहस-नहस करने के लिए बहुधा उपद्रव उठाया करते है।

इस देश मे जाने पर उनके लिए बलिप्रदान करना पड़ता है तभी जाने-आनेवाले व्यक्ति की भलाई हो सकती है। यदि बलिप्रदान न किया जाय तो देवता लोग आँधी

---

(1) इटल साहब की हैण्डबुक के अनुसार टमोसिटैटी (तमस्थिति) तुषार-प्रदेश का एक सूबा था जिसके निवासी अपनी क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे। तमस्थिति शब्द जुलियन साहब ने सन्दिग्ध रूप से निश्चय किया है और उसी को कदाचित् इटल साहब ने भी माना है।

(2) यही देश है जिस पर, शाक्यवंशियों ने देश से निकाले जाने पर आकर अधिकार किया था। जुलियन साहब इसको शाम्बी 'साम्भी' कहते हैं और भाग १ अध्याय ६ में शाम्बी शब्द आया है। इटल साहब इस राज्य को शाक्यवशी द्वारा संस्थापित मानते है और इसका स्थान चित्राल के निकट कहते हैं।

और बर्फ से यात्री पर हमला करते है। प्रकृति अत्यन्त शीतल है, मनुष्यो मे फुर्तीलापन, सचाई और सीधापन बहुत है। इन लोगो के चलन-व्यवहार मे कोई भी न्यायानुमोदित नही है। इनका ज्ञान थोडा और इनमे शिल्प-सम्बन्धी योग्यता का अभाव है। इनकी लिखावट तुहोलो देश के समान है परन्तु भाषा मे भिन्नता है। इन लोगो के वस्त्र अधिक तर ऊन से बनते है। राजा शावयवशी है, वह बुद्ध-धर्म की बडी प्रतिष्ठा करता है। लोग उसका अनुकरण करते है और उस पर बहुत विश्वास रखते है। कोई दो सङ्घाराम और बहुत थोडे साधु है।

देश की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर पहाडो और घाटियो को नाँघते, भयानक और ढालू मार्ग से भ्रमण करते हुए लगभग ७०० ली चलने के उपरान्त हम 'पोमीलो' (पामीर[1]) घाटी तक पहुँचे। इसका विस्तार पूर्व से पश्चिम तक १,००० ली और उत्तर से दक्षिण तक १०० ली है। इसका सबसे सिकुडा भाग १० से अधिक नही है। यह बर्फीले पहाडो मे स्थित है इस कारण यहाँ की प्रकृति बहुत शीतल है और हवा जोर से चलती है। गर्मी और वसन्त दोनो ऋतुओ मे बर्फ पडा करती है। हवा का जोर रात-दिन समान-रूप से कष्ट देता है। भूमि नमक से गर्भित और बालू तथा ककडो से आच्छादित है। अनाज जो कुछ बोया जाना है पकता नही, झाडी और वृक्ष कम है। रेगिस्तानी मैदान दूर तक फैले चले गये हैं जिनमे कोई रास्ता नही।

पामीर घाटी के मध्य मे नाबहृद नामक एक बडी झील है। इसका विस्तार पूर्व से पश्चिम तक लगभग ३०० ली और उत्तर से दक्षिण तक ५० ली है। यह महा सङ्गलिङ्ग पहाड के मध्य मे स्थित है और जम्बूद्वीप का केन्द्र भी है। इसकी भूमि बहुत ऊँची और जल विशुद्ध तथा दर्पण के समान स्वच्छ है। इसकी गहराई की थाह नही, झील का रङ्ग गहरा नीला और जल मीठा तथा सुस्वाद है। जल के भीतर मछलियाँ, नाग, मगर और कछुए तथा जल के ऊपर तैरने वाले पक्षी बतख, हंस, सारस आदि निवास करते है[2]। जङ्गली मैदानो, तराई की झाड़ियो अथवा बालू के ढेरो मे बडे-बड़े

---

(1) Sir T. D. Forsyth के अनुसार पामीर खोकन्दी तुर्की शब्द है जिसका अर्थ 'रेगिस्तान' होता है।

(2) ह्वेनसाग की यात्रा इस स्थान पर ग्रीष्मऋतु (कदाचित् ६४2 ई०) मे हुई होगी। शीत-ऋतु मे तो यह झील ढाई फीट ज़म जाती है (Woods, Oxus' P.236) परन्तु गरमी मे झील पर की बर्फ फट जाती है और निकटवर्ती पहाडियाँ बर्फ रहित हो जाती है। यह अवस्था (खिरगीज के कथन के अनुसार, जो उड साहब के साथ था) जून मास के अन्त मे होती है जिन दिनो झील पर जलचर पक्षिजे का झुण्ड आकर जमा होता है। अन्य बातो के लिए देखो Marrco Polo Book 1, (Chap. xxxii और Yule's Notes.।

अण्डे छिपे हुए पाये जाते है।

एक बड़ी धारा झील से निकल कर पश्चिम की ओर बहती हुई टमोसिटेटी राज्य को पूर्वी हद पर अक्सस नदी मे मिलकर पश्चिम को ही बह जाती है। इसी प्रकार झील के इस ओर जितनी धाराएँ बहती हैं वे सब भी पश्चिम को जाती है।

झील के पूर्व मे एक बडी धारा निकल कर पूर्वोत्तर दिशा मे बहती हुई कइश देश की पश्चिमी सीमा पर पहुँचती है और वहाँ पर सिटो (शीता[1]) नदी मे मिलकर पूर्व की ओर बह जाती है। इस तरह पर झील के वाई ओर की सब धारायें पूर्व की ओर ही बहती है।

पामीर घाटी के दक्षिण मे एक पहाड़ पार करके हम 'पोलोलो' (बोलोर[2]) देश मे पहुँचे। यहाँ सोना और चाँदी बहुत मिलता है। सोने का रङ्ग अग्नि के समान लाल होता है।

इस घाटी का मध्य भाग छोड़ कर दक्षिण-पूर्व की जाने से सड़क पर कोई भी गाँव नही मिलता। पहाडो पर चढकर, चोटी को एक तरफ छोड्ते हुए, और बर्फ से मुकाबिला करते हुए लगभग ५०० ली के उपरान्त हम 'कइप अनटो, राज्य मे आये।

कइश अन्टो

इस देश का क्षेत्रफल, २००० ली है। राजधानी एक बड़े पहाड्डी चट्टान पर बसी हुई है जिसके पीछे की ओर शीता नदी है। इसका क्षेत्रफल २० ली है। पहाड़ी सिलसिला बरावर फैला हुआ है, घाटियाँ और मैदान कम है। चावल की खेती कम होती है, मटर और अन्य अनाज अच्छा पैदा होता है। वृक्ष बहुत बड़े नही होते, फल और फूल कम होते है। मैदानो मे तरी, पहाड़ियाँ शून्य और नगर उजडे हुए हैं। मनुष्यो के चलन-व्यवहार अनियमित है। बहुत थोडे लोग हैं जो विद्याध्ययन मे दत्तचित्त होते हैं। मनुष्य स्वभावत. कमीने और बेहूदा है पर है बडे वीर और साहसी। इनकी सूरत मामूली और भद्दी है। इनके वस्त्र ऊन के बने होते हैं। इनके अक्षर कइश देश वालो से बहुत मिलते-जुलवे हैं। बुद्धधर्म की प्रतिष्ठा बहुत थोडी है इस कारण अधिकतर लोग धर्म का ध्यान रखते हैं और अपने को सच्चा प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। कोई दस

(1) शीता नदी के विषय मे देखो भाग १ अध्याय १ जुलियन साहब Voe III, P. 512 मे 'शीता' नाक निश्चय करते हैं जिसका अर्थ 'ठढा' है और जो चीनी कोष के अनुसार भी है।

(2) कदाचित् तिब्बती राज्य 'वल्टी' से मतलब है देखो कनिङ्घम (Quald ybyule, M P Volt I, P. 168)

संघाराम लगभग ५०० साधु है जो सर्वास्तिवाद-संस्था के अनुसार हीनयान का अध्ययन करते है।

राजा बहुत धार्मिष्ठ और सदाचारी है। रत्नत्रयी की बडी प्रतिष्ठा करता है। उसका स्वरूप शान्त है- उसमें किसी प्रकार की बनावट नही, उसका चित्त उदार है और वह विद्या का प्रेमी है।

राज्य के स्थापित होने के दिन से बहुत सी पीढियाँ बीत चुकी हैं। कभी-कभी लोग अपने को चीन देव गोत्र' इस नाम से सम्बोधन करते हैं। प्राचीन काल मे यह देश, सङ्गलिङ्ग पहाड के मध्य मे एक निर्जन घाटी था। उन्ही दिनो फारस के किसी नरेश ने अपना विवाह 'हान' देश मे किया। वधू की यात्रा के समय मार्ग मे बाधा पडी, पूर्व और पश्चिम दोनो ओर से डाकुओ की फौज ने आकार घेर लिया। इस दशा मे लोगो ने राजकन्या को सुनसान पहाड की चोटी पर पहूँचा दिया जो अत्यन्त ऊँची और भयावनी थी, तथा जिस पर बिना सीढी के पहुँचना कठीन था। इसके अतिरिक्ति ऊपर और नीचे अनेक रक्षक नियत कर दिये गये जो रात दिन पहरा देते थे। तीन मास उपरान्त झमेला शान्त हुआ औक डाकू लोग परास्त हो गये। झगडे से निवृत होकर लोग घर की ओर ही चलने वाले थे कि उनको विदित हुआ कि राजकन्या गर्भवती है। प्रधान मत्री, जिसके ऊपर कार्य भार था, बहुत भयभीत हो गया। उसने अपने साथियो से इस प्रकार कहा, "राजा की आज्ञा थी कि मैं जाकर उसकी स्त्री मे भेट करूँ। हमारे साथी लोग आपदा से बचने की आशा मे, जो मार्ग मे आ पडी थी, कभी जङ्गलो मे वास करते थे और कभी रेगिस्तानी मैदानो मे। सवेरे के समय हम नही जान सकते थे कि शाम को क्या होगा, दिन-रात चिन्ता ही मे पडे रहते थे। अन्त मे अपने राजा के प्रभाव से हम लोग शान्ति स्थापना करने मे समर्थ हो सके। हम लोग घर की ओर प्रस्थान करने ही वाले थे कि अब राज्यकन्या को हमने गर्भवती पाया। इस बात का मुझको बडा रंज है। मैं नही जान सकता कि मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी। हमको अवश्य अपराधी का पता लगाना चाहिए और उनको दंड देना चाहिए, परन्तु जो कुछ किया जाय वह चुपचाप। यदि हम शोरगुल करेंगे तो कभी सच्ची बात का पता नहीं लगा सकेंगे।" उसके नौकरो ने कहा, "कोई जाँच की आवश्यकता नही, यह एक देवता है जो राजकन्या को जानता है। रोज दोपहर के समय वह घोडे पर चढकर सूर्य-मंडल से राजकन्या से मिलने आता था।" मत्री ने कहा, "यदि यह सत्य है तो मैं अपने को किस प्रकार निरपराध साबित कर सकूँगा? यदि मैं लौट जाऊँगा तो अवश्य मारा जाऊँगा और यदि यहाँ देर करूँगा तो वहाँ के लोग मेरे मारने के लिए भेजे जायँगे। ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए?" उसने उत्तर

दिया, "यह कौन बडे असमंजस की बात है। कौन जाँच करने के लिए बैठा है? अथवा सीमा के बाहर दण्ड देने के लिए ही कौन आ सकता है? कुछ दिन आप चुप रहे।"

इस बात पर उसने चट्टानी चोटी पर एक महल बनवाया और उसको बाहरी भवनो से परिवेष्टित कर दिया।

इसके उपरान्त महल के चारो ओर ३०० पग की दूरी पर चहार दीवारी बनवाकर तथा राजकन्या को महल मे उतार कर उस देश की स्वामिनी बनाया। राज-कन्या के बनाये हुए कानून प्रचलित किये गये। समय आने पर उसके एक पुत्र का जन्म हुआ जो सर्वाङ्गस्यन्न और बडा ही सुन्दर था। माता ने उसको प्रतिष्ठित पदवी[1] से सम्मानित करके राज्य भार भी उसी को सौंप दिया। वह हवा मे उड़ सकता था और आँधी तथा बर्फ पर भी अपनी सत्ता को चलाता था। उसकी शक्ति' शासन पद्धति तथा न्याय की कीर्ति सब ओर फैल गई। पास के तथा बहुत दूर दूर के लोग भी उसके अधीन हुए।

काल पाकर राजा की मृत्यु हुई। लोगो ने उसके शव को नगर के दक्षिण-पूर्व मे लगभग १०० ली की दूरी पर एक बडे पहाड के गर्त मे एक कोठरी बना कर रख दिया। उसका शव सूख गया है परन्तु अब तक और कोई विकार उसमे नही आया। शरीर भर मे झुरिया पड गई है। देखने से ऐसा विदित होता है मानो सोता हो। समय-समय पर लोग उसके वस्त्र बदल देते हैं तथा फूल और सुगधित वस्तुओ से नियमा-नुसार उसकी पूजा करते है। इसके वशजो को अपनी असलियत का स्मरण अब तक बराबर बना है, अर्थात् उनकी प्रथम माता हान नरेश के वश मे उत्पन्न हुई थी और उनका सर्व प्रथम पिता सूर्यदेव की जाति का था। इसलिए ये लोग अपने को हान और सूर्यदेव के कुल का बतलाते है[2]।

राज्य वश के लोग सूरत-शकल मे मध्य दिशा (चीन) के लोगो से मिलते-जुलते है। ये लोग अपने सिर पर धौगोशिया टोपो पहनते हैं और इनके वस्त्र 'हू' लोगो के

---

(1) अर्थात् 'सूर्य पुत्र'।

(2) ईरान के 'स्याउश' और तूरान के 'अफरास्याव' की कन्या इस कहानी से बहुत मिलती-जुलती है। अफरास्याव ने अपनी कन्या फरङ्गीस के सूबे खतन और चीन या मचीन की रक्षा मे दे दिया था। देखो History of Kashgar (Chap. III, Farsuth's Report) जो सूर्य का पुत्र' और वीर बालक के नाम से प्रसिद्ध है, ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार के अद्भुत बालक की उत्पत्ति और वीरता सम्बन्धो कथा को ह्वेनसांग ने लिखा है। इस ईरानी और देरानी कथा से यह अनुमान किया जा सकता है कि ह्वेनसाग का तुहोलू शब्द तूरानियो का बोधक है न कि तुर्क लोगो का।

समान होते है। बहुत समय के उपरान्त ये मोग जङ्गली लोगो के अधीन हो गये जिन्होने इनके देश पर अधिकार कर लिया था।

अशोक ने इस स्थान पर एक स्तूप बनवाया था। पीछे से जब राजा ने अपने निवास-भवन को राजधानी के पूर्वोत्तर कोण मे बनवाया तब इस प्राचीन भवन मे उसने कुमारलब्ध के निमित्त एक सङ्घाराम बनवा दिया था। इस भवन के बुर्ज ऊँचे और कमरे चौडे है। इसके भीतर बुद्धदेव की एक मूर्ति अद्भुत स्वरूप की है। महात्मा कुमार-लब्ध तक्ष-शिला का निवासी था। बचपन ही से उसमे प्रतिभा का विकास हो गया था। इसलिए बहुत थोडी अवस्था में ही इसने संसार का त्याग कर दिया था। उसका चित्त सदा पुनीत पुस्तको के मनन मे लगा रहता था और उसकी आत्मा विशुद्ध सिद्धान्तो के आनन्द मे मग्न रहती थी। प्रत्येक दिन वह ३२,००० शब्दो का पाठ किया करता और ३२,००० अक्षरो को लिखता था। इस प्रकार अभ्यास करने के कारण उसकी योग्यता उसके सब सहयोगियो से बढ गई थी और उसकी कीर्ति उस समय अद्वितीय थी। उसने सत्य-धर्म का सस्थापन करके असत्य-सिद्धान्त-वादियो को परास्त कर दिया था। उसके शास्त्रार्थ-चातुर्य की बडी प्रसिद्धि थी। ऐसी कोई भी कठिनाई न थी जिसको वह दूर न कर सके। सम्पूर्ण भारत के लोग उसके दर्शनो के लिए आते थे और उसको प्रतिष्ठा का सर्वोच्च पद प्रदान करते थे। उसके लिखे हुए बीसो शास्त्र है। इन ग्रन्थो की बडी ख्याति है और सब लोग इनको पढते हैं। सौत्रान्तिक संस्था का संस्थापक यही महात्मा है।

पूर्व मे अश्वघोष, दक्षिण मे देव, पश्चिम मे नागार्जुन और उत्तर मे कुमारलब्ध एक ही समय मे हुए है। ये चारो व्यक्ति संसार को प्रकाशित करने वाले चार सूर्य कहलाते है, इस लिए इस देश के राजा ने महात्मा कुमारलब्ध की कीर्ति को सुनकर तक्षशिला पर चढाई की और जबर्दस्ती उसको अपने देश को ले आया और इस सङ्घाराम को बनवाया।

इस नगर से दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग ३०० ली चल कर हम एक बडे चट्टान पर आये जिसमे दो कोठरियाँ (गुफाएँ) खोद कर बनाई गई है। प्रत्येक कोठरी मे एक अरहट समाधि-मग्न होकर निवास करता है। दोनो अरहट सीधे बैठे हुए है और मुश्किल से चल फिर सकते है। इनके चेहरो पर झुर्रियाँ पड गई है परन्तु इनकी त्वचा और हड्डियाँ अब भी सजीव है। यद्यपि ७०० वर्ष व्यतीत हो गये है परन्तु इनके बाल अब भी बढते रहते हैं इसलिए साधु लोग प्रत्येक वर्ष इनके बालो को कतर देते है और कपडे बदल देते है।

इस बडे चट्टान के उत्तर-पूर्व मे लगभग ७०० ली पहाड के किनारे चल कर हम पुण्यशाला को पहुँचे।

सङ्गलिङ्ग पहाड़ की पूर्वी शाखा के चार पहाड़ो के मध्य मे एक मैदान है जिसका क्षेत्रफल कई हजार एकड है। यहाँ पर जाड़ा और गरमी दोनो ऋतुओ मे बर्फ गिरा करती है। ठढी हवा और बर्फीले तूफान बराबर बने रहते हैं। भूमि नमक से गर्भित है, कोई फसल नही होती और न कोई वृक्ष उगता है। कही कही पर केवल झाड़ के समान कुछ घास उगी हुई दिखाई पड़ती है। कठिन गरमी के दिनो मे भी आँधी और बर्फ का अधिकार रहता है। इस भूमि पर पैर धरते ही यात्री बर्फ से आच्छादित हो जाता है। सौदागर और यात्री लोग इस कष्टदायक और भयानक स्थान मे आने जाने मे बडी तकलीफ उठाते हैं।

यहाँ की प्राचीन कहानी से पता चलता है कि पूर्वकाल मे दस हजार सौदागरो का एक झुण्ड था।जसके साथ अगणित ऊँट थे। सौदागर लोग अपने माल को दूर देशो मे ले जाकर बेचते और नफा उठाते थे। वे सबके सब अपने पशुओ सहित इस स्थान पर आकर मर गये थे।

उन्हीं दिनो कोई महात्मा अरहट कइपअन्टो-राज्य का स्वामी था। इसने अपनी सर्वज्ञता से इन सौदागरो की दुर्दशा को जान लिया और दया से द्रवित होकर अपनी आध्यत्मिक शक्ति के द्वारा इनकी रक्षा करना चाहा। परन्तु उसके, यहाँ तक, पहुँचने के पूर्व ही सब लोग मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। तब उसने सब प्रकार का उत्तम सामान इकट्ठा करके एक मकान बनवाया और उसको सब प्रकार की सम्पत्ति से भर दिया। इसके उपरान्त निकटवर्ती भूमि को लेकर उसने नगर के समान बहुत से मकान बनवा दिये। इसलिए अब सौदागरो और यात्रियो को उसका औदार्य बहुत सुख पहुँचाता है।

यहाँ से उत्तर-पूर्व मे सङ्गलिङ्ग पहाड के पूर्वी भाग से नीचे उतर कर और बड़ी-बडी भयानक घाटियो को पार करते और भयानक तथा ढालू सड़को पर चलते हुए, तथा पग-पग पर बर्फ और तूफान का सामान करते हुए, लगभग १०० ली के उपरान्त हम सङ्गलिङ्ग पहाड से निकलकर 'उश' राज्य मे आये।

उश (ओच)

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग १,००० ली और मुख्य नगर का १० ली है। इसकी दक्षिणी सीमा पर शीता नदी बहती है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है, यह नियमानुसार जोती बोई जाती है और अच्छी फसल उत्पन्न करती है। वृक्ष और जङ्गल बहुत दूर तक फैले हुए है तथा फल-फूल की उत्पत्ति होती है। इस देश में सफेद, स्याह और हरे, सभी प्रकार के घोडे बहुत होते है। प्रकृति कोमल और सह्य है। हवा और वृष्टि अपनी ऋतु के अनुकूल होती हैं। मनुष्यो के आचरण मे सभ्यता की झलक विशेष नही पाई जाती। मनुष्य स्वभावतः कठोर और असभ्य हैं। इनका आचार अधिकतर

झूठ की ओर झुका हुआ है और शर्म का तो इनमे कही नाम नही। इनकी भाषा और लिखावट ठीक कइशवालो के समान है। सूरत भद्दी और घृणित है। इन लोगो के वस्त्र खाल और ऊन के वनते है। यह सव होने पर भी ये लोग वुद्ध-धर्म के वडे दृढ भक्त है और उसकी वड़ी प्रतिष्ठा करते है। कोई दस सङ्घाराम और एक हजार से कुछ ही कम साधु हैं। ये लोग सर्वास्तिवाद-संस्था के अनुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते है। कई शताब्दियो से राज्यवंश नष्ट हो गया है। इनका शासक निज का नही है वरच ये लोग कइप अण्टो देश के अधीन है।

नगर के पश्चिम मे २०० ली के लगभग की दूरी पर हम एक पहाड मे पहुँचे। यह पहाड वाष्प से आच्छादित रहता है जो वादलों के समान चोटियों पर छाई रहती है। चोटियाँ एक पर एव उठती चली गई है और ऐसा मालूम होता है कि धक्का लगते ही गिर पडेगी। पहाड पर एक अद्भुत और गुप्र विचित्र स्तूप वना हुआ है। इसकी कथा यह है कि सैकडो वर्ष व्यतीत हुए जब यह पहाड एक दिन अकस्मात् फट गया और वीच मे एक भिक्षु दिखाई पडा जो आँखे वन्द किये हुए वैठा था। उसका शरीर वहुत ऊँचा और दुर्बल था। उसके वाल कन्धो तक लटकते हुए और उसके मुख को ढके हुए थे। एक शिकारी ने उसको देख कर सव समाचार राजा को जा सुनाया। राजा उसकी सेवा-दर्शन करने स्वयं गया। सम्पूर्ण नगर निवासी पुष्प इत्यादि वस्तुएँ लेकर उसकी पूजा करने के लिए दौड पड़े। राजा ने पूछा, यह दीर्घकार्य महत्मा कौन?" उस स्थान पर एक भिक्षु खड़ा था उसने उत्तर दिया, "वह महात्मा जिसके वाल कन्धे तक लकके हुए हैं और जो कापाय वस्त्र धारण किये हुए है कोई अरहट है, जो वृत्तियों को निरुद्ध करके समाधि मे मग्न होते हैं वे वहुत काल तक इसी अवस्था मे रहते हैं कुछ लोग कहते है कि यदि उनको घण्टे का शब्द सुनाया जाय तो जग पडेगे और कुछ का कहना है कि सूर्य की चमक देखने से वे लोग अपनी समाधि से उठते हैं। इसके विपरीत, वे लोग विना जरा भी हिले-डुले या साँस लिये पड़े रहते है परन्तु समाधि के प्रभाव मे उनके शरीर मे कुछ विकार नही होता। समाधि के दूर होने पर इनका शरीर तेल से खूव मला जाता है और जोडो पर मुलायम करने वाली वस्तुओं का लेप किया जाता है। उसकेउपरान्त घण्टा वजाया जाता है तव इनका चित्त समाधि से अलग होता है।" राजा की आज्ञा से तव यही तदवीर की गई और उसके उपरान्त घण्टा वजाया गया।

घण्टे का शब्द समाप्त भी न हो पाया था कि अरहट ने आँखे खोल दी और ऊपर निगाह करके वहुत देर तक देखने के उपरान्त कहा, "तुम लोग कौन जीव हो जिनका छोटा-छोटा डील है और भूरे-भूरे कपडे पहने हुए हो?" लोगों ने उत्तर दिया, "हम लोग भिक्षु हैं।" उसेने कहा, "हमारा स्वामी काश्यप तथागत आजकल कहाँ

है?" उन्होने उत्तर दिया, "उसको महानिर्वाण प्राप्त हुए बहुत समय व्यतीत हो गया।" इसको सुनकर उसने अपनी आँखे बन्द कर ली और इतना दुखित हुआ मानो मर ही जायगा। अकस्मात् उसने फिर प्रश्न किया, "क्या शाक्य तथागत संसार मे आ चुके है?" "उनका जन्म संसार मे हो चुका और उन्होने भी अपनी आध्यामिकता से संसार को शिक्षा देकर निर्वाण को प्राप्त कर लिया।" इन शब्दो को सुनकर उसने अपना सिर नीचा कर लिया और थोडी देर तक उसी प्रकार बैठा रहा। इसके उपरान्त वायु मे चढकर आध्यात्मिक चमत्कार को प्रदर्शित करते हुए उसका शरीर अग्नि मे जल गया और हड्डियाँ भूमि पर गिर पडी। राजा ने उनको बटोर कर इस स्तूप को बनवा दिया।

इस देश से उत्तर मे पहाड़ो तथा रेगिस्तानी मैदानो मे लगभग ५०० ली चल-कर हम 'कइश' देश मे पहुँचे।

कइश (काशगर)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ५,००० ली है। इस देश मे रेगिस्तानी और पथ-रीली भूमि बहुत है और चिकनी मिट्टी वाली कम। भूमि की जोताई-बोआई अच्छी होती है जिससे खेती भी उत्तम है। फूल-फल बहुत है। यहाँ बटे हुए एक प्रकार के ऊनी वस्त्र और सुन्दर गलीचो की कारीगरी होती है जो बहुत अच्छी तरह बुने जाते हैं। प्रकृति कोमल और सुखद है, आँधी पानी अपने समय पर होता है। मनुष्यो का स्वभाव दुखद और क्रूर है। ये लोग बडे ही भूठे और दगाबाज होते है यहाँ के लोग सभ्यता और सहृदयता को कुछ नही समझते और न विद्या की चाह करते है। यहाँ की प्रथा है कि जब बालक उत्पन्न होता है तब उसके सिर को एक लकड़ी के तख्ते से दबा देते है। इनकी सूरत साधारण और भद्दी होती है। ये लोग अपने शरीर और आँखो के चारो ओर चित्रकारी काढ लेते है। इन लोगो के अक्षर भारतीय नमूने के है, और यद्यपि ये बहुत बिगड गये है तो भी सूरत मे अधिक भेद नही पड़ा है। इनकी भाषा और उच्चारण दूसरे देशो से भिन्न है। इन लोगो का विश्वास बुद्ध धर्म पर बहुत है और उसी के अनुसार अचारण भी, बडी उत्सुकता पूर्वक, करते है। कई सौ संघाराम कोई १०,००० साधुओ सहित हैं जो सर्वास्तिवाद-संस्था के अनुसार हीनयान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं। बिना सिद्धान्तो को समझे हुए ये लोग अनेक धार्मिक मन्त्रो को पाठ किया करते है, इसलिए कितने ही ऐसे भी हैं जो तृपिट्टक और विभाषा को आदि से लेकर अन्त तक बरजुबानी सुना सकते हैं।

यहाँ से दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग ५०० ली चलकर और शीता नदी तथा एक बडे पथरीले कगर को पार करके हम 'चेकियियू किया' राज्य मे पहुँचे।

चोवियूकिया (चकुक? यरकियाङ्ग[1])

इस राज्य का क्षेत्रफल १,००० ली और राजधानी का १० ली है। इसके चारों ओर पहाड़ो और चट्टानो का घिराव है। निवास स्थान अगणित है। पहाड और पहाड़ियों का सिलसिला देश भर मे फैला चला गया है। चारो ओर सब जिले पहाडी है। इस राज्य की सीमाओ पर दो नदियाँ है।[2] अनाज और फल वाले वृक्षों की उपज अच्छी है, विशेषकर अञ्जीर, नासपाती और वेर बहुत होता है। शीत और आँधियो की अधिकता पूरे साल भर रहती है। मनुष्य क्रोधी और क्रूर है। ये लोग बडे झूठे रौर दगाबाज है तथा दिन दहाड़े डाका डालते है। अक्षर वही है जो खुतन देश मे प्रचालित है परन्तु बोल-चाल की भाषा भिन्न है। इनमे सभ्यता बहुत थोडी है और इसी प्रकार इनका साहित्य और शिल्प ज्ञान भी थी थोडा है। परन्तु उपासना के तीनो पुनीत विषयो पर विश्वास और धार्मिक आचारण से प्रेम करते हैं। कितने ही सघाराम है परन्तु अधिकतर उजाड है। कई सौ साधु है, जो महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं।

देश की दक्षिणी सीमा पर एक बडा पहाड है जिसके चट्टान और चोटियाँ एक पर एक उठी चली गई हैं और झाडी जङ्गल से आच्छादित है। वर्ष भर और विशेष करके शीत ऋतु मे पहाडी झरनें और धारायें सब ओर से बहती हैं। बाहरी ओर चट्टानो और जङ्गलो मे कही-कही पत्थर को गुफाये बनी हुई है। भारतवर्ष के अरहट अपनी आध्यात्मिकता शक्ति को प्रदर्शित करते हुए बहुत दूर की यात्रा करके इस देश मे आकर विश्राम करते है। अगणित अरहट इस स्थान पर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं इस कारण यहाँ पर स्तूप भी बहुत है। आजकल तीन अरहट इस पहाड़ की गहरी गुफा मे निवास करते है और 'अचल-मानस समाधि' मे मग्न हैं। इनके शरीर सूखकर लकडी हो गये है परन्तु बाल बढते रहते है इसलिए श्रमण लोग समय-समय पर जाकर उनको कतर देते हैं। इस राज्य में महायान-सम्प्रदाय की पुस्तकें बहुत मिलती है। यहाँ से बढकर बुद्ध धर्म का प्रचार इस समय और कही नही है। यहाँ पर अनेक धार्मिक पुस्तके हैं जिनकी सख्या एक लक्ष है। अपने प्रवेश काल से लेकर अव तक बुद्ध धर्म की वृद्धि यहाँ पर विलक्षण रीति से होती रही है।

---

(1) इसका प्राचीन नाम सइक् (Sieka) है। मारटीन साहब चोक्यिूकिया का निश्चय यरकियाग से करते है, परन्तु प्रमाण कोई नही दिया गया। डाक्टर इटल साहब कहते है—कि यह छोटे बुखरिया का प्राचीन राज्य है जो कदाचित् वर्तमान यरकियाग है। काशगर की दूरी और दिशा इत्यादि से यारकन्द सूचित होता है।

(2) कदाचित् यारकन्द और खुरेतन नदियाँ।

यहाँ से पूर्व मे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी दर्रों और घाटियो को नाँघते लगभग ८०० ली चलने के उपरान्त हम 'क्यूसटन' राज्य मे पहुँचे।

क्यूसटन (खुतन)

इस देश का क्षेत्रफल लगभग ४,००० ली है। देश का अधिक भाग पथरीला और बालुकामय है, जोतने-बोने योग्य भूमि कम है। तो भी जो कुछ भूमि है वह नियमानुसार जोतने-बोने योग्य है और उसमे फलो की उपज अच्छी होती है। कारीगरी मे दरियाँ, महीन ऊनी वस्त्र और उत्तम रेशमी वस्त्र है। इनके अतिरिक्त सफेद और हरे घोडे भी यहाँ होते है। प्रकृति कोमल और सुखद है, कभी-कभी आँधियाँ बडे जोर-शोर से आती है और धूल के बादल बरसते है। लोग सभ्यता और न्याय को जानते है और स्वभावतः शान्त और प्रेमी हैं। साहित्य और कारीगरी के सीखने मे इन लोगो की रुचि अच्छी है। अच्छी रुचि होने से इन विषयो मे ये उन्नति भी करते जाते है। सब लोग आराम से कालयापन करते है और प्रारब्ध पर सन्तुष्ट हैं।

यह देश सङ्गीत विद्या के लिये प्रसिद्ध है। लोग गाना और नाचना बहुत पसन्द करते है। बहुत थोडे लोग खाल या ऊन के वस्त्र पहनते है; अधिकतर तो सफेद अस्तर लगे हुए रेशमी वस्त्र ही पहने जाते है। लोगो का बाहरी व्यवहार शिष्टाचार से भरा होता है तथा उनकी रीतियाँ सभ्यतानुकूल है। इन लोगो की लिखावट और वाक्य-विन्यास भारत वालो से मिलते-जुलते है जो कुछ अक्षरो मे भेद है भी वह बहुत थोडा है। बोलने की भाषा दूसरे देशो से भिन्न है। लोग बुद्धधर्म की बडी प्रतिष्ठा करते है। कोई सौ सङ्घाराम और लगभग ५,००० अनुयायी हैं जो महायान-सम्प्रदाय का अध्ययन करते हैं।

राजा बड़ा साहसी और बीर है। वह भी बुद्धधर्म की बड़ी भक्ति करता है। वह अपने को वैश्रवणदेव का वशज बतलाता है। प्राचीनकाल मे यह देश उजाड और रेगिस्तान था और इसमे एक भी निवासी नही था। वैश्रवणदेव इस देश मे वास करने के लिए आया। अशोक का बडा पुत्र तक्षशिला मे निवास करता था। उसकी आँखें निकाली जाने पर अशोक अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसने अपनी सेना भेजकर, उस स्थान के निवासियो को हिमालय पहाड़ के उत्तर निर्जन और जङ्गली घाटियो मे निकलवा दिया। वे सब निकाले हुए लोग इस देश की पश्चिमी सीमा पर आकर रहने लगे। उन लोगो का जो मुखिया था वह राजा बनाया गया। ठीक इन्ही दिनो मे पूर्वी देश (चीन) के राजा का एक पुत्र भी, जो अपने देश से निर्वासित किया गया था, इस देश की पूर्वी सीमा पर रहता था। उस स्थान के निवासियो ने उसी को राजा बनाया।

इन दोनो नरेशों को राज्य करते कई एक साल व्यतीत हो गये। परन्तु इनका परस्पर सम्बन्ध-सूत्र दृढ न हुआ। एक दिन संयोग से शिकार खेलते समय दोनो नरेशो की मुठभेड़ हो गई। परिचय होने पर परस्पर वाद-विवाद होने लगा और एक दूसरे को दोषी बनाने लगे। यहाँ तक बात बढी कि तलवारें निकल पडी। उस समय एक तीसरा व्यक्ति भी वहाँ पहुँच गया। उसने दोनो को समझाया कि इस प्रकार आज आप लोग क्यो लडते है? शिकार के मैदान मे लड़ाई से कोई लाभ नही। अपने-अपने स्थान को लौट जाइए और भली-भाँति सेना को सुसज्जित करके लड लीजिए, इस बात पर वे दोनो अपनी-अपनी राजधानी को लौट गये और अपने-अपने लड़ाकू वीरो को लेकर दुन्दुभी आदि बजाते हुए लडाई के मैदान मे आकर जमा हुए। एक दिन रात घमासान युद्ध हुआ अन्त तडाका होते-होते पश्चिम वालो की हार हो गई और पूर्व वालो ने उनको उत्तर की ओर खदेड़ दिया। पूर्वी नरेश ने इस विजय पर प्रसन्न होकर राज्य के दोनो भागो को एक मे जोड दिया और देश के ठीक बीच मे सुदृढ दीवारो से सुसज्जित राजधानी बनवाई। राजधानी बनवाने से पूर्व उसको भय हो गया था कि कदाचित् राजधानी समुचित स्थान पर न बने इसलिए उसने बहुत दूर-दूर तक सदेशा भेजा कि जो कोई "भूमिशोधन करना जानता हो वह यहाँ आवे?" इस सन्देशा पर एक विरुद्ध-धर्मावलम्बी अपने सम्पूर्ण शरीर मे राख मले हुए और कन्धे पर जल से भरा हुआ घडा लिये हुये राजा के पास आया और कहा, "मैं भूमि सशोधन करना जानता हूँ।" यह कह कर वह अपने घडे मे से जल की धार गिराता हुआ बहुत दूर तक घूमा जिससे एक बडा घेरा बन गया और फिर शीघ्र एक ओर पलायन करके अन्तर्धान हो गया।

उसी जलवाली लकीर के ऊपर राजा ने अपनी राजधानी की नीव दी। राजधानी बन जाने पर वह यही पर रहकर राज्य करने लगा। नगर के निकट कोई ऊँची भूमि नही है इससे इसको हराना कठिन है। प्राचीन समय से लेकर अब तक कोई भी इसको नही जीत सका है। रामा राजधानी का परिवर्तन करके और बहुत से नवीन नगर और ग्राम बसा कर तथा पूर्ण-धर्म और न्याय के साथ राज्य करते हुए वृद्ध हो गया परन्तु उसके कोई पुत्र नही हुआ। इसने इस शोक से कि उसका भवन शून्य हो जायगा, वैश्रवणदेव के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और अपनी कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना की। मूर्ति का सिर ऊपर की ओर फट गया और उसमे से एक बालक निकल आया। उस बालक को लेकर राजा अपने स्थान को आया। सम्पूर्ण राज्य मे आनन्द छा गया और लोग बधाई देने लगे। राजा को तब इस बात का भय हुआ कि लड़के को दूध किस प्रकार पिलाया जाय और बिना दूध के इसका जीवन किस प्रकार रहेगा।

इसलिए वह फिर मंदिर मे लौट गया और बच्चे के पोषण के लिये प्रार्थी हुआ। उसी समय मूर्ति के सामने वाली भूमि तडक गई और उसमे से स्तन के आकार वाली कोई वस्तु प्रकट हुई। दैवी पुत्र उसको प्रेम से पीने लगा। उचित समय पर यह वालक राज्य का अधिकारी हुआ। इसकी बुद्धि और वीरता की कीर्ति दिनो दिन वढने लगी तथा इसका प्रभाव वहुत दूर-दूर तक फैल गया। इसने अपने पुरखो के प्रतिकृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए देवता (वैश्रावण) का मिन्दर वनयाया। उस समय से वरावर राजा लोग क्रमवद्ध तथा इसी वश के होते आये है और उनकी शक्ति भी उसी प्रकार अटल चली आई है। वर्तमान समय मे देवता का मन्दिर वहुमूल्य रत्नादि से सुसज्जित और वैभव सम्पन्न है। प्रथम नरेश का पोपण उस दूध से हुआ था जो भूमि से निकला था इसलिए देश का नाम भी तदनुसार (भूमि का स्तन-कुस्तने) पड गया।

राजधानी के दक्षिण मे लगभग १० ली पर एक वड़ा सङ्घाराम है। इसको देश के किसी प्राचीन नरेश ने वैरोचन अरहट की प्रतीष्ठा मे वनवाया था।

प्राचीनकाल मे जब बुद्ध-धर्म का प्रचार इस देश मे नहीं हुआ था यह अरहट कश्मीर से इस देश मे आया था। आकर वह एक जङ्गल मे बैठ गया और समाधि मे मग्न हो गया। कुछ लोगो ने उसको देखा और उसके रूप तथा वस्त्र आदि पर आश्चर्यान्वित होकर सब समाचार राजा से जाकर कहा। राजा स्वय चलकर उसके दर्शनो को आ गया तथा उसके दर्शन करके पूछा, "आप कौन व्यक्ति हैं जो इस घने वन मे निवास करते है?" अरहट ने उत्तर दिया, "मैं तथागत का शिष्य हूँ, मैं समाधि के लिए इस स्थान पर वास करता हूँ। महाराज को भी उचित है कि बुद्ध सिद्धान्तो की सराहना करके, सङ्घाराम बनवाकर और साधुओ की सेवा करके धर्म और पुण्य का सचय करें। राजा ने पूछा "तथागत मे क्या गुण है और कौन सी आध्यात्मिक शक्ति है जिसके लिये आप इस जङ्गल मे पक्षी के समान छिपे हुए उसके सिद्धान्तो का अभ्यास कर रहे है?" उसने उत्तर दिया, "तथागत कदाचित्त सब प्राणियो के प्रति दया और प्रेम से द्रवित है। वे तीनो लोको के जीवो को सन्मार्ग प्रदर्शन के लिए अवतरित हुए हैं। जो लोग उनके धर्म का पालन करते है वे जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाते है, और जो लोग उनके सिद्धान्तो से अनजान है वे अब भी सासारिक वासना रूपी जाल मे फँसे हुए है।" राजा ने कहा, "वास्तव मे आप जो कुछ कहते हैं वड़े महत्व का विषय है।" इसी प्रकार कहते हुए राजा ने वहुत जोर देकर कहा कि आपके पूज्य देवता मेरे लिए भी प्रकट हो और मुझको भी दर्शन दें। उनके दर्शन करने के उपरान्त मैं सङ्घाराम भी वनवाऊँगा और उनका भक्त होकर उनके सिद्धान्तो के प्रचार का प्रयत्न भी करूँगा।" अरहट ने उत्तर दिया, "महाराज, सङ्घाराम वनवा करके पुण्य कार्य की पूर्णता के उप-

लक्ष में आपकी इच्छा पूर्ण होगी।''

मन्दिर बनकर तैयार हो गया, बहुत दूर-दूर के और आस-पास के साधु आकर जमा हो गये तो भी समाज बुलाने वाला घण्टा वहाँ पर नही था। राजा ने पूछा, "सङ्घाराम बनकर ठीक हो गया परन्तु बुद्धदेव के दर्शन नही हुए।" अरहट ने उत्तर दिया, "आप अपने विश्वास पर दृढ रहिए, दर्शन होने मे भी बिलम्ब न होगा। अकस्मात् बुद्धदेव की मूर्ति वायु मे उतरती हुई दिखाई पडी और उसने आकर राजा को एक घण्टा दिया। इस दर्शन से राजा का विश्वास दृढ हो गया और उसने बुद्ध सिद्धान्तो का खूब प्रचार किया।

राजधानी के दक्षिण पश्चिम मे लगभग २० ली पर 'गोशृङ्ग' नामक पहाड़ है। इस पहाड में दो चोटियाँ हैं। इन दोनों चोटियो के आस-पास सब ओर अनेक पहाड़ियाँ है। एक घाटी मे एक सङ्घाराम बनाया गया है जिसके भीतर बुद्धदेव की एक मूर्ति है और जिसमे से समय-समय पर प्रकाश निकला करता है। इस स्थान पर तथागत ने देवताओ के लाभ के लिए धर्म का विशुद्ध स्वरूप वर्णन किया था। उन्होंने यह भी भविस्यवाणी की थी कि इस स्थान पर एक राज्य स्थापित होगा और सत्य धर्म का अच्छा प्रचार होगा, विशेषकर महायान-सम्प्रदाय का लोग अधिक अभ्यास करेंगे।

गोशृङ्ग पहाड़ वाले सङ्घाराम मे एक गुफा है जिसमे एक अरहट निवास करके मन को मारनेवाली समाधि का अभ्यास और मैत्रेय बुद्ध के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। कई शताब्दियो तक बराबर उसकी पूजा होती रही है; कुछ वर्ष हुए तब पहाड़ी चोटी गिर पड़ी थी जिससे (गुफा का) मार्ग अवरुद्ध हो गया है। देश के राजा ने अपनी सेना के द्वारा उन गिरे हुए पत्थरो को हटवाकर रास्ता साफ कर देना चाहा था परन्तु काली मधुमक्खियो के धावा कर देने से ऐसा न हो सका। उन मधुमक्खियो ने लोगों को अपने दशन से विफल करके भगा दिया, इस कारण गुफा के द्वार पर पत्थरो का ढेर ज्यो का त्यो रक्खा है।

राजधानी के दक्षिण पश्चिम मे लगभग १० ली पर 'दीर्घ भवन' नामक एक इमारत है। इसके भीतर किउची[१] के बुद्धदेव की खड़ी मूर्ति है। पूर्वकाल मे यह मूर्ति किउची से लाकर यहाँ रक्खी गई थी।

प्राचीन काल मे एक मंत्री था जो इस देश से किउची को निकाल दिया गया था। उस देश मे जाकर उसने केवल इस मूर्ति की पूजा की। कुछ दिन पीछे जब वह

(1) जुलियन साहब इसको 'कुगे' कहते हैं। एक चीनी नोट से पता चलता है कि यह बर्फीले पहाड़ में था और आज कल 'तुष' कहलाता है।

लौटकर अपने देश को आया तो उसका चित्त भक्ति के कारण मूर्ति के दर्शनो के लिये अत्यन्त दुखी हुआ। आधी रात व्यतीत होने पर मूर्ति स्वय उसके स्थान पर आई। इस घटना पर उसने गृह परित्याग करके सन्यास ले लिया और सङ्घाराम बनवाकर मूर्ति के सहित रहने लगा।

राजधानी से पश्चिम मे लगभग ३०० ली चलकर हम पोवियाई (भगई ?) नामक नगर मे पहुँचे। इस नगर मे बुद्धदेव की एक खड़ी मूर्ति लगभग सात फुट ऊँची और अत्यन्त सुन्दर है। इसके प्रभावशाली स्वरूप को देखकर भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इसके सिर पर एक बहुमूल्य रत्न है, जिसमे से सदा स्वच्छ प्रकाश प्रस्फुटित हुआ करता है। इसका वृत्तान्त इस प्रकार प्रसिद्ध है :—यह मूर्ति पूर्वकाल मे कश्मीर देश मे थी, लोगो की प्रार्थना पर द्रवित होकर स्वय इस देश को चली आई। प्राचीनकाल मे एक अरहट था जिसका एक शिष्य श्रमणेर मृत्यु के निकट पहुँचा। उस समय उसकी इच्छा बोये हुए चावलो की रोटी खाने की हुई। अरहट ने अपनी दैवी दृष्टि से इस प्रकार के चावलो को कुस्तन देश मे देखा और वहाँ से चावल लाने के लिए स्वय ही आध्यात्मिक बल से उस देश को गया। श्रमणेर ने उन चावलो को खाकर प्रार्थना की कि उसका जन्म उसी देश मे होवे। इस प्रार्थना और कामना के फल से उसका जन्म उस देश के राजा के घर मे हुआ। राजसिंहासन पर बैठकर उसने निकटवर्ती सब देशो को विजय कर लिया और हिमालय पहाड़ को पार करके कश्मीर देश पर चढ आया। कश्मीर नरेश ने भी उसकी चढाई को रोकने के लिए अपनी सेना को तैयार किया। उस समय अरहट ने जाकर राजा से कहा कि आप सेना सन्धान न कीजिए, मैं अकेला जाकर उसको परास्त कर सकता हूँ।

यह कहकर वह कुस्तन नरेश के पास गया और धर्म के उत्तमोत्तम मन्त्र गाने लगा। राजा ने पहले तो कुछ ध्यान न दिया और अपनी सेना को आगे बढने का आदेश दे दिया। तब अरहट उन वस्त्रो को आया। जिनको राजा अपने पूर्व जन्म की श्रमणेर अवस्था मे धारण किया करता था। उन वस्त्रो को देखकर राजा को अपने पूर्व जीवन का ज्ञान हो गया, इसलिए वह प्रसन्नतापूर्वक कश्मीर-नरेश के पास जाकर उसका मित्र हो गया, और सेना सहित अपने देश को लौट आया। लौटते समय उस मूर्ति को जिसको वह श्रमणेर अवस्था मे पूजता था अपनी सेना के आगे करके ले चला। परन्तु इस स्थान पर आकर मूर्ति ठहर गई और आगे न बढ़ी। इसलिए राजा ने इस सङ्घाराम को इस स्थान पर बनवाकर साधुओ को बुला भेजा और अपना रत्न-जटित सरपेंच मूर्ति को आभूषित करने के लिए भेट कर दिया। वही सरपेंच अब तक मूर्ति के सिर पर है।

राजधानी के पश्चिम १५० या १६० ली पर सडक के जो एक बड़े रेगिस्तान को पार करती हुई जाती है, बीचो बीच मे कुछ छोटी-छोटी पहाड़ियाँ चूहो के बिल खोदने से बन गई हैं, यहाँ का प्रचलित वृत्तान्त जो कुछ मैंने सुना है वह यह है :—
"इस रेगिस्तान मे इतने बड़े बड़े चूहे है जितने बड़े कि काँटेदार सुअर (सेई ?) होते है। इनके वालो का रङ्ग सोने और चाँदी के समान होता है इनके यूथ का एक चूहा स्वामी है। प्रत्येक दिन वह चूहा अपने विल से बाहर आकर टहलता है (? तपस्या करता है;) उसके वाद दूसरे चूहे भी विल से निकल कर वैसा ही करते हैं। प्राचीन काल में हिङ्ङ्नू देश का अधिपति कई लाख सेना लेकर इस देश की सीमा तक चढ आया और चूहो के बिलो के निकट पहुँचकर उसने अपना पडाव डाला। कुस्तन नरेश जिसके पास केवल लाख पचास हजार ही सेना थी इस वात से भयभात हो गया कि इस थोडी सी सेना के द्वारा किस प्रकार शत्रु का सामना हो सकेगा। वह इन रेगिस्तानी चूहो के अद्भुत चरित्र को भी जानता था, परन्तु अभी तक उसने अपनी धार्मिक भेट से कभी इनको सम्पूरित नही किया था। इस समय उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी, वह सर्वथा असहाय हो रहा था, उसके मत्री भी भयातुर और किंकर्तव्यविमूढ हो रहे थे। इसीलिए उसने चूहो को भेंट देकर सहायता प्राप्त करने और अपनी सेना को वलिष्ठ बनाने का विचार किया। उसी रात कुस्तन नरेश ने स्वप्न देखा कि एक बडा चूहा उससे कह रहा है, "मै आपकी सहायता के लिए सादर प्रस्तुत हूँ, प्रात. काल आप सेना सन्धान कीजिए आप अवश्य विजयी होगे।"

कुस्तन-नरेश इस विलक्षण चमत्कार को देखकर प्रसन्न हो गया। उसने अपने सरदारो और सेनापतियो को आज्ञा दी कि प्रात.काल होते-होते शत्रु के ऊपर पहुँच जाओ। हिङ्ङ्नू उन लोगो के आक्रमण से भयभीत हो गया। उसकी सेना के लोग झटपट घोड़ो को कसने और रथो को जोतने दौड़ पडे। परन्तु उनके कवच का चर्म, घोड़ो की काठी, धनुषो की डोरियाँ, और पहनने के कपड़े इत्यादि सब वस्तुओ को चूहो ने कुतर डाला था। इधर यह दशा और उधर शत्रु के भयानक आक्रमण को देख कर सब सेना के लोग भयविह्वल होकर भाग खडे हुए। उनके सेना पति मारे गये और मुख्य-मुख्य वीर पकड़कर बन्दी किये गये। इस प्रकार दैवी सहायता के बल से हिङ्ङ्नू वालो पर उनका शत्रु विजयी हो गया। कुस्तन-नरेश ने चूहो के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए एक मन्दिर बनवाया और वलिप्रदान किया। उस समय से बराबर चूहों की पूजा और भक्ति होती चली आई है और उत्तमोत्तम तथा बहुमूल्य वस्तुएँ उसको चढाई जाती है। ऊँच से लगाकर नीच तक सभी लोग इन चूहो की वड़ी प्रतिष्ठा करते हैं और उनको प्रसन्न रखने के लिए वलिप्रदान इत्यादि किया करते हैं। यहाँ के लोग जब कभी इस मार्ग से होकर निकलते हैं इस स्थान के निकट आकर रथ से उतर पड़ते

है और अपनी अभीष्ट सिद्ध के लिए प्रार्थना करके तब आगे बढते है। कपडा, धनुष वाण, सुगन्धित वस्तुएँ तथा पुष्प और उत्तम मास-वस्तुएँ आदि भेट चढाई जाती हैं। बहुत से लोग जो इस प्रकार की भेट पूजा करते है अपनी कामना को पा जाते है परन्तु जो लोग इनकी पूजा की उपेक्षाकर जाते है अवश्य कष्ट उठाते है।

राजधानी के पश्चिम ५ या ६ ली पर एक सङ्घाराम 'समोजोह' (समज्ञ) नामक है। इसके मध्य मे एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा है जिसमे से अनेक विलक्षण दृश्य प्रकट हुआ करते है। प्राचीनकाल मे कोई अरहट बहुत दूर देश से चलकर इस वन मे आया और निवास करने लगा। उसके अद्भुत चमत्कारो की कीर्ति बहुत दूर तक फैल गई। एक दिन रात्रि के समय राजा ने अपने प्रासाद के एक शिखर पर चढकर कुछ दूर जङ्गल मे कुछ प्रकाश देखा। लोगो को बुलाकर उसने इसका कारण पूछा। उन्होने उत्तर दिया, "एक श्रमण किसी दूर देश से आकर इस वन मे एकान्तवास करता है, अपनी अलौकिक शक्ति के बल से वही इस प्रकाश को दूर तक फैलाया करता है।" राजा ने उसी क्षण रथ मँगाया और उस पर सवार होकर वह स्वय उस स्थान पर गया। महात्मा के दर्शन करने पर राजा के चित्त मे उसकी ओर से बड़ी भक्ति हो आई। उसने बहुत विनती के साथ श्रमण को महल मे पधारने का निमन्त्रण दिया। श्रमण ने उत्तर दिया, "सब प्राणियो का अपना-अपना स्थान होता है, इसी प्रकार चित्त का भी स्थान अलग ही हुआ करता है। मेरा चित्त विकट वनो और निर्जन स्थानो मे अधिक लगता है, दुमजिलें, तिमजिलें भवन और उसके सुन्दर-सुन्दर कमरे मेरी रुचि के अनुकूल नही।

राजा इन वचनो को सुनकर और भी दूनी भक्ति के साथ उसका प्रेमी हो गया। उसने उसके निमित्त एक सङ्घाराम और एक स्तूप बनवाया। सम्मान-सहित निमन्त्रित किये जाने पर श्रमण ने इसमे निवास किया।

एक दिन राजा को बुद्धदेव ने शरीरावशेष का कुछ अश प्राप्त हुआ। राजा उनको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और बिचारने लगा कि 'ये शरीरावशेष मुझको बहुत देर मे मिले, यदि पहले से मिलते तो मैं इनको स्तूप मे रख देता जिससे उसमे चमत्कारो की वृद्धि होती।" इस प्रकार विचार करता हुआ वह सङ्घाराम को गया और अपना सम्पूर्ण अभिप्राय श्रमण से निवेदन किया। श्रमण ने उत्तर दिया, "राजा दुखी मत हो, इन अवशेषो को समुचित स्थान प्रदान करने के निमित्त तू सोना, चाँदी, ताँबा और पत्थर का एक एक पात्र बनवा और उन पात्रो को एक के भीतर एक जमाकर शरीरावशेष रख दे।" राजा ने कारीगरो को उसी प्रकार के पात्रो को बनाने की आज्ञा दी। उन लोगो ने एक ही दिन मे सब पात्र बनाकर ठीक कर दिये। फिर शरीरावशेष-सहित उस पात्र को एक सुन्दर और सुसज्जित रथ मे रखकर लोग

सङ्घाराम को ले चले। राजा अपने सौ पदाधिकारियो सहित उस समारोह के साथ हुआ; लाखो दर्शको की भीड़ से स्थान भर गया। अरहट ने अपने दक्षिण हस्त से स्तूप को उठाकर और अपनी हथेली पर रख कर राजा को शरीरावशेष उसके नीचे रख देने का आदेश दिया। यह आज्ञा पाकर उसने पात्र रखने के लिए भूमि को खोदा और सब कृत्य निपट जाने पर अरहट ने फिर ज्यों का त्यो स्तूप उसी स्थान पर सहज मे रख दिया।

दर्शक इस आश्चर्य व्यापार से मुग्ध होकर बुद्ध के अनुयायी और उनके धर्म के पूर्ण भक्त हो गये। इसके उपरान्त राजा ने अपने मन्त्रियों से कहा, "मैंने सुना है कि बुद्धदेव ' ो क्षमता का पता लगाना बहुत कठिन है। उनकी आध्यात्मिक शक्ति की खोज तो किसी प्रकार हो ही नही सकती। एक बार उन्होने अपने शरीर को कोटि भागो मे विभक्त कर डाला था और एक बार ससार को अपनी हथेली पर धारण किये हुए देवता और मनुष्यो के मध्म मे वे प्रकट हुए थे। उस समय उन्होने बहुत साधारण शब्दो मे धर्म और उसके फलस्वरूप को ऐसी अच्छी तरह से प्रकट किया था कि सभी कोई अपनी-अपनो योग्यतानुसार उसको भली-भाँति समझ गये थे। धर्म के स्वभाव का वर्णन आपने ऐसी उत्तम रीति से किया था कि जिससे सब का चित्त उसकी ओर आकृष्ट हो गया था। उनकी आध्यात्मिकता शक्ति ऐसी अदबुत थी, और, उसका ज्ञान कितना बड़ा था इसको वाणी द्वारा प्रकट करना असम्भव है। यद्यपि अब उनका सजीव स्वरूप वर्तमान नही है परन्तु उनकर उपदेश वर्तमान है। जो लोग उनके सिद्धान्तरूपी अमृत को पीकर अमर हो गये है, और उनके उपदेश नुसार चलकर आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त करते हैं, उनके आनन्द और उनकी योग्यता का विस्तार बहुत बढ गया है। इसलिए आप लोगो को भी बुद्धदेव की भक्ति और पूजा करनी चाहिए तभी आप लोग उनके धर्म के गुप्त रहस्य को जान सकेंगे।"

राजधानी के दक्षिण पूर्व मे पाँच या छः ली पर एक सङ्घाराम 'लुशी' नामक है जिसको देश के किसी प्राचीन नरेश की रानी ने बनवाया था। प्राचीनकाल मे इस देश मे शहतूत के पेड़ और रेशम के कीडे नही होते थे। चीन मे इनके होने का हाल सुनकर यहाँ के लोगो ने इनकी खोज मे दूतो को भेजा। उस समय तक चीन के नरेश इनको बहुत छिपाकर रखते थे। इन तक किसी की भी पहुँच नही होती थी। देश के चारो तरफ रक्षक नियत थे जिनकी आँख बचाकर शहतूत वृक्ष का बीज अथवा रेशम के कीडों का अण्डा ले जाना नितान्त असम्भव था।

यह दशा जानकर कुस्तन नरेश ने चीन नरेश की कन्या के साथ विवाह करना चाहा। अपने निकटवर्ती राज्य के प्रभाव को भली-भती जानता था इसलिए उसकी बात को स्वीकार कर लिया। इसके उपरान्त कुस्तन नरेश ने राजकुमारी की रक्षा के

लिए एक दूत भेजा और उसको सिखला दिया कि 'तुम चीन की राजकुमारी से यह कह देना कि हमारे देश मे रेशम अथवा रेशम उत्पन्न करने वाली वस्तु का अभाव है इसलिए बहुत अच्छा हो अगर राजकुमारी अपने वस्त्र बनवाने के लिए रेशम के कीडे और शहतूत के बीज लेती आवें ।

राजकुमारी ने इस समाचार को सुनकर थोडे से शहतूत के बीज और रेशम के कीडे चोरी से मँगवाकर चुपचाप अपने शिरोवस्त्र मे छिपा लिये । सीमान्त पर पहुँचने पर रक्षक ने सब कही की तलाशी ले ली परन्तु राजकुमारी के शिरो वस्त्र हटाने का साहस उसको न हुआ । कुस्तन देश मे पहुँचकर सब लोग उसी स्थान पर आकर ठहरे जहाँ पर पीछे से लुशो सघाराम बनवाया गया है । इस स्थान से बड़ी बडी धूम-धाम के साथ राजकुमारी राजभवन को पधारी, और शहतूत के बीज और रेशम के कीडे इसी स्थान पर छोड दिये गये ।

बसन्त ऋतु मे बीज बोये गये और समय आने पर रेशम के कीडे को पत्तियाँ खिलाल गई । यद्यपि पहले-पहल दूसरे प्रकार के वृक्षो की पत्तियो से कीड़ो का पोपण किया गया था परन्तु अन्त मे शहतूत से वृक्षो से काम चलने लगा । उस समय राजकुमारी ने पत्थरो पर यह आज्ञा लिखवाई, "रेशम के कीडो को कोई कभी न मारे । कुकडियाँ उस समय काती और बटी जावें तब तितलियाँ उनको छोडकर निकल जावें । जो कोई व्यक्ति इस आज्ञा के विरुद्ध आचरण करेगा । उसको ईश्वर दण्ड देगा ।" इसके उपरान्त राजकुमारी ने सघाराम को उस स्थान पर बनवाया जहाँ पर सबसे पहले रेशम के कीडो का पालन हुआ था । यहाँ पर अब भी अनेक पुराने शहतूत वृक्षो के अवशेष बतलाते हैं । उस समय से लेकर अब तक इस देश मे रेशम की खेती सुरक्षित है । कोई भी व्यक्ति रेशम के चुराने के अभिप्राय से कीड़ो को मार नही सकता । यदि कोई मनुष्य ऐसा करे तो वह अनेक वर्षों तक कीड़े नही पालने पाता ।

राजधानी के दक्षिण-पूर्व मे लगभग २०० ली पर एक बहुत बड़ी नदी उत्तर पश्चिम की ओर बहती है । इस नदी से लोग खेती की सिंचाई का काम लेते है । एक बार इस नदी की धारा बन्द्र हो गई अद्भुत घटना पर राजा को बडा आश्चर्य हुआ, तुरन्त अपने रथ पर सवार होकर और एक महात्मा अरहट के पास जाकर पूछा, 'नदी का जल रुक गया है इसका कारण क्या है ? इस नदी के लोगो को बडा लाभ पहुँचता था, क्या मेरा शासन न्याय-रहित है ? अथवा क्या मेरे पुण्य का फल ससार मे समान से सबको प्राप्त नही है । यदि मेरा कोई अपराध नही है तो फिर क्यो इस विपद का मुख देखना पडा ?"

अरहट ने उत्तर दिया, "महाराज बहुत उत्तम रीति से राज्य करते हैं । यह आपके शासन के प्रभाव से सब लोगो को सुख चैन प्राप्त है । यह जो नदी की धारा

बन्द हो गई है उसका कारण एक नाग है जो उसके भीतर रहता है। आप उसकी पूजा प्रार्थना करे आपको फिर उसी तरह पर लाभ पहुँचने लगेगा जैसा कि सदा से पहुँचता रहा।"

इस आदेश को सुनकर राजा लौट आया। उसने जाकर ज्योही नदनाग की पूजा की कि अकस्मात् एक स्त्री (नागकन्या) नदी मे से निकल पडी और राजा के पास जाकर कहने लगी, "मेरे पति का देहान्त हो गया, कार्यक्रम का चलाने वाला दूसरा चोल नहीं है; इसी सबब से नदी की धारा बन्द हो गई और किसानो को हानि पहुँच रही है। यदि महाराज अपने राज्य मे से किसी उच्च कुलोत्पन्न मन्त्री को पतिवरण करने के लिए मुझे प्रदान करे तो उसकी आज्ञा से नदी अवश्य सदा के समान बहने लगेगी।"

राजा ने उत्तर दिया,"मैं आपकी प्रार्थना और इच्छा की पूर्ति का प्रयत्न करने के लिए सब प्रकार प्रस्तुत हूँ।" नाग कन्या इस वचन से प्रसन्न हो गई।

राजा ने लौटकर अपने अधिकारियो से इस प्रकार कहा, "प्रधान मत्री राज्य के लिये दुर्ग समान है। खेती करना मनुष्य के जीवन का परम धर्म है। भले प्रकार रक्षा के प्रबन्ध बिना राज्य का सत्या नाश उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार भोजन के बिना मनुष्य मृत्यु अनिवार्य है इस समय जो विपद उपस्थित है उससे बचने का उपाय क्या है यह आप लोग निश्चय कीजिए।"

प्रधान मंत्री ने अपने स्थान से उठकर और दण्डवत करके इस प्रकार निवेदन किया,"मेरी आयु का जो कुछ अश अब तक व्यतीत हुआ है सबका सब व्यर्थ ही रहा, इतने बडे पद पर रहकर भी मैं दूसरो को कुछ भी लाभ न पहुँचा सका। यद्यपि मेरे चित्त मे स्वदेश सेवा की वृत्ति सदा से रही है परन्तु उसके अनुसार कार्य करने का समय मुझको अब तक नही प्राप्त हुआ। अब समय आया है इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप मुझको इस काम के लिए नियत कीजिए; महाराज की इच्छा पूर्ति के लिये मैं कोई प्रयत्न उठा न रक्खूँगा सम्पूर्ण देश वालो की भलाई के सामने एक मन्त्री का जीवन विशेष मूल्यवान नही हो सकता। मत्री देश का सहायक मात्र है, परन्तु मुख्य वस्तु प्रजा ही है। महाराज अधिक सोच विचार न करें। इस विदा के समय मे मेरी प्रार्थना केवल इतनी ही है कि पुण्य संचय करने के निमित्त मुझको एक संघाराम बनाने की आज्ञा प्रदान की जावे।"

राजा ने इसको स्वीकार कर लिया और मंत्री की जो कुछ कामना थी वह पूरी कर दी गई। इसके उपरान्त मन्त्री ने नाग भवन मे जाने की तैयारी की। राज्य के सब बड़े-बड़े पुरुषो ने गाने-बाजे और समारोह के साथ उसको भेज दिया। मंत्री ने

सफेद वस्त्र पहनकर और सफेद घोड़े पर सवार होकर भक्ति और प्रेम के साथ देश-वालो से विदा माँगी। इस तरह घोड़े पर सवार होकर वह नदी मे घुसा। बहुत दूर तक चले जाने पर भी उसको कही पर भी इतना जल न मिला कि वह डूब सके। तब झुँझलाकर उसने अपना चाबुक नदी की धार पर मारा। चाबुक की फटकार के साथ ही बीचो बाच से जल उमड़ निकला औरवह उसके भीतर समा गया। थोडी देर के उपरान्त सफेद घोडा पानी के ऊपर बहता हुआ दिखलाई पड़ा। उसकी पीठ पर चन्दन का एक नगाडा रक्खा हुआ था और एक पत्र था जिसका आशय यह है.—
"महाराज ने मेरे लिये उपयुक्त व्यक्ति के प्रदान करने मे कुछ भी भूल नही की। इस कृपा के लिये महाराज की प्रसन्नता और राज्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे। आप के मत्री ने आपके लिए यह नगाडा भेजा है। नगर के दक्षिण पूर्व मे यह रखवा दिया जावे। जिस समय कोई शत्रु आप पर चढाई करेगा यह नगाडा आपसे आप बजने लगेगा।"

उस भिति से बराबर नदी की धारा प्रवाहित है और लोग उससे लाभ उठा रहे है। इस घटना को अनेकानेक वर्ष व्यतीत हो गह। उस स्थान का भी अब पता नही है जहाँ पर नगाडा रक्खा हुआ था, परन्तु उजाड़ सघाराम 'नगाडा झील' के निकट अब तक वर्तमान है। इसको दशा बहुत बुरी हो गई है। इसमे एक भी साधु नही रहता है।

यहाँ से उत्तर पूर्व मे लगभग १,००० ली चलकर हम 'नवय' नामक प्राचीन देश मे पहुँचे जो ठीक 'लिडलन' के समान है। यहाँ के पहाड़, घाटियाँ और भूमि के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नही। लोग सम्भवत. जङ्गली और असभ्य है। यद्यपि इनका आचरण शुद्ध नही है। तो भी यदि प्रशसनीय नही, तो अधिक निन्दनीय भी सहज नही है। पर कितनी ही बातें ऐसी भी है जिनको सत्य प्रतीत करना कठिन है। तथा कितनी ही बातें ऐसी है जिनका सत्य प्रतीत करना भी सहज नहीं है।"

यात्री ने यहाँ तक जो कुछ देखा, या सुना उसका वृत्तान्त लिखा है। उसकी सब बातें शिक्षाप्रद है, तथा और जिन लोगो से उसकी भेट हुई सबो ने उसकी प्रशसा की है। विना किसी सवारी और विना किसी सहायक के हजारो मील ली की यात्रा करना ह्वेनसांग सरीखे धर्मिष्ठ व्यक्ति का ही काम था। धन्य ह्वेनसांग !